अपनी प्रतिभा के बल पर नई ऊँचाईयाँ दीं। सामाजिक जीवन को उच्च बनाने के लिये उन्होंने मथुरा में अनेक सामाजिक संगठनों में सक्रिय भागीदारी की। स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया। राष्ट्रिय और वैश्विक हित के लिये आर्यसमाज को अपने कार्यक्षेत्र का माध्यम बनाया। पूज्य आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी महाराज के अनन्य सहयोगी बनकर एक संरक्षक के रूप में श्री विरजानन्द ट्रस्ट की स्थापना कर और इसी ट्रस्ट के माध्यम से वेद प्रचार यात्रायें, गौशाला, गुरूकुल, विद्यालय, सत्साहित्य के प्रकाशन के माध्यम से अभूतपूर्व प्रचार चलाया और वे आजीवन श्री विरजानन्द ट्रस्ट के अध्यक्ष पद का गरिमापूर्ण ढंग से निर्वहन करते रहे। वे यहाँ की सम्पूर्ण गतिविधियों के प्राण स्वरूप ही रहे। उनके वरदहस्त के हट जाने के बाद तथा श्रद्धेय आचार्य प्रेमभिक्षु जी महाराज की छत्रछाया हट जाने से संस्था के कार्यों में तेजस्विता का अभाव सा दिखाई देने लगा। यद्यपि गतिविधियाँ सभी चलती रहीं पर व्यापकता न ले सकीं। ऐसी विकट परिस्थिति में परमेश्वर ने पुनः कृपा की और माननीय श्री वंशीधर जी अग्रवाल की तपोस्थली की तरफ पुनः उनके परिवार का ध्यान आकर्षित किया। उनके सुपुत्र श्री सुरेशचन्द जी अग्रवाल जो अपने पिताश्री की तरह ही महर्षि दयानन्द और वैदिक धर्म के अनन्य भक्त हैं, आर्यसमाज के लिए सर्वात्मना समर्पित हैं। सपरिवार इस संस्था को सम्बल प्रदान करने के लिए ईश प्रेरणा से स्वतः उपस्थित हुए। अब आशा है इस परिवार के आगे आने से संस्था नई ऊँचाईयों को छूयेगी।

उनके परिवारीजनों ने उनकी जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में श्रद्धांजलि के रूप में प्रथम चरण में श्री गोपीनाथ वंशीधर फाउण्डेशन ट्रस्ट के माध्यम से सत्य प्रकाशन के सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन का दायित्व अपने कंधों पर लिया है। श्री विरजानन्द ट्रस्ट इस दिव्य कार्य के लिये डॉ. ललित शरण अग्रवाल (अमेरिका), श्री सुरेशचन्द्र आर्य (अहमदाबाद), श्री अरुणकुमार अग्रवाल (दिल्ली), श्री अशोक कुमार अग्रवाल (दिल्ली), श्री विजय कुमार अग्रवाल (भोपाल), श्री दिनेशचन्द्र अग्रवाल (भोपाल), डॉ. विनोद अग्रवाल (दिल्ली), श्री महेशचन्द्र अग्रवाल (मुम्बई) तथा श्री हिरण्मय अग्रवाल (मथुरा) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। इसके लिए ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।-

।। ओ३म् ।।

शुद्ध रामायण

वाल्मीकि रामायण का संशुद्ध हिन्दी रूपान्तर

*

राष्ट्र पुरुष राम एवं रामायण के विविध
पात्रों का सचित्र शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त

*

शंका-समीक्षा: रहस्य-निरूपण

❑

प्रकाशक:

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, वेदमन्दिर-मथुरा।

सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण का)

भागलपुर और पटना वाली गंगा में केवल गंगाजल ही नहीं, रास्ते की अन्य नदियों का पानी भी है, कुछ गंगा के तट पर बसे हुए कानपुर, प्रयाग, काशी आदि नगरों की नालियों का पानी भी है। हमें तो चाहिए गंगाजल, गंगोत्री का शुद्ध गंगाजल नहीं चाहिये–

हेच फिक्रे न कर्तव्यं, कर्तव्यं जिक्रे खुदा।
अल्ला ताला प्रसादेन सर्वकार्य फतेह भवेत्।।

अपने इस ग्रन्थ में हमने आपको गंगोत्री का जल पिलाया है, आदिकवि की वाणी के शुद्ध स्वरूप का रसास्वादन करवाया है। 'राम–चरित–मानस' को सैद्धान्तिक दृष्टि से घटिया तथा हानिकारक मानते हुए भी तुलसी के काव्यसौष्ठव में हमारी गहन निष्ठा है। अतः 'मानस' के कई सरस और शिक्षाप्रद प्रसंगों को हमने निःसंकोच स्थान दिया है। समीक्षा की यह स्वस्थ शैली ही कल्याणकारिणी है।

हम चाहते हैं कि रामायण सम्बन्धी हमारे इस ग्रन्थ को हमारे देश के नेता और सभी राष्ट्रप्रेमी मनोयोगपूर्वक पढ़ें। उनके नेत्र खुल जायेंगे। वे इस तथ्य को स्वीकार करेंगे कि रामायण–महाभारत मजहबी ग्रन्थ नहीं हैं, यह तो हमारे शुद्ध ऐतिहासिक राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं। भारत सन्तान की अन्तरात्मा में राष्ट्रीयता की ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिये इस प्रकार के ग्रन्थों का पाठशालाओं, स्कूलों, कालिजों के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाना आवश्यक है। जन–जन में सोई हुई राष्ट्र भावना जगे और वह धर्म भावना से संयुक्त होकर प्रत्येक मनु पुत्र के आत्म–कल्याण और विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे, इस भावना से यह ग्रन्थ–रत्न सेवार्पित है।

इस ग्रन्थ का कथा भाग हमने श्रद्धेय पं० सन्तराम जी 'वेदरत्न' द्वारा सम्पादित 'शुद्ध रामायण' से लिया है। श्रद्धेय पंडित जी ने अपने अथक श्रम से जिस अमृत–घट का निर्माण किया, हमें तो वह तैयार ही मिला। अतः इसका मुख्य श्रेय उन्हीं को है। इसके संशोधन में हमारे पितृतुल्य पूज्य भ्राता श्रीकृष्ण गोपाल जी 'भारतीय' ने बड़ा श्रम किया है। हम उक्त दोनों ही पूज्यजनों के ऋणी हैं और उनके पुण्य चरणों में अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

(भाग २) रामायणः एक सरल अध्ययन- के निर्माण में हमने निम्न लेखकों और ग्रन्थों के विचारों से सहायता ली है–

शुद्ध रामायण (श्री पं० सन्तराम जी वेदरत्न) रामायण–रहस्य (स्वामी रामानन्द जी) राष्ट्रवादी रामायण (श्री पाराशर जी) रामायण दर्पण (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) स्वाध्याय सन्दोह (स्वामी वेदानन्द जी) वाल्मीकि रामायण (श्री पं० प्रेमचन्द जी विद्याभास्कर) वाल्मीकीय रामायण (गीता प्रेस गोरखपुर) श्रीमद् वाल्मीकि रामायण (प० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर) साकेत, पंचवटी (मैथिलीशरण गुप्त) जय हनुमान् (श्री श्याम नारायण जी पाण्डेय) विश्व–ज्योति मासिक, आर्य मित्र साप्ताहिक 'तपोभूमि' वेदप्रकाश मासिक, आर्योदय साप्ताहिक, अवतार रहस्य–गीता विवेचन (आचार्य श्रीराम आर्य) अनुराग रत्न, शंकर सर्वस्व (प० नाथूराम 'शंकर' शर्मा) रामायण के आदर्श पात्र, आदर्श भ्रातृप्रेम, रामचरित मानस, हिन्दी गद्य रत्नाकर, सत्यार्थ प्रकाश, पूजनीय डा० हैडगेवार (जीवनी) प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, प० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एवं श्री जगदीश चन्द्र जी विद्यार्थी के लेखों का भी हमने उपयोग किया है। हम सभी के कृतज्ञ हैं–

अन्त में परम गुरु परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद है जिसकी कृपा और करुणा ही हमारा एक मात्र सम्बल है।

- ईश्वरीय प्रसाद प्रेम

श्रद्धा के दो-शब्द

पूज्यपाद आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी महाराज गुण, कर्म व स्वभाव से पूर्णतः आर्यत्व की प्रखर दीप्ति से दीपित थे। जहाँ वे वैदिक संस्कृति के अनन्य उपासक थे वहीं वे वेदोद्धारक ऋषि दयानन्द के प्रति पूर्ण कृतज्ञता से ओत–प्रोत रहे। उनके हृदय में वैदिक संस्कृति के पतन को देखकर जहाँ गहरी व्यथा थी वहीं उसके उत्थान के लिए सर्वस्व समर्पण का दिव्य उत्साह भी था। जहाँ वे प्रखर मौलिक चिन्तक थे वहीं उस चिन्तन को सशक्त अभिव्यक्ति देने में वाणी तथा लेखनी से समान रूपेण समर्थ थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम व योगीराज श्रीकृष्ण के पावन व्यक्तित्व पर उनका मार्मिक व्याख्यान सुनकर अनेकानेक पौराणिक लोग न केवल नतमस्तक हुए अपितु पूर्णतः आर्यत्व से ओत–प्रोत हो गये। पूज्य आचार्य जी अपने प्रबल विरोध को भी जिस शालीन भाषा में अभिव्यक्त करते थे, उसे पढ़ व सुनकर प्रबल विरोधी भी अत्यन्त प्रभावित होता था। उनकी कृतियों में शुद्ध रामायण, शुद्ध महाभारत, शुद्ध कृष्णायन, शुद्ध हनुमच्चरित, शुद्ध मनुस्मृति, शुद्ध सत्यनारायण कथा, मानस पीयूष आदि ग्रन्थों ने न जाने कितने व्यक्तियों के मानस शुद्ध कर डाले। उनकी सम्पादन क्षमता का उत्कृष्ट नमूना सत्य प्रकाशन का प्रचुर साहित्य व तपोभूमि पत्रिका का गौरवपूर्ण स्थान दर्शाता है। उनके द्वारा प्रणीत शुद्ध रामायण का वर्त्तमान संस्करण जनता की प्रबल मांग पर प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव सन्तोष हो रहा है। आशा है यह ग्रन्थ रत्न अवश्य पूज्य आचार्य जी की कठोर साधना का लाभ समाज को प्रदान करेगा। उस तपस्वी आत्मा के प्रति अधिक क्या कहूँ ?

– उनके पावन जीवन के प्रति यही निवेदन है–

आर्य आज तुमको गये, वर्ष हुए दस–बीस।
बाधायें आईं बहुत, पहुँचाने को टीस।।
पहुँचाने को टीस, बढ़े हम सीना ताने।
सौंपा गुरुतर भार, उसे आगे पहुँचाने।।
बन स्वदेश सेवक सदा किये सभी शुभ कार्य।
श्रद्धाञ्जलि का रूप ये, समझा हूँ आचार्य।।

* * *

विषय-सूची

रामायण : एक सरल अध्ययन

।। ओ३म।।

अवतरणिका

कल रामनवमी का पुण्य पर्व है, प्यारे राम का, राष्ट्रपुरुष लोकनायक राम का, जयन्ती पर्व! मैं इसे पूरे–२ उत्साह के साथ अच्छे से अच्छे ढंग पर मनाना चाहता हूँ, कैसे मनाऊँ इसे?

मेरे पड़ौस में ही रामजी का मन्दिर है। एक सप्ताह से तुलसी रामायण का 'अखण्ड कीर्तन' चल रहा है, वहाँ। लाउड–स्पीकर के प्रयोग के कारण कई दिन से रात्रि को ठीक प्रकार से नींद भी नहीं आ पाती– अखण्ड कीर्तन जो हुआ उसमें विराम कैसा ? सोचता हूँ कि क्या यह राम–भक्ति का सही तरीका है ?

''मंगल - भवन अमंगल हारी,
द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी''

– यह सामूहिक टेक रह रहकर कानों में टकराती है। विचार आता है कि राम 'दशरथ अजिर बिहारी' थे तो फिर भुवन–बिहारी कैसे ? मन कहता है कि इसमें हर्ज ही क्या है, इस प्रकार हम अपने राम के गौरव को बढ़ाते ही हैं ? पर तभी याद आता है कि अत्युक्ति भी तो प्रकारान्तर से निन्दा है। तब क्या राम को ईश्वर बताना राम की निन्दा करना है, उनके 'रामत्व' को मिटाना है ?

कीर्त्तन की भीड़ में से निकलते हुए कुछ महानुभावों के चेहरे मैं अपने मकान पर से देख पा रहा हूँ। मन्दिर के आंगन में ही उनमें से कई ने बीड़ी, कई ने सिगरेट जला ली है। बाहर निकलते –२ तो और कई तिलकधारी सज्जन अपने मुखों से आग उगलते दीख पड़ रहे हैं। मैं जानता हूँ कि इनमें से कई ऐसे भी हैं जो लगातार सातों दिन 'अखण्ड कीर्तन' में आते रहे हैं। तो क्या इस कीर्तन– कथा का, धार्मिक कर्मकांड का सामाजिक सदाचार से, स्वास्थ्य से और जीवन की ज्वलन्त समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं, फिर इससे क्या लाभ ?

और तभी अपने रंगीले कथाकार पण्डितजी मुझे दिखाई पड़े। उनका लम्बा अँगरखा, पेचदार पगड़ी, आँखों का सुरमा माथे की बिन्दी और रामनामी दुपट्टा सब कुछ दिखाई पड़े। उनके दम लगाने और भाँग छानने का मुझे ज्ञान था। मुझे याद आई पण्डितजी के साथ मेरी एक दिन की हुई वार्ता, जब यही सवाल मैंने उनसे किया था कि क्या राम बीड़ी, सिगरेट, सुलफा, गाँजा, अफीम और भांग आदि पीते थे ? उत्तर था–नहीं ! तब राम की कथा कहने और सुनने का क्या लाभ, यदि हम उनकी कथा से अपने जीवनों को ऊँचा न उठावें ? राम की मातृ–पितृ–भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, ब्रह्मचर्य–निष्ठा,

पत्नी–व्रत, मैत्री–भाव, उदारता, कर्तव्यनिष्ठा, ईशभक्ति और उत्कट राष्ट्रप्रेम इन सभी सदगुणो का धारण और आचरण किये बिना राम–भक्ति का क्या अर्थ ? बिना किसी हिचकिचाहट के प० जी ने कहा था– वे तो भगवान थे उनके गुणों को हम मरणधर्मा कहाँ पा सकते हैं ?' तब कथा–कीर्तन का लाभ ?'' प० जी ने उसी लहजे मे उत्तर दिया–''यह सब तो पाप के फल से बचने के साधन हैं।' 'क्या पाप के फल से बचा जा सकता है ?'' हाँ, कलियुग केवल नाम अधारा'' उनका उत्तर था और इसके पहले कि मै उनसे और कुछ निवेदन करता, उन्होंने शीघ्रता से अपना रास्ता लिया। पाप से बचने को नहीं, पाप के फल से बचने को हम राम–भक्ति करते हैं ? तभी से इस पहेली को मैं सोचता आ रहा हूँ कि क्या ऐसी राम–भक्ति ही हमारे घोर पतन का कारण नहीं है ?

भक्त, भगवान् राम की प्रस्तर–प्रतिमा के दर्शन कर रहे थे। मन्दिर में भीड थी, अपार भीड। अपनी छत से खडा–२ मैं साफ–२ देख पा रहा था, उस भीड में अनेकों दृश्य। जेबकतरे भक्त तो होंगे ही उनमें, पर कुलवन्ती नारियों के पवित्र सतीत्व के साथ खिलवाड़ करने वाले भक्तगण भी कम न थे। सोचता हूँ क्या ये सब एक नारी के पावन सतीत्व की रक्षा के लिए अपने सर्वस्व को दाँव पर लगाने वाले राम के भक्त हैं ? प्रभो, हमारी यह क्या दशा है ? यह सोचते–२ मैं विचारों में डूब सा गया और तभी एक–२ करके अनेको दृश्य मेरे स्मृतिपथ पर उभर आये।

अब मेरी मौसीजी की तस्वीर मेरे सामने थी। बडे तडके उठकर वे यमुना–स्नान को जा रही हैं। 'यमुना मैया' में गोता लगाकर वे नगर के कई मन्दिरों में जावेंगी। रामजी के मन्दिर में वे अधिक समय ठहरती हैं। रास्ते में भी और मन्दिरों में भी, वे दूसरी स्त्रियों के साथ कई तरह की बातें करने में निपुण हैं। मन्दिर की चौखट को सिर लगा, पुजारी जी की पग धूलि ले, वे काफी दिन चढ़े तक आयेंगी। हाथ में माला तो उनके बनी ही रहती है। लौटते समय तिलक भी उनके माथे को शोभित कर रहा होता है। यह उनका 'नित्य–नियम' है। अभी–२ वे मन्दिर से लौटी हैं। सिर की चादर उतारते–२ उनकी निगाह आंगन में फैले दूध पर पड जाती है। अरे ! मौसीजी को क्या हुआ ? चादर हाथ की हाथ में रह जाती है। नथुने फूल जाते हैं, भौंहें तन जाती हैं, शरीर के वस्त्र सब अस्त–व्यस्त। क्रोध की साक्षात् मूर्ति बनकर मौसीजी अपनी बहू को गालियां निकाल रही हैं। उस बेचारी के दादे–परदादे सबको बखान रही हैं। इतने से उन्हें सन्तोष नहीं होता, क्रोध का ज्वर उतारने को चादर को एक ओर फेंक, वे लपककर बेलन संभालती हैं और बस–कैसा वीभत्स दृश्य है, यह ! मोहल्ले भर में 'भगतानी' के नाम से प्रसिद्ध अपनी मौसीजी का यह डरावना रूप देखकर मैं सहम गया।

इसी प्रकार एक–२ करके कई दृश्य सामने आते गये जिनके साथ रामायण–पाठी भाई–भाइयों के नीचता और क्रूरतापूर्ण आपसी सम्बन्ध, माता–पिता की घोर अवज्ञा और दुरवस्था, पति–पत्नी के पारस्परिक कटु और अश्लील व्यवहार और मित्रों के विश्वासघात की दर्द भरी कहानियाँ जुडी थीं। मन एक अजीब टीस से भर गया। राम के भक्तों की ऐसी दशा क्यों ?

सोचते–२ मुझे रामलीला का ध्यान हो आया। उन दिनो मैं रामलीला देखे बिना एक दिन भी न रह पाता था। आज विचार करता हूँ तो अपनी बाल–बुद्धि पर हँसी आती है, लगता है रामलीला एक स्वाँगमात्र है। बालकों का मनोरंजन भर उससे होता है। जिस रूप में सब कुछ प्रस्तुत किया जाता

है उससे सुरुचि–निर्माण तो सम्भव ही कहाँ है। रामलीला की बारात ! कैसे घिनौने, भद्दे और कुरूचिपूर्ण दृश्य होते हैं, उसमें। वे सारे दृश्य मेरी निगाहों में झूल गये। मैं देख रहा था कि इनसे चरित्र–निर्माण की आशा तो वन्ध्यापुत्र के समान ही असम्भव है।

रामलीला से लौटते हुए उस दिन की अपने परम–मित्र प्रमोदकुमार जी की बात याद आई। वे कहते थे, "देखा आपने क्या यह रामलीला एक वैसा ही नाटक नहीं है जैसे अन्य–अनेकों कवि–कल्पना से निर्मित नाटक होते हैं ? भाई सुशील, मेरा तो अब पक्का विश्वास हो गया है कि राम आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं ही नहीं। आप सोचिये न ऐसे–ऐसे चमत्कार जिनका वर्णन तुलसीदास जी ने किया है क्या कभी सत्य घटनायें भी हो सकती हैं ? अभी आज 'लक्ष्मण–शक्ति ' का ही प्रसंग लीजिए–

'मेघनाथ सम कोटि शत योधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनन्त सो उठइ न चला खिसाइ।।

जरा इन बुद्धि के शत्रुओं से पूछिये कि यदि लक्ष्मण 'जगदाधार अनन्त' थे तो फिर मूर्छित कैसे हो गये ? तो पता है ये तुरन्त कहेंगे कि वे 'नरलीला' कर रहे थे। अच्छा, राम को इस अजीब नाटकीय लीला का ज्ञान था, फिर राम ने इतना प्रलाप–विलाप क्यों किया ? यह भी नरलीला थी। अच्छा यदि नरलीला थी तो बीच में ईश्वरलीला कैसे टपक पड़ी जो मेघनाद के समान करोड़ों योद्धाओं से लक्ष्मण नहीं उठ सका ? मूर्छित होने में नरलीला और न उठने में ईश्वरलीला! कैसा भोलापन है यह ? एक दो तो नहीं सैकड़ों ऐसे चमत्कारिक प्रसंग हैं जिन्हें पढ़कर हँसी आती है। सिर्फ कौतूहल पैदा करने वाले विज्ञान और बुद्धि–विरुद्ध ये चमत्कार क्या कवि कल्पना की उड़ान मात्र नहीं हैं ? उन्होंने जो दलीलें दीं उनका मेरे पास उत्तर नहीं था। तब क्या सच में राम हमारे पूर्वज नहीं थे ?

'हिन्दुस्तान' के 'यत्र–तत्र सर्वत्र' का वह समाचार याद आया जिसमें लिखा था–'दक्षिण में एक 'राम–विरोधी सभा' बनी है। इन लोगों ने राम और सीता का 'स्वॉग' निकाला, बड़े ही निकृष्ट रूप में। राम और सीता के हाथ में शराब की बोतलें थीं और वे हाव–भावयुक्त चेहरों के साथ कामुकतापूर्ण चेष्टायें कर रहे थे। वे लोग नारे लगा रहे थे– 'राम मुर्दाबाद, रावण जिन्दाबाद,' इसी विषय में एक पुस्तक का नाम याद आया–'राम बड़ा या रावण।' 'राम बादशाह,' सीता का छिनाला' आदि कुछ दूसरी पुस्तकों के शीर्षक भी सुने थे, वे भी याद आये। 'सरिता' के कई धूर्त्ततापूर्ण लेखों का भी स्मरण हो आया। शोकावेग से मेरा मन सिहर उठा।

अब मुझे वह पूरी घटना याद आ रही थी, जिसने मेरे मनः क्षेत्र में यह सब हलचल पैदा की और मुझे यह सब सोचने की दिशा दी। मैं रेल–यात्रा में था। एक परिवार हमारे साथ यात्रा कर रहा था, उन्हीं का एक दूसरा परिचित परिवार भी उसी डिब्बे में सवार हुआ 'जयराम' 'राम–राम 'जयराम जी की' आदि शब्दों का प्रयोग वे अभिवादन के रूप में कर रहे थे कि इसी बीच एक मर्म भरी गुनगुनाहट सुन पडीं– 'कहाँ है, रामजी की जय।' अन्य महानुभावों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। पर मैंने रुचि ली। पिछली सीट से वह एक युवक की आवाज थी। मैं युवक के पास पहुँचा और उनका आशय जानने की इच्छा प्रकट की। उस भावनाशील युवक ने मुस्कराते हुए अपनी सीट पर ही मुझे

जगह दे दी। मैं देख रहा था, युवक के नेत्रों में गहरी व्यथा थी। उम्र कोई ३५ वर्ष रही होगी पर स्वदेशी सादा लिवास में वह नव तरुणाई का स्वागत करता सा प्रतीत होता था। भावावेश में वह कहने लगा— 'बन्धु, यह सब मिथ्या कहते हैं, राम की तो जय नहीं, दिन—प्रति—दिन पराजय हो रही है, घोर पराजय! जय का अर्थ है वृद्धि। राम के मानने वाले, राम के आदर्शों के पुजारी जब निरन्तर और नित्यशः घट रहे हों तब जय कैसी ?' राम की जय तो उस दिन थी जब दुनियाँ के दो अरब मनुष्य राम की संस्कृति के भक्त थे। राजा राम की जय तो तब थी जब जावा, सुमित्रा, इण्डोचाइना, लंका—स्याम, ब्रह्मा सर्वत्र सदैव वेद ऋचाओं का गान होता था,' कन्धार गान्धार था, अफगानिस्तान—अपगान—स्थान था, कैस्पियनसागर—कश्यप सागर था। इतना ही नहीं जब जर्मनस्— 'जर्मन्' के रूप में देखे जा सकते थे और जब यूरोप—अमेरिका तथा विश्व भर में वैदिक संस्कृति और सभ्यता का जय घोष था। कवि के शब्दों में —

रूए जमीं से आती एक वेद की सदा थी।
हर शर अदब से वेदों के रूबरू झुका था।।

— तब मेरे राम की जय थी।'' और भी करुणार्द्र स्वर में युवक का कहना जारी था— ''राम की जय! कहाँ है राम की जय ? वह उस समय थी जिस समय के लिए मनु भगवान् ने लिखा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

अहा! कैसा स्वर्णिम युग था वह, जब पृथ्वी भर के जिज्ञासुजन—आत्मकल्याणार्थ भारत के तपस्वी ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर चारित्र्य—शिक्षा लेते थे। राम की जय तो तब थी जब हमारा अश्वपति (राष्ट्रपति) आत्मविश्वास के साथ घोषणा कर सकता था—

न मे स्तेयो जनपदे न कदर्यो वा न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्न नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

अर्थात् 'मेरे सम्पूर्ण जनपद (राज्य) में न कोई चोर है, न कँजूस है, न कोई कायर है न नशीली वस्तु का सेवन करने वाला, न कोई अग्निहोत्र रहित है, न बिना पढ़ा लिखा और जब कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री तो कहाँ हो सकती है ?' मेरे स्मृति—सरोवर में युवक की मूर्ति तैर रही थी, यह सब कहते हुए कुछ क्षणों के लिए उसका चेहरा दीप्तिमान हुआ था, पर शीघ्र ही वह और भी मुरझा गया। युवक कह रहा था— 'कहाँ हैं अब मेरे राम की जय! दशरथ से पिता, राम से पुत्र, कौशल्या सी मां— राम से बेटे, राम से पति, सीता सी पत्नी, राम—भरत—लक्ष्मण—शत्रुघ्न से भाई, राम—सुग्रीव से मित्र, हनुमान् से ब्रह्मचर्यव्रती और आदर्श सेवक अब कहाँ मिलेंगे ? बृहत्तर भारत, महाभारत यह शब्द जैसे अपनी सम्पूर्ण गरिमा को खोकर अपने आप में हतप्रभ हो गये हों। देश विदेशों की कौन कहे भरत खण्ड का भू—भाग भी आज कट—फट चुका है, देखा है नये भारत, हाँ स्वतन्त्र भारत का मानचित्र ?'

"नई आजादी !" युवक के स्वर में करुणा मिश्रित ओज था– "जो साँस्कृतिक बरबादी और मानसिक प्रच्छन्न गुलामी का तोहफा लेकर आई है, सिर्फ चन्द लोगों की खुशहाली और मौज–मजे का आधार बन कर रह गई है। यही कारण है, १५ अगस्त और २६ जनवरी जैसे महान् राष्ट्रीय पर्व केवल सरकारी दफ्तरों की चहल–पहल तक सीमित रह कर सर्वथा फीके, रूखे, निष्प्राण और निष्प्रभ होकर रह गये हैं। जन–मन उनके साथ ताल देकर कहाँ गा पाता है ?"

"लगता है जैसे शिवा, प्रताप, बन्दा वैरागी गुरुगोविन्द, गुरु अर्जुन, बालवीर हकीकत, जोरावर और फतेहसिंह के आत्म बलिदान व्यर्थ चले गये। पद्मिनी की जौहर–ज्वाला और झाँसी वाली रानी की शौर्य–अग्नि मानो राख की ढेरी में दब गई हो। राजा राममोहन, देव दयानन्द और कवीन्द्र रवीन्द्र के जागरण–गान सो गये हों। तिलक, गोखले और गाँधी की जीवन–साधना निष्फल हो गई हो ? स्वामी श्रद्धानन्द, लाजपत, वीर भगत, आजाद, विस्मिल, नेताजी, पटेल, राजेन्द्र, जवाहर और न जाने कितने जाने–अनजाने शहीदों और वीरों के अरमान मिट्टी में मिल गए हों।

"ये सांस्कृतिक कार्यक्रम !" युवक इस बार लगभग चीख पड़ा था–"कला के नाम पर यह कामाराधना ! सुरा और सुन्दरी की उपासना! पद्मिनी और सीताओं के इस देश में कुमारी कन्यायें शत–सहस्त्र पुरुषों की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच अर्धनग्नावस्था में हाव–भाव युक्त नृत्य अलाप करें। उफ!! कौन कहता है, कहाँ हैं, राम की जय! नारियों के शील और सदाचार को चुनौती देती हुई नारी चित्र–युक्त यह विज्ञापन बाजी, मन में एक हूक पैदा करने वाले चरित्र नाशक सिनेमाओं के घिनौने प्रदर्शन, यह सब क्या है ? ऋषिमुनियों के इस देश से आज सिने–तारिकायें सांस्कृतिक मिशन पर जाती हैं। हा, हन्त ! क्या कहूँ, किसे कहूँ इस नई आजादी के फेर में मेरे कवि के विद्रोही–स्वर भी तो कुण्ठित पड़ गये हैं। सब कंचन और कामिनी के क्रीत दास बन गये हों, जैसे। 'सर्वे गुणाः कांचन माश्रयन्ति' हर चीज का मूल्य आज आना पाई में आंका जाता है, हाँ धर्म और ईमान का भी। मन्दिर में, मस्जिद में, गिर्जे में साइन बोर्ड लगाकर सस्ते से सस्ते मूल्य में 'धर्म' बिकता है। साहित्यकार, कलाकार सब आकण्ठ डूबे हैं अर्थ और काम के इस मायाजाल में! और इस अर्थ–प्राप्ति में अनर्थ का कोई विचार नहीं। 'धर्म के नाम पर !' ओह मत पूछो मित्रो, सब प्रकार के अनर्थों और पापों का खुला समर्थन हो रहा है, हुण्डी बिक रही है धर्म की। प्रतिक्रिया स्वरूप वह देखो, धर्म–निरपेक्षता के स्वर ऊँचे हो रहे हैं। पवित्रतम सांस्कृतिक चिह्न शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) मखौल की वस्तु बनकर रह गये हैं। राष्ट्र धर्म का, यज्ञ–भावना का ऐसा ह्रास शायद ही इतिहास के किसी युग में रहा हो। सब अपने–२ स्वार्थ में डूबे हैं, किसी को किसी का विचार नहीं– इन्हें पशु कहना भी 'पशुत्व' का अपमान करना होगा। स्व० राष्ट्र कवि गुप्त जी ने कितना मर्मस्पर्शी शब्द–चित्र प्रस्तुत किया है –

मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ।
किन्तु दनुज को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूँ।।

"प्रिय भाई, मनुष्यता ही तो सच्चा धर्म है, पर धर्म के बाह्याडम्बर में आज उसका कहाँ पता है ? 'यज्ञो विश्वस्य नाभिः' यज्ञ–परस्पर उपकारक–भाव विश्व की सुख–शान्ति की कुँजी है।

यज्ञशीलता—समाजवाद ही मानव का मुक्तिपथ है। पर यह आज का समाजवाद ! जो केवल और केवल भौतिकवाद, प्रत्यक्षवाद एव अर्थवाद के कुतर्कों के बल पर खड़ा है, कभी कल्याणकर हो सकेगा ?

यह बुद्धिवाद ! यह विज्ञान !! जो संसार के आनन्दतीर्थ बन सकते थे, हृदयतत्व या अध्यात्मतत्व की सर्वथा उपेक्षा कर के वरदान की जगह अभिशाप बन रहे हैं। कविवर 'दिनकर' जी ने ठीक ही लिखा है—

विश्व का क्या होगा भगवान् ?

तर्क से तर्कों का रण छिड़ा, विचारों से लड़ रहे विचार,
ज्ञान के कोलाहल के बीच बिगड़ता जाता है संसार।
और सबका उलटा परिणाम ! बुद्धि का जितना बढ़ता जोर,
आदमी के भीतर की शिरा हुई जाती कुछ और कठोर।
ज्ञान के मरु में चलता हुआ आदमी खोता जाता है,
हृदय से सर का शीतल वारि और कम होता जाता है।
बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान,
चेतता तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान् !

'तो प्यारे भाई ! ऐसे युग में हम रह रहे हैं' युवक के स्वर में अब कुछ सन्तुलन था— 'एक ऐसा युग, जिसमें राम और राम की पावन संस्कृति एवं आदर्शों का कुछ भी पता नहीं। 'राम' वाले राष्ट्र को भूल रहे हैं और 'राष्ट्र' वाले राम को। धर्म और राष्ट्रीयता को अलग—२ करके खड़ा किया हुआ है। न कोई सच्चे धर्म को समझ रहा है न सच्चे राष्ट्रवाद को। ओह !' युवक के ओष्ठ फिर लगभग काँपने लगे, ''राष्ट्र—२ की बात करने वालों के देखते—देखते प्यारी भारत माता अंग—भंग हो गई। पंजाब और बंगाल के टुकडे हो गये। कितने वर्ष हुए कश्मीर के रूप में माँ के सिर का सौदा चल रहा है। पाकिस्तानी गुण्डे और चीनी दरिन्दे भारत माँ प्यारी मातृभूमि एवं पुण्यंभूमि को अपमानित करने के लिये जैसे होड़ लगा रहे हों। पूर्वी बंगाल में अभी—२ जो घटनायें हुई जो नादिरशाही हुई उस पर न राष्ट्र वालों का मुख खुला न, राम वालों ने करवट ली। **'रघुपति राघव राजाराम'** की झाँझ पीटने वालों की इस बढ़ती हुई मूर्खतापूर्ण उछल—कूद के बीच ही राम के भक्त दिनों दिन घट रहे है। पाकिस्तान और मुस्लिम लीग की भयानक हरकतें आज भी जारी हैं और लम्बे चोगे में ढके, भोली सूरत, हाथ में दवाओं का थैला लिये बगुला पादरी तो भारत का सर्वस्व लूटने पर ही मानो तुले हैं। ईसाईमत का विष—वृक्ष पनप रहा है और दूसरी ओर सबको समान रोटी, कपड़ा और मकान देने का नारा लगाने वाले रूस के एजेण्ट— कम्युनिस्ट भारत के 'स्व' को ही मिटा डालना चाहते हैं। राष्ट्र वाले इन जलते प्रश्नों को 'साम्प्रदायिक' कह कर टालते हैं तो 'राम' वाले इसे दुनियादारी का झमेला समझ कर झाँझ पीटने में मस्त हैं।

एक गद्दी के नशे में चूर है तो दूसरा मुक्ति के। इन दोनों में से किसी को यह भी होश नहीं कि 'जय राम' हमारा अभिवादन नहीं हमारा सैनिक घोष है। 'राम' यह साधारण शब्द मात्र नहीं, वैदिक संस्कृति कभी 'राम' के रूप में साकार हुई थी। अतः राम वैदिक संस्कृति का पुण्य प्रतीक है और 'जय राम' उस संस्कृति की विजय का निर्भय निनाद ! कौन समझाये इन्हें कि धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता (राष्ट्रप्रेम) यह सब अलग-२ नहीं हैं, धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं हैं। आत्म-कल्याण और लोक कल्याण एक दूसरे के पूरक हैं, धर्म और अर्थ एक दूसरे के आधार हैं, श्रद्धा और विवेक, हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय ही कल्याणकारी हैं। अज्ञान की निशा (रात्रि) में सभी ठोकर खा रहे हैं, अन्याय से सभी प्रपीड़ित हैं, अभाव से सभी ग्रसित हैं, कौन मिटाये ? इस अज्ञान, अन्याय और अभाव को। कहाँ है प्यारा राम ! जो फन फैलाये बढ़ी आ रही निशाचरी सभ्यता को ललकार कर प्रतिज्ञा कर सके-

'निशिचर हीन करौं महि' और जो 'आजाद काश्मीर' से पाकिस्तानी गुण्डों को तथा १२०० वर्गमील क्षेत्रफल के पावन हिमाचल से चीनी दरिन्दों को खदेड़ कर गर्जना कर सके कि हमारी मातृभूमि, पितृभूमि और पुण्यंभूमि भारत की ओर यदि अन्यथा भाव से आँखें भी कीं तो वे आँखें निकाल ली जायेंगी।

युवक को जैसे कोई भूली सी बात याद आई हो, कुछ क्षणों के लिए उसकी आँखें जैसे चमक उठी हों, बड़े भावपूर्ण शब्दों में वह कह रहा था- "परम प्रभु बड़े दयालु हैं। उनकी व्यवस्था अनुसार ही, करीब सौ साल पहले इस पुण्य-धरा पर एक ज्योति अवतीर्ण हुई थी। वैदिक युग की कोई परम पवित्र आत्मा 'देव दयानन्द' के रूप में इधर भूल-भटक कर आ गई थी। उसके प्रखर तेज को यह अभागा देश सह न सका। वह रत्न असमय में ही छिन गया और जिसने उसके पुण्य यज्ञानुष्ठान को आगे बढ़ाने का व्रत लिया था, वैदिक शंखनाद से धरती के कोने-२ को जगाने का शिव-संकल्प जिसने किया था वह संतरी स्वयं सो गया। आर्यसमाज, वह प्यारा आर्यसमाज कुतर्क की बाढ़ में, हृदयहीनता के अतल तल में, दलबन्दी के दुरूह दलदल में.....!" युवक का गला भर आया था, नेत्र अश्रुपूरित हो गये थे। अपने को किसी प्रकार सँभालकर वह बोला- "वह प्यारा आर्यसमाज, धरती भर की जलती हुई समस्याओं का एक मात्र समाधान मेरा प्राण आर्यसमाज, आज वह भी लक्ष्य-भ्रष्ट हो नष्ट-विनष्ट हो रहा है। एक मत-पन्थ का रूप लेता जा रहा है वह ! चन्द एक नेताओं की नेतागिरी के व्यूह में फंसा 'हिन्दूवाद' के महासागर में वह लगभग लीन ही हो चुका है, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम आदि के अमर बलिदान ही उसे किसी प्रकार जीवित रखे हैं। ऐसी दशा में प्यारे 'राम की जय' कहाँ है ? तभी न कहता हूँ 'जय राम' कहना अपने आपको धोखा देना है, आत्म-छलना है और.... और.....' कुछ कहना चाहकर भी आगे वह कुछ कह न सका। कुछ ही क्षणों के बाद उसका गन्तव्य स्टेशन आ चुका था। वह शीघ्रता में मुझे समुस्कान नमस्ते करके उतर गया। मैं पूरी तरह उसका धन्यवाद भी न कर सका। गाड़ी आगे बढ़ गई। युवक का वह रसभीना, करुणा-विगलित स्वर अब शान्त था, पर मेरा चित्त आन्दोलित हो उठा था। मन के अधिक बोझिल हो जाने पर नेत्र बन्द करके मैं एक ओर बैठ गया और जब तक फूलपुर का स्टेशन नहीं आ गया बैठा ही रहा। यह

विचार कर मुझे घोर आत्म–कष्ट हो रहा था कि मै उनका पूर्ण परिचय नहीं जान सका। 'ओमप्रकाश आर्य' इतना ही वे बता सके थे और 'सुशील, फूलपुर' इतना मैने कहा था।

ऊपर की समस्त घटना एक बारगी ही मेरे 'स्मृतिपथ मे मेरे स्मृति–पटल पर तैर गई। मैं अधिक उद्विग्न हो उठा। उस पूज्य युवक ने मेरी कठिनाई बढ़ा दी थी। मैं अब न तो अपने आत्मीय मित्र प्रमोद की तरह राम को काल्पनिक कहकर उनके पुण्य जयन्ती पर्व की उपेक्षा कर सकता था और न राम के नाम पर सर्वनाश का सौदा बेचने वाले बन्धुओं में शामिल हो सकता था। सूर्य पश्चिम में ढल रहा था, सान्ध्य किरणे, अन्तिम आशा सी, मेरे मकान के एक झरोखे से झांक रहीं थीं। मेरा मन और उदास हो गया। कल अपने 'राम' की जयन्ती मैं कैसे मनाऊँ ? यह प्रश्न रह–रहकर मुझे बेचैन कर रहा था। मैं टहलने लगा कि अचानक मित्र प्रमोद के अट्टहास से वातावरण गूँज उठा। वह कह रहा था, अरे यह मनहूस की सी सूरत क्यों बनाई है ? क्या तुम्हें पता नहीं कल रामनवमी है, महात्मा श्रीराम का पुण्य–जयन्ती पर्व ! आओ, उसे उत्साहपूर्वक मनाने की कोई योजना बनायें।

हर्ष से मेरा मन फूल उठा। मुझे लगा जैसे ईश्वर ने ही मेरे अन्तर्द्वन्द्व के समाधान का सुयोग उपस्थित किया हो। प्रकट में मैंने कहा– "महात्मा श्रीराम का जयन्ती पर्व! प्रमोद तुम्हें क्या हुआ है ? तुम तो...... " और बीच में ही प्रमोद बोल उठा– "बस, बस ! बहुत लज्जित न करो, आत्म–ग्लानि से मेरा हृदय बैठा जा रहा है। मित्र सुशील, अब वह पुराना प्रमोद मर चुका है। यह जो देख रहे हो, उसका नूतन संस्करण है। राम को काल्पनिक और अनैतिहासिक बताना, दूसरे शब्दों में राम को न मानना मेरी दृष्टि में अब राष्ट्र–द्रोह है। हाँ, तो मैंने राष्ट्र–द्रोह किया है। कल मैं उसका प्रायश्चित करूँगा।" मेरे लिये यह सब कुछ एक रहस्य भरी पहेली थी। समझ नहीं आ रहा था कि मैं जागता हूँ या स्वप्न देखता हूँ। "क्या देखते हो सुशील, इस तरह" प्रमोद ने अपनी काँख में दबी एक पुस्तक को आगे बढ़ाते हुए कहा– 'इस दिव्य ग्रन्थ ने मुझे नई दृष्टि, नहीं–नहीं एक नया जीवन दिया है।'

"पर मैं भी तो देखूँ, यह क्या–शुद्ध रामायण ?"

"हाँ जी, शुद्ध रामायण"

"क्या आशय ?" पुस्तक खोलने का उपक्रम करते हुए, विस्फारित नेत्रों से मैंने जिज्ञासा की। "शुद्ध दूध, शुद्ध घी, शुद्ध सोना क्या अर्थ है इन सबका ? आप कहेंगे खोट रहित, मिलावट रहित। तो रामायण में जो खोट और मिलावट थी उसे इस ग्रन्थ में अलग करके उसका सम्यक् समाधान भी दिया गया है। "रामायण की खोट क्या थी" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"अवतारवाद, चमत्कारवाद, अलंकारवाद, अविवेक, स्वार्थ और अतिश्रद्धा या अन्धश्रद्धा के बड़े–२ पत्थरों के नीचे राम का, महामानव राम का, राष्ट्रपुरुष राम का असली रूप, उसका शुद्ध ऐतिहासिक रूप दबा दिया गया था। राम का वही शुद्ध राष्ट्रवादी और मानवतावादी स्वरूप बड़े परिश्रम और निष्ठा के साथ इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मेरे विचार से आज कल आर्यसमाज मन्दिर में आयोजित 'रामनवमी समारोह' में सुन सकेंगे। अब आप स्वयं इस ग्रन्थ को पढ़ें, आपकी एक–एक शंका का निराकरण होगा। अब मैं चला।"

"आज प्रातः से ही मैं बडी उलझन में था, आपके इस उपकार को मैं कभी भुला न सकूँगा, मित्र!" पर अभी धन्यवाद की क्या जल्दी है" समुस्कान प्रमोदजी ने कहा–"मुझे आपके अन्तर्द्वन्द्व का ज्ञान था। इसीलिए मैं इस ग्रन्थ को साथ लाया था।"

"सो कैसे ?" "आपके रेल यात्रा के साथी श्री ओम्प्रकाश आर्य दूर के रिश्ते में मेरे बहनोई होते हैं। उन्होंने ही यह ग्रन्थरत्न भेजा है और आपके विषय में भी लिखा है।" 'ओम्प्रकाश आर्य' इतना सुनते ही मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा।

प्रमोद चला गया और मैं 'शुद्ध रामायण' के पारायण में प्रवृत्त हो गया। भाषा के प्रवाह और भावों के लालित्य के साथ मैं तैरता चला गया। ज्यो–२ मैं आगे बढ़ रहा था, एक नूतन ज्योति का आलोक मेरे अन्तर की अन्ध गुहा में प्रविष्ट हो उसे प्राणवान् बना रहा था। कुछ क्षणों पहले का मेरा नैराश्य पता नहीं कहाँ काफूर होता जा रहा था। एक–एक करके पिछले सभी दृश्य सामने आते थे और उनका समाधान पाकर मैं पढ़ते–२ झूम उठता था। 'सरल अध्ययन' खण्ड में प्रवेश ही किया था कि मैं तो एक तरह के जादू से अभिभूत हो गया। ग्रन्थ पूर्ण करके ही मैं उठ सका मेरी अन्तः स्थिति की बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में बाहर चिड़ियाँ चहचहा रही थीं और भुवन–भास्कर अपनी रश्मियों को पसारने की तैयारियों में थे। लगातार १४ घन्टे की बैठक, रात्रि भर का यह जागरण ! पर तनिक भी थकान मुझ में न थी, उलटे एक अपूर्व ताजगी से शरीर और मन पुलकित थे।

नहा धोकर शुद्ध रामायण के ही कुछ गीतों को गुनगुनाता जब मैं समाज मन्दिर में पहुँचा तो देखता हूँ, प्रमोद जी यज्ञोपवीत–दीक्षा ले रहे हैं। मन प्रसन्नता से भर गया। विदेशी–मानस की मिट्टी में आज स्वदेशी पौध उग रही थी। मुझे देख वह मुस्कराया, आँखों में ही कुछ पूछा और नेत्र–भाषा में ही समुस्कान उत्तर पाकर उसका चेहरा दूना खिल उठा।

प्रमोद मेरे हाथ से 'शुद्ध रामायण' लेकर अब सभा में विचार प्रकट करने को खड़ा था। ग्रन्थ को आगे बढ़ाते हुए उसने कहना आरम्भ किया– "सज्जनो, यह ग्रन्थ जो मेरे हाथ में है, इसका नाम 'शुद्ध रामायण' है। अंग्रेजी शिक्षा, साहित्य और सभ्यता से प्रभावित होने के कारण इस ग्रन्थ के अध्ययन से पूर्व मैं अपनी महान् संस्कृति के आधार स्तम्भ श्रीराम के सही स्वरूप से अनभिज्ञ था। रामलीलाओं, पौराणिक मित्रों तथा रामचरित मानस द्वारा श्रीराम का जो रूप मेरे सामने आया था, वह अवतारवाद की काली चादर से ढका था। वह सिर्फ पूजा की चीज थी, हमारी प्रेरणा का आधार नहीं। अवतारसिद्धि के लिये काव्यगत अंलकारों के सौरभ और मधुरिमा को नष्ट–प्रनष्ट करके उन्हें चमत्कार बताकर, प्यारे राम को जन–जीवन से दूर खड़ा कर दिया गया था। एक शिक्षित युवक के मस्तिष्क में उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। मेरी यह धारणा दृढ़मूल हो गई थी कि राम कोई ऐतिहासिक सत्य पात्र नहीं, वाल्मीकि मुनि की काव्य प्रतिभा की उपज है।"

अपने सम्बन्धी श्री ओम्प्रकाश आर्य के प्रति किन शब्दों में मैं आभार प्रकट करूँ जिन्होंने यह ग्रन्थ–रत्न उपहारस्वरूप मुझे भेजा। हजारों रूपये देकर भी वे मेरा इतना उपकार न कर सकते थे। इससे मुझे बोध हुआ कि भेंटस्वरूप मित्रों और सम्बन्धियों को उत्तम पुस्तकें देना सर्वोत्तम उपहार है। अनजाने में भगवान् राम के अस्तित्व से इनकार करके मैं जो 'राष्ट्र–द्रोह' कर रहा था, इस ग्रन्थ ने मुझे उस भीषण पाप से बचा लिया। हाँ, मेरी यह दृढ़ मान्यता बन गई है। राम–द्रोह अर्थात्

मैंने नहीं, 'शुद्ध रामायण' के प्रणेता ने, नहीं–२ नव जागृति के देवदूत दयानन्द ने। अतः आओ हम सब मिलकर बोलें– जगद्गुरु ऋषि दयानन्द की ... जय! तभी प्रधानजी की आज्ञा से सभी की ओर उन्मुख होकर मैंने कहा–"जिस 'शुद्ध रामायण' का सत्प्रभाव आपने प्रियमित्र प्रमोद के विचारों के रूप में देखा है उसका सार मैंने निम्न प्रकार समझा है–

'शुद्ध रामायण'- सन्देश

१– राम, एक ऐतिहासिक महापुरुष (राष्ट्रपुरुष) हैं महापुरुषों की चरित्र–पूजा (उनके पावन–चरित्र का अनुकरण) कीजिए, चित्र–पूजा नहीं। अवतारवाद एक विनाशकारी मिथ्या कल्पना है। चमत्कारवाद सर्वनाश का मार्ग है।

२– वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था (वैदिक–धर्म) का आचरण ही विश्व शान्ति का मूल है।

३– भौतिक–विकास, वैज्ञानिक प्रगति (अर्थ और काम) आवश्यक हैं किन्तु वह अध्यात्म (धर्म और मोक्ष) से नियन्त्रित हों। श्रद्धा और विवेक का समन्वय हो।

४– वैदिक संस्कृति ही एक मात्र विश्व–संस्कृति है।

५– सांस्कृतिक आदर्शों से अनुप्राणित शिक्षा–पद्धति ही लोक–मंगल का आधार है।

६– शुद्ध राष्ट्रवाद मानवता का पोषक है।

७– व्यक्ति–धर्म को राष्ट्र–धर्म के साथ जोड़ना–अपनी ज्ञान, बल या धन की शक्तियों को समाज के अर्पण करना यज्ञ–भावना है। यह यज्ञ–भावना (वैदिक समाजवाद) विश्वचक्र की नाभि है।

८– प्राणिमात्र की सेवा ही सच्ची ईश्वर पूजा है। धर्मभाव या ईश्वर–भक्ति की अभिव्यक्ति पुत्र–प्रेम, मातृ–पितृ भक्ति, गुरुजन–भक्ति, भ्रातृ–प्रेम, पति–पत्नी प्रेम और राष्ट्र–प्रेम के रूप में होनी चाहिए। पारिवारिक सौमनस्य और सद्भाव रखना सच्ची राष्ट्र सेवा है।

९– अपने–अपने वर्ण और आश्रम के विचार से स्व–स्व–कर्त्तव्य पालन 'स्वधर्म–पालन' ही सच्ची ईश्वर–भक्ति है।

१०– आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

मेरे बैठते ही श्री किशोरीलाल जी ने निम्न गीत सुनाया–

शिक्षा दे रही जी, हमको रामायण अति प्यारी !

शिक्षा दे रही जी हमको रामायण अति प्यारी।
एक समय में एक पुरुष ने व्याहीं ज्यादा नारी,
वृद्धावस्था में दशरथ की इसने बात बिगारी।।१।।
राज छोड़ वन गये रामजी पितु आज्ञा सिर धारी,

अब तो पितु के लिये पुत्र जन करते गारी ख्वारी।।२।।
राज महल के सभी सुखों को एक दम ठोकर मारी,
वन में गई पती के संग में सिय सतवन्ती नारी।।३।।
विपति समय में संग राम के की लक्ष्मण ने तैयारी,
अब तो खून के प्यासे भाई करें मुकदमे जारी।।४।।
राज-तिलक को गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी,
इधर राम,उस तरफ भरत दोनों ने ठोकर मारी।।५।।
चरण पादुका धरी तख्त पर ये ही बात विचारी,
साधू बन कर रहा भरत नहिं बना राज अधिकारी।।६।।
राम लखन ने सूर्पणखाँ को माता बोलि पुकारी,
अब जहाँ देखें चिकनी मिट्टी फिसल जायँ व्यभिचारी।।७।।
लक्ष्मण शीश झुकाता था कह सीता को महतारी,
हाय आजकल तो भावज को कहते आधी नारी।।८।।
लालच और तलवार से डरकर सिया न हिम्मत हारी,
थोड़े भय से धर्म गमावें हाय आजकल नारी।।९।।
था पण्डित विद्वान् वो रावण देखो आँख उघारी,
मदिरा माँस परनारि-हरण से राक्षस बना अनारी।।१०।।
तन- मन से था सेवा करता हनुमान् बलधारी,
अब तो मुँह पर करें खुशामद पीछे देवें गारी।।११।।
भगत विभीषण ने भाई की संगत बुरी बिसारी,
अच्छी संगत में तुम जाओ कहते 'चन्द्र' पुकारी।।१२।।

अन्त में श्री 'विजय' जी ने राष्ट्रकवि का निम्न गीत सुनाया–

क्षात्र-धर्म के परिपोषक, राष्ट्रपुरुष-

श्रीराम का उदात्त आदर्श

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।
निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को।
मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।

हो जायँ अभय वे जिन्हें कि भय भासित हैं,
जो राक्षस - कुल से मूक सदृश शासित हैं।
मैं आया जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जायँ प्रलय से मिटे न जीवन सादा।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

गीत की समाप्ति होते-होते सारा वातावरण निम्न जयघोषों से गूँज उठा-

जगद्गुरु ऋषि दयानन्द की जय !
जगज्जननी भारत माता की जय ! वैदिक धर्म की जय !!
मानवता अमर है। संसार के श्रेष्ठ पुरुषो एक हो !
मानवता का शाश्वत ध्रुवतारा राष्ट्रपुरुष राम अमर है !

एक अद्भुत मनःशान्ति के साथ मैं घर लौट रहा था, अपूर्व ढंग से अपने प्यारे राम का जयन्ती पर्व मैं मना चुका था।

राम के पूर्वज

रामायण के मुख्य नायक तो श्रीराम ही हैं पर हम संक्षेप में उनके वंश के निकटवर्ती कुछ महानुभावों का नाम-काम भी वर्णन कर देते हैं ताकि पाठक यह न समझें कि राम के पूर्वज किसी साधारण प्रकृति ही के पुरुष थे। यद्यपि हमारा यह विश्वास है कि संस्कारों से एक देश व जाति में उत्तम पुरुष पैदा हो सकते हैं और हो रहे हैं, पर साथ ही हम यह भी मानते हैं कि शुभ संस्कारों का होना जैसा शुद्ध वंशों और स्वतन्त्र देशों में सुगम है वैसा हर जगह नहीं। इसलिये आर्यावर्त की आर्य जाति जो रत्न पैदा कर सकती है वह अरब एवं ईरान आदि देशों की असंस्कृत जातियाँ पैदा नहीं कर सकतीं। इसीलिए हम बताते हैं कि श्रीराम की वंशावली कितनी समुज्ज्वल तथा महान् थी।

महाराजा दिलीप

हम दूर न जाकर महाराजा दिलीप से श्रीराम के पूर्वजों का वर्णन करते हैं।

दिलीप, सूर्य वंश के एक तेजस्वी, प्रतापी और यशस्वी राजा हुए हैं। आपको जितना अपने कुल की वृद्धि व सुख का ध्यान था उससे कहीं अधिक प्रजा की वृद्धि व उसके सुख की चिन्ता लगी रहती थी।

महाराजा दिलीप अपने लिए राज्य नहीं करते थे वरन् प्रजा के हित के लिए राज्य किया करते थे। आपको जिस काम में प्रजा का दुःख प्रतीत होता, उसको कभी न करते और वही कष्ट अपने ऊपर उठा लेते थे।

अतः कई बार आप जब दौरे पर जाते तो केवल इसलिए कि प्रजा के कष्टों की जानकारी हो, अपने साथ आप अधिक कर्मचारियों को न ले जाते। केवल आप और एक दो जरूरी मन्त्री ही आपके साथ होते थे।

प्रजानुराग आप में इतना था कि जब आप प्रजा की दशा देखने के लिए जाते तो गाँव के लोगों के बनाये अन्न और शाक आदि को राजमहलों के खाने से अच्छा समझते और उसे बड़ी प्रीति व रुचि से भक्षण करते।

दिलीप के गुण- इतिहासकारों ने जो गुण वर्णन किये हैं उनमें से कुछेक यह हैं कि वह जैसे आकार में बड़े थे वैसे ही बुद्धि और विद्या में महान् थे और उनकी प्रजा उनके बनाए नियमों को स्वप्न में भी तोड़ने की इच्छा नहीं करती थी। आश्चर्य यह है वह शासन में शस्त्र व सेना से उतना काम नहीं लेते थे जितना कि शास्त्र मर्यादा से लेते थे। वह बिना भय के आत्मा की रक्षा और बिना दुःख के धर्म का पालन करते थे। वह बिना लोभ के केवल प्रजा के हित में ही खर्च करने के लिये रुपया वसूल करते और बिना आसक्ति के सुख को भोगते थे। वह विद्वान् होकर भी बिना समय के चुप रहते, समर्थ होने पर भी क्षमा करते और बिना यश की कामना के देश, काल और पात्र को देख कर दान करते थे। उनकी यौवनावस्था में ही विषयों से अप्रीति और धर्म से प्रीति हो गई थी। वह बिना किसी की सहायता के समुद्र पर्यन्त फैले हुए अपने राज्य का शासन एक नगरी की भाँति सुख से करते थे। राज्य के बालक और कन्याओं को पढ़ाने, सिखाने, बलवान् बनाने तथा सुशीलता आदि आर्योचित गुण सिखाने में उन्हें इतना प्रेम था जितना कि एक धर्मात्मा विद्वान् को अपने इकलौते पुत्र से होता है। इसी कारण से उस समय राज्य भर के कन्या और बालकों को शिक्षा देने, विद्या पढ़ाने एव सदाचारी बनाने की दृष्टि से महाराजा दिलीप को ही उनका पिता कहा जाता था और उनके असली पिताओं को केवल जन्मदाता पिता कहा जाता था, जैसा कि लिखा है–

प्रजानां विनयाधीनाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः।। रघु० १।२४

इतने गुण व प्रजा की अनुकूलता होने पर भी राजा को एक दुःख था और वह यह कि उनके कोई सन्तान न थी। राजा को यह दुःख इसलिए न था कि मामूली लोगों की तरह वह प्यार का भूखा था बल्कि इसलिए कि वह सोचता था– अगर मेरे रहते ही कोई प्रजा पर शान्ति से शासन करने वाला न हुआ तो पीछे से न जाने कौन सा राजा यहाँ आकर आर्य भूमि और वैदिक धर्म को नष्ट करने की चेष्टा करे।

इस दुःख की निवृत्ति के लिए वह अपने ब्रह्मनिष्ठ तथा सर्वोपकारी गुरु वशिष्ठ के पास अपनी धर्मपत्नी–मगधराज की पुत्री 'सुदक्षणा' के साथ वन में राजकीय ठाट–बाट को त्याग कर गया। गुरु वशिष्ठ ने इसे रानी सहित वहाँ मुनियों की वृत्ति में रहने और यज्ञ हवनादि के पीछे गौओं के चराने का व्रत दिया, जिसे राजा ने न केवल उस समय के लिए ही आदर से अंगीकार किया किन्तु वर्षों तक उसे वैसी ही अटल भक्ति से पालन किया। रानी सुदक्षणा भी राजा के पीछे इसी प्रकार चलती रही जैसे कि वेद के वाक्यों के पीछे स्मृति चला करती है। अन्त में गुरुदेव के प्रसाद से इनके यहाँ

पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका प्रसिद्ध नाम 'रघु' हुआ, जिसके नाम से अब सूर्यवंश रघुवंश कहलाता है।

पाठक गण ! सोचें कि आपके पूर्वजों में कितना त्याग था। कहने को तो यह बात साधारण कही जा सकती है, पर जब एक स्वतन्त्र सम्राट को दूसरों के वश में रह कर गौएँ तक चरानी पड़ें और वह दिलीप की तरह अर्थात् गौओं को स्वयं की इच्छा से न चराये बल्कि गौओं के पीछे पशुवत् स्वयं चला जाय, तो यह कितना कठिन है।

वस्तुतः महाराजा दिलीप के मन में जीवन का लक्ष्य सांसारिक ऐश्वर्य न था किन्तु वह कहा करता था कि–

क्षतात्किलत्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः।
राज्येन किं तद्विपरीत वृत्तेः प्राणै रुपक्रोशमलामसै र्वा।।

– रघु० २।५३

राजा होकर अगर कोई प्रजा का हित नहीं करता तो उस राज्य से क्या ? यदि पुण्य से पवित्र जीवन नहीं तो उस जीवन से क्या ? अर्थात् जीवन वही है जो पाप व दुराचार से रहित हो। दिलीप इन बातों को कहता ही न था किन्तु जीवन भर इन पर आचरण भी करता रहा।

सूर्यवंश का सूर्य-रघु

जैसा कि पीछे वर्णन कर चुके हैं महाराजा दिलीप ने बड़ी तपस्या से वेद और वेदानुकूल शास्त्रों पर चल कर प्रजा के हित के लिए 'रघु' नाम का पुत्र प्राप्त किया और उसके जातकर्मादि संस्कार विधिपूर्वक किये। उसका नामकरण संस्कार भी इस विचार से किया कि–

श्रुतस्य यायादय मन्मर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थ मर्थ विच्चकार नाम्ना रघुमात्म संभवम्।।

– रघु० ३।२१

यह वीर बालक वेद शास्त्रों के मर्म को और युद्ध में शत्रुओं के अन्त को प्राप्त हो, इस विचार से दिलीप ने बालक का नाम गति अर्थ वाला 'रघु' रखा।

अन्त में हुआ भी ऐसा ही अर्थात् रघु ने अपने समय के सब शास्त्रों के मर्म को बुद्धि से और शत्रुओं के पार को शस्त्रों के बल से छोटी उमर में ही पा लिया। इसका प्रमाण उसके 'सर्वमेध–यज्ञ' से मिलता है, जिसमें उसने अपना सारा धन जो संचय किया, ब्राह्मणों को दे दिया था।

यज्ञ के थोड़े दिन पीछे वरतन्तु का शिष्य कौत्स नामक विद्यार्थी अपनी विद्या को पूर्ण कर गुरु दक्षिणा के लिए रघु के पास आया। रघु ने मिट्टी के बर्तनों में अर्घ्य पाद्य रखकर उसका अतिथि सत्कार किया और उससे पूछा कि आप किस प्रयोजन से आये हैं। जब विद्यार्थी ने रघु की दशा देखकर और जगह से याचना करने की इच्छा प्रकट की तो आपने कहा–

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपार दृश्वा रघोः सकाशा दनवाप्य कामम्।
गतो वदान्यन्तर मित्ययं मे मा भूत्परिवाद नवा वतारः।।

— रघु० ५।२४

हे "ऋषे! आप यहाँ ठहरें। आपका यहाँ ही मनोरथ सिद्ध हो जाता है क्योंकि मैं नहीं चाहता कि यह अनहोनी बात संसार में फैले कि "गुरु के लिए दक्षिणा की याचना करने वाला एक वेदोक्त ब्राह्मण रघु के पास से अपनी कामना पूरी न होने के कारण और स्थान में चला गया।"

और अन्ततः रघु ने उसको अपने स्थान से नहीं जाने दिया जब तक कि उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं करदी। इसी प्रकार धर्माचरण करते हुए ब्राह्मणों के आशीर्वाद से उसी दिन रघु के घर ब्राह्ममुहूर्त में एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम आपने ब्रह्मकाल में होने के कारण ब्रह्म (अज) के नाम से 'अज' रखा।

आत्मिक प्रेम- रघु का पुत्र जिस समय विद्या तथा वीरतादि गुणों से युक्त हो गया और देश के सम्पूर्ण राजाओं में से अपने गुणों के कारण 'इन्दुमती' को वर कर घर ले आया तब महाराज रघु ने अपना सारा राज व कुटुम्ब का भार उसके आधीन कर स्वयं वन का मार्ग लिया क्योंकि वह गृहस्थाश्रम को सन्तान पैदा करने और उसे योग्य बनाकर देश हित में लगा देने के लिए ही समझता था, जैसा कि लिखा है—

प्रथम परिगतार्थ स्तंरघु सन्निवृत्तं,
विजयिन मभिनन्द्यं श्लाघ्यजाया समेतम्।
तदुपहित कुटुम्बः शान्ति मार्गोत्सुकाभू,
न्नहि सति कुलधूर्ये सूर्यवंश्यो गृहाय।।

— रघु० ८।७१

अर्थात् सब राजाओं को जीत कर विवाह कर लाये हुए अज के आने से पहले ही उसके विजय बल की बड़ाई कर तथा उसकी और उसकी स्त्री की स्तुति कर, अपने कुटुम्ब और राष्ट्र के प्रबन्ध को उसके अर्पण कर, रघु स्वयं शान्ति मार्ग की उत्कंठा करता हुआ राज्य को त्यागने के लिए समुद्यत हो गया क्योंकि सूर्यवंशी राजे महाराजे योग्य पुत्र होने पर घर के लिए नहीं होते थे, किन्तु वह अपनी आत्मा के हित के लिए परमात्म चिन्तन व तपश्चर्या में लग जाया करते थे।

रघु ने केवल यह संकल्प ही नहीं किया, किन्तु जिस प्रकार यौवन में राज्य—रक्षा व यश प्राप्ति के लिए नीतिमान् व धर्मात्मा मन्त्रियों से वह युक्त था, उसी प्रकार नाश रहित मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए मोक्ष मार्ग के साधनों में चतुर और वेदादि के परमभक्त आप्त योगियों के समान रघु ठीक समय पर वन को चला गया, जैसा कि लिखा है—

अजिताधिगमाय मंत्रिभिर्युयुजे नीति विशारदैरजः।
अनपायिपदोलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः।।-

— रघुवंश० सर्ग ८।१७

अर्थात् वन में जाकर रघु तो अपने प्राणों को वश करने के यत्न में लग गया तथा 'अज' ने अकेला होकर भी अपनी प्रभुता और सम्पदा से बलधारी राजाओं को वश में कर लिया।

'रघु' ने जिस प्रकार थोडे ही काल में अपनी ज्ञानाग्नि से अपने कर्मों को भस्म कर दिया, इसी प्रकार 'अज' ने अपने शत्रुओं के संकल्पों और फलों को अपनी प्रतापाग्नि से भस्म कर दिया।

महाराजा अज

महाराजा 'अज' भी अपने शासन काल में अपने पिता के समान ही प्रतापी व धर्मात्मा थे। आपके जीवन की एक घटना विशेष रूप से वर्णन करने योग्य है। वह यह कि अपनी स्त्री के मरण समय अर्थात् जब इनकी परम प्रिया स्त्री फूल माला की कुसुमय चोट से मर गईं, तो इसने विलाप करते हुए कहा–

धृतिरस्तमिता रतिच्युता विरतं गेय मृतुनिरुत्सवः,
गतमाभरण प्रयोजनं परिशून्य शयनीयमद्य मे।
गृहिणी सचिवः सखीमिथः प्रियशिष्या ललितेकलाविधौ,
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।

– रघु० ८ ।६६ ।६७

अर्थात् हे इन्दुमति ! तेरे मर जाने से मेरा धैर्य अस्त हो गया, उत्तम गति रति शून्य हो गये, ऋतु उत्सव आनन्द रहित हो गये, अलंकारों का अलंकार और संसार के सुख जाते रहे क्योंकि हे देवि ! तू मेरी धर्म कार्य में धर्मपत्नी, राज्य व्यवहार में मन्त्री, प्रेम में मित्र और गुण ग्रहण में योग्य शिष्या थी। मैं नहीं कह सकता कि निर्दय मृत्यु ने मुझसे तुझे हरते हुए कौनसी वस्तु है जो नहीं हर ली। मेरे विचार में मौत ने मुझसे सर्वसुख छीन लिया है क्योंकि तेरे बिना मुझे सारी सम्पत्ति के होते हुए भी सुख नहीं है। जो मैं भोग चुका हूँ, वहीं मेरा भाग्य था।

सारांश यह कि अज ने सच्चे स्त्री–व्रती पुरुषों की तरह बतला दिया कि संसार सुख दोनों स्त्री–पुरुषों के समान गुण कर्म स्वभाव व इकट्ठा जीवन बिताने में ही है, और एक के मर जाने पर दूसरे का सुख नष्ट हो जाता है। दूसरे शब्दों में आर्य पुरुषों को श्रेष्ठ स्त्रियों के मर जाने पर उतना ही क्लेश या संकट होता था, जितना कि पति के मर जाने से विधवा स्त्रियों को हुआ करता था व होता है।

इतिहास लिखने वाले लिखते हैं कि अन्त में 'अज' की मृत्यु का कारण स्त्री शोक ही हुआ।

कहने को इतिहास 'अज' के स्त्री मोह को प्रकट करता है पर वास्तव में इससे बचना किसी मानुषी व्यक्ति का काम नहीं, क्योंकि प्रकृति की इससे बढ़कर कोई चोट ही नहीं जो यह जीव के आधे शरीर को चीर कर फेंक देती है।

इन्दुमती के पेट से अज का एक पुत्र था जिसके सम्पूर्ण संस्कार इसने बड़ी श्रद्धा एवं सावधानी से किये और वह अपने समय का एक अनुपम प्रतापी व धर्मात्मा राजा हमारे नायक श्रीरामचन्द्र का जन्मदाता (पिता) महाराज दशरथ हुआ।

(संयुक्त प्रान्त में फैजाबाद से ३ कोस पर अयोध्या नगरी है।)

हमारे पूर्वज

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है।
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे।
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे, ध्रुव धीर थे।
वे ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे।
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे।
अपने लिये वे दूसरों का हित कभी हरते न थे।
चिन्ता प्रपूर्ण अशान्ति पूर्वक वे कभी मरते न थे।
वे आर्य ही थे जो कभी अपने लिये जीते न थे।
वे स्वार्थरत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसार के उपकार हित जब जन्म लेते थे सभी।
निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते कभी।

बाल काण्ड

अयोध्या नगरी

सरयू नदी के किनारे सबसे पहले इसे सूर्यवंश के नेता महाराज मनु ने रचा था। इसी सूर्यवंश मे महाराजा सगर हुए जिन्होने सागर (समुद्र) के स्थान–२ को खोज निकाला था और इसी वंश मे एक महाप्रतापी राजा कौशल हुआ जिससे इसका नाम कौशल नगरी भी हुआ।

उन दिनो मे यह १२ योजन (४८ कोस) लम्बाई तथा तीन योजन (१२ कोस) चौडाई में थी। इसको महाराज दशरथ ने अपने पिता, पितामह आदि की तरह अपने राज्य की प्रधान नगरी बनाया था और उसके समय मे इसके सारे बाजार चौडे, गलियॉ साफ और सड़कें शुद्ध तथा खुशबूदार पानी से छिडकी हुई रहती थीं और हर एक रास्ते पर सुन्दर मोतिये और गुलाब के फूलो के बूटे लगे रहते थे। इसमे सब प्रकार के शस्त्र–अस्त्र और उनके बनाने वाले कारीगर रहते थे। इसके मकान बडे ऊँचे, पक्के और दृढ पत्थरो के बने हुए थे। इसके बुरजो पर कोसो तक मार करने वाली सैकडो तोपें सजी रहती थी। इसकी रक्षा–परिधि (खाई) सुन्दर फल–फूल देने वाले बडे–२ वृक्षो से सुसज्जित ऐसे पत्थरो से बनी हुई थी जिन पर शत्रु का चलाया हुआ कठोर से कठोर शस्त्र–अस्त्र भी कोई हानि नहीं कर सकता था। उस पर चारों ओर महाराजा की विजय पताका (झण्डियाँ) झूलती रहती थीं जैसा कि लिखा है–

उच्चाट्टाल ध्वजवतीं शतघ्नी शत संकुलाम्।

– वाल्मीकि रा० बा० कां० सर्ग ५।११

सारांश यह कि संसार का कोई फल,फूल, सुगन्ध, छाया तथा शुभ गुणों वाला वृक्ष न था, जो इसमें न हो। इसके महल रत्नों से जडे हुए तथा वृक्षो से विभूषित होने के कारण पर्वतों के समान शोभा दिया करते थे। इसके अनेकों मन्दिर इतने गूढ तथा दुर्गम थे कि वे एक–२ भारी दुर्ग (किले) का काम दे सकते थे। जगत् भर के व्यापारी इसमें व्यापार के लिए आते थे। दिन भर में इसमें इतनी भीड़ रहती थी कि कोई मनुष्य चलने वाले मनुष्यों के बीच मे से अन्य पुरुषों को नहीं देख सकता था।

इसके साधारण गृहस्थ भी न केवल अपनी तलवार व बन्दूक से शेर, व्याघ्र, चीता, सूअर, मेढ़ा आदि हिंसक जन्तुओं को देखकर ही मार सकते थे वरन् घोर अन्धकार में भी जरा सा शब्द व आहट पाकर वाण व गोली से उन्हें बींध देते थे। उनमें से बहुतों का शारीरिक बल तो ऐसा था कि वह शेर,

हाथी, चीता, सूअर आदि को मल्लों की तरह बाहुबल से भी मार सकते थे और ऐसे पुरुषों की संख्या हजारों से कम न थी।

इतने भारी बली व गुणवानों के होने पर भी राजा दशरथ इसकी रक्षा वेद वेदांग के जानने वाले नित्य अग्निहोत्र और सन्ध्या आदि करने वाले सदाचारी तथा त्यागी ऋषियों से कराया करता था। राजा दशरथ स्वयं धनुर्विद्या, अर्थविद्या, युद्ध विद्या आदि का विद्वान् होने के साथ वेदवित, दीर्घदर्शी, यज्ञ करने वाला, धर्मपरायण, धर्म–अर्थ–काम को सिद्ध करने वाला, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, अतिरथी, महर्षियों के समान महातपस्वी तथा विचारवान् था। यही कारण था कि प्रजा के पुरुष उससे प्रेम करते थे और उठते हुए शत्रुओं के दबाने तथा उसके घटते हुए धन–धान्य व राज्य बल को बढ़ाने में लगे रहते थे।

दशरथ का राज्य-शासन

तस्मिन्पुरवरे ह्रष्टा धर्मात्मनो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टाधनैः स्वैः स्वैरलुब्धा सत्यवादिनः।।१।।
नाल्पसंचिनयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुम्बीयो ह्यसिद्धार्थो गवाश्वधनधान्यवान्।।२।।
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्याया ना विद्वान्न च नास्तिकः।।३।।
सर्वेनराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिता शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।।४।।
नाकुण्डली ना मुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न लिप्तांगो नासुगन्धश्च विद्यते।।५।।
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनंगदनिष्कधृक्।
ना हस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्।।६।।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः।।७।।
स्वकर्मनिरताः नित्यं ब्राह्मणाः विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे।।८।।
न नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित्।।९।।

नाषडंगविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्त्रदः।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन।।१०।।
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान्।।११।।
वर्णष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः।।१२।।
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरात्तमे।।१३।।
क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वधर्म कर्म निरतास्त्रीन् वर्णानुपचारणः।।१४।।

– वाल्मीकि सर्ग ६ श्लोक ६ से १६

अर्थात् १– जिस समय महाराज दशरथ अयोध्या पर राज करते थे उस समय उनसे सब लोग प्रसन्न, अपने–२ धर्म में लगे हुए सब विद्याओं के जानने वाले थे। वे सत्यवादी और अपने–२ धन से धनवान् थे अर्थात् हर एक को अपने कमाये धन को भोगने का पूरा अधिकार था।

२- उन दिनों कोई मनुष्य वहाँ ऐसा न था जिसके पास थोड़ा धन, थोड़ी गायें, थोड़े घोड़े व थोड़ा अन्नादि हो। हर एक कुटुम्ब वाले के पास निर्वाह योग्य पूरा धन– धान्य था।

३- उनमें कोई भी पुरुष कामी, क्रोधी, घातक व क्रूर कृपण (कंजूस) थोड़ी विद्या वाला तथा वेद निन्दक न था।

नोट - **आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्।**
लोभाढ्यः पितरो भ्रातृन्स कृपण इति स्मृतः।।

अर्थात् जो धन-सम्पत्ति के होते हुए अपने आप और पिता माता भाई पुत्र स्त्री को पीड़ा दे तथा लोभी होकर देश, जाति और धर्म की रक्षा व प्रचार के लिए पैसा न खर्च करे उसे कंजूस कहा जाता है।

४- सब स्त्री पुरुष ऋषियों की तरह अपने आचार व्यवहार से शांत तथा सन्तुष्ट थे।

५- उस समय हर एक मनुष्य के कानों में सुवर्ण, कुंडल, सिर पर मुकुट, गले में फूलों की सुगन्धित तथा बहुमूल्य रत्न माला और सुगन्धि युक्त वस्त्र और पूर्ण भोग प्राप्त थे।

६- उस समय हर एक पुरुष दाता तथा भोक्ता होने के साथ आत्मवेत्ता था।

७- उस समय हर एक व्यक्ति यज्ञ हवन करने वाला क्षुद्रता और पराये द्रव्य से बचने वाला, कुलीन तथा शीलवान् था।

८- वहाँ के ब्राह्मण वेद पढ़ने वाले, दान देने वाले और दान लेने में संकोच करने वाले, हर समय यज्ञों के कर्ता तथा पूर्ण जितेन्द्रिय थे।

९- उस समय कोई भी नास्तिक, झूठा, थोड़ा जानने वाला, निन्दक, असमर्थ और मूर्ख न था।

१०- उस समय कोई भी वेदों के ६ अंगों को न जानने वाला, आलसी व्रतहीन, दीन, दुःखी और रोग वाला न था।

११- वहाँ कोई नर व नारी लक्ष्मी रहित, रूप रहित और राजा में भक्ति न रखने वाले देखने को भी नहीं मिलते थे।

सारांश यह है कि उसमें सब नारी व नर पंच यज्ञों के करने वाले, दीर्घायुः अपने-२ धर्म में दृढ़, पुत्र-पौत्र और स्त्रियों के सुखों से सुखी, क्षत्रिय ब्राह्मणों के अनुकूल और वैश्य क्षत्रियों के पीछे व्रतों के पालने वाले थे। शूद्र अपने वर्ण और धर्म के अनुसार चारों वर्णों के सेवक और आपस में प्रीति करने वाले थे। १२।१३।१४।

उस समय सम्पूर्ण युद्ध विद्याओं के जानने वाले मुख्य-२ योद्धा और हर प्रकार के युद्ध (जलयुद्ध, स्थल युद्ध, आकाश युद्ध) में काम आने वाले, शस्त्र-अस्त्रों के बनाने वाले कारीगर और जगत् भर के अच्छी नस्लों के घोड़े, हाथी, मेढे, मृग तथा राज के काम में आने वाले सिखाये, पढ़ाये और संकेत पर काम करने वाले अन्य पशु-पक्षी वहाँ विद्यमान थे। सब लोग कभी भी आपस में वेद विरुद्ध वर्ताव नहीं करते थे, किन्तु सारा बल आत्मरक्षा और शत्रुओं के नाश के लिए ही लगाते थे।

दशरथ के मन्त्री

महाराजा दशरथ के राज्य का संचालन करने वाले मन्त्री (राजसभा के सदस्य) वेदपाठी, शुद्ध व पवित्र, पराये द्रव्य को विष और पराई स्त्रियों को माता के समान समझने वाले, देशभक्त, राज कर्म में रुचि रखने वाले, शस्त्र-विद्या के आचार्य, सच्ची प्रतिज्ञाओं वाले, कर्म के फल को जानकर करने वाले, राज्य के लोगों को अनेक उपायों द्वारा पापाचार से हटाने वाले, प्रजा की बातों को गुप्तचरों से जानने वाले और अपने विद्याबल से गुप्तचरों के भी कामों को अच्छी प्रकार जानने वाले थे। इनमें से मुख्य-मुख्यों के यह नाम हैं-

१. धृष्टि, २. जयन्त ३. विजय, ४. सिद्धार्थ, ५. मन्त्रपाल, ६. अशोक, ७. राष्ट्र-वर्धन, ८. सुमन्त्र, ६. वसिष्ठ, १०. वामन, ११. कात्यायन, १२. मार्कण्डेय, १३. गौतम, १४. जावालि, १५. सुयज्ञ।

इन लोगों का न्याय व प्रजाहित सारे जगत् में प्रसिद्ध था। इनके समय में कोई अपराधी चाहे राजा व राजकुमार ही क्यों न हो, बिना दण्ड पाये नहीं बच सकता था। कभी भी किसी निरपराध को दण्ड नहीं दिया जाता था, चाहे वह राजा के किसी राजकर्त्ता का शत्रु ही क्यों न हो।

इनके यह विशेष गुण उस समय में सब जगह गाये जाते थे-

कुशलाः व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः।
प्राप्त कालं यथादण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि।

कोश संग्रहणे युक्ताः बलस्य च परिग्रहे,
अहितं चापि पुरुषं न हिंस्युरविदूषकम्।।

– बाल० सर्ग ७।१०।११

अर्थात् यह सब व्यवहारों को जानने वाले, सबके हितैषी, अपराध करने पर अपने पुत्र को भी बिना दण्ड दिये न छोड़ने वाले, और रात–दिन राजा और प्रजा के लिए सच्चा सुख बढ़ाने वाले कर्मों को करने में कुशल थे। इनके प्रताप से न केवल अयोध्या नगरी में किन्तु सारे देश में कोई भी पुरुष झूँठ बोलने वाला, दुष्ट, परस्त्रीगामी और चोर न था। अतएव सारा देश सब प्रकार के दुःखों से रहित और सुखों से भरपूर, सब प्रकार से शान्त तथा आनन्द युक्त होकर अपने लोक तथा परलोक के कल्याण में लगा हुआ, इनका धन्यवाद किया करता था, जैसा कि लिखा है –

शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां सम्प्रजानताम्,
नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित्।
क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः,
प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत्।।

– बाल० सर्ग ७।१४।१५।

पुत्रेष्टि-यज्ञ

इतनी विभूति और ऐसे अनुकूल राज्य के होने पर भी राजा दशरथ को एक भारी दुःख था और वह यह कि उसकी तीन रानियों ● में से किसी के भी प्रजा का भार उठाने के लिए पुत्र न था। आयु अधिक हो जाने के कारण राजा ने एक दिन अपने गुरु वसिष्ठ आदि को बुलाकर इसके लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करने का विचार किया।

गुरुजी ने उसको पसन्द किया और कहा कि राजन् ! यज्ञ से अवश्य ही आपके धर्मात्मा और संसार के दुःखों के हरण करने वाले पुत्र होंगे। आप जल्दी करें। राजा ने यही विचार अपनी रानियों के सम्मुख रक्खा जिसे सुन वह भी बड़ी प्रसन्न हुईं, क्योंकि वे यज्ञ की महिमा को जानती थीं। उन्हें ज्ञात था कि यज्ञ करने से हमारे अवश्य मनोवांछित सन्तान होगी। उन्हें विश्वास था कि संसार में ऐसी कोई शुभ कामना नहीं जो विधिपूर्वक यज्ञ करने से पूर्ण न हो सके क्योंकि यज्ञ ही सच्ची कामधेनु है जो जगत् भर की कामनाओं को पूर्ण करता है।

● **वेद में एक पत्नी व्रत अर्थात् एक स्त्री की आज्ञा है और पुत्र न होने पर भाई आदि से लेकर पुत्र बनाने की विधि है। महाराजा दशरथ ने तीन विवाह स्वेच्छाचार से किये और इसका फल पुत्र शोक तथा अकाल मृत्यु पाया। (सम्पादक)**
उसकी केवल एक शांति नाम की कन्या थी जिसका विवाह पुत्रेष्टि यज्ञ के ब्रह्मा, शृंगी ऋषि के साथ हुआ था। (वा० रा० बा० का०)

इस काम के लिए विभाण्डिक ऋषि के पुत्र ऋष्य श्रृंग नामक ऋषि को मन्त्री भेजकर बुलाया गया क्योंकि वह जैसी पुत्र यज्ञ की प्रक्रिया जानते थे वैसी और कोई उस समय में नहीं जानता था। उसके आने पर राजा ने हाथ जोड कर और नम्रीभूत होकर उसे प्रणाम किया। पश्चात ऋषि की आज्ञानुसार राजा और रानियों ने सब विधियों का पालन किया। राज भवन में २१ स्तम्भ २१ रत्न और नाना प्रकार के वस्त्र भूषण तथा फल–फूलों से वेदी को सजाया गया। सब ऋषि ऋष्य श्रृंग को आचार्य बनाकर यज्ञ करने लगे। ● रानियां न केवल राजा के साथ में ही यज्ञ के अधिष्ठाता विष्णु (परमात्मा) का ध्यान कर क्षात्र धर्म के पालक, दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले, एक दूसरे के परम स्नेही, सूर्यवश की कीर्ति–ध्वजा को ऊँचा करने वाले, निष्पाप, दीर्घायु, अपना पराया दुःख–सुख एक समझने वाले और वैदिक धर्म के रक्षक एव प्रचारक पुत्रों की कामना करती थीं अपितु यज्ञ के पीछे राज महल में सखियों से वार्तालाप में और स्वप्न–दशा में मानसिक संकल्पों द्वारा भी यही चिन्तन करती रहती और किसी प्रकार का निषिद्ध काम या विचार न करती थीं।

● **यहाँ सु-सन्तान प्राप्ति के लिए माताओं का यह तप दृष्टव्य है।**

यज्ञ पूर्ति एवं इष्ट सिद्धि

इस प्रकार जब यज्ञ करते हुए कुछ काल बीत गया तो ऋष्य श्रृंग ने प्रसन्न होकर राजा रानियों को देने के लिए सब दोषों से शुद्ध कर, पुत्र देने वाली औषधियों का बना हुआ पाक (पायस या खीर) एक पुरुष द्वारा यज्ञ में मँगवाया और राजा से कहा–

इदंतु नृपशार्दूल ! पायसं देवनिर्मितम्,
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम्।
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै,
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप।।

– वा० रा० बालकाण्ड सर्ग ६।८।६

"राजन् ! इस (देव निर्मित) खीर को ले जा, यह दिव्य औषधियों से बनी है। इसे रानियों को दे, वे इसे खालें और तू भी इसे सेवन कर फिर तू उनसे पुत्रों को प्राप्त करेगा।" राजा ने बड़ी प्रसन्नता और नम्रता से उसे लेकर कुछ पटरानी कौशल्या को और कुछ सुमित्रा और कैकेयी को बांट कर दे दिया तथा कुछ स्वयं खाली। कौशल्या ने प्रेम से सुमित्रा को अपनी में से आधी और दे दी। इसके पश्चात् राजा ने वेदी पर आकर रानियों सहित यज्ञ की पूर्ण आहुति दी, और यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋत्विजों को बहुत सा धन, गौ, घोड़े, वस्त्र, भूषण और दीन–अनाथों को अन्न–भोजन दिया तथा सैकड़ों बन्दियों को छोड़ दिया। अनेक स्थानों में जलाशय, विद्यालय और औषधालय खोल दिये तथा हजारों स्थानों में गौओं के लिए जंगल छोड़ दिये और ऋषि के बताये व्रतों के अनुसार यज्ञ, हवन, वेदाभ्यास, सत्संग और वीर पुत्रों की कामना से वीर कथा के सुनने, वीर चरित्रों और चित्रों के दिखाने

के लिए अन्तःपुर में अधिक रहने लगा। थोड़े ही काल में तीनों रानियां गर्भवती हुईं।

श्री रामादि जन्म

राजा ने गर्भाधानादि सब संस्कार बड़ी श्रद्धा प्रीति से किये और राजा तथा रानियाँ नित्य संध्या और अग्निहोत्र के पीछे ईश्वर से यह प्रार्थना किया करते कि–

"हे सर्व दुष्ट दल नियन्ता ! दैत्यनिषूदन ! राक्षस निकन्दन भक्त–वत्सल सब बलदायक ! हे सर्व शक्तिदाता ! हे महा प्रभो ! हे वेद ज्ञान दाता, वेद धर्म प्रचारक, धर्म प्रिय और अधर्मनाशक विष्णो ! आप कृपा करके हमारे यहाँ ऐसे पुत्रों को उत्पन्न करो जो रावण आदि राक्षसों को नष्ट करें क्योंकि यह राक्षस सारे संसार को पीडा दे रहे हैं और किसी ऋषि मुनि व योगी को आपकी उपासना व यज्ञादि नहीं करने देते। इनके सन्ताप से यह सारा आर्यावर्त अग्निकुण्ड की तरह तप रहा है। परमात्मन्! आप ही दया के सागर, शान्ति निकेतन और संकट मोचक हैं। आपका द्वार छोड़ हम और कहाँ जायें ? जगन्नाथ स्वामिन् ! दया करो इन धर्म बन्धुओं पर जो देर से तड़प रहे हैं शीघ्र ही इनके ताप दूर करो। आदि–२।

इस समय राजा (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार में निर्दिष्ट) गर्भ की रक्षा और पुष्टि के विचार से जो उपयुक्त आहार था वह रानियों को देता और कभी किसी दुष्ट व मूर्ख पापिनी स्त्री को अन्दर न जाने देता। इसका फल परमात्मा की दया से यह हुआ कि ६ महीने के बाद चैत्र शुक्ल नवमी कर्क लग्न तथा पुनर्वसु में कौशल्या के राम और श्लेषा नक्षत्र कर्क लग्न में सुमित्रा के लक्ष्मण, शत्रुघ्न और पुष्य नक्षत्र मीन लग्न में कैकेयी के भरत उत्पन्न हुए।

पुत्रों के उत्पन्न होते ही सारे नगर और देश में घर–२ बधाई और आनन्द के बाजे बजने लग गये। 'जातकर्म' की विधि के अनुसार मंगल उत्सव, यज्ञ हवन, वेद पाठ, ईश्वर के धन्यवाद और राजपुत्रों के चिरायु होने की प्रार्थनाएं होने लगीं। क्षण भर में अगर के धुयें के अँधियारे की लाली और गुलाल से आकाश रक्त वर्ण हो गया। अयोध्यावासियों को वह महीना एक दिन के समान प्रतीत हुआ और सब लोग मन से सन्तुष्ट होकर महाराज को आशीर्वाद देने आये। इस प्रसन्नता में जितने मनुष्य आये उन्हें महाराज दशरथ ने मुँह माँगे पदार्थ दिए।

संस्कार तथा विद्याभ्यास

महाराजा दशरथ को आर्य राजा होने के कारण पुत्र उत्पन्न होने का इतना हर्ष न था जितना कि उनको संस्कारवान् और धर्मवीर सदाचारी बनाने में था। इसलिए उसने अपने कुलगुरु वसिष्ठ से 'नामकरण' की विधि सम्पन्न कराई। गुणादि के अनुसार बड़े का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का नाम भरत, सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा। इसी प्रकार उन सबके निष्क्रमण, अन्न–प्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन और वेदारम्भ आदि संस्कार कराके उन्हें गुरु के पास

ब्रह्मचर्य व्रत पालन और वेद वेदांग के अभ्यास के लिए पढ़ने को आश्रम में भेज दिया। उन्होंने थोड़े ही समय में सब प्रकार की विद्याओं का अभ्यास कर लिया –

सर्वे वेदविदः शूरा सर्वे लोक हितेरताः।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिताः गुणैः।।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञाः दीर्घदर्शिनः।
पितृ शुश्रूषयां रताः धनुर्वेदे च निष्ठिताः।।

– वा० रा० बाल० कां० सर्ग १८

अर्थात्– थोड़े काल में ही वे सब वेदविद्या के जानने वाले, शूरवीर, सबके हित करने वाले, सब प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न हो गये। वे सब पापों से लज्जा करने वाले, पुण्य की कीर्ति करने वाले, दूरदर्शी, पिता माता की आज्ञा मानने वाले और उनकी सेवा करने वाले तथा सब प्रकार की अस्त्र–शस्त्र की विद्या में निपुण हो गये।

चारों भाइयों का ही यद्यपि आपस में अति प्रेम था और एक दूसरे को देखे बिना कोई सोता, खाता और पीता न था परन्तु तो भी लक्ष्मण का राम से और शत्रुघ्न का भरत से बहुत ही अनुराग था। यह दोनों भाई होने पर भी उनके साथ सेवकों की तरह सेवा के लिए हर समय तैयार रहते थे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी प्रकरण को अपनी ललित लेखनी से इस प्रकार लिखा है –

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।
विद्या विनय-निपुण गुण शीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला।।
प्रातःकाल उठि के सब भ्राता। मात पिता गुरु नावहिं माथा।
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हर्षहिं मन राजा।।

ऋषि विश्वामित्र का आगमन

(राम की याचना, राजा का मोह, वसिष्ठ का उपदेश)

एक दिन महाराजा दशरथ राज्य सिंहासन पर बैठे प्रजाहित पर विचार कर रहे थे कि इतने में द्वारपाल ने आकर कहा, महाराज ! गाधिसुत महर्षि विश्वामित्र आ रहे हैं। यह सुन महाराजा बड़े प्रसन्न होकर ब्राह्मण मण्डली को और राज्य के मुख्याधिकारियों को साथ ले उन्हें लेने गये।

स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम्।
प्रहृष्टवदनो राजा ततो र्घ्यमुपहारयत्।।
स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम्।।

पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सहृत्सु च।
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत्सु धार्मिकः।।
अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः।
दैवं च मानुषं चापि कर्म ते साध्वनुष्ठितम्।।

अति तेजस्वी तथा व्रतशील मुनि को देखकर राजा ने उनका यथोचित आदर–सत्कार किया, और मुनि ने राजा से कुशल–मंगल पूछा। धर्मात्मा विश्वामित्र जी ने राजा के नगर कोष, राज्य, कुटुम्ब तथा मित्रों का कुशल पूछा, और कहा कि हे राजन् ! आपके सामन्त तथा शत्रु तो वश में हैं ? आपके यज्ञादि तथा अतिथि सत्कार आदि कार्य तो ठीक प्रकार सम्पन्न होते हैं ? इसके पश्चात् मुनि ने वसिष्ठ से और फिर अन्य ऋषियों से कुशल पूछा। विश्वामित्र मुनि से पूजित प्रसन्न मन वाले वे वसिष्ठ आदि ऋषि राजा की सभा में प्रविष्ट हुए और यथास्थान बैठ गये। अब प्रसन्नचित्त राजा विश्वामित्र की पूजा करता हुआ उनसे बोला –

यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षामनूदके।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य च।।
प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने।।

"हे महामुने ! अमृत की प्राप्ति, निर्जल स्थान में वर्षा, सन्तान रहित को सन्तान, खोई हुई वस्तु का लाभ, तथा पुत्रोत्पत्ति आदि में जिस प्रकार आनन्द होता है उसी प्रकार आपके आगमन से अपार हर्ष हो रहा है, मैं आपका स्वागत करता हूँ। हे ब्रह्मन्! आप मेरे सौभाग्य से आये हैं, इसलिए बतलाइये, प्रसन्न हुआ मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ, क्योंकि आप दान के पात्र हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया है, जीवन सुजीवन हुआ है। कृपा करके बतलाइये कि आपका आगमन किस कारण हुआ है। मैं आपकी इच्छा पूर्ण करना चाहता हूँ।"

राजा दशरथ की यह विनयशीलता, शिष्टाचार और विद्वानों के प्रति सम्मान-बुद्धि रामायणकालीन सामाजिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती है। (सम्पादक)

ऐसे आदर और भक्ति के वचन सुनकर विश्वामित्र बोले– 'राजन ! तेरे यह विनय युक्त वचन तेरे और तेरे कुल के ठीक योग्य ही हैं। अब मैं अपना अभिप्राय कहता हूँ, तू उसे सुन और पूरा कर। अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करता हुआ तू सत्य प्रतिज्ञ बन। हे सूर्यवंश के भूषण ! मैं चिरकाल से यज्ञ कर रहा हूँ अब उसकी पूर्ण आहुति होने वाली है, पर मारीचि तथा सुबाहु नामक दो राक्षस उसको माँस और रुधिर की वर्षा से अपवित्र कर देते हैं और पूरा नहीं होने देते। इसलिए उनके नाश और यज्ञ को पूर्ण करने के लिए राम और लक्ष्मण को मेरे साथ भेजिये, यही मेरे आने का मुख्य कारण है। राजन्! चूँकि मैंने यज्ञ का व्रत लिया हुआ है, इसलिए मैं किसी पर क्रोध नहीं करता अन्यथा मैं स्वयं ही उनका नाश कर देता।'

यह सुन राजा बहुत देर तक तो राम के मोह से जड़वत् रहा पर जब उसको चेतन किया तो बोला–

चौ० माँगहुँ भूमि धेनु धन कोषा, सर्वस देउँ आज सह रोषा।
देह प्राण ते प्रिय कछू नाहीं , सोउ मुनि देउँ निमिष इक माँही।।

हे मुने ! वह राक्षस बड़े बलवान् तथा क्रूर हैं और मेरे पुत्र सुकुमार हैं। आप अगर राक्षसों से यज्ञ की रक्षा चाहते हैं तो मैं अक्षोहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ। आप राम को न ले जावें और चाहे मेरा सर्वस्व ले लें।

इस पर विश्वामित्र बोले– " राजन ! तू राम के बल को नहीं जानता। यह सब शस्त्र विद्या और युद्ध का आचार्य है। इसके सामने दो राक्षस क्या सैकडों राक्षस भी अग्नि के सामने रूई के ढेरी के समान हैं। पृथ्वीपति ! तू यह भी याद रख, इनके बिना वह राक्षस और किसी की शक्ति से मर भी नहीं सकते। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे पुत्रों को किसी प्रकार का कष्ट न होगा।" इस पर महाराजा कहने लगे कि हे महर्षे! आप बतावें कि वे राक्षस कौन हैं और किसके बल से आपके यज्ञ का ध्वंस करना चाहते हैं।

इस पर ऋषि बोले कि हे राजन् ! पौलस्त्य के वंश में पैदा हुआ वह महाबलधारी रावण नाम का राक्षस है जो पूर्व के तपोबल से बल प्राप्त किये हुए है। वह सारी पृथ्वी की प्रजा को पीड़ित कर रहा है। जहाँ कोई कहीं वैदिक कर्म करता है उसको छिन्न–भिन्न कर देता है। इसी के भेजे यह उग्र स्वरूप महाक्रूर दोनों राक्षस हैं। आप राम को अवश्य मेरे साथ भेज दें। राम इनको मार कर न केवल मेरे यज्ञ को सम्पूर्ण करेगा वरन् अनेकों ऋषि और ऋषि पत्नियों के तप व व्रत को बचाता हुआ तेरे कुल की कीर्ति को भी संसार में उज्ज्वल करेगा। इसी में तेरी राज सभा की, जिसमें वशिष्ठ आदि वेदवेत्ता परोपकार और नीति के सागर महर्षि हैं, शोभा होगी।

मुनि अभी यह कह ही रहे थे कि रावण का नाम सुनते ही राजा का सारा बल व उत्साह अस्त हो गया और वह बड़ा दीन और नम्र होकर बोला–

नहि शक्तो स्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः।
स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके।।
मम चैवाल्पभाग्यस्य दैवतं हि भवान् गुरुः।
देवदानवगंधर्वा यक्षाः पतंगपन्नगाः।।
न शक्ताः रावणं सोढुं किं पुनर्मानवाः युधि।
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः।
तेन चाहं न शक्तो स्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः।।

– वा० रा० बा० कां० सर्ग २०

"हे ऋषे ! मैं उस दुष्टात्मा के साथ युद्ध में लड़ने के योग्य नहीं। आप धर्म के जानने वाले देवस्वरूप हैं। आप मेरे पुत्र पर और मुझ अभागे पर दया करें। रावण के साथ तो इस समय कोई देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, पतग ● आदि युद्ध नहीं कर सकते, फिर मनुष्यों की तो गति ही क्या है ? वह वीर्य वालों के वीर्यों को और तेजस्वियों के तेज को तुरन्त नष्ट कर देता है। मुझ में उससे व उसकी सेना से लड़ने की बिलकुल शक्ति नहीं है। अतः आप से प्रार्थना है कि आप मुझ पर दया करके मेरे पुत्रों को जीवन दान दें।"

● देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, पतंग आदि सब देव जाति से सम्बन्धित मनुष्य ही थे, यह जानने के लिए समीक्षा भाग देखें।

राजा दशरथ के ऐसे मोह और दीनता युक्त वचनों को सुनकर उसकी पहली प्रतिज्ञा को याद कर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र बड़े कोप में आकर महर्षि वसिष्ठ तथा अन्य राजकर्ताओं के ध्यान को अपनी तरफ खींचते हुए बड़े वेग से बोले –

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातु मिच्छसि।
राघवाणामयुक्तो यंकुलस्यास्य विपर्ययः।।
यदीदं ते क्षमं राजन् गमिष्यामि यथागतम्।
मिथ्या प्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भवसुहृद्व्रतः।।

– वा० रा० बा० कां० सर्ग २१

"हे दशरथ ! पहले प्रतिज्ञा करके कि– "मैं बिना देरी के आज्ञा पालन करूँगा अब प्रतिज्ञा हारने की इच्छा करता है। याद रख, जिस राघवों के कुल में तू पैदा हुआ है उनके सहज धर्म से यह उलटा है, क्योंकि उनका यह नियम है–

चौ० रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय पर वचन न जाई।

मालूम होता है कि अब रघुवंश के दिन उलटे आ गए हैं। राजन्, अगर तू झूठ बोलने और प्रतिज्ञा तोड़ने के फल को सहन करने के लिए तैयार है तो मैं यहाँ से आपही चला जाता हूँ और तू झूठी प्रतिज्ञा वाला होता हुआ अपने प्यारे मित्रों और बन्धुओं सहित सुखी रह !"

यह तीखा व्यंग है। अर्थात् तू सुखी नहीं रह सकता।

इस प्रकार राजा का अधर्म युक्त मोह तथा विश्वामित्र की आशा भंग होती देख कर वसिष्ठ ऋषि बोले कि राजन् ! इक्ष्वांकु (सूर्य वंश के नेता) के कुल में पैदा होकर, धर्म की शिक्षा प्राप्त कर और धर्म रक्षक कहलाता हुआ, सर्व सम्पत्ति और लक्ष्मी का स्वामी होकर तू धर्म हारने के योग्य नहीं। दशरथ ! तीनों लोकों में रघुवंशियों का यश फैला हुआ है इसलिए धर्म को धारण कर। तुझ में अधर्म का बोझ उठाने की शक्ति नहीं। राजन् ! "बिना देर के करूंगा" यह प्रतिज्ञा करके फिर वचन से फिर

जाने वालों के सब श्रौत और स्मार्त कर्मफल–हीन हो जाते हैं। इसलिए तू जल्दी राम को ऋषि के साथ भेज दे। याद रख कि कुशक पुत्र विश्वामित्र की रक्षा में होते हुए राम के शस्त्र सजे हुए हों या न हों कोई राक्षस इस का अहित नहीं कर सकता, क्योंकि यह विश्वामित्र साक्षात् मूर्तिमान् धर्म हैं। यह बलवानों में बल, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ तथा नानाविद्याओं से अधिक सुविज्ञ हैं। इन्होंने तप को आश्रय बनाया हुआ है और सब अस्त्र–शस्त्रों की रचना और प्रयोगों को यह जानते हैं। इनके बल को दूसरे मनुष्य व यक्ष–राक्षस नहीं जानते। इसलिए इतने प्रतापी ऋषि के साथ जाने में राम का किसी प्रकार का भय न होगा। तू बिना भय व संकोच के राम को जल्दी भेज दे। इसमें तू अपना सौभाग्य समझ, जो विश्वामित्र तुझ से सहायता चाहते हैं, नहीं तो यह स्वय राक्षसों का नाश कर सकते हैं। कौन जाने यह इच्छा इन्होंने तेरे कल्याण के लिये ही प्रकट की हो।"

राम लक्ष्मण का विश्वामित्र से विद्या ग्रहण

इस प्रकार महर्षि वसिष्ठ के धर्म पर दृढ़ कर देने वाले वचनों को सुनकर राजा दशरथ अपनी प्रतिज्ञा को पालने के लिए तैयार हो गया, और उसने अग्निहोत्र व स्वस्तिवाचन द्वारा ईश्वर से राम के कल्याण की याचना कर और उसे सम्पूर्ण शस्त्र–अस्त्रों से युक्त कर बड़े उत्साह से विश्वामित्र के साथ कर दिया। और–

पुरुष सिंह दोऊ वीर हरसि चले मुनिभय हरण।

पिता के वचन को सार्थक करते हुए दोनों भाई महामुनि विश्वामित्र के साथ चल पड़े।

जब ये लोग सरयू नदी पर पहुँचे तो आचमन कराकर बड़े प्रेम तथा स्नेह से ऋषि विश्वामित्र राम से बोले–

"राम ! लो अभी से तुम बला और अति बला नामक आत्मरक्षक दो विद्याओं ● को सीख लो जिससे तुम्हें न थकावट हो, न ज्वर हो और न रूप का विपर्यय हो। इसी के बल से न केवल तुझे युद्ध में व जागते हुए कोई राक्षस आदि चोट कर सकेगा, अपितु तेरे सोते हुए भी तुझसे लोग डरेंगे। इस विद्या का अधिकारी तेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। हे राघव ! यद्यपि तेरे पास पहले सीखी हुई बहुत सी विद्यायें हैं परन्तु यह विद्या तेरे और तेरे पिता–पितामह के यश को बहुत पवित्र तथा विस्तृत करेंगी। राम ! इससे युद्ध में भूख प्यास भी पुरुष को नहीं सताती।"

इस विद्या को सिखाते हुए विश्वामित्र को वहाँ ही सूर्य छिपने लगा इसलिए ऋषि अपने नित्य कर्म में लग गये और रात्रि को वहाँ ही रहने का निश्चय किया। राम लक्ष्मण भी उस विद्या का अभ्यास करने के अनन्तर संध्यादि नित्य कर्म में लग गये और पीछे तीनों ही वहाँ सो गये।

● मुनि ने राम को तीर चलाने की दो अच्छी विद्यायें सिखला दीं। (वा० रा० बा० का०६)

श्री राम का सन्ध्या और जप करना

जब प्रभात हुई तो महामुनि विश्वामित्र ने सन्ध्या और अग्निहोत्र आदि के लिए राम से कहा–

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल ! कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्।।

– वा० रा० कां० सर्ग २३

हे राम ! प्रातःकाल हो गया। यह सन्ध्योपासना का समय है अतः प्रातःकाल का सन्ध्या–यज्ञ आदि नित्यकर्म करें।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेतु परमं जपः।।

– वा० रा० बा० कां० सर्ग २३

उस ऋषि के परम उदार पवित्र वचन को सुन कर पुरुषों में श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण स्नान कर सन्ध्योपासना के पश्चात् परम जप (ओ३म्) को जपने लगे।

गोस्वामी तुलसीदास ने सायंकालीन सन्ध्या का वर्णन इन शब्दों में किया है–

विगत दिवस गुरु आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई।।

अनंग आश्रम में निवास- यहाँ से चल कर रामादि अनंग आश्रम में गए और वहाँ जाकर ऋषि से पूछने लगे– 'महाराज! यह किसका आश्रम है और अब यहाँ कौन रहते हैं ?'

ऋषि ने कहा– "राम ! यहाँ काम की साक्षात् मूर्ति कन्दर्प नामक पुरुष बहुत सी रूपलावण्यवती स्त्रियों के साथ रहा करता था। एक दिन महादेव अपनी पत्नी पार्वती के साथ यहाँ से जा रहे थे तब उस रूप मदान्ध ने उनका निरादर किया। इस पर महादेव ने क्रोध से उसके अंग २ काट दिये और उसे यहाँ से निकाल कर ऋषियों का आश्रम बना दिया। अब यह अनंग आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है और बड़ा पवित्र है। आओ! आज हम ऋषियों की संगति में यहाँ ही निवास करें, क्योंकि यहाँ हमें सब प्रकार का सुख मिलेगा। यह विचार कर विश्वामित्र मुनि आश्रम में गये। आश्रम वासी बड़े प्रसन्न होकर ऋषि के सम्मान के लिये उठे और ऋषि को आसन पर बैठा कर यथा विधि अर्घ्य पाद्य मधुपर्कादि देते हुए पहले ऋषि का सत्कार किया और पश्चात् राम लक्ष्मण का अतिथिवत् पूजन (सत्कार) किया। वह सारा दिन सत्संग व वेद विचार में लगा। सायंकाल सब ने मिल कर सन्ध्या और हवन किया और रात्रि को सुख पूर्वक निवास किया।

अनंगाश्रम से सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म कर राम लक्ष्मण ऋषियों मुनियों के साथ समुद्र के समान वेग वाली गंगा के तट पर आये। यह गंगा बड़े यत्नों और जीवन–दान के पीछे सूर्यवंशी

महाराजा सगर के वंशधर महाराज भगीरथ ने संसार के उपकार और अपनी प्रजा के हित के लिए हिमालय की सुदृढ़ व गूढ़ कन्दराओं में से वर्षों घोर तप (कठिन परिश्रम) के कर के निकाली थी।

वहाँ वे बेडी पर सवार हो वन मे दाखिल हुए जो कि पहाड़ों, वृक्षों, बेलों, और वनस्पतियों से वर्षा ऋतु के बादलों की तरह जल भरे मेघों की भाँति दिखाई देता था और जिसमें सैकडों शेर, हजारों हाथी, अनेकों चीते, बारहसिंघे, मृग, गीदड़, लूम्बड़, वन विडाल, सूअर, सफेद घोड़े, वारण, ककुभ, वानर, लंगूर आदि वनचर और असंख्य जातियों के सर्प कीट पतंग आदि भूमिचर विचर रहे थे। और जिसमें पुरुषों की बस्ती बहुत कम दिखाई देती थी। इसे देख कर राम बोले कि भगवन् ! यह वन किसका है और इसकी ऐसी भयानक दशा क्यों है ? क्या इसमें कोई राजा व राजपुरुष नहीं रहता, क्योंकि यहाँ किसी प्रकार का आश्रम अथवा संस्कारित गृह दिखाई नहीं देता ?

यह सुनकर ऋषि बोले–"राम ! पहले यह प्रान्त 'मलद' और 'कुरुष' नाम से प्रसिद्ध था और इसमें सब प्रकार के देव कार्य होते थे। इसकी रचना देवताओं की नगरी जैसी सी थी, पर कुछ काल से यहाँ अनेकों हाथियों का बल रखने वाली ताड़का नाम की यक्षिणी आ गई है, और उसने सारे देश को नष्ट कर दिया है। जिस दिन से उसके पति सुन्द को अगस्त्य ऋषि ने मारा है तब से यह पुरुषों को खाने से भी नहीं सकुचाती। इसका एक मारीच पुत्र है जो बड़े बल वाला, दीर्घ बाहु, डरावनी मूर्ति और लम्बी काया रखता है। वह भी प्रजा को अधिक कष्ट देता है। हे राघव ! यह दोनों माँ बेटा दिन–रात गो–ब्राह्मण तथा दीन–दुखियों को त्रास देते रहते हैं। आगे चल कर दो कोस पर तुम इस दुष्टा का भयानक व अमंगल रूप देखोगे।" ऋषि कहे जा रहे थे "हे राजपुत्र ! तुम शीघ्र चलो और इस महाराक्षसी को मार कर गो–ब्राह्मण तथा प्रजा का कल्याण करो। इसके होते हुए कोई मनुष्य इस देश में नहीं आ सकता ।" यह सुन राम बड़ी गम्भीरता से बोले–"महर्षे ! हमने तो सुना है कि यक्ष कन्यायें बड़ी कोमल व थोड़े बल वाली होती हैं। यह अबला होकर हाथियों को तोड़ देने वाली इतनी बलवती कैसे हो गई ?"

विश्वामित्र बोले–"रघुनन्दन ! इसके पिता सकेतु नाम के महा यक्ष के कोई पुत्र या पुत्री न थे। उसने सन्तान के लिए तप किया। अन्ततः सारी उम्र में यह कन्या हुई। उसने ब्रह्मचर्यादि रखवा कर पुत्र की तरह इसे पाला और सब शस्त्र–अस्त्र विद्या सिखाई और एक बड़े बलधारी यक्ष "सुन्द" के साथ इसका विवाह किया जब तक इसका पति रहा, इसने कोई उपद्रव नहीं मचाया, पर उसके मर जाने पर जब से यह विधवा हुई, तब से पुत्र सहित यह राक्षसों के कर्मों को करने लग गई है। इसका पुत्र मारीच भी ऐसा ही क्रूरकर्मा है। इसलिये हे राम ! तू इसको गो–ब्राह्मण व प्रजा के हित के लिए शीघ्र हनन कर, क्योंकि तेरे अतिरिक्त इसके मारने का कोई उत्साह नहीं कर सकता। स्त्री–वध के घृणित कर्म को मन में स्थान न देकर राज धर्म को स्मरण कर और चारों वर्णों के हित के लिए इसे मार क्योंकि, धर्मशास्त्र कहता है–

नहि ते स्त्री वध कृते घृणाकार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्य हितार्थं हि कर्त्तव्यं राजसूनुना।।

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षण कारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षिता सदा।।
राज्यभार नियुक्तानामेष धर्मसनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ! धर्मोह्यस्यां न विद्यते।।

— वा० रा० बा० कां० सर्ग २५

चारो वर्णों के हित के लिए तथा प्रजा के हित की इच्छा से, समय पर राजपुत्र को (जिसने धर्मपूर्वक प्रजा पालने का भार उठाया है) दोषयुक्त व बाहर से निन्दा व पातक रूप दीखने वाला कर्म भी कर लेना चाहिए, क्योकि ऐसा न करने से भारी अनर्थ फैलता तथा उपद्रव मचता है।

"हे राजपुत्र ! पुराने राजपुरुष इस नियम को पालते आये है। देख, इन्द्र ने विरोचन की पुत्री मन्थरा को, विष्णु ने भृगु की पतिव्रता स्त्री काव्यमाता को और जन्मदग्नि के पुत्र परशुराम ने रेणुका को देश के हित के लिए मारने का साहस किया था। और इसी प्रकार अनेकों ने यह पुण्य कर्म किया।"

राम, मुनि के इस पौरुष भरे वचन को सुन कर और पिता के उस वचन को याद कर कि "बिना शंका के विश्वामित्र की आज्ञाओं को मानना और कभी किसी विषय में भी इनका अवज्ञा न करना" ताड़का वध का दृढ़ संकल्प कर कहने लगे–

गौ ब्राह्मण हितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवा प्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः।।

— वा० रा० स० २६५

"हे पूजनीय ऋषे ! गो–ब्राह्मण की रक्षा और देश हित तथा आपके प्रिय के लिए मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ।" यह कह कर दूर से राम ने जब उसे देखा तो लक्ष्मण से कहने लगे कि हे लक्ष्मण ! इस राक्षसी का भयानक और दुर्धर्ष शरीर देख, जिसे देखते ही भीरुओं के हृदय काँप जाते हैं। आज मैं इसको बल और नाक–कान हीन करूँगा क्योंकि स्त्री रूप में होने से इसके मारने को मेरा मन नहीं चाहता। यह शब्द सुनते ही वह राम की ओर बड़े क्रोध से दौड़ी। तभी विश्वामित्र उसको झिडक कर राम से बोले–'हे राघव ! जय हो।' जब राम लक्ष्मण वाण छोड़ने लगे तो वह दोनों हाथों से पत्थर फेकनें लगी। यह देख राम ने एक ही बाण से उसके दोनों हाथ काट दिये। जब वह दौड कर आगे आई तो लक्ष्मण ने उसके नाक, कान काट लिए। जब वह वहाँसे भाग कर अपनी जान बचाने लगी तथा राम को दयायुक्त देखा तो विश्वामित्र बोले–"राम ! यह दया का स्थान नहीं। ऐसी दया करना पाप है। जल्दी इसको मार कर देश के संकट को काटो नहीं तो सायंकाल हो रहा है और रात होते ही सैकडों राक्षस आकर हल्ला मचाने लग जायेंगे।" यह सुन राम ने क्रोध से उसकी छाती में एक ऐसा बाण मारा जिसके लगते ही उसके प्राण निकल गये।

नोट- इससे सिद्ध है कि यक्ष, राक्षस कोई भिन्न-२ जातियाँ नहीं, किन्तु स्वभाव ही है अन्यथा बिना जन्म के बदले यक्ष कन्या (ताड़का) राक्षसी कैसे बन जाती।
विशेष विचार समीक्षा प्रकरण में किया गया है। **(सम्पादक)**

यह समाचार पाते ही चारों ओर से साधु-२ (शुभ हुआ,शुभ हुआ) के शब्द आने लगे और वहाँ मुनियों ने राम और विश्वामित्र की बड़ी बड़ाई की तथा सम्मान के साथ उस रात्रि उन्हें वहाँ ही रखा।

अस्त्र प्राप्तिः सुबाहु बधः यज्ञ पूर्ति

ताड़का बध से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने राम की बड़ी बड़ाई की और उसे बहुत से ● अस्त्र-शस्त्र दिये जिनमें से कई एक के यह नाम हैं-**१ धर्म चक्र, २ वीर कालचक्र, ३ विष्णु चक्र, ४ उग्र इन्द्र चक्र, ५ मोदिकी, ६ शिखरी गदा, ७ बज्रास्त्र, ८ शिव शूलास्त्र, ६ ब्रह्मास्त्र, १० अग्नि अस्त्र, ११ वायु अस्त्र, १२ नारायण, १३ धर्म पाश, १४ कालपाश, १५ दो वज्र, १६ हयाशूर, १७ क्रौंछ, १८ शक्ति, १६ मुसल, २० कापाल, २१ किकणी, २२ असि रत्न, २३ मोहनास्त्र, २४ प्रस्वापन अस्त्र, २५ प्रशमन अस्त्र २६ वर्षण अस्त्र, २७ शोषण अस्त्र, २८ पैशाच अस्त्र, २६ तामस अस्त्र, ३० सोरास्त्र, ३१ मादन अस्त्र, ३२ नन्दन, ३३ वैद्यास्त्र, ३४ महास्त्र, ३५ संवत, ३६ दुर्धर्ष, ३७ मायामय, ३८ सोमास्त्र, ३६ शिशिर, ४० सत्याास्त्र** इत्यादि-इत्यादि।

इन अस्त्रों को पाकर राम ने हाथ जोड़कर ऋषि से पूछा-''ब्रह्मन् ! हम कब आपके यज्ञ की रक्षार्थ लगाये जायेंगे ? ऋषि ने कहा-''राम ! तुम कई दिन से सोये नहीं हो सो आज सो जाओ। कल से लगातार ७ दिन जागना होगा। यह सुनकर वह सो गये। दूसरे दिन से सब ऋषि अनुष्ठान में लग गये और राम लक्ष्मण सब अस्त्र-शस्त्रों से तैयार होकर राक्षसों का नाश करने के कर्म में लग गए। सातवें दिन यज्ञ की पूर्ति के लिए ज्यों ही ऋषि मण्डल मिलकर उच्च स्वर से वेद-ध्वनि करने लगे, झट वेद विरोधी राक्षसों के मुखिया मारीच और सुबाहु आकर यज्ञ वेदि को मल, मूत्र, रुधिर, हड्डी, चर्म और कूड़ा कर्कट से अपवित्र करने लगे। पहले तो राम ने इन नीचों को उपदेश से समझाया और फिर अपना जीवन बचाने को उन्हें हट जाने को कहा। जब वह किसी प्रकार भी अपने कुकर्म से न रुके तब ऋषि के दिये अस्त्रों से लक्ष्मण-सहित राम इनसे और इनके अनुचरों से युद्ध करने लगे। जब साधारण चोटों से भी यह न समझे तो राम ने क्रोध कर एक बाण मारीच के ऐसा मारा जिससे बेहोश होकर वह बहुत दूर जा पड़ा। होश आने पर वह न केवल रणभूमि को अपितु भारतवर्ष को भी छोड़ गया और सुबाहु ने तो अस्त्र से वहाँ ही प्राण त्याग दिये।

यही दशा दूसरे राक्षसों की हुई एक अग्नि अस्त्र से ही सब वहीं भस्म हो गये इतने में ज्यों ही ऋषियों ने पूर्णाहुति देकर यज्ञ को पूर्ण किया त्यों ही सारे आश्रम में राम के वीरत्व व प्रजाहित की बड़ाई होने लगी और इस आश्रम का नाम सिद्धाश्रम हुआ।

- **अस्त्र उसे कहते हैं जिसे हाथ से छोड़कर चलाया जाता है पर जो शत्रु का नाश कर फिर अपने हाथ में आ जाता है।**

मिथिला-यात्राः अहल्या उद्धार

प्रातःकाल होने पर सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि प्रातःकालीन नित्य कृत्य समाप्त करके वे दोनों भाई विश्वामित्र तथा अन्य ऋषियों के पास गये। मधुर भाषण करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी वे दोनों मुनिवर विश्वामित्र को प्रणाम करके मधुर वचन बोले–'हे मुनिवर ! हम आपके सेवक उपस्थित हैं। आज्ञा कीजिए, हम आपकी किस आज्ञा का पालन करें ?'' उनके ऐसा कहने पर सब ऋषि विश्वामित्र की अनुपस्थिति में कहने लगे कि–हे नरश्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति जनक के यहाँ बड़ा यज्ञ होगा, हम वहाँ जायेंगे। हे नरश्रेष्ठ ! यदि आप भी हमारे साथ चलेंगे तो वहाँ आप एक अद्‌भुत धनुष देखेंगे। उस धनुष के पराक्रम को जानने की इच्छा वाले बड़े–बड़े राजा तथा राजकुमार भी उसे चढ़ा नहीं सके। वह धनुष महात्मा जनक का है, उसे वहाँ आप देखोगे।

यह कहकर सभी ऋषि विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम से चल पड़े और विशाला नगरी में पहुँचे। वहाँ के परम धार्मिक ''सुमति'' नामक राजा ने ऋषि साथ के दोनों भाइयों का अतिथि–सत्कार किया। एक रात्रि रहकर वहाँ से वे जनकपुरी को चले। रास्ते में एक शून्य आश्रम को देख कर राम पूछने लगे, ब्रह्मर्षे ! यह किसका आश्रम है और इसकी यह हीन दशा क्यों है ?

विश्वामित्र बोले– ''राम ! यह गौतम ऋषि का आश्रम है। एक बार जब उसका तपोबल बढ़ गया तो उसके शत्रुओं ने उसका बल देखने के लिए उसकी धर्मपत्नी 'अहल्या' को धोखे से दूषित करना और ले जाना चाहा। पर ऋषि के सेवकों को पता लग जाने से शत्रुओं का दुष्ट संकल्प पूरा न हुआ और शत्रुओं का मुखिया इन्द्र वहाँ से अपमानित होकर, अपने दुष्ट कर्मों का फल पाकर वहाँ से भागा। गौतम ऋषि ने अपनी स्त्री को लम्बे काल के लिये शाप दे दिया। और उसे तप द्वारा भाव शुद्धि करने की ताकीद कर गौतम ऋषि उसी दिन अन्य आश्रम में चले गये। अब यहाँ 'अहल्या' तप की पराकाष्ठा को पहुँची हुई तुम्हारे आने और तुम्हारा आतिथ्य कर अपना उद्धार पाने की बाट देख रही है। सो हे राम ! यहाँ ठहर कर इसको देखो, इसको इसके पति की सहधर्मिणी करो और गौतम की सेवा में लगाकर इसका उद्धार करो।'

तदा गच्छ महातेज ! आश्रमं पुण्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागामहल्यां देविरूपिणीम्।।

यह सुन राम वहाँ गये।

ददर्श च महाभागां तपसां द्योतितप्रभाम्।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः।।१।।
प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव।
धूमेनाभिपरितांगी दीप्तामग्निशिखामिव।।२।।
राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ।।३।।

पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा।।४।।
साधु साध्विति देवास्तामहल्यां समपूजयन्।
तपोबल विशुद्धांगी गौतमस्य वशानुगाम्।।५।।
रामो पि परमां पूजां गौतमस्य महामुनेः।
सकाशाद्विधिवत्प्राप्य जगाम मिथलां ततः।।६।।

— वा० रा० बा० कां० सर्ग० ४६

अर्थ :- राम वहाँ जाकर उस बड़े भाग्यशाली तप से प्रकाशमान प्रभा वाली देवताओं से भी प्रकाशमान परमेश्वर द्वारा यत्न से रची हुई पूर्ण सुन्दरी, देव की माया और अग्नि कुण्ड पर बैठी हुई धूयें से निकली ज्वाला की तरह अहल्या को देखकर प्रसन्न हुए और लक्ष्मण सहित उन्होंने उसके चरण पकड़ लिये तथा देवी जान स्तुति की।

- **मालूम नहीं गो० तुलसीदास ने अहल्या का पत्थर होना और राम की पांवों की धूल से स्वर्ग को जाना किस रामायण के सहारे लिखा है ? वस्तुतः यह सर्वथा कल्पित है।**
- **धर्म शास्त्र में जिस प्रकार ब्राह्मण या ब्राह्मणी को अन्य सब वर्णों के लोगों को प्रायश्चित करा शुद्ध करने की आज्ञा है, इसी प्रकार यदि ब्राह्मण वा ब्राह्मणी से कोई निन्दित कर्म हो जाय तो उसका वैदिकधर्मी राजा को प्रायश्चित कराने का अधिकार है। 'अहल्योद्धार' के पीछे मूलतः यही शास्त्र व्यवस्था प्रतीत होती है। अन्य विशेष विचार समीक्षा प्रकरण में देखें।**

(सम्पादक)

ज्ञातव्यः वाल्मीकीय रामायण में राम के पाँव लगने से पत्थर की अहल्या के उड़ने का वर्णन कहीं नहीं, यह पत्थर होने की बात बिलकुल नई है।

दृष्टव्य :- गौतमा पि महातेजा अहल्या सहितो सुखी, रामं सम्पूज्यं-विधिवत् तपस्तते महा तपाः।।

(वाल्मीकीय रामायण बा० कां० सर्ग ४१ श्लोक २१)

इस पर अहल्या ने बड़े नम्रभाव से अतिथि को देव मान इनका आदर किया और फल–फूल से इनका अर्घ्य, पाद्य, आचमन मधुपर्क से अतिथि सत्कार किया, जिसे राजपुत्रों ने बड़ी श्रद्धा से स्वीकार किया। पति से त्यागी हुई अहल्या को सूर्यवंश के पुत्रों से प्राप्त हुई इस प्रतिष्ठा को देखकर सब ऋषि मुनि 'साधु–साधु' शब्द उच्चारण करने लगे तथा दैवयोग से आश्रम के निकट आए हुए गौतम ऋषि को सूचना देने के लिए दौड़े। महातपी गौतम ने भी अपने आश्रम में आने के कारण अतिथि रूप से इन राजपुत्रों का अति–पूजन किया, जिसे रामादि ने बड़े नम्रभाव से स्वीकार किया। इसके पश्चात् विश्वामित्रादि के कहने से परीक्षा द्वारा शुद्ध हुई अहल्या को बड़े प्रेम से अपने धर्मपत्नी भाव से ले लिया और शान्ति से पहले की भाँति तप करने लग गये और राम वहाँ से जनकपुरी को चले गये।

जनकपुरी में प्रवेश

वहाँ से विश्वामित्र के पीछे–पीछे चलकर राम जनकपुरी पहुँचे और वहाँ एक सुन्दर सरोवर के किनारे के बाग में ठहर गये। ज्यों ही राजा जनक ने विश्वामित्र का आना सुना उसने अपने आपको धन्य समझ मन्त्रि–मण्डल और ऋषियों तथा अपने कुल पुरोहित गौतम मुनि के बडे पुत्र तथा अहल्या के गर्भ से पैदा हुए "शतानन्द" को साथ ले ऋषि की पूजा व प्रतिष्ठा की तैयारी की। वहाँ जाकर जनक ने विश्वामित्र के पाँव पड अपनी नगरी और इस यज्ञ को धन्य तथा कृतार्थ कहा, तथा उनके निवास का बहुत उ त्तम प्रबन्ध कर हाथ जोड कर पूछने लगा– 'हे ब्रह्मर्षे ! यह दोनों देव समान रूपवान्, धनुषधारी, वीरता और धीरता की मूर्ति, कामदेव को भी रूप से लज्जित करने वाले, हस्तियों की गति और शेरों की सी शक्ति वाले कौन हैं और किसके पुत्र हैं ? यहाँ कहाँ से और कैसे आये हैं? इत्यादि–२। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए विश्वामित्र ने इनका वंश, दशरथ से यज्ञ के लिए माँगना, सिद्धाश्रम में रहना, राक्षसों का वध, यज्ञ की समाप्ति, विशाला नगरी का वास, अहल्या का दर्शन व उसका गौतम मुनि से मिलाप और इस जनकपुरी के यज्ञ व धनुष के देखने की इच्छा आदि सब कुछ कह दिया।

यह सुन अहल्या तथा गौतम के पुत्र और राजा जनक के पुरोहित शतानन्द ने पूछा कि–

अपि ते मुनि शार्दूल ! मम माता यशस्विनी।
दर्शिता राज पुत्राय तपोदीर्घमागता।।१।।
अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम संगता।
मे माता मुनि श्रेष्ठ ! राम संदर्शनादिताः।।२।।
अपि मे गुरुणा रामः पूजितः कुशिकात्मज।
इहागतो महातेजाः पूजां प्राप्य महात्मनः।।३।।
अपि शान्तेन मनसा गुरुर्मे कुशिकात्मजः।
इहागतेन रामेण पूजितेनाभिवादितः।।४।।

– वा० रा० बा० कां० सर्ग० ५१

'हे मुनिश्रेष्ठ ! बड़े यश और दीर्घ तप वाली मेरी माता (अहल्या) इनको दिखाई थी या नहीं? और हे कुशिक वंश के तिलक ! राम के दर्शन एवं उपदेश आदि से मेरी माता मेरे पिता की पूर्ववत् धर्मभागिनी हुई या नहीं ?

क्या मेरे पिता ने राम का अतिथि सत्कार किया ? क्या राम ने भी नमस्कारादि से मेरे पिता का आदर किया था ? क्या अब मेरे पिता प्रसन्न चित्त तथा मेरी माता से शान्त व सन्तुष्ट हैं ?" इनके उत्तर में विश्वामित्र ने कहा –

नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ ! यत्कर्तव्यं कृतं मया।
संगता मुनिना पत्नी भार्गवेणैव रेणुका।।

– वा० रा० बा० का० सर्ग ५१

हे मुनियों में श्रेष्ठ ! जो कुछ भी उस समय कर्तव्य था वह मैंने दोनों ओर से करा दिया है। अब आपकी माता आपके पिता के साथ संगत फिर उसी प्रकार सब धर्म कर्म करती है जिस प्रकार जमदग्नि के साथ तप से प्रसन्न होकर रेणुका करती थी।

महान् आश्चर्य है कि इस प्रकार के "विश्वामित्र शतानन्द-सम्वाद" के होते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने "पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी" "और गौतम नारी शाप वश उपल देह धरि धीर" आदि में किस प्रकार अहल्या पत्थर की बना स्वर्ग को चढ़ा दी जिसके डर से न सिर्फ सीता ने ही रत्नों युक्त हाथों से राम की पूजा नहीं की अपितु निषाद ने भी पैर धोकर ही राम को नौका पर चढ़ने दिया, जैसे कथानक गढ़े गये।

विश्वामित्र का तप और ब्राह्मणत्व-प्राप्ति

यह सुन प्रसन्न होकर शतानन्द जी राम से कहने लगे कि हे राम ! तुम धन्य हो जो विश्वामित्र के पीछे लगे हुए हो तुम से बढ़ कर और कोई पृथ्वी में सुरक्षित नहीं है। क्योंकि तुम्हारी रक्षा करने वाले महातपस्वी कुशिक पुत्र हैं। हे राम ! सुनो कि किस प्रकार इन्होंने यह महाबल प्राप्त किया है और यह किस वंश में उत्पन्न हुए हैं–

" बहुत दिन हुए यहाँ एक बड़ा धर्मात्मा, प्रजा का हितेच्छु, सब विद्याओं का ज्ञाता, शत्रुओं का नाश करने वाला अति बलवान् और जगद्विख्यात कुश का पुत्र गाधि हुआ और गाधि का यह पुत्र महामुनि विश्वामित्र है। बहुत समय हुआ जब यह कई अक्षौहिणी सेनाओं से देश का शासन करता था। एक दिन यह नगर पर्वत और नदियों को देखता सेना सहित वशिष्ठ के आश्रम में चला गया और वहाँ वेदाभ्यास में लगे वशिष्ठ को प्रणाम कर बैठ गया। वशिष्ठ मुनि ने स्वागत कर वन फल–फूलों से राजा का उचित सम्मान किया और फिर उससे कहने लगे "राजन् ! आप सकुशल तो हैं क्या आपकी प्रजा धर्म पर चल रही है ? आप धर्मात्मा होकर धर्म से राज्य–धर्म का पालन तो करते हो ? आप के नौकर, कर्मचारी और जीते हुए राजा या उनके सहकारी अनुकूल तो रहते हैं ? आपकी सेना और मित्र मण्डली में कोई दोष तो नही पैदा हो गया ? इनके उत्तर में 'सब कुशल हैं' यह कह कर राजा चलने लगा तो वशिष्ठ ने सेना सहित अतिथि सत्कार करने को कहा जिसको बार–बार कहने से राजा ने स्वीकार कर लिया। तब वशिष्ठ ने शबला नाम की पाप रहित कामधेनु को बुलाकर कहा कि राजा और राज–वर्ग के लिये सब प्रकार का षट् रस सम्पन्न उत्तम भोजन तैयार करो। यह सुन 'शबला' ने बहुत थोड़े समय में ही खाने–पीने, चाटने–चबाने के योग्य दूध, दधि, घी, मिष्ठान, खटाई, अन्न, कन्द, फल–फूल एवं जल में पैदा होने वाली वस्तुओं से राज भवनों से भी अच्छा और सुस्वाद भोजन बना दिया जिसे पाकर, यह बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु इसकी तीव्र आसक्ति 'शबला' में हो गई और उसको राज भवन

में ले जाने के लिए करोड़ों रुपये और रत्न भेंट करके ऋषि से प्रार्थना की। पर जब किसी प्रकार भी ऋषि ने उस यज्ञ की साधिका और कामना पूर्ण करने वाली 'शबला' ● को न दिया तो राजा ने अपने बाहुबल से उसे जबरदस्ती ले जाना चाहा, जिस पर अन्त में भारी युद्ध छिड़ गया। अपने हजारों योद्धाओं और अस्त्र–शस्त्रों के साथ राजा वशिष्ठ के साथ खूब लड़ा। तदनन्तर शबला और ऋषि के पक्ष को लेने के लिए शबर, शक, पौंढर, सिंहबल, किरात, बरबर, खस, पौलग, चीन आदि जातियों के लोग आये। जब दोनों ओर से हजारों योद्धा मर गये और युद्ध की शान्ति होती न देखी तब ऋषि ने अपने ब्रह्मबल से काम लेकर राजा के सब अस्त्र–शस्त्र टुकड़े–२ कर दिये और राजा छिन्नांग पुरुष की तरह हो गया। यह देख राजा ने वशिष्ठ की बड़ाई करते हुए कहा–

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्म तेजोबलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे।।

– वा० रा० बा० सर्ग ५६

हे ब्रह्मन् ! आप धन्य हैं और क्षत्रिय बल को धिक्कार है। वास्तव में बल तो ब्रह्म–बल ही है जिसके एक ही प्रयोग से मेरे सब अस्त्र–शस्त्र नष्ट हो गये, इसलिए अब मैं भी ब्रह्म–बल को प्राप्त करूँगा, और उसके कारण शीघ्र तप का आश्रय लूँगा।

● **कई लोगों के मत में 'शबला' गाय थी तथा कइयों के मत में यह पृथ्वी का टुकड़ा था। हम को यह एक सर्वगुण सम्पन्न ब्रह्मचारिणी स्त्री प्रतीत होती है। (सम्पादक)**

यह कह कर विश्वामित्र राज्य भार पुत्रों के अर्पण कर महर्षि के साथ उत्तर दिशा में तप करने लगा। बहुत तप के बाद ऋषि मुनियों और देवताओं ने इसे राजर्षि की पदवी दी पर यह फिर भी तप करता रहा और जब तप का प्रकाश होने लगा तो तपस्वियों के शत्रु इन्द्र ने मेनका अप्सरा द्वारा इसका तप भंग किया जिसके पेट से इसकी एक शकुन्तला नाम की पुत्री हुई। इस प्रकार फिर रम्भा को भेजा गया और कई प्रकार के और विघ्न डाले पर यह भी श्रद्धा से तप में लगा ही रहा और अन्त में तप से सिद्धि (ब्रह्मत्व) को पहुंच गया। यह देख कर सब ऋषि मुनि कहने लगे–

ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठोमामेवं वदतु दैवताः।

मुझे ब्रह्मपुत्र ● वशिष्ठ ऐसा कहें। इस पर वशिष्ठ ने इसे ब्रह्मत्व की पदवी दी और इसके साथ ब्रह्म ऋषियों का सा स्नेहयुक्त वर्ताव किया।

● **धन्य है, प्राचीन समय का विश्वास व उदारता जिसमें शत्रुओं से व्यवस्थायें ली जाती थीं। जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी तप और साधना द्वारा विश्वामित्र का ब्रह्मत्व को प्राप्त करना गुण कर्म स्वभाव के आधार पर निर्मित वैदिक वर्ण व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करता है।**

इस चरित्र को सुनकर जनक बहुत प्रसन्न हुआ और शतानन्द की बड़ाई तथा विश्वामित्र के गुण गाता हुआ विश्वामित्र की प्रदक्षिणा कर अपने राज–भवन में चला गया।

सीता का जन्म

जानकी (सीता) महारानी धरणी ● के पेट से उत्पन्न हुई और महाराज जनक की पुत्री थी। वह अपने गुणों और कर्मों में असाधारण थी।

> ● **जन सामान्य में यह मिथ्या संस्कार बैठा हुआ है कि सीता का जन्म धरणी (पृथ्वी) से हुआ था। इस मिथ्या धारणा के निराकरण के लिए समीक्षा प्रकरण देखिये।**

सीता न केवल ईश्वर भक्ति व घर के काम काज में ही निपुण थी, किन्तु राज कन्या होने के कारण वह वीर क्षत्रियों की भाँति शस्त्र–अस्त्रों के योग और प्रयोग में भी प्रवीण थी। एक बार का वृत्तान्त है कि महाराजा जनक के पूर्वज देवमूर्ति देवरात के तप से प्राप्त किये शिवधनुष को, अभ्यास करते–२ सीताजी ने सहज में ही चढ़ा लिया और यदि महाराजा जनक उसे अपने हाथ से न रोकते तो तीर निकलने से उपद्रव की सम्भावना थी। इस घटना से महाराजा जनक के हृदय में यह संस्कार दृढ़ हो गया, कि यह पुत्री संसार में असाधारण शक्तिवती और भारी काम करने वाली होगी क्योंकि इसने बाल्यावस्था में ही वह धनुष चढ़ा दिया जिसे एक–२ तो क्या अनेक राजा महाराजा मिलकर भी चढ़ाने में समर्थ नहीं हुए।

बस उसी दिन से राजा जनक ने निश्चय कर लिया कि इसका विवाह ऐसे योग्य और बलधारी कुमार से करूँगा, जो अपने गुणों में इससे कहीं बढ़ चढ़कर हो। परीक्षा यह रक्खी कि जो कोई श्रेष्ठ कुलोत्पन्न पुरुष इस धनुष को चढ़ाएगा वही सीता का पति होगा।

सीता का स्वयम्वर

यह निश्चय कर जनक ने सीता का विवाह स्वयंवर द्वारा गुण कर्मानुसार करने का निश्चय किया, किन्तु दूसरे राजा बिना स्वयंवर के सीता से विवाह करना चाहते थे। उन्होंने महाराजा जनक से युद्ध भी किया, जिसमें जनक की बहुत हानि हुई। उसे वर्ष भर किले में छिपे रहना पड़ा तथा अन्य कष्ट भी सहने पड़े पर महाराजा अपने विचार पर दृढ़ रहे।

शुभ दिन देखकर महाराजा ने स्वयम्वर की तिथि नियत की जिसमें सारे देशों के राजा महाराजाओं को बुलाया गया। विश्वामित्र सहित राम–लक्ष्मण भी वहाँ यज्ञ देखने की इच्छा से आए।

धनुष-भंग

एक दिन प्रातः नित्यकर्मों को करके महाराजा जनक ने ऋषि विश्वामित्र को अपने स्थान पर बुलाया और राम–लक्ष्मण सहित ऋषि की पूजा कर बोले 'भगवन् ! आपका आना बड़ा शुभ है। हे निष्पाप ! आज्ञा करो जो मैं आपकी सेवा करूँ।'

यह सुन कर मुनि विश्वामित्र महाराज से बोले –

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोक विश्रुतौ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति।।

"राजन् ! यह दोनों लोकों में प्रसिद्ध, क्षत्रियप्रवर दशरथ के पुत्र उस श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं जो आपके यहाँ रखा हुआ है।"

यह सुन राजा ने पहले उस धनुष की कथा फिर उसके चढ़ाने वाले से सीता के विवाह की प्रतिज्ञा तथा राजाओं का रोष सुनाया। इसके पश्चात् वह धनुष–मण्डप दिखाया, जिसमें सब राजे महाराजे सीता विवाह के लिए एकत्र हो रहे थे परन्तु उन सबके गुण, कर्म, स्वभाव, रूप और शौर्य आदि सीता के योग्य न थे। इसलिये जनकपुरवासियों को प्रसन्नता न थी परन्तु ज्यों ही ऋषि के साथ धनुष वाण लिये, पीत यज्ञोपवीत धारण किये राम और लक्ष्मण सभा में पधारे, सब चकित से होकर उनकी ओर देखने लगे। तुलसीदास ने लिखा है–

चौ० कटि तूणीर पीत पट बाँधे। कर शर धनुष बाम वर बाँधे।।
पीत यज्ञ उपवीत सुहाई। नख शिख मंजु महा छवि छाई।।

श्रीराम जी के सुन्दर कोमल तनु और क्षत्रिय पुत्रों में होने वाले सब गुणों को देखकर मिथलापुरी के निवासी सब ही चाहने लगे, कि क्या ही अच्छा हो यदि राम के साथ ही सीता का विवाह हो, क्योंकि सीता इनके ही योग्य है। परन्तु राजा की कठोर प्रतिज्ञा तथा धनुष की कठोरता को स्मरण कर कई प्रकार के वचन सुनाई देते थे। यथा–

चौ० देखि राम छवि सब कोउ कहई। योग्य जानकी यह वर अहई।।
कोउ कह शंकर चाप कठोरा। यह श्यामल मृदुगात किशोरा।।

कोई इनकी कोमल देहों को देखकर कहता है कि क्या ही अच्छा हो, यदि राजा बिना धनुष तोड़े ही इसके साथ सीता का विवाह कर दें। परन्तु लोग क्या जानते थे कि इस तेजोपुञ्ज ज्योतिर्मय शरीर में कितना बल है।

इतने में बड़े–२ राजा धनुष को पहले तो एक–एक कर उठाने लगे, फिर, कई–२ मिलकर भी उठाने लगे परन्तु जब वह धनुष तिल भर भी ऊँचा न हुआ, तब सारे नगर तथा राजा, रानी और सीता तक में शोक व्याप गया। यह देख उदास होकर राजा जनक ने कहा –

चौ० रहा चढ़ाउब तोरब भाई। तिलभरि भूमि न सकेउ छुड़ाई।।
अब जनि कोऊ भाषै भटमानी। वीर विहीन मही मैं जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू।।
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ। कुंवरि कुमारि रहै का करऊँ।।
जो जनितेउँ बिनु भट महि भाई। तो करितेउं प्रण नाहिं हँसाई।।

जनक ने कहा– "हे राजागण ! मैंने जान लिया कि दुनियाँ में अब कोई वीर नहीं है ? क्या करूँ, मैंने बिना समझे बूझे ही ऐसा प्रण ठान लिया। जो मैं पहले ऐसा जानता तो कभी ऐसा कठोर प्रण न करता। सीता कुमारी रह जायगी। अब आप लोग अपने–अपने घरों को जाइये। मैं समझूंगा कि सीता का विधाता ने विवाह ही नहीं लिखा।"

राज जनक की यह बातें सुनते ही लक्ष्मण के मन में मानो आग सी लग गई। मारे क्रोध के उसका शरीर थर–२ कांपने लगा। लक्ष्मण ने उठकर कहा– हे जनक जी महाराज ! क्या आपको ज्ञात नहीं कि इस सभा में सूर्यवंश के राजकुमार बैठे हैं ? भ्राताजी यदि आज्ञा दें तो मैं आपके इस पुराने धनुष को गाजर, मूली की भाँति तोड़ डालूँ। इस पर राम ने लक्ष्मण को शान्त कर अपने पास बैठा लिया। यद्यपि लक्ष्मण तो और कुछ कहना चाहते थे परन्तु भ्राता की आज्ञा न होने से चुप रहे।

जब चारों ओर निराशा छाई हुई थी, तब राजकुमार राम विश्वामित्र की आज्ञा पाकर, अपने बल पर पूरा भरोसा रख धनुष के पास गये और सहस्त्रों राजाओं के सामने बालक्रीड़ा के समान धनुष के दो टुकड़े कर दिये। उसके टूटने का इतना कठोर शब्द हुआ कि जनक, विश्वामित्र, राम तथा लक्ष्मण के अतिरिक्त सब मूर्छित हो गये। मूर्छा खुलने पर सब लोग पुष्पवृष्टि करने लगे और चारों ओर से जय–जय की ध्वनि आने लगी।

राजा जनक तत्काल ही प्रसन्नतापूर्वक ऋषि से प्रार्थना करने लगे–

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अद्भुद तमचिन्त्यं च अतर्किंतमिदं मया।।
जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्।। सर्ग० ६७

" हे भगवन् ! दशरथ–पुत्र राम का पराक्रम मैंने देख लिया है, इसने यह काम बड़ा भारी अद्भुत, अचिन्त्य तथा जिसकी कभी मैंने कल्पना भी नहीं की थी, ऐसा किया है। मेरी पुत्री सीता दशरथ–पुत्र राम को भर्त्ता प्राप्त करके जनकों के कुल में कीर्ति प्राप्त करेगी। हे विश्वामित्र जी ! मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। प्राणों से भी प्यारी बेटी सीता मुझे राम को दे देनी चाहिए। हे ब्रह्मन् ! आज्ञा कीजिये जिससे मेरे मन्त्री रथों द्वारा शीघ्र ही अयोध्या को जाएँ।" विश्वामित्र ने अनुमति दे दी और राजा ने मन्त्रियों को सब समाचार सुनाने तथा राजा दशरथ को यहाँ ले आने के लिए अयोध्या भेज दिया।

तुरन्त ही जनक के भेजे हुए राजदूत तीन दिन में अयोध्या पहुंचे और महाराजा अयोध्यापति से प्रार्थना करने लगे कि महाराज ! मिथिलापति आपका कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् बड़ी नम्रता से आपके पुत्र द्वारा जीती हुई, वीर्यशुल्का सीता को समारोह से विवाह लाने की प्रार्थना करते हैं।

इस प्रकार दूतों के मुख से शुभ समाचार सुनकर महाराज दशरथ बहुत प्रसन्न हुए और मन्त्रियों को बुलाकर मिथिला–यात्रा की तैयारी करने को कहा जिसे सुनकर मन्त्रिगण अपने–२

स्थानों में जाकर तैयारी करने में संलग्न हो गए। अयोध्यावासियों की वह रात्रि बड़े आनन्द से व्यतीत हुई। प्रातः होते ही मन्त्रिगण राजा की आज्ञा से चतुरंगी (घोड़े, हाथी, रथ, पैदल) सेना को लेकर, सेनाध्यक्षों, वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मारकण्डेय, कात्यायन आदि सुयोग्य ऋषियों सहित जनकपुरी को प्रस्थित हुए। राजा दशरथ ऋषियों के इस मण्डल से युक्त ऐसे शोभा पाते थे जैसे देवगण इन्द्र से, निशा चन्द्र से, दिवस दिनेश से व विद्युत मेघ से सुशोभित हुआ करते हैं। उनके आगमन से समस्त मिथिला नगरी में अति आनन्द मनाया गया।

महाराज दशरथ का सत्कार करते हुए महात्मा जनक ने कहा

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तो सि राघव।

" हे महाराज ! आपका स्वागत है, आप मेरे बड़े भाग्य से आये हैं। भाग्य से ही मेरा कुल भी पूजित हुआ है जो कि बड़े पराक्रमी एवं महात्मा रघुवंशियों के साथ मेरा सम्बन्ध हो गया है।"

श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयतु महर्षि।
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसत्तमैः।।

" हे राजन् ! कल प्रातःकाल यज्ञ की समाप्ति पर आप ऋषियों से सम्मत विवाह कर दें।" इसके उत्तर में बड़ी नम्रता से वाक्य कोविद दशरथ ने कहा–

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम्।।

— वा० रा० बा० का सर्ग ७०

" दान सदा दाता के वश में होता है, इसलिए हे धर्मज्ञ ! जैसा आप कहेंगे हम वैसा ही करेंगे।" यह सुन धर्मात्मा जनक बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद महातेजस्वी राम विश्वामित्र मुनि को साथ लेकर लक्ष्मण के सहित वहाँ गये और पिताजी के चरणों को छुआ। राजा दशरथ अपने पुत्रों–राम तथा लक्ष्मण को देखकर परम प्रसन्न हुए और ऋषि विश्वामित्र का यशोगान करने लगे।

इससे यह सिद्ध है कि लग्न की कल्पना नई है तथा उस समय कन्या का पिता ऊँचे दर्जे पर समझा जाता था। -(सम्पादक)

दूसरे दिन महर्षियों की सहायता से सब तैयारी करके जनक ने अपने पुरोहित शतानन्द से विचार कर अपने वीर्यवान् तथा अति धार्मिक भाई कुशध्वज को सांकाश्या नगरी से बुलाने के लिए चतुर दूत को भेजा। जब महाराज कुशध्वज परिवार तथा सेना सहित मिथिला में आ गये तो महाराज जनक ने उनका सत्कार करने के पश्चात् पुत्री विवाह रूपी यज्ञ का रक्षक नियत किया तथा विवाह की सब सामग्री यज्ञ वेदी में इकट्ठी करने के लिए कर्मचारियों को आज्ञा दी।

राम वंश वर्णन

विवाह के पूर्व विश्वामित्र की प्रेरणा तथा शिष्टाचार से सूर्यवंश के महानुभावों का नामोच्चारण, विद्या, विज्ञान तथा भाषण में निपुण पुरोहित महर्षि वसिष्ठ ने किया–

१ ब्रह्मा का मारीच, २ मारीच का कश्यप, ३ कश्यप का विवस्वान्, ४ विवस्वान् का मनु, ५ मनु का इक्ष्वाकु, ६ इक्ष्वाकु का कुक्षि, ७ कुक्षि का विकुक्षि, ८ विकुक्षि का वाण, ६ वाण का अनरण्य, १० अनरण्य का पृथु, ११ पृथु का त्रिशंकु, १२ त्रिशंकु का धुन्धुमार, १३ धुन्धुमार का युवनाश्व, १४ युवनाश्व का मान्धाता, १५ मान्धाता का सुसंधि, १६ सुसंधि का ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित, १७ ध्रुवसन्धि का भारत, १८ भारत का असित, १६ असित का सगर, २० सगर का असमंजस, २१. असमंजस का अंशुमान्, २२ अंशुमान् का दिलीप, २३ दिलीप का भागीरथ, २४ भागीरथ का काकुत्स्थ, २५ काकुत्स्थ का रघु, २६ रघु का प्रवृद्ध, २७ प्रवृद्ध का शंखण, २८ शंखण का सुदर्शन, २६ सुदर्शन का अग्निवर्ण, ३० अग्निवर्ण का शीघ्रग, ३१ शीघ्रग का मरु, ३२ मरु का प्रशुश्रक, ३३ प्रशुश्रक का अम्बरीष, ३४ अम्बरीष का नहुष, ३५ नहुष का ययाति, ३६ ययाति का नाभाग, ३७ नाभाग का अज, ३८ अज का दशरथ, ३६ दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। ●

इस वंशोच्चारण के पीछे वशिष्ठ ने कहा कि इस प्रकार आदि काल से पवित्र और परम धार्मिक सत्यवादी शूरवीर वंश में से राम, लक्ष्मण आदि उत्तराधिकारी हैं। अब आप भी अपने पूर्वजों का शुभ नाम श्रवण कराएँ।

इस पर जनक महाराज ने अपने गोत्र का स्वयं उच्चारण किया, जो आगे दिया जाता है।

- **पुस्तक के आरम्भ में हमने राम के पिता, पितामह के शीर्षक से दिलीप का पुत्र रघु, रघु का अज, अज का दशरथ कालिदास के रघुवंश के आधार से लिखा है, पर वाल्मीकीय रामायण के लेख से इसमें कुछ अन्तर पड़ता है। यों वे भी राम के पूर्वज ही हैं और उनके चरित्र भी शिक्षादायक हैं परन्तु प्रमाणभूत वंशावली वाल्मीकि जी की ही है।**

जानकी की वंशावली

१ निमि, २ निमि का मिथि, ३ मिथि का जनक, ४ जनक का उदावसु, ५ उदावसु का नन्दिवर्धन, ६ नन्दिवर्धन का सुकेतु, ७ सुकेतु का देवरात, ८ देवरात का बृहद्रथ, ६ बृहद्रथ का महावीर, १० महावीर का सुधृति, ११ सुधृति का दृष्टकेतु, १२ दृष्टकेतु का हर्यश्व, १३ हर्यश्व का मरु, १४ मरु का प्रतिन्धक, १५ प्रतिन्धक का कीर्तिरथ, १६ कीर्तिरथ का देवमीढ, १७ देवमीढ का विवुध, १८ विवुध का महाध्रक, १६ महाध्रक का कीर्तिरात, २० कीर्तिरात का महारोमा,

२१ महारोमा का स्वर्णरामा, २२ स्वर्णरामा का ह्रस्व रोमा, २३ ह्रस्व रोमा के दो पुत्र हैं - कुश-ध्वज और मैं।

इस स्वगोत्र उच्चारण के पीछे जनक ने कहा– 'हे ऋषिराज ! एक समय सुधन्वा नाम का राजा संकाशी नगर पर चढ़ आया तो उसने सीता को वरने के लिए मिथिला की प्रजा को भी कष्ट देना आरम्भ किया, परन्तु उसे सीता के अयोग्य समझ मैंने युद्ध में मार दिया और उस नगरी में अपने शूरवीर भाई कुशध्वज का राजतिलक कर दिया। सो हे देव ! मेरी पुत्री सीता तथा उर्मिला के योग्य आपके पुत्र राम तथा लक्ष्मण ही हैं इसलिए इन्हें मैं यह देता हूँ। आप इनका वेदोक्त गोदान (समावर्तन–संस्कार) और विवाह शीघ्र कराइये जो कि पितृकर्म अर्थात् पिता का कर्तव्य है।'

यह सुन वशिष्ठ जी की सम्मति से विश्वामित्र बोले–

अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नर पुंगव।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्यो स्ति कश्चन।।१।।
सदृशो धर्म सम्बन्धः सदृशो रूप सम्पदा।
राम लक्ष्मणयोः राजन्सीता चोर्मिलया सह।।२।।

–वा० रा० बा० कां० सर्ग ७२

'हे नरश्रेष्ठ ! इक्ष्वाकुओं तथा वैदेहों के कुल आश्चर्यजनक और अनुपम हैं, इनके तुल्य कोई भी नहीं है। हे राजन ! राम का सीता से और लक्ष्मण का उर्मिला से धर्म सम्बन्ध सर्वथा युक्त है। वह गुण, कर्म, स्वभाव, स्वरूप तथा सम्पदा से एक तुल्य हैं। अब यदि आप कुशध्वज की कन्याओं का भरत शत्रुघ्न से विवाह कर दें, तो बहुत ही अच्छा है।'

यह सुन राजा जनक हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से कहने लगे– 'ब्रह्मन ! यह कुल धन्य है, जिसके सम्बन्ध को मुनिपुंगव (विश्वामित्र और वशिष्ठ) एक पवित्र व समान कुल से मिलाते हैं। सो हे मुनिवरो ! मैं आपका शिष्य हूँ, जैसे आप आज्ञा देंगे वैसे ही होगा। आप इन ब्रह्मचारियों का विधिवत् समावर्तन संस्कार करें और जिस वस्तु की आवश्यकता हो महाराज दशरथ की अयोध्या नगरी समझ कर मेरी पुरी से ले लें और जनकपुरी को अब आप अपना ही गृह समझें और जो–२ चीजें चाहें आज्ञा करें।'

समावर्तन-संस्कार

जनक के इस भाषण से ऋषियों ने चारों दशरथ पुत्रों का विधिवत् समावर्तन–संस्कार कराया। उस समय राजा दशरथ ने लाखों गौएं, खान–पान की सारी सामग्री सहित ब्राह्मणों को दान दीं।

युधाजित का आगमन

जिस दिन समावर्तन–संस्कार हुआ, उसी दिन अयोध्या होते हुए कैकेय राज्य का युवराज युधाजित कश्मीर से अपने भानजे से मिलने के विचार से तथा राम का विवाह समाचार सुन जनकपुरी में आ गया। इससे उत्सव की शोभा और भी अधिक हो गई। महाराज दशरथ ने उसका यथोचित सत्कार किया। यथा–

अथ राजा दशरथः प्रियातिथमुपस्थितम्।
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत्।।

– वा०रा० बा० का० सर्ग ७३ श्लोक ६

समावर्तन संस्कार के पीछे महर्षि वशिष्ठ ने जनक से कहा कि राजन्! अब आप विवाह यज्ञ की तैयारी करें।

जिस पर जनक ने कहा–

कृतकौतुक सर्वस्व वेदिमूलमुपागताः।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्तावन्हेर्यथार्चिषः।।

– सर्ग ७३।१५

'हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निशिखा के समान तेजस्वी मेरी कन्यायें तो सम्पूर्ण कर्तव्य कर वेदी पर बैठी हुई हैं। अब केवल आपकी प्रतीक्षा हो रही है, कृपा कर शीघ्र पधारिये।' यह सुन वशिष्ठ मुनि रामादि को साथ लेकर तथा विश्वामित्र को आगे कर उस यज्ञ वेदी में गये जो विवाह विधि के लिए सुगन्धित पुष्पों और फलों से सजी हुई, सुन्दर कलश, तोरण, सुवर्ण कुम्भों और फूलदार गमलों, केले के स्तम्भ, आम, जामुन, तुलसी के पत्तों से अलंकृत थी, जिसमें धूप, गन्ध, अक्षत, लाजा, कर्पूर, चन्दन, अगर, तगर, स्रुक, अर्घ्य–पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क आदि सब उपस्थित थे।

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह

तत्पश्चात् सब आभूषणों से अलंकृत सीता को लाकर राजा जनक कौशल्यानन्दन राम से बोले–

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
प्रतीच्छ चैनां भद्रन्ते पाणिर्गृहीष्व पाणिना।।
पतिव्रतां महाभागा छायेवानुगता सदा।

– सर्ग ७३।२६।२७

हे राम ! यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी बन रही है। इसे स्वीकार करो, पति रूप से इसका हाथ ग्रहण करो, यह छाया की तरह सदा तुम्हारी अनुगामिनी होगी।' इसी प्रकार राजा ने उर्मिला का लक्ष्मण को, माण्डवी का भरत को और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्न को पत्नी रूप से वैदिक रीत्यनुसार पाणिग्रहण कराया और चारों पति पत्नियों ने गृहस्थ धर्म पालन के प्रतिज्ञा मन्त्रों को सब विद्वानों के सामने उच्चारण किया और अन्त में अग्नि, राजा, यज्ञवेदी तथा ऋत्विजों की प्रदक्षिणा कर परमेश्वर से शुभ फल देने की प्रार्थना की। उसी समय चारों ओर से नाना भाँति के बाजे बजने लग गये और ऋषि मुनि, देव (विद्वान) नर नारी पुष्पों की वर्षा करने लगे। गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओं के मंगल गायन होने लगे तथा घर घर में बधाई गीत गाये जाने लगे।

विवाह संस्कार के पूर्ण होने पर चारों भाई अपनी–अपनी पत्नियों सहित ऋषिमण्डल तथा बान्धवों के साथ अपने शिविर में चले गये।

अयोध्या को प्रस्थान

रात व्यतीत होने पर दूसरे दिन ऋषि विश्वामित्र राजाओं से विदा होकर उत्तर पर्वत को चले गये और महाराजा दशरथ ने अयोध्या के प्रस्थान की तैयारी कर दी।

दहेज में राजा जनक ने अनेकों उत्तम गौएं, रेशमी, सूती और ऊनी कपड़े, अनेकों हाथी, घोड़े, रथ तथा सोने–चाँदी, मोती–हीरों के रत्नाभूषण और अनेक दास–दासियाँ दीं।

परशुराम का समागम

मिथिलापुरी से विदा होकर पुत्रों सहित राजा दशरथ अभी ११–१२ कोस तक पहुंच पाये थे कि आगे से उठती हुई आँधी की तरह धूलि को देख और शूरवीरों जैसे भयानक जयघोष को सुनकर सब लोग डर गये, और मन मे नाना प्रकार की अनिष्ट कल्पनायें करने लगे। थोड़ी देर में ही उन्होंने कैलाश पर्वत के शिखर की तरह गौर वर्ण, कालाग्नि सम दुस्सह एवं प्रकाशमान तेजों से तेजस्वी और स्कन्धों पर विष्णु धनुष को रखे परशुराम को आते देखा। सबने मिलकर उनकी अर्घ्य आदि से पूजा की। पूजा को ग्रहण कर प्रतापी परशुराम रामचन्द्र से बोले–

राम दशरथे वीर वीर्य ते श्रूयते द्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्।।
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा।
तच्चाहमनुप्राप्तो धनुगृह्यपरं शुभम्।।
तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च।।

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषो प्यस्य प्रपूरणे।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव।।

– सर्ग ७५।१।४

'हे दशरथ पुत्र वीर राम ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत सुना जाता है। धनुष का तोड़ना भी मैंने पूरी तरह सुना है। उस धनुष का तोडना बड़ा अद्भुत एवं अचिन्त्य कर्म है, उसका तोड़ना सुनकर मैं एक बड़ा सुन्दर धनुष लेकर आया हूँ। यह भयंकर बड़ा धनुष जमदग्नि पुत्र परशुराम का है, इस पर बाण चढ़ाओ और अपना बल दिखाओ। इस धनुष के चढ़ाने में तुम्हारा बल देखकर मैं तुम से कुश्ती लड़ूंगा।'

परशुराम की इस पौरुष भरी वाणी को सुनकर तथा उनके पूर्व के भीमकर्मों का स्मरण कर दशरथादि क्षत्रिय कहने लगे– 'ब्रह्मन् ! आप अपने पिता के वध रूप क्षत्रिय–अपराध को भुला कर इन बालकों को अभय दान दीजिए। भगवन् ! आप तो स्वाध्यायशील भार्गवों की तरह शस्त्र–अस्त्रों को त्यागकर महेन्द्राचल में चले गये थे। आप मेरे विनाश के लिए कहाँ से आ गये, हे महामुने ! स्मरण रखो कि यदि राम को आपने अपने रोष का पात्र बना लिया तो हम सबके सब जीवन त्याग देंगे।'

इन दीनतायुक्त भयावृत्त वचनों को सुनकर भी परशुराम पुनः राम से आग्रह पूर्वक कहने लगे कि हे राम ! अपने पैतृक क्षत्रिय धर्म को स्मरण कर इस धनुष को धारण कर। तब पिता के दीन वचनों से और परशुराम के पूर्व कर्मों से उत्तेजित होकर राम बोले– 'हे भार्गव ! जो आपने पितृ ऋण उतारने के लिए वीर कर्म किया है, उसे हम मानते हैं। परन्तु यदि आज भी आपको वही अभिमान है और आप मुझे वीर्यहीन एवं अशक्त पुरुष की तरह मानकर अवज्ञा करना चाहते हैं तो आज मेरे तेज और पराक्रम को भी देखिये।'

यह कहकर राम ने क्रोध से वाण सहित परशुराम के धनुष को चढा दिया और साथ ही कहा कि हे भार्गव ! आप ब्राह्मण होने तथा विश्वामित्रादि से पूज्य होने के कारण मेरे भी पूज्य हैं। इसीलिए मैं आपके प्राण हरने के लिए वाण नहीं छोड़ता। परन्तु मैं आपकी गति को रोकना चाहता हूँ। इस प्रकार तेजहीन हुए परशुराम राम की बहुविधि स्तुति करते हुए महेन्द्र गिरि को चले गये।

राम ने चतुरंगिणी सेना को अयोध्या की तरफ चलने की आज्ञा दी, जिसे सुन और प्रसन्न होकर राजा दशरथ अपने पुत्रों और मित्रों के साथ चारों ओर से शोभायमान तथा स्वच्छ और हिमालय तुल्य राजभवन में प्रविष्ट हुए।

बन्धुओं के मान–सत्कार के लिए कौशल्या, सुमित्रा तथ कैकेयी अपने दास–दासी वर्ग के साथ आगे आ गईं और बड़े हर्ष से राजभवन में ले गईं। इस समय सारे नगर में मंगल गीत तथा उत्सव होने लगे। चारों राजकुमार तथा उनकी पत्नियाँ अपने–अपने नित्य कर्मों को पालन कर और माता–पिता की सेवा कर अपने जीवन को सफल करने लगे।

भरत का ननिहाल जाना

एक दिन महाराज दशरथ ने भरत को बुलाकर कहा– 'पुत्र ! देखो तुम्हें ले जाने के लिए तुम्हारा मामा युधाजित् बहुत दिनों से आया हुआ है। जाओ, तुम अपने नाना से मिल आओ यह सुनकर भरत, शत्रुघ्न समेत राम और कौशल्या आदि माताओं की आज्ञा लेकर अपनी ननिहाल को चले गये।

इधर राम पिता को देव तुल्य और माताओं को देवी समान मानकर सीता के साथ उनकी प्रसन्नता के लिए सारे राज कार्य और गृह कार्य करने लगे जो न केवल राजकुल के लिए हितकर थे, अपितु जो प्रजाओं के लिए भी कल्याणकारी थे। इस प्रकार से राम सभी पुरुषों में आदर से देखे जाने लगे और स्त्रियों में सबसे अधिक सीता का मान बढ़ गया। इस प्रकार अयोध्या राज्य सब प्रकार से शान्ति पूर्ण तथा प्रकाशमान होकर उन्नति करने लगा।

।। बालकाण्ड समाप्त।।

।। ओ३म् ।।

अयोध्या काण्ड

राम को युवराज पद

राम के अनुपम शौर्य, प्रजावत्सलता और बढ़ती हुई लोकप्रियता के सुसमाचार नित्य ही महाराजा दशरथ की प्रसन्नता और आनन्द को बढ़ाते थे।

एक दिन महाराजा एकान्त में विचार करने लगे– "मैं अब वृद्ध हो चला हूँ, राज्य के दायित्वों का निर्वहन अब मेरे द्वारा सम्भव न हो सकेगा। साथ ही राम प्रजावत्सल, सर्वगुणसम्पन्न और राज्य भार संभालने में सर्वथा समर्थ है। अतः राज्य भार उसको दे देना चाहिए। परन्तु जैसा कि नियम है–

राजा वै प्रकृति रंजनात्।

राजा वही होना चाहिए जिस पर प्रकृति (प्रजा) प्रसन्न हो, इसलिए उसने राम को सर्वगुण–सम्पन्न तथा राज्य पालन के योग्य समझ कर भी, प्रजा के प्रतिनिधियों को उनके गाँवों, खेड़ों, नगरों, वनों व अलग–अलग बसने वाले लोगों में से बुलाकर उनकी सम्मति ली और फिर एक दिन नियमपूर्वक भारी सभा कर सब प्रजा के मुखियाओं को बुलाकर बड़े नम्र तथा गम्भीर शब्दों में कहा –

'हे भद्र जनो ! आपको विदित है कि मैंने इस राज्य को पुत्र समान प्रेम से पाला है और शक्ति भर रात दिन सजग रहकर तथा अपने को कष्ट में डालकर प्रजा का हित–साधन किया है। परन्तु इस समय मेरा शरीर जीर्ण होने के कारण विश्राम चाहता है, अतः मैं इस धर्मयुक्त सारे राज्य भार को पुत्र को अर्पण कर आराम चाहता हूँ। इस समय तक राजा के सब गुणों से युक्त राम मेरे सब गुणों का अनुकरण करता रहा है। मेरी अपनी इच्छा है कि उसको यह प्रजा हित का कठिन और पवित्र काम दिया जाय। आप लोग इस विचार को श्रेष्ठ जान कर सलाह दें और यदि यह उचित न हो तो मुझे बतावें कि प्रजा के कल्याण के लिए क्या उपाय किया जाय ?

राजा के इस वचन को सुनकर सब प्रतिनिधि ऐसे प्रसन्न हुए जैसे वर्षा करने वाले मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होते हैं। और सभी ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एकान्त में विचार करने लगे। जब सबका एक निश्चय हो गया, तब सब मिलकर ऊँचे स्वर से बोले कि–

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्।

– अ० कां० स० २।२२

"हम राम को राजा बनाना चाहते हैं।"

राम के राजा योग्य गुण

यह अनुकूल सम्मति सुनकर भी राजा दशरथ ने अपने पुत्र के गुण जानने के लिए और प्रजा के मत को प्रमाण सहित करने के लिये पूछा– "राजवर्ग तथा प्रजागण ! आप मेरे द्वारा धर्म पूर्वक शासन होते हुए भी फिर क्यों राम के राजा होने की इच्छा रखते हो?'

यह सुन सब राजा और नगर के पुरुष मिलकर बोले–

ते तमूचूर्महात्मानः पौरजानपदैः सह।
बहवो नृप ! कल्याणगुणाः सन्ति सुतस्य ते।।

– सर्ग २।२६

'हे पृथ्वीनाथ ! आपके पुत्र में राजा होने योग्य कल्याणकारी सब गुण हैं। हे प्राणनाथ ! वह अपने गुणों से सारे सूर्यवंशियों से अधिक पूज्य हैं। राम अपने दिव्य गुणों से इन्द्र सम सत्य–परायण, सत्य–प्रतिज्ञ तथा सत्य का प्रचारक हैं। वह बिना ईर्ष्या के धर्म को जानने और उसका पालन करने वाला है, उसका स्वभाव, सुशील, नम्र, शान्त, स्नेही, कृतज्ञ और स्थिर चित्त है। वह सदा बहुत पढ़े हुए, ब्राह्मणों के सत्संग में रहता है। इससे उसकी महिमा, कीर्ति, यश, बुद्धि और बढ़ने की आशा रहती है। प्राणनाथ ! यह देव असुर गन्धर्व मनुष्यों के सब अस्त्रों में चतुर है।'

सम्यग्विद्या व्रतस्नातो यथावत्सांगवेदवित्।

यह सम्यक् पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन तथा वेदांगों सहित वेद जानने से सर्वगुण सम्पन्न है। यह नवयुवक होता हुआ भी महामति और अदीन आत्मा है। धर्मार्थ में निपुण ब्राह्मणों से इसने सारी शिक्षायें प्राप्त की हैं।

इससे यह सिद्ध है कि राम का विवाह २५ वर्ष से कम उम्र में नहीं हुआ।

जिस समय यह लक्ष्मण के साथ किसी गाँव, देश को जीतने या कष्ट निवारने को जाता है तो बिना कृत कार्य हुए कभी नहीं आता। गाँव, नगरों और पुरों में से होता हुआ सर्व साधारण से अपने बन्धुओं की तरह कुशल समाचार पूछता है। उनके पुत्र, अग्नि–होत्र, स्त्रियों, नौकरों, शिष्यों, सम्बन्धियों की कुशल पूछता है। राज्य में किसी पर भी दुःख पड़ने पर दुःखी हो जाता है। उत्सवों में पिता के समान उत्साह देता है। सदा मीठा और सत्य बोलता है। जितेन्द्रिय है, हर एक से प्रसन्न मुख ही बोलता है। हर एक के प्रश्न का बृहस्पति के सदृश युक्ति पूर्वक उत्तर देता है। दण्ड के योग्य मनुष्यों को ही दण्ड देता है। इसके क्रोध व हर्ष अकारण और निरर्थक नहीं होते। इसका बल आयु, आरोग्यता आपको विदित ही है। इनसे यह तीनों लोकों का शासन कर सकता है। इस राज्य का तो क्या कहना, सारी पृथ्वी इसको चाहती है। इस अयोध्या की स्त्रियाँ, वृद्ध, नवयुवक प्रातःसायं संध्या के पीछे इसी के लिए परमेश्वर से मंगल कामना करते हैं।

राज्याभिषेक की तैयारियाँ

इस प्रकार प्रजा के पुरुषों की सम्मति से अपने को प्रसन्न और कृतज्ञ मानकर महाराजा दशरथ ने उनके सामने ही वसिष्ठ, वामदेव आदि विधि-वेत्ताओं को सब सामग्री इकट्ठी करने की प्रार्थना की। जिस पर महामुनि वसिष्ठ ने राज कर्मचारियों को सुवर्ण-पात्र, रत्न-सर्वोषधि, श्वेत-पुष्प, रत्नों की माला, लाजा (धान की खीलें) शहद, घी, नवीन यज्ञीय वस्त्र सब प्रकार के शस्त्र-अस्त्र, चँवर, पंखे नाना रंग की ध्वजा, सफेद छत्र, व्याघ्र तथा मृगचर्म, चन्दन, जल, कलश, धूप, केसर, कपूर, अगर, तगर आदि को इकट्ठा करने की आज्ञा दी तथा हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ, बग्घी आदि को सजाने एवं बाजार, गलियों और नगर, द्वार, राजमहलों को साफ और अलंकारयुक्त सुशोभित करने तथा चतुरंगिणी सेना को अस्त्र-शस्त्रों से सजाने का भी निर्देश किया और अग्नि-होत्री तथा वेद-पाठी ब्राह्मणों के लिए आसन-हवन की वस्तुयें एवं यजुर्वेद आदि वेद उपस्थित करने को कहा। कर्मचारियों ने शीघ्र ही सब सामग्री तैयार कर विनीत भाव से राजा को इसकी सूचना दे दी।

पिता का उपदेश

सामग्री तैयार होने पर राजा ने मंत्री द्वारा राम को बुलाया। जब राम पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा एवं वन, पर्वत, म्लेक्ष आदि देशों के राजाओं से सेवित राज द्वार में आये तो राजा ने राम से कहा- 'हे पुत्र ! जिस प्रकार तू जन्म से बड़ा है, इसी प्रकार तू गुणों में भी बड़ा है और तूने अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न कर लिया है, इसलिए मैं प्रसन्न होकर तुझे युवराज बनाना चाहता हूँ।'

काम क्रोध समुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च।
परीक्षया वर्तमानो वृत्या प्रत्यक्षया तथा।।
अमात्य प्रभृतीः सर्वाः प्रजाश्चैवा नुरंजय।
इष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम्।।
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वा मृतमिवामराः।
तस्मात्पुत्र ! त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर।। सर्ग ३ ।।

'हे पुत्र ! तू काम से पैदा हुए दश और क्रोध से पैदा हुए आठ व्यसनों को छोड़ और प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रुओं से सावधान रहना, महामंत्री से लेकर साधारण प्रजाजन तक के मन को संतुष्ट करने वाला बनना क्योंकि जो राजा प्रजा के आनन्द को बढ़ाता है, उसको प्राप्त होकर प्रजाजन इसी प्रकार प्रसन्न होते हैं जैसे अमृत को पाकर देवता। इसलिये हे पुत्र ! तू आत्मा को संयम में रखकर इसके अनुसार प्रजा का शासन करना।'

नगर में आनन्दोत्सव

इस उपदेश के अनन्तर महाराज ने राम के राज्याभिषेक की सामग्री इकट्ठी करने के लिए मन्त्री लोगों को फिर कहा तथा नगर में इस समाचार को राजा की ओर से प्रसारित करने का आदेश हुआ जिस पर नाना प्रकार के औषधि, मूल, फल, फूल, जल तथा मंगल वस्तुएँ और मृग चर्म, नाना प्रकार के वस्त्र, भूषण, मणि हीरे, रत्न आदि इकट्ठे किये गये जो कि राज्याभिषेक के योग्य थे।

सारे नगर और गाँव की सड़कों को राज्य की ओर से अपूर्व तथा अद्भुत रीति से सजाया गया, जिसे देख व सुनकर समस्त नर–नारी, बाल–वृद्ध प्रसन्न हुए और वेद अनुकूल अपने कर्तव्य पालन के लिए तत्पर हो गये।

राम राज्य अभिषेक सुन, हिय हर्षे नर-नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि।।

महर्षि वशिष्ठ का उपदेश

राजतिलक करने का निश्चय कर महाराज दशरथ ने श्रीराम को प्रजा के सम्बन्ध में कर्तव्य का उपदेश करने तथा स्वधर्म पालने के लिए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ को भेजा और जब वह उपदेश तथा शिक्षा देकर चले गये तो श्रीरामचन्द्र जी स्नान कर एक मन हो, सीता के साथ ईश्वरोपासना में बैठे और परमात्मा से बल प्राप्त करने के अनन्तर अग्निहोत्र कर सीता के साथ इस भार को उठाने का विचार करने लगे तथा परमेश्वर एवं सीता के सहारे इस पवित्र और कठोर राज धर्म पालन के लिए शूरवीरों की तरह उत्साह से तैयार हो गये।

लोकमत व प्रजा के विचार

महाराज दशरथ की ओर से राम को राज्याधिकार पाने का निश्चय सुनकर नगर, गाँव तथा देश के अधिकारी और साधारण प्रजा–जन एक दूसरे से कहने लगे कि महाराजा कैसे बुद्धिमान् धर्मात्मा और प्रजाप्रिय हैं, जो अपने को वृद्ध समझकर राम को राज्य पद देते हैं। सचमुच हम राम के राज्य पद पाने से अनुगृहीत हैं। ईश्वर करे कि यह महाराजा चिरकाल तक जीवित रहें, क्योंकि इनकी कृपा से ही निरभिमानी लोकों के हिताहित को जानने वाला, धर्मात्मा, भाइयों का प्यारा, प्रजा का हितैषी, विद्वान् और जितेन्द्रिय युवराज राम हमें प्राप्त हुआ है।

रानियों में उत्साह व हर्ष

जिस समय राज्याभिषेक का समाचार माता कौशल्या, सुमित्रा के पास पहुंचा तो उन्होंने उसी समय अपने आपको कृतकृत्य समझकर ईश्वर का धन्यवाद किया और इस हर्ष में सुन्दर वस्त्राभूषणों को धारण कर, दीनों, अनाथों और ब्राह्मणों को धन बाँटना आरम्भ कर दिया जिसके कारण माता कौशल्या के भवन के नीचे भारी समुदाय जुड़ गया और चारों ओर से जय–जय की ध्वनि आने लगी।

मन्थरा का षड्यन्त्र

(नीचता का अंकुर)

इतने में साथ के महल में खड़ी हुई कैकेयी की नीच कुलोत्पन्ना दासी मन्थरा ने पूछा कि यह कैसा उत्सव है ? जब उसे मालूम हुआ कि कल काम और क्रोध के जीतने वाले राम को अयोध्या का राजा बनाया जायेगा तो वह हृदय की दुष्टाग्नि से दग्ध हो गई और सोचने लगी कि –

करै विचार कुबुद्धि कुजाती।
होय अकाज कवन विधि राती।।
देखि लागि मधु कुटिल किराती।
जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भांती।।

अर्थात् जिस प्रकार शहद के भरे गुच्छों को शहद के लालच से भीलनी बिगाड़ना चाहती है, इसी प्रकार वह दुष्टा इस मंगल कार्य को बिगाड़ने के लिए कपट जाल रचने लगी।

कैकेयी की उदारता एवं स्नेह

जब उसने कोई और उपाय न देखा तो कैकेयी से जाकर कहने लगी– 'हे मूर्खे!' उठ तेरे लिए भारी संकट आने वाला है तथा तेरा सौभाग्य नदी के स्रोत की भाँति बह जायेगा। राजा दशरथ राम को राजतिलक देने लगा है।' यह सुन महारानी कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और इस प्रसन्नता में उसने अपना एक बहुमूल्य भूषण मंथरा को दे दिया, जिसे पाकर वह नीचा सिर किये फिर भी उसे अधर्म के लिए उकसाती रही और सौत के पुत्र के राजा होने की हानि भयानक रूप में दर्शाती रही। किन्तु आर्यदेवी कैकेयी राम के गुणों की प्रशंसा करती रही। अन्त में उसने यहाँ तक कह दिया कि –

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयो पि राघवः।
कौशल्यातो तिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम्।।

– अ० कां० सर्ग ८।१८

अर्थात् मुझे जिस प्रकार भरत मान के योग्य है उसी प्रकार राम है। क्योंकि राम मेरी कौशल्या से भी बढ़कर सेवा करता है। न्याय तथा धर्म से भी राम ही बड़ा होने से राज्य का अधिकारी है और यही आज तक सूर्यवंशियों की मर्यादा रही है। और राज्य राजा का है, जिसे वह चाहे दे सकते हैं। इस पर भी मन्थरा ने बड़ी कुटिलता से राम के राजा होने की निंदा करते हुए, कटाक्ष से निम्न शब्द कहे –

कोउ नृप होउ हमें का हानी।
चेरी छोड़ कहाव न रानी।।

रंग में भंग

कैकेयी के अन्दर भी अन्त में मनुष्य की ही आत्मा थी निदान, उसे मंथरा के कपट स्नेह ने अपनी ओर मोड़ लिया, जिस पर कैकेयी ने सरलता से पूछा कि मेरा हित किस में है और मैं उसके लिए क्या करूँ ? इस पर मंथरा ने कहा कि– 'रानी ! तुझे याद होगा कि जब दक्षिण दिशा में वैजयन्तपुर जिसका राजा तिमिध्वज था वहाँ देवासुर संग्राम में राजा दशरथ की रथवाही बनकर तू युद्ध में गई थी और उस युद्ध में जब एक बार राजा शत्रुओं से घायल होकर मूर्छित हुआ तो तूने रणक्षेत्र से ले जाकर उसकी प्राण–रक्षा की थी। जब वहाँ भी शत्रु आये तो तूने वहाँ से भी परे ले जाकर पृथ्वीपति का जीवन बचाया था। ● उस वक्त राजा ने तुझे दो वर दिये थे। उनमें से एक से राम का चौदह वर्ष के लिए वनवास माँग, और दूसरे से अपने पुत्र भरत का राज्य माँग। इसी में तेरा कल्याण है। चौदह वर्ष के लम्बे काल में भरत अपने निष्कंटक राज्य को दृढ़ कर लेगा। याद रख कि मेरी यह राय कभी व्यर्थ न होगी। बस अभी शोक और क्रोध के चिन्ह धारण कर कोप भवन में चली जा। राजा तेरे क्रोध को कभी सहन न करेगा इसी में तुम्हारा और हमारा हित है।

● **अपवाह्य त्वया देवि ! संग्रामान्नष्टचेतनः।**
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्तेरक्षितस्त्वया।।
– सर्ग ९।१६

कोप-भवन और राजा से वर माँगना

यह सुन वस्त्राभूषण उतार कैकेयी क्रोधित की तरह कोपभवन में चली गई। जब राजा ने आकर मन्दिर को शून्य तथा कैकेयी को इस दुखित दशा में देखा तो वह बोला– "रानी ! मुझे बता तुझे क्या व्याधि है अथवा किसने तेरा अपराध किया है या तुझे क्या चाहिए ? मैं और मेरा सर्वस्व तेरे वश में है। मैं प्राण देकर भी तेरे दुःख को दूर करूँगा। हे शोभने ! उठ तुझे कहाँ से यह भय प्राप्त हुआ, जिससे तेरी कान्ति मलिन हो गयी है।"

इस पर कैकयी बोली –"हे सत्यप्रतिज्ञ तथा धर्म के जानने वाले राजन् ! स्मरण करो कि देवासुर संग्राम में आपने मुझे दो वर दिये थे। उनके पालन का यह समय है–

नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनजटाधारी रामो भवतु तापसः।।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्।
एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तम् राघवं वने।

- अ० का०सर्ग ११।२६।२८

एक वर मैं यह माँगती हूँ कि –

'राम चौदह वर्ष तक चीर मृग चर्म पहनकर तपस्वियों की तरह दण्डकारण्य में रहे और दूसरे वर से –भरत अकण्टक राज्य को आज प्राप्त करे। यह मेरी प्रबल कामना है। मैं दिये हुए वर को माँगती हूँ। मैं आज ही राम को वन में जाता हुआ देख लूं।'

यह सुनते ही पहले तो राजा मूर्छित हो गया और जब मूर्छा खुली तो सोचने लगा कि मैं क्या दिन में स्वप्न देख रहा हूँ या मुझे चित्त मोह हुआ है ? जब कुछ और चेतना हुई तो कैकेयी के सामने पड़ा हुआ यह समझने लगा कि मैं किसी व्याघ्र के मुख में हूँ या किसी भारी बलवान् से बंधा हुआ हूँ। इस दुःख का कारण कैकेयी को समझकर वह कई प्रकार के अपशब्दों से उसे ताड़ने लगा–

नृशंसे दृष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि।
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा।।
सदा ते जननी तुल्यां वृत्तिं वहति राघवः।
तस्यैवं त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता।।

– अ० कां० स० १२ श्लोक ७।८

"हे क्रूर ! दुष्चरित्र ! रघुकुल नाशिनी हत्यारी ! तेरा राम ने क्या अप्रिय किया है? वह तो भरत से भी बढ़कर तेरी भक्ति करता है। बिना अपराध उस सुकुमार धर्मात्मा को किस तरह १४ वर्ष के लिये वनवास दूं ? कैकेयी ! देख राम में सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शौच, सरलता, विद्या, गुरुशुश्रूषा आदि बड़े गुण हैं और इनसे उसने सारे राष्ट्र को अनुकूल कर लिया है। इसलिए तू कृपा कर मुझे क्षमा कर और अपने वचनों को लौटा ले।"

इस पर रुद्र रूप धारण कर कैकेयी बोली–"राजन् ! सत्य पुरुष प्रतिज्ञा नहीं हारा करते। आप प्रतिज्ञा करके फिर बदलते हैं। आप अपने पहिले दिये वरों को स्मरण करें। वे धर्म हैं या अधर्म, सच है या झूंठ। पर जो आपने प्रतिज्ञा की है, मैं उसे चाहती हूँ, नहीं तो आज ही आपके सामने प्राण त्याग दूंगी।"

इस पर राजा ने कहा कि विचारहीन ! तू शीघ्र इस विचार को छोड दे। भरत राम के वन जाने पर राज्य न करेगा और आर्य पुरुष चारों ओर से मेरी अनार्यों की तरह निन्दा करेंगे। कोई कहेगा कि इसने कामान्ध होकर लोकप्रिय राम को वन दिया। कोई कहेगा कि बूढा होने से इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। निर्बुद्धे ! सोच तो सही कि सदा अनुकूल रहकर सेवा करने वाली राम की माता को यह सदेश मैं किस प्रकार सुनाऊँगा और इस काम के करने पर सुमित्रा तथा सीता का मुझ पर क्या विश्वास होगा? हे कैकेयी ! याद रख मैं सूर्य के बिना रह सकता हूँ तथा वर्षा के बिना बच सकता हूं, परन्तु राम के बिना मेरा जीवन नहीं रह सकता।

इस पर कैकेयी ने कहा – 'राजन् ! क्यों धर्म से पतित होते हो ? देखो इतिहास बतलाता है कि महाराज शिवि के पुत्र ने अतिथि के प्राणों की अपने माँस से रक्षा की थी। तेजस्वी अलर्क ने वेद–पाठी ब्राह्मण के माँगने पर अपने नेत्र निकाल कर दे दिये थे। सत्य के आश्रय पर सारा जगत ठहरा हुआ है। आप सत्य का आश्रय लें, और पुत्र को वनी बनाने में संकोच न करें यह पाप कर्म नहीं है।'

इस प्रकार के अप्रिय वचनों को सुनते –सुनते और रात के ढल जाने से महाराज की उसी दशा में आँख लग गई, वह इतने दुःखाक्रान्त हो गये कि कुछ भी न बोल सके।

इस दशा में फिर कैकेयी ने कहा कि–

त्वं तु कथ्यसे राजन् सत्यवादी दृढ़तः।
मम चेदं वरं कस्माद्विधारयितु मिच्छसि।।

– सर्ग १३।३

"राजन् ! आप तो सत्यवादी और दृढ प्रतिज्ञा प्रसिद्ध हो, फिर मुझे दिये हुए वर को क्यों नहीं देना चाहते ? पापकारी पुरुषों की तरह खिन्न मन होके क्यों सो रहे हो?"

राज्य के स्थान पर वनवास

ऊपर की घटना तो राजभवन में हुई, परन्तु बाकी सारी बस्ती और राज्य में यह रात्रि बडे आनन्द से राग–रंग व उमंग में कटी और प्रभात होते ही स्थान–२ पर द्विज स्वस्तिवाचन और भाट राजकुल की भिन्न–२ स्तुतियाँ कहने, बाल कन्यायें मंगल–गीत गाने और वृद्ध विद्वान आशीर्वचन बोलने लगे।

परन्तु प्रायः देर तक राजभवन से राजा के उठकर न आने से सब ही विस्मित हुए। अन्ततः राजमन्त्री सुमन्त राजभवन में गया, जिसे देख कैकेयी ने कहा–'सुमन्त ! राजा रात भर राम के तिलकोत्सव की प्रसन्नता में जागते रहे हैं इसलिए ऊँघ रहे हैं। तुम राम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। इतनी सुन सुमन्त राम के महलों में गया। वहाँ राम सीता सहित संध्या एवं अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मों से निवृत होकर राज्य का हित चिन्तन कर रहे थे। सुमन्त ने कहा कि राम ! राजा आपको देखना चाहते हैं। इस पर रामचन्द्र सीता को यह कह कर कि देवी कैकेयी और पितृदेव मुझे बुलाते हैं, मैं

उनके दर्शनों को जा रहा हूँ, तुरन्त ही राजभवन में आये और पिता को जड़वत मूर्छित देखकर कहने लगे– 'माता ! हमने तो कोई अपराध नहीं किया, जिससे राजा हमसे अप्रसन्न हों। यदि कोई शारीरिक तथा मानसिक रोग हो तो कहो। क्या कारण है ? जो राजा प्रतिक्षण मुझसे बड़े स्नेह से बोलते थे, आज आँख उठाकर भी नहीं देखते ? देवी ! शीघ्र कहो कि पिताजी को क्या दुःख है। हम राजा का कष्ट नहीं देख सकते।'

यह सुन कैकेयी ने कहा– "बेटा राम ! राजा को कुछ दुःख नहीं है और न राजा किसी पर क्रुद्ध हैं। राजा के मन में एक बात आई है पर तुम्हारे डर से कुछ कह नहीं सकते क्योंकि तुम इनको बहुत प्यारे हो। राजा ने हमें वचन दिये थे परन्तु तुम्हारे डर से पूरे नहीं करते। हे राम ! धर्मात्मा मनुष्य को अपना वचन अवश्य पूरा करना चाहिए। जो तुम राजा का वचन पूरा कर दो तो मैं तुमको उनकी आज्ञा सुनाऊँ।" इतने शब्द सुनते ही राम बड़े उत्साह और अभिमान से लज्जित होकर बोले–

अहोधिङ् नार्हसे देवि ! वक्तुमामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।।
भक्ष्येयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च।।
तद्ब्रूहि वचनं देवि ! राज्ञो यदभिकांक्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते।।

– अ० कां०सर्ग १८ श्लोक २८।३०

"हे माता ! आप ऐसे संकोच और सन्देह युक्त शब्द क्यों कहती हैं ? हम राजा के वचन से आग में भी कूदने को तैयार हैं। हम हलाहल विष पी सकते हैं और जीवन समाप्त कर देने वाले समुद्र में डूबने को तैयार हैं ? चाहे जो हो, राजा जो हम से आज्ञा करें, हम उसे जरूर करेंगे और हम वचन देते हैं कि हम अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेंगे। माता ! स्मरण रखो कि राम दो वचन नहीं बोला करता। अर्थात् जो एक बार कह देता है उसे पूरा करके ही छोड़ता है।"

इस प्रकार राम से प्रतिज्ञा लेकर कैकेयी बोली कि –हे राम ! यदि तू सत्य प्रतिज्ञा वाला है और पिता के वचन को पालना चाहता है, तो तू चौदह वर्ष तक तपस्वियों के वेश में वन में बस और इस अभिषेक –सामग्री से भरत का राज्यभिषेक हो।

इस अप्रिय वचन को सुनकर राम ने किसी प्रकार का दुःख अनुभव नहीं किया, किन्तु अपने आपको बड़भागी समझ कर कहने लगे –

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तु महं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्।।

"हे माता ! ऐसा ही होगा और मैं आज ही चीर बल्कल धारण कर वन को जाता हूँ, आप प्रसन्न हों। परन्तु माता यदि नाराज न हों तो कहूं कि हितकारी गुरु और फिर राजा जो कहें मैं वही करने

को तैयार हूँ। पर हे देवी ! एक दुःख मेरे हृदय में है कि राजा ने अपने मुख से भरत का राजतिलक करने के लिये मुझसे क्यों नहीं कहा।''

अहं हि सीतां राज्यं प्राणानिष्टान्धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः।।
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः।
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन्।।
नह्यतो धर्माचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।।

— अ० कां० स० १६, श्लोक २२

''माता मैं स्वयं अपना सब धन, राज्य और प्राण तक प्रसन्नता से भरत को देने को तैयार हूँ। राजा की प्रेरणा और आपका हित हो, इससे बढ़कर मेरे लिए कोई बड़ा धर्म नहीं है।''

सुन जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितुमातु वचन अनुरागी।।
तनय मातु-पितु पोषण हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

इसलिए हे माता ! शीघ्र दूत को भेजकर भरत को बुलाओ। मैं अभी दण्डकारण्य को चला जाता हूँ।

यह कहकर जब राम राजा और कैकेयी की प्रदक्षिणा कर वन जाने के दृढ़ निश्चय से निकले तब चारो ओर से आर्त स्वर में हाहाकार होने लगा और राजभवन श्मशान गृह की भाँति भयानक हो गया। इस भारी परिवर्तन से राम की कान्ति पर किसी प्रकार का भेद न पड़ा जिसे देखकर लोग धन्य-धन्य कहने लगे।

अब श्री रामचन्द्र जी अपनी माता को प्रणाम करने और आज्ञा लेने के लिए उसके भवन में गये। माता कौशल्या उस समय संध्या व परमात्मा का ध्यान कर अग्निहोत्र कर रही थीं –

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्नि जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत्कृत मंगला।।

— अ० कां० स० २० श्लोक० १५

राम ने जाकर माता को प्रणाम किया। माता ने राम को उचित राजकीय रेशमी आसन दिया। तब राम बोले–''माता ! अब मैं रेशमी आसन पर न बैठूँगा, अब मुझे कुशासन ही रेशमी आसन है। पिताजी ने मुझे चौदह वर्ष वन में बसने की आज्ञा दी है। हे माता ! अब मेरे लिए यहाँ का भोजन भी भोज्य नहीं है। अब मैं वन में जाकर ऋषि मुनियों के आहार और कन्द मूल का भक्षण करूँगा।'' यह सुन कर माता को बहुत क्लेश हुआ वह अपने आकाँक्षित सुखों को नष्ट होते देखकर बहुत विलाप करने लगी।

लक्ष्मण के वचन

उधर जब यह समाचार लक्ष्मण ने सुना तब उसे राजा के विचारों पर बड़ा क्रोध आया और कौशल्या से आकर कहने लगा–माता ! कैकेयी के कहने से श्रीराम जी का वन जाना हमें उचित नहीं प्रतीत होता। जो कहो कि यह राजा की आज्ञा है, तो ऐसे राजा का भी क्या ठिकाना ? उनकी बुद्धि बुढ़ापे में उल्टी हो गई है। जो उनकी बुद्धि स्थिर होती तो क्यों निर्दोष, जितेन्द्रिय, देव समान, धर्मात्मा और विद्वान राम को स्त्री के कहने से वनवास की आज्ञा देते। यदि राम में कोई दोष होता तब तो यह ठीक था। पर सामने तो क्या पीठ पीछे कोई बैरी से बैरी भी रामचन्द्र जी में कुछ दोष नहीं लगा सकता। भला कोई धर्मात्मा पिता ऐसे सरल और निष्पाप पुत्र को वनजाने की आज्ञा दे सकता है ? इसलिए यही सत्य है कि वृद्ध राजा फिर बचपन की बुद्धि धारण कर रहे हैं।

फिर राम को सम्बोधित करके कहने लगे–

हे भ्राता रामचन्द्र ! जब तक किसी को मालूम न हो आप मेरे साथ राज को अपने वश में कर लीजिए। जो यह सन्देह हो कि अब राज कैसे मिलेगा तो इसके लिए मैं आपकी रक्षार्थ धनुष लिये मौजूद हूँ। फिर आपको रोकने की किसको सामर्थ्य है। एक दो मनुष्यों की तो गिनती ही क्या, यदि सारी अयोध्या भी झगड़ा करेगी तो मैं आज सबको मारकर इसे मनुष्य हीन कर दूँगा।

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरै स्तीक्ष्णैर्यदिस्थास्यति विप्रिये।।

– स० २१।१०

यदि भरत के मामा, नाना भी बैर करेंगे तो मैं आज उनको भी जीता न छोडूंगा, क्योंकि धर्म शास्त्र में लिखा है कि यदि गुरु भी कार्य अकार्य की समझ न रखकर उल्टे मार्ग में जाता हो तो उसको भी दण्ड देना न्याय है।

गुरोरप्यवलुप्तस्य कार्या कार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्।।

– सर्ग० २१।१३

इसलिए आप शान्ति मार्ग को छोड़िये। राज–काज में शान्ति का क्या काम ? यह शान्ति तो तपस्वी और ब्राह्मणों के लिए है। आप तो क्षत्रिय हैं। राजा ने किस बल वीर्य पर राज्य कैकेयी को देना चाहा है ? पहले तो आप पटरानी के पुत्र हैं और दूसरे सब में बड़े हैं। राज तो धर्म से आपका ही है। एक की चीज दूसरे को देने वाला कौन है? किसी को सामर्थ्य नहीं कि कोई हमारे सामने राज भरत को दे दे।

पुनः माता कौशल्या से वे कहने लगे –

"हे माता हम सत्य कहते हैं कि हमें भाई श्री रामचन्द्र जी प्राण से भी प्रिय हैं। हम तुमसे सौगन्ध खाकर कहते हैं कि जो श्री रामचन्द्र जी वन में जायेंगे तो हम भी उनके साथ ही जायेंगे। फिर हमारा यहाँ क्या काम है ? देखो, हम अभी तुम्हारा सब दुःख दूर करेंगे और राजतिलक श्री रामचन्द्र को ही दिला कर राजा को अपनी करनी का फल चखायेंगे।"

लक्ष्मण के वीर रस से भरे शब्दों को सुनकर राम कहने लगे कि भाई ! तुम्हारा विचार ठीक नहीं है। और तुम में बलपौरुष भी बहुत है। जो तुम कहते हो वह कर भी सकते हो। परन्तु तुम धर्म–अधर्म को जानते हुए ऐसा कहते हो, यह ठीक नहीं है। हमें उस आर्ष–पथ को नहीं छोड़ना चाहिए, जिसमें पिता की आज्ञा रूप धर्म हो। हम में ऐसी शक्ति नहीं जो पिता की आज्ञा की अवज्ञा कर सकें। तुम ऐसे विचार मत करो। फिर माता से कहने लगे कि माता ! आप मुझे शीघ्र वन जाने की आज्ञा दें। इस पर माता तो चुप रही, परन्तु वीर लक्ष्मण फिर क्षत्रिय वेग से बोले –

'भाई ! आपने जो पिता की आज्ञा को भंग करना अधर्म समझा है, सो ठीक नहीं है। क्या आपने अभी तक नहीं जाना कि आपको स्वार्थवश बिना अपराध वनवास दिया जा रहा है, क्या यह कोई धर्म की बात है ? हम ऐसी अन्याय की आज्ञा नहीं मानते। क्षमा कीजिये आप जिस पिता के वचनों से राज्य करने को उद्यत थे और अब वन जाने को तैयार हैं और इसी को धर्म मानते हैं। ऐसे धर्म को हम तो दूर से ही प्रणाम कहते हैं। यह धर्म नहीं, धोखा है। आप इसे भी धर्म मानते हैं। आपके अतिरिक्त इसे और कोई धर्म नहीं कह सकता।

जो आप कहें कि यह दैव (प्रारब्ध) की रचना है और टल नहीं सकती, तो हमको ऐसे दैव पर भी विश्वास नहीं है क्योंकि कायर पुरुष ही भाग्य पर भरोसा करते हैं, शूरवीर नहीं शूरवीर के पुरुषार्थ के सामने प्रारब्ध अस्त हो जाता है। जो आप कहें कि 'प्रारब्ध का लिखा कोई नहीं मिटा सकता, तो आज हम आपको दैव और पौरुष का बल दिखावेंगे। तब आपको मालूम होगा कि भाग्य बलवान् है या पुरुषार्थ ? जैसे मस्त हाथी अंकुश के लगाने से झुक जाता है, वैसे ही आज हम अपने बल पुरुषार्थ से दैव को झुका देंगे। हम दशरथ और कैकेयी की सब आशायें मिटा देंगे। भाई ! बुढ़ापे में राजा वन को जाया करते हैं न कि युवा अवस्था में। अभी तो आपको बहुत दिन राज्य करना है। बुढ़ापे में जब आप वन जायेंगे तब पीछे से आपका पुत्र राज्य करेगा न कि भरत या भरत का पुत्र। आप बेखटके राज्य कीजिये। हम आपकी रक्षा करेंगे। जो हम ऐसा न करें तो हम वीर नहीं। देखो यह भुजायें गहना पहनने को नहीं हैं, युद्ध करने को हैं। यह धनुष शृंगार को नहीं है शत्रुओं के फटकारने को ही है। यह तीर रखने को नहीं है किन्तु बैरियों के कलेजे छेदने को है। यह तलवार दिखाने के लिए नहीं वरन् दुष्टों के सिर काटने को है। क्या आप कह सकते हैं कि कोई हमारा शत्रु होकर जीता रह सकता है ? जब बैरियों की सेना लड़ाई में, हमारी तलवार से कट–कटकर गिरेगी तब युद्ध भूमि में लोहू की नदी बह निकलेगी और हमारे खड्ग से बैरियों के सिर से लोहू टपकते हुए पृथ्वी पर गिरते दिखाई देंगे।

भगवन् ! आप यह न समझें कि हम केवल कह ही रहे हैं, कर नहीं सकते। नहीं–नहीं हम अकेले ही सब बैरियों की सेना को मार सकते हैं।

अधिक कहने से कुछ नहीं। आपको आज हमारे पुरुषार्थ की परीक्षा शत्रुओं की आशा मिटाने और आपको राजा बनाने में अच्छी तरह मालूम हो जायेगी।'

लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर श्री राम बोले कि भाई तुम धर्म–अधर्म को जानकर भी ऐसी बात कहते हो, सो ठीक नहीं है। धर्म शास्त्र की आज्ञा है कि'माता–पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म है।

जब लक्ष्मण को यह पूरा भरोसा हो गया कि श्री रामचन्द्र वन को अवश्य जायेंगे और किसी तरह रुक नहीं सकते तब वह नीचा मुख कर नम्रता से बोले–महाराज ! जो आप वन जाते हैं, तो मेरे लिये क्या आज्ञा है ? तब श्री राम बोले–

दोहा - मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धर करिय सुभाय।
लहे लाभ तिन जन्म के, न तरु जन्म जग जाय।।

चौ० अस जिय जानि सुनहुं सिख भाई। करहु मातुपितु पद सेवकाई।।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मन दुःख ममताँही।।
मैं वन जाऊँ तुमहिं लै साथा। होइहि सबविधि अवध अनाथा।।
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।।
रहहु तात ! अस नीति विचारी। सुनत लखन भये व्याकुल भारी।।

अर्थात् लक्ष्मण तुम घर में रहकर माता–पिता की सेवा करो और अयोध्या की रक्षा करो। यह सुन लक्ष्मण ने प्रेम से विवश श्रीराम के चरण पकड़ कर कहा–

'नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाय।

तब राम ने उसका प्रेम देखकर कहा कि जो तुमको अवश्य ही मेरे साथ चलना है, तब चलो! शीघ्र माता सुमित्रा से आज्ञा ले आओ।

इतनी सुनते ही आनन्द में मग्न होकर लक्ष्मण जी अपनी माता से आज्ञा माँगने के लिए चल दिये।

कौशल्या से विदाई

इधर श्री रामचन्द्रजी माता कौशल्या से आज्ञा माँगने लगे जिस पर माता वन के दुःखों को स्मरण कर विलाप करने लगी कि 'यह मेरा पुत्र कैसे घास पर सोयेगा, कैसे वन के फल खाकर निर्वाह करेगा, और किसको विश्वास होगा कि यह सूर्य वंश का तिलक निर्वासित होकर जा रहा है। सचमुच कर्म की गति अटल है। उस पर किसी का जोर नहीं। राम ! यदि तू वन को जायेगा तो तेरे वियोग

की अग्नि मुझे जला देगी। हे बेटा ! जहाँ तू जायेगा मैं भी तेरे पीछे–पीछे जाऊँगी किसी गाय का बछड़ा यदि कहीं जाता है तो वह गाय भी उसके पीछे–पीछे जाती है–

कथंहि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि।।

– सर्ग २४।६

यह सुन राम ने कहा कि माता ! कैकेयी ने राजा को धोखा दिया है, लेकिन तुम उन्हें त्यागकर वन को चली गई तो वह कहेंगे कि कौशल्या भी मुझे संकट में छोड़कर चली गई, और इसी शोक में राजा प्राण दे देंगे। इसलिए माता स्त्री को भर्ता का त्यागना भारी हत्या है, तुम ऐसा मत करो।

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः।
शुश्रूषां क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः।।
व्रतोपवास निरता या नारी परमोत्तमा।
भर्तारं नानुवर्तेत सा तु पापगतिर्भवेत्।।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।

- सर्ग २४।१३

जब तक मेरे पिता जीते हैं तब तक तुम उनकी सेवा करो। यह तुम्हारा धर्म है। राजा की वृद्धावस्था में मन से सेवा करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। माता स्मरण रखो कि जो स्त्रियाँ पति की पूजा को छोड़ अन्य देवों की पूजा करती हैं, उपवासादि व्रत करती हैं, वे पाप–गति को प्राप्त होती हैं और जो गृहस्थ में रहती हुई पति सेवा करती हैं वे सदा स्वर्ग को पाती हैं। यह वेद तथा लोक का सिद्धान्त है, इसलिए माता ! मेरा और तुम्हारा सबका धर्म है कि राजा की सेवा व उनकी आज्ञा का पालन करें। जो तुम मेरे लिए कल्याण चाहती हो तो तुम यज्ञ–हवन, ब्राह्मण सत्कार व ब्रह्म उपासना कर अन्त में मेरे लिए मंगल कामना करना। मैं १४ वर्ष के बाद शीघ्र तुम्हारी सेवा में आता हूँ। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

राम के इन धर्मानुसार वचनों को सुनकर माता कौशल्या ने राम को वन जाने की आज्ञा दे दी और आप यज्ञ–हवन, स्वस्तिवाचन, शान्ति –पाठ कर वन के सब प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर, राम के लिए आरोग्य कारक वचन कहने लगी। राम माता की चरण वन्दना कर, वन की तैयारी के निमित्त शस्त्र–अस्त्रों के लेने के लिए सीता के महल को चल पड़े।

राम का सीता को समझाना

माता के भवन से चलकर राम सीता के महल में गये, यह सब समाचार यशस्विनी सीता ने अभी तक सुना नहीं था। राजधर्म को जानने वाली सीता अपने सन्ध्योपासनादि दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो

अभिषिक्त राम की प्रतीक्षा कर रही थी–

देवकार्य स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना।
अभिज्ञा राजधर्माणाम् राजपुत्री प्रतीक्षति।।

अतः श्री राम को राजकीय चिन्हों से शून्य देख सीता बड़ी व्याकुल और अचम्भित होकर काँपती हुई पूछने लगी कि भगवन्! आप आज आनन्द के दिन उदास क्यों हैं ? आज आपके राजतिलक का दिन है फिर भी आज आपके साथ ब्राह्मण क्यों नहीं हैं ? आपके छत्र चँवर आदि धारण करने वाले दास कहाँ है ? ऐसा उदास मुख तो आपका कभी नहीं हुआ। सच कहिये क्या कारण है?'

राम बोले– हे महाकुल में जन्म लेने वाली धर्मज्ञे ! बहुत दिन हुए मेरे पिता ने कैकेयी को दो वर दिये थे। उनको आज कैकेयी ने प्राप्त कर एक से मुझे १४ वर्ष का वनवास तथा दूसरे से भरत को राजतिलक माँगा है। सो हे सीते ! चिन्ता की बात नहीं है। राज्य राजा का है वह जिसको चाहे उसे दे। मै वन को जाता हूँ, तुम शांतचित आर्यदेवियो की तरह यहाँ रहो और वृद्ध माता–पिता की सेवा करो, इससे तुम्हें सब प्रेम करेंगे क्योंकि अनुकूलता ही सबको प्रिय है। यह सुनकर सीता देवी ने स्वयं वन को साथ जाने को कहा और इसी में सुख तथा स्वधर्म की रक्षा बताई। तब श्री राम जी फिर बोले–देवी! यदि तू मेरा और अपना हित चाहती है, तो मेरा यह कहना मान। शास्त्रों में इससे बड़ा कोई धर्म नहीं कहा –

आपनु मोर नीक जो चहऊ। वचन हमार मान घर रहऊ।।
आयसु मोर सास सेवकाई। सबविधि भामिनि ! भवन भलाई।।
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सासु श्वसुर पद-पूजा।।

मैं पिता की आज्ञा पालन कर शीघ्र आता हूँ, क्योंकि दिन व्यतीत होते कोई देर नहीं लगती। प्रियवादिनी सीता से जब राम ने ऐसा कहा तो वह स्नेह और क्रोध के साथ राम से कहने लगीं–

आर्य पुत्र ! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुज्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते।।
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि।।
न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।।
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्‌यन्ती कुशकण्टकान्।।
अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि संप्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया।।

अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम्।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम्।।
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम्।।

– सर्ग २७।४, ५, ६, ७, १०।१२

'हे आर्यपुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र तथा पुत्रवधू ये सब अपने–अपने पुण्यों को भोगते हैं। किन्तु केवल नारी ही अपने पति के भाग्य को भोगती है। इसलिए मुझे भी वन में चलने की आज्ञा दीजिये। इस लोक में और परलोक में नारी की गति केवल एक पति ही है। पिता, पुत्र, माता, सखी में से कोई भी नहीं है। हे राघव ! यदि आप आज ही दुर्गम वन में जायेंगे तो मैं कुशा और कांटों को कुचलती हुई आपके आगे–आगे चलूँगी। माता–पिता ने मुझे पति की सेवा करना ही सिखाया है, इसलिए आप मुझे इस समय कुछ और मत कहिए। मैं भी मनुष्यों से रहित और मृगों तथा सिंह व्याघ्रादि से सेवित दुर्गम वन में चलूँगी। अपने पिता के महल के समान ही वन में भी सुखपूर्वक रहूँगी। मैं वहाँ तीनों लोकों के सुख का चिन्तन छोड़कर केवल पतिव्रत का ही चिन्तन करूँगी।'

धर्मात्मा राम ने यह सब सुनकर भी वन के कष्टों का विचार करके रोती हुई सीता को समझाते हुए कहा–

जो हठ करहु प्रेम वश वामा। तो तुम दुख पावहु परिणामा।।
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि बयारी।।
कुश कटक मग कंकर नाना। चलव पियादे बिनु पद त्राना।।
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे।।
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि निहारे।।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुन धीरज भागा।।

भूमि शयन बल्कल वसन, असन कन्द फल मूल।
तेकि सदा दिनकर मिलहिं, समय समय अनुकूल।।

नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष विधि कोटिक धरहीं।।
लागहिं अति पहाड़कर पानी। विपिन विपति नहिं जांय बखानी।।
व्याल कराल बिहग घनघोरा। निश्चर निकर नारि नर चोरा।।
डरपहिं धीर कहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।।
हंसगमनि तुम नहिं वन जोगू। सुनि अपयश मोहिं देहहिं लोगू।।

हे जानकी ! वन में बहुत अधिक दुःख हैं। तुम वन के योग्य नहीं हो और यदि मैं तुम्हें ले जाऊँगा तो लोग मेरी अपकीर्ति करेंगे, इसलिए तुम घर पर ही रहो।

इसके साथ ही श्रीराम ने वन में न जाकर घर में रहते हुए सुख–दुख में सास–श्वसुर तथा अन्य सम्बन्धियों की सेवा आदि का जो उपदेश किया था उसका उत्तर सीता ने सार रूप में इन शब्दों में दिया–'स्वामिन् ! आपके बिना मेरे लिए इन्द्र भवन भी नरक के समान है, सास–श्वसुर आदि सम्बन्धी भी स्त्री को पति के कारण ही पूज्य हैं। पति से हीन होकर इनसे वैसा सम्बन्ध नहीं रहता। जो आप भोगों का लालच देते हैं सो यह तो मेरे लिए रोगों के बराबर है। पतिहीन स्त्री के लिए आभूषण दूसरा रोग है। जो आपने वन के बड़े–बड़े दुःख कहे हैं, सो हैं तो वे सचमुच दुःखदायक परन्तु हे रघुनाथ ! आपके विरह के एक अंश के बराबर भी वे नहीं हैं और हे नाथ ! जो आप कहते हैं कि वहाँ स्त्रियों को हरकर ले जाने वाले राक्षस होते हैं सो हे आर्यवीर! भला आपके होते हुए यह विश्वासयोग्य बात हो सकती है ? क्या कभी देखा या सुना है कि शेर की स्त्री को उसके होते हुए कोई गीदड़ ले जाय?

महाराज ! आपने जो मुझे कोमल स्वभाव की सुकुमारी कहा है तो क्या आप ही वन के योग्य हैं ? अर्थात् जैसे मैं राजकुमारी हूँ वैसे ही आप भी तो महाराजकुमार हैं। प्राणनाथ ! क्या यह उचित है कि आप वन में तप तपें और मैं अनार्य स्त्रियों की भाँति भोग भोगूँ ? इसलिए हे कृपानाथ ! यही उचित है कि आप किसी प्रकार का संकोच न करें और मुझे अपने साथ ले चलें। मैं आपको वन में कष्ट न दूंगी किन्तु सब प्रकार से आपकी सेवा कर अपना जन्म सफल करूँगी। आपके साथ वन के कन्द, मूल, भोज–पत्र तथा कुश–कंटक आदि सब मेरे लिए सुखदायी होंगे। दीनानाथ, दयानिधे ! आप सब पर दया करते हैं, मुझ पर भी यह दया करें कि मुझे पतिवियोग के दुःख से छुड़ाकर अपने साथ वन को ले चलें। सीता के इन उत्साहपूर्ण तथा प्रेमभरे शब्दों को सुनकर श्री रामचन्द्र ने फिर सीता को समझा बुझा कर और वन के सूक्ष्म से सूक्ष्म दुःखों को बतला कर अयोध्या में रहकर धर्माचरण करने की सम्मति देते हुए कहा–

सीते ! महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा।
इहाचरस्वधर्मं तव यथा मे मनसः सुखम्।।

– सर्ग २८।३

अर्थात् सीते ! तू अति उत्तम कुल में उत्पन्न हुई है और सदा धर्म में तत्पर रही है, इसलिए यहाँ रहकर ही सब प्रकार के धर्म का आचरण कर, जिससे मेरा चित्त प्रसन्न हो।

श्री सीता जी का धार्मिक ज्ञान

यह सुनकर सीता ने धर्म का आश्रय लेकर ही राम से कहा–

त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम्।।

'प्रभो ! मुझे मेरे माता–पिता ब्राह्मण और सम्बन्धियों ने आपके साथ जीवन व्यतीत करने का उपदेश किया है और वेद शास्त्र भी यही आज्ञा देते हैं। इसलिए आपका भी यही कर्तव्य है कि मुझे साथ

ही ले चलें क्योंकि पतिहीन पतिव्रताओं का जीवन संकटमय हो जाता है, और मेरा जीवन तो आप के बिना अवश्य नष्ट हो जायेगा। आप जो बार–बार अयोध्या के सुख और भोग बतलाते हैं सो यह तो क्या मेरे लिए आपके बिना स्वर्ग भी नरक के समान है और आपके साथ नरक भी स्वर्ग ही है–

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना।
इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह।।

– अ० कां० सर्ग ३० ।१८

अतः आप भी अपने वेदोक्त धर्म को स्मरण कर मुझे अपने साथ रखने का कर्तव्य पालन करें।

श्री राम की उदारता

यह सुन राम ने दुराग्रही पुरुषों की भाँति सीता को अपमानित नहीं किया किन्तु आर्य भर्ताओं के समान न केवल उसको साथ ले जाने के लिए अनुमति दी अपितु स्पष्ट शब्दों में सदा के लिए स्त्री जाति के गौरव को ऊँचा करने के अर्थ कहा–'देवि ! यदि तू वन की अपेक्षा यहाँ अधिक दुःख मानती है तो मैं भी तेरे दुःख से अपना सुख नहीं चाहता और नहीं मुझे किसी से भय है। जो तू मेरे बिना स्वर्ग नहीं चाहती तो मैं भी तेरे बिना स्वर्ग की इच्छा नहीं रखता–

न देवि ! तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
नहि मेस्तिभयंकिंचित्स्वयम्भोरिव सर्वतः।।३० ।२७
अनुगच्छस्व मां भीरु ! सहधर्मचरीभव।
सर्वथा सदृश सीते! मम स्वस्य कुलस्य च।।
आरभस्व शुभश्रोणि ! वनवासक्षमाः क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते ! स्वर्गोपि मम रोचते।।३० ।४२
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम्।
देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम्।।३० ।४३

अर्थात् हे धर्मभीरु सीते ! यदि तेरा यही विश्वास है तो शीघ्र वन चलने की तैयारी कर और मेरी सहधर्मिणी बन। सीते ! वास्तव में यह विचार तेरे और मेरे कुल के उचित ही है।

सीते ! शीघ्र वन की तैयारी कर और ब्राह्मणों को रत्न तथा भिक्षुओं को भोजन आदि का दान करके आशीर्वाद ग्रहण कर।

सीता जी की वन की तैयारी

श्रीराम के इस आदेश को सुनकर सीता कृतकृत्य हो गई और उसने तत्क्षण समग्र धन–धान्य बहुमूल्य वस्त्राभूषण दासादिकों को दे दिये तथा स्वयं चिरकाल तक पति के साथ नाना विधि के कष्ट

भोगने के लिए इस उत्साह के साथ तैयार हो गई जैसा कि राज्याभिषेक के समय भी होने की आशा न थी।

सीता की तैयारी को देखकर लक्ष्मण भी सम्पूर्ण राजकीय रत्न आभूषणों को त्याग कर शस्त्र–अस्त्र तथा कवच आदि को धारण कर सीता को साथ ले अपने पिता दशरथ के दर्शन के लिये कोप भवन की ओर चले।

पिता के अन्तिम दर्शन

राजकुमारों तथा युवराज्ञी की यह दशा देखकर सारे अयोध्या में शोक व्याप्त हो गया। घर–२ में इस भयानक और अनुचित घटना की चर्चा होने लगी, प्रत्येक नगर निवासी शोक भरी दृष्टि से राजकुमारों तथा युवराज्ञी को देखता था। मार्ग में इतनी भीड़ हो गई थी कि किसी को निकलने को स्थान भी नहीं मिलता था। रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण कोप भवन में पहुँचे जहाँ कि महाराज दशरथ शोक में मूर्छित पड़े थे।

कुछ काल के अनन्तर जब राजा की मूर्छा टूटी तब रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण को मुनि वेश धारण किये हुए देख कर प्रेम से दोनों हाथ फैलाकर उन्हें हृदय से लगाने का विचार किया पर शोक ने उन्हें दबा लिया, जिससे वह फिर बेसुध होकर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े। जब दोनों भाइयों ने राजा की यह दशा देखी तो धैर्य रखकर मूर्छित पिता के पास पहुँचे और सब रानियाँ (कैकेयी के अतिरिक्त) हा राम ! हा राम !! कह–कहकर रोने लगीं तथा बेसुध हो धरती पर हाहाकार करती हुई गिर पड़ीं।

उस समय कोई भी सावधान न था जो राजा को उठाता, विवश इन्हीं तीनों ने मिलकर राजा को पलंग पर डाला और स्वयं सब प्रकार की सेवा तथा चिकित्सा करने लगे। जब कुछ देर में राजा को सुध आई तब श्रीराम राजा को प्रणाम करके बोले कि– "पिताजी ! आप सबके स्वामी हैं। आपकी आज्ञा से मैं वन जाने को तैयार हूँ। मेरे साथ सीता तथा लक्ष्मण भी वन को जाते हैं। मैंने इनको बहुत समझाया पर ये मानते ही नहीं। विवश होकर मैं इनको भी साथ ही लिये जाता हूँ। अतः हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि इनको भी मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिये।" यह सुनकर प्रथम तो राजा ने बहुत सन्ताप किया तथा कैकेयी की निन्दा की। इसके पश्चात बड़ी कठिनता से रोते हुए वनवास की अनुमति दे दी।

राम वन गमन

इस प्रकार श्रीराम सीता और लक्ष्मण अपने पिता और माताओं से आज्ञा तथा आशीर्वाद लेकर वन चलने को तैयार हुए। इतने में सुमन्त सारथि रथ लाकर बोला कि राजा की आज्ञा से यह रथ तैयार खड़ा है। आप उसमें आरूढ़ हो जाइए। जहाँ आप आज्ञा करें, मैं वहीं ले चलूँगा।

अब पहले जानकी रथ पर चढ़ी और उसके पीछे राम–लक्ष्मण आरूढ़ हो गये। जब सुमन्त सारथि ने घोड़ों को चलाया उस समय सम्पूर्ण अयोध्या में कोलाहल मच रहा था। जिधर देखिये उधर ही राम के वनवास की चर्चा हो रही थी और सर्वजन शोक में मग्न हो रहे थे। कोई कैकेयी के काम की बुराई करता था तो कोई दशरथ की परन्तु श्री रामचन्द्र की सब लोग प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि भाई! ऐसा धर्मात्मा पितृभक्त पुत्र भी हमने किसी के नहीं देखे। देखो! १४ वर्ष के लिए वनवास को प्रसन्नतापूर्वक जा रहे हैं, तनिक भी इनका मन मलीन नहीं है। धन्य है इनको और इनके धन्य भाग्य को। तदनन्तर सम्पूर्ण अयोध्या निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष क्या बालक और क्या वृद्ध सभी श्री रामचन्द्र के वियोग से दुःखी होकर विलाप करते हुए हा राम! कहते-कहते रथ के पीछे-२ चल पड़े। जब रथ वेग के कारण बहुत दूर निकल गया और उड़ती हुई धूलि भी दीखनी बन्द हो गई तब सब विवश होकर अयोध्या पुरी को लौट आये।

निषादराज गुह का आतिथ्य

उधर श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण का रथ चलता-२ तमसा नदी के पार पहुँच गया और आगे अच्छा मार्ग मिलने के कारण शीघ्र ही बहुत दूर निकल गया। उस दिन चलते-२ गंगा के तीर पहुँचकर रात्रि को वहीं एक इंगुदी वृक्ष की छाया में विश्राम किया। श्रीराम अभी रथ से उतरे ही थे कि वहाँ का राजा गुह (भील) जो महाराजा दशरथ के अधीन और उनका मित्र था इनकी अतिथि सेवा के लिए आया और बोला–

ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियम्।
ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम्।।
अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह।
स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही।।५१।३८

हे राम! तुम्हारे लिए यह देश भी अयोध्या के समान ही है इसलिए जो आज्ञा हो वही किया जाय। ऐसे प्रिय अतिथि किसके आते हैं? इतना कह तरह-२ के भोजन तथा जल भरा हाथ जोड़कर बोला– हे महाबाहु! आपका स्वागत है यह सारी पृथ्वी आपकी ही है।

उसने इनसे अपनी राजधानी में चलने की प्रार्थना की परन्तु ये तो वनवास स्वीकार कर चुके थे। अब इन्हें नगर में जाने और अच्छे पलंगों पर सोने तथा भाँति-२ के भोजनों से क्या प्रयोजन था? उन्होंने राजा गुह को आलिंगन करते हुए कहा कि हम आपका प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुए हैं परन्तु अब तो हमें पिताजी की आज्ञा का पालन करना है। इसलिए हम कहीं जंगल में इन वृक्षों के नीचे रात बितावेंगे और यहीं जो कुछ फल मूल मिलेंगे उनसे निर्वाह करेंगे।

इसके पश्चात श्री रामचन्द्र ने लक्ष्मण के लाये हुए जल से हाथ-पाँव धोकर सन्ध्या की और कुछ जल पान करके वहीं पत्ते बिछा कर लेट गये। फिर सीता और लक्ष्मण जी ने हाथ-मुँह धोये और

सन्ध्या की। कुछ रात्रि जाने पर श्रीराम तथा सीताजी तो सो गयीं पर लक्ष्मण थोडी दूरी पर जाकर बाण चढाये, वीरासन लगाकर रात भर जागते रहे, उस समय राजा गुह भी लक्ष्मण के पास बैठ गये। अपने भाई के लिए इस प्रकार सरलता से जागते देखकर दुःखी हो गुह लक्ष्मण से कहने लगे कि राजकुमार श्रीरामचन्द्र तो पृथ्वी पर सो गये पर आपके और सुमन्त के लिए पलंग बिछे हैं। आप इन पर आराम कीजिए। रक्षा के लिये समग्र रात्रि मैं स्वय जागता रहूँगा।

तब लक्ष्मण जी ने कहा– 'राजन् ! तुमको ऐसा ही कहना उचित है पर विचारिये तो सही कि भला जब मेरे बड़े भ्राता जो पिता के समान हैं वे तो धरती पर सोवें ओर मैं पलग पर सोऊँ ? भला ऐसा अधर्म कभी मैं कर सकता हूँ ? कभी नहीं। आपने जो इन घोड़ों के लिए दाने घास का प्रबन्ध कर दिया है, बस यही आपका सर्वस्व सत्कार है।'

प्रभात होते ही महायशस्वी राम लक्ष्मण से बोले– "अब सूर्योदय का काल है। देखो, यह कोकिल पक्षी कूक रहा है। वन में मोरों का शब्द भी सुनाई दे रहा है, अब हम वेगवती गंगा नदी को पार करेंगे।"

तत्पश्चात् विनम्र सुमन्त हाथ जोडकर बोला कि मुझे क्या आज्ञा है ? इस पर श्रीरामचन्द्र ने सुमन्त को आज्ञा दी कि तुम रथ अयोध्या को लौटा ले जाओ। पिताजी ने यहाँ तक आने के लिए तुमको आज्ञा दी थी। अब हम यहाँ से पैदल ही जायेंगे। फिर राम बडे ही हृदयस्पर्शी शब्दों में बोले–

"हे सुमन्त! इक्ष्वाकु कुल में मुझे तुम्हारे समान कोई सुहृद नहीं दीखता, तुम ऐसा काम करना जिससे राजा दशरथ मेरा शोक न करें। हमारी ओर से पिताजी और कौशल्यादि सभी माताओं को प्रणाम करना और कहना कि हम वन में भी अयोध्या की भाँति ही कुशलपूर्वक हैं। भरत को अभिषिक्त करके यह कहना कि वह पिताजी तथा सभी माताओं की बिना भेद–भाव के सेवा करे।"

सब कुछ समझाकर राम ने जब सुमन्त को लौटने के लिए कहा तब वह स्नेहार्द्र होकर बोला–

कथं हि त्वद्विहीनोहं प्रतियास्यामि तां पुरीम्।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकाकुलामिव।।
सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनः।
विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी।।

– सर्ग ५२।३६।४०

'हे राम ! आपको छोड़कर मैं उस पुरी में अब कैसे जाऊँ, जो आपके वियोग में ऐसी हो रही है जैसे–माता पुत्र के शोक में व्याकुल होती है ? पहिले उस नगरी में मेरा रथ आपके सहित देखा था और अब आपके बिना देखकर सम्पूर्ण नगरी की छाती फटेगी। इसलिए तुम्हारे बिना मैं अयोध्या नहीं जा सकता, मुझे भी वन में ही रहने की आज्ञा दीजिए।'

सुमन्त के बार–२ कहने पर राम कहने लगे– 'स्वामिभक्त सुमन्त ! मैं तुम्हारी भक्ति जानता हूँ। पर विचार करो कि तुम्हारे अयोध्या पहुँचने पर माता कैकेयी को भी पूरा निश्चय हो जायेगा कि राम ठीक वन को चले गये। यह सुनकर सुमन्त की आँखों में आँसू भर आये और वाणी गदगद हो गई।

सुमन्त ने श्री रामचन्द्र जी से उनके साथ स्वयं भी वन को चलने की बहुत प्रार्थना की पर अन्ततः श्रीरामचन्द्र जी के समझाने पर उसे अयोध्या को लौटना पड़ा, अब सुमन्त तो रथ में घोड़े जोतकर अयोध्या की ओर चल दिया और श्रीराम ने प्रथम तो गुह से बरगद का दूध मँगवा कर लक्ष्मण सहित जटायें धारण कीं। फिर गुह का आभार मानते हुए उससे विदा होकर सीता और लक्ष्मण के साथ नाव पर बैठकर गंगा पार हो गये।

वनवासी राजकुमार

गंगा के इस पार तक तो श्रीराम के साथ थोडा बहुत राजकीय साधन था पर गंगा पार होने पर आप पूरे वनवासी हो गये। नाव से उतरकर घने जगल में आगे-२ धनुष बाण चढ़ाये लक्ष्मण बीच में जनकदुलारी तथा पीछे-पीछे श्री रामचन्द्र जी चले।

जो राजकुमार कभी बिना सवारी कहीं नहीं जाते थे, आज वे अज्ञात मार्ग मे पैदल जा रहे हैं। जो राजकुमारी बडे-२ राज्याधिपतियों की दृष्टि में नहीं आया करती थी आज वह भी वन मे जगली मनुष्यों की भाँति भटक रही है, ईश्वर की माया जानी नहीं जाती, पल में कुछ का कुछ हो जाता है।

जिस समय राम, लक्ष्मण और सीता मुनियों के वेष में वन में पैदल जा रहे थे उस समय उनकी जो शोभा थी वह लिखी नहीं जा सकती। चलते-२ सायंकाल हो गया। सब ने वहीं ठहरकर सध्योपासना की और कुछ फल मूल खाकर सो रहे। सोने से पूर्व राम लक्ष्मण से बोले-'अपने देश से बाहर यह पहली रात्रि है, आज सुमन्त भी नहीं हैं इसलिए अयोध्या की याद मत करना। आज से लेकर जब तक वन में रहें हमें रात्रि मे सावधान हो सीता की रक्षा करनी चाहिये।'

जब प्रातःकाल हुआ तब वे वहाँ से आगे चले। मार्ग में नाना प्रकार के वृक्ष, लता, पुष्प, फल, पशु-पक्षी एव वन का प्राकृतिक दृश्य देखते हुए, दक्षिण की ओर चले। चलते-चलते थोड़ा ही दिन शेष रहा था कि सामने यज्ञ-धूम-मण्डित प्रयागराजतीर्थ दिखाई देने लगा और गंगा-यमुना के मिलने का शब्द सुनाई देने लगा। श्रीरामचन्द्र अपनी धर्मपत्नी और भाई के सहित सायकाल के समय भारद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँच गये। उस समय मुनिराज अपने शिष्यों सहित अग्निहोत्र कर रहे थे-

हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत्।।

— अ० कां० स०५५।१२

राम, लक्ष्मण और सीता जी ने आश्रम में प्रवेश कर भारद्वाज मुनि को जो अग्निहोत्र करके शिष्यों से घिरे आसन पर बैठे थे, प्रणाम किया और अपना परिचय देते हुए उनसे वन में आने का सारा कारण कहा।

भारद्वाज मुनि ने उन्हें आशीर्वाद देकर तीनों को आसन देकर हाथ पैर धुलवा भाँति-२ के कन्द मूल फल खाने को दिये।

भोजन के बाद श्री रामचन्द्र जी ने मुनि से कहा कि महाराज ! हमको अब इस वन में चौदह वर्ष व्यतीत करने हैं। आप हमको कोई ऐसा एकान्त स्थान बतावें जो यहाँ से दूर हो और जहाँ तरह–२ के फल–फूल वाले वृक्ष तथा कन्दमूल हों। इस पर मुनि भारद्वाज कहने लगे–'हे राम ! गंगा और यमुना के संगम पर यह स्थान बड़ा रमणीक एवं पवित्र है, आप यहाँ सुखपूर्वक रहो।'

यह सुनकर श्रीराम विनीत भाव से बोले–'भगवन् ! यदि हम यहाँ रहेंगे तो यहाँ से अयोध्या समीप होने के कारण हमारी सूचना वहाँ अवश्य पहुँच जावेगी और अयोध्यावासी यहाँ आ–आकर बड़ी भीड़ लगावेंगे। इसमें हमको भी दुःख होगा और आपके भी तप में विघ्न पड़ेगा। इससे हमें कोई अन्य उचित स्थान बतलाइये।'

राम का अभिप्राय समझकर मुनि ने इनके रहने के लिए चित्रकूट पर्वत का पता बतलाया। (जो प्रयाग से लगभग चौबीस कोस की दूरी पर है। मुनि भारद्वाज बोले–

"इस पर्वत पर बड़े–बड़े ऋषि–मुनि तथा महात्मा तप किया करते थे और यहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं था। यह पर्वत ऐसा मनोहर तथा रमणीक था कि इसकी शोभा को देखते ही सबका मन मोहित हो जाता था।"

चित्रकूट की यात्रा

इस प्रकार यह रात्रि हर्षपूर्वक व्यतीत हुई। प्रातः श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित भारद्वाज मुनि को प्रणाम कर और उनसे आज्ञा लेकर उनके बताये हुए मार्ग से चित्रकूट पर्वत की ओर चले, तब मुनि उन्हें कुछ दूर पहुँचाकर और आशीर्वाद देकर आश्रम में लौट आये। जब दोनों भाई जानकी जी को आगे किये यमुना के तीर पार पहुँचे तो देखा कि यमुना बड़ी गहराई तथा वेग से बह रही है। पार जाना चाहते हैं पर कोई नाव नहीं। तब उन्होंने भारद्वाज मुनि की शिक्षानुसार सूखे बांस इकट्ठे किये और घरनाई (तुला–तृण–नौका) बनाई। उसमें वृक्षों की सूखी लकड़ी लगा कर हरी–२ घास कूट–कूटकर छिद्रों में भर दी। फिर लक्ष्मण ने वृक्षों की कोमल शाखाओं से जानकी के लिए बैठक बना दी। जानकी को उस पर बैठा कर उनके पास अपने शस्त्र–अस्त्र रख दिये। इसके अनन्तर दोनों भाई भी चढ़ गये और नाव को चलाने लगे। जब नाव मझधार में पहुंची तब सीता जी ने परमात्मा का स्मरण किया और प्रार्थना करने लगीं कि हे देव! जो हम तीनों (राम, लक्ष्मण, जानकी) कुशलपूर्वक चौदह वर्ष वन में बिताकर अयोध्या पहुँच जायेंगे और हमारा पतिव्रत धर्म पूर्ण बना रहेगा तो हम सब यज्ञ–हवन करेंगे तथा बहुत सी गायें दान करेंगे। पर यह तब होगा जब श्रीरामचन्द्र जी राज्य पद पर अभिषिक्त हो जायेंगे।

प्रार्थना समाप्त होते ही दक्षिण तट आ गया। तट पर तीनों उतर पड़े और नाव को वहीं छोड़ वन को चल दिये।

मार्ग में जिस किसी अपूर्व वृक्ष, लता आदि को सीता देखतीं उसके विषय में राम से पूछतीं और जिस जिस फल–फूल को सीताजी कहती जाती थीं, लक्ष्मण तुरन्त लाकर दे देते थे।

ऋषि वाल्मीकि जी का आश्रम

वन की शोभा निहारते हुए और सीता तथा लक्ष्मण से उसकी रमणीयता बखान करते हुए अब राम वाल्मीकि जी के आश्रम पर पहुँच गये। तीनो ने मुनि को प्रणाम किया। वाल्मीकि जी ने भी उनका उचित रीति से अतिथि–सत्कार किया और रात्रिवास के लिए आसन आदि प्रदान किये।

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्।।
तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित्।
आस्यतामितिचोवाच स्वागतं तु निवेद्य च।।

– अ० कां० सर्ग ५६ श्लोक १३,१४

निवास के लिए भारद्वाज की तरह वाल्मीकि जी ने भी चित्रकूट पर्वत को ही उत्तम बताया। अब श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट पर पहुँचे और बड़ा मनोहर स्थान देखकर लक्ष्मण से कहने लगे कि भाई ! यहाँ सब प्रकार का सुख मिलेगा क्योंकि यहाँ सब प्रकार के फल–फूल वाले वृक्ष, कन्द मूल तथा जल स्रोत है। कोई कुटी बना कर यहीं पर बास करना चाहिए।

चित्रकूट पर कुटिया

राम का संकेत पाते ही लक्ष्मण जी ने बहुत सुन्दर पर्ण कुटी तैयार कर दी जिसमें एक ओर यज्ञवेदी बनाई और तीनों के सोने के लिए अलग–२ चबूतरे बना दिये। अब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता सहित उस कुटिया में सुख–पूर्वक रहने लगे।

राज-भवन की दशा

उधर जब राम वन चले गये तो कुछ समय तक सुमन्त गुहराज के अतिथि बनकर रहे, इस आशा से कि शायद राम लौट आयें। पर अन्ततः हताश हो दुःख के मारे धीरे–२ अयोध्यापुरी की ओर लौटे। जब वे अयोध्या के निकट पहुँचे तो लज्जा–भय– शोक से पीडित होकर सूर्य अस्त होने की प्रतीक्षा करने लगे, जिससे वह अयोध्या में उस समय पहुँचें जब न तो पूछने वाले ही अधिक सतावें और न उन्हें अपने मुख से यह दुःखपूर्ण समाचार लोगों को सुनाना पड़े। रात्रि हो जाने पर वह राजभवन में पहुँचे और बड़ी ही करुण वाणी में समस्त वृत्त राजा को निवेदन कर दिया, जिसे सुनकर राजा उनके वियोग को असह्य मानकर कभी मूर्खों की भाँति विलाप करता और कभी उस पीडा से

मूर्छित हो जाता। सुध आने पर मन्त्री वर्ग तथा सूतों से कैकेयी के कृत्य की निन्दा करता हुआ कहता कि सूत ! यदि मेरा कोई शुभ कर्म विद्यमान है तो उसके फल के बदले में मुझे एक बार राम–लक्ष्मण और जानकी जी के दर्शन करा दो क्योंकि मेरे लिए इनके वियोग से अधिक कोई दुःख नहीं। कभी हा राम ! हा लक्ष्मण! हा तपस्विनि सीते ! तुम पितृभक्त होते हुए भी क्या मेरी दुःखपूर्ण मृत्यु को नहीं जानते जो मुझे आकर सुखी नहीं करते ? इस प्रकार विलाप करता–२ राजा पुनः पुनः बेसुध हो जाता और चिरकाल तक जड़वत् पड़ा रहता।

जब इस प्रकार बार–बार की मूर्छा ने राजा को बलहीन कर दिया और राम के वियोग से उनके जीवन की अधिक आशा न रही तथा कैकेयी के भी दुष्ट हठ त्यागने की आशा नष्ट हो गई तब मन्त्रिगण राजा की आज्ञानुसार उनकी धर्मपत्नी कौशल्या के भवन में उनको ले गये।

राजा ने कौशल्या की स्तुति कर अपने किये पर पश्चाताप किया और जीवन के न रहने की अशुभ सूचना दी। कौशल्या ने वन संकट और निरपराध सुकुमारों द्वारा उनको न सहने की शक्ति का वर्णन किया और राजा की मृत्यु से उत्पन्न अपनी दुर्दशा के विषय में कहा कि –

गतिरेका पतिर्नार्याः द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते।। सर्ग० ६१।२४
हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वा सह मंत्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ।। २६

– अ० कां० सर्ग ६१

"राजन्! स्त्रियों का मुख्य आश्रय उनका पति होता है, दूसरा आश्रय पुत्र और तीसरा देवर ज्येष्ठ आदि सम्बन्धी होते हैं। स्त्री का आश्रय इस लोक में चौथा और कोई नहीं। प्राणनाथ ! आप मेरी गति हैं। आप परलोक जाते हैं, मेरे पुत्र को वन में भेज दिया, जाति के बांधवों की वृत्ति उल्टी दिखाई देती है इसलिए मैं सब ओर से अनाथ हो गई।'

राजन् आपके इस कर्म से केवल मैं ही हत नहीं हुई किन्तु यह सारा राष्ट्र, मन्त्रीगण, द्विजाति वर्ग, वैदिक कर्म, आपकी स्त्रियाँ और सन्तति सब नष्ट हो गई। हाँ, इससे आपका एक पुत्र भरत और एक भार्या कैकेयी अवश्य प्रसन्न होंगे।"

यह सुन राजा बहुत दुःखी हुआ और कौशल्या से कहने लगा–'देवि ! आरम्भ से तुम धर्मप्रिय, दयावती और कोमल स्वभाव रही हो। इस संकट में मुझे ताने देना तुम्हें योग्य नहीं। हे आर्ये ! आर्य स्त्रियों के लिए दुःख और सुख में निर्गुण वा गुणवान् भर्ता ही पूजनीय है। इसलिए दुःखित हुई भी तू मुझ दुखित को ऐसे वचन मत सुना।'

रानी कौशल्या राजा के यह करुणापूर्ण वाक्य सुनकर पश्चात्ताप करने लगी और राजा के चरणों में गिर कहने लगी कि नाथ ! आप सत्य कहते हैं। मैं अपने कहे वचनों से लज्जित हूँ परन्तु मेरा कुछ वश नहीं है। मैं पुत्र शोक से विवश हूँ और वह शोक मुझसे सहा नहीं जाता।

जानामि धर्म धर्मज्ञ ! त्वां जाने सत्यवादिनम्।
पुत्र शोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम्।।१४
शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः।।१६
शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः।
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोपि न शक्यते।।२३

—अ० कां० स० ६२।

'हे सत्यवादिन् धर्मज्ञ ! मैं स्त्रीधर्म से अभिज्ञ हूँ परन्तु वह सब शोक के कारण नष्ट हो रहा है। मैं शत्रुओं के बड़े–२ शस्त्र प्रहारों को सहने वाली हूँ पर मुझसे शोक प्रहार सहा नहीं जाता। राम को वन गये अभी पाँच रात्रि हुई हैं, पर वह पाँच वर्ष के समान प्रतीत होती हैं। आप मेरे कटु–भाषण को क्षमा करें क्योंकि मैं इस समय विवश हूँ।'

राजा का स्वचरित चिन्तन

इस प्रकार कौशल्या के भवन में पाँचवीं रात्रि और छठा दिन व्यतीत हो गया। छठवीं रात्रि में राजा कर्म गति के प्रभाव को स्मरण करता हुआ कौशल्या से कहने लगा–

यदाचरित कल्याणि ! शुभं वा यदिवाशुभं।
तदेव लभते भद्रे ! कर्ता कर्मजमात्मनः।।६
गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलं।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते।।७
कश्चिदाम्रवृक्षं छित्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृघ्नुः स शोचति फलागमे।।८
अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
सशोचेत्फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः।।६

— अ० कां० सर्ग ६३

'कल्याणि ! मनुष्य जैसे शुभ–अशुभ कर्म करता है वैसे ही फल पाता है। इसलिए सदा अच्छा बुरा फल विचार कर कर्म करना चाहिए।

देवि ! जो मनुष्य कर्म करने से पूर्व उसकी लघुता, गौरवता एवं फलाफल को नहीं विचारता वह मूर्ख कहाता है। हे विचारशीले ! जो विचारहीन मनुष्य शीघ्र फल पाने की लालसा से आम के वृक्ष को काटकर आक वृक्ष लगाता है, वह फल आ जाने पर शोक करता है और जो फल को विचार न कर कर्म करता जाता है, पह पलाश वृक्ष की सेवा करने वाले की तरह पछताता है जैसा कि इस समय मैं पछता रहा हूँ।'

मातृ पितृ भक्त एक तपस्वी की कथा

इस कर्मोपदेश के पीछे राजा अपने एक ऐसे कर्म को संक्षेप में सुनाने लगे जिसके फल में उसे पुत्र–वियोग तथा अकाल मृत्यु होनी आवश्यक प्रतीत होती थी। राजा बोला, देवि ! एक दिन मैं सन्ध्या के समय सरयू नदी के तट पर धनुष वाण लिए घूम रहा था। इतने में नदी से हाथी की सूँड से जल गिरने का शब्द आया। अंधकार के बढ जाने से कुछ दिखाई नहीं देता था। मुझे अपनी धनुर्विद्या पर अभिमान था और मैं शब्द मात्र से लक्ष्य वेधने में प्रसिद्ध था। अतएव मैंने उस पर वाण छोड़ दिया। फिर क्या था वाण छूटते ही नदी तट से मनुष्य का शब्द आने लगा जिसमें मैंने सुना "क्यों मुझ निरपराध तपस्वी ● पर वाण छोडे गये हैं, मैंने किसी का क्या अपराध किया है और मुझ तपस्वी व नर सुपुत्र के मारने से किसी का क्या अर्थ सिद्ध होगा ? मेरे जीते रहने से ही मेरे शास्त्रवेत्ता माता–पिता की सेवा हो रही थी। मैं तो अपनी जीवनयात्रा के लिए किसी को भी कष्ट नहीं देता था, किन्तु सदा वन के कन्द मूल से मुनियों की तरह निर्वाह करता था, मेरे मरने से मेरी ही मृत्यु न होगी किन्तु मेरे माता–पिता भी मर जायेंगे। किस मन्दमति ने एक वाण से हम सबका वध किया, कौन इस निष्प्रयोजन महान् अनर्थ करने वाले घोर पापी की निन्दा न करेगा ?"

" कौशल्ये ! मैं जब इस वाणी को सुनकर वहाँ गया तो देखा कि एक तेजस्वी तपस्वी युवक रुधिर से लिप्त हाथ में जल का घड़ा लिये अपने माता–पिता के सुख नष्ट हो जाने की चिन्ता में व्याकुल हुआ मृत्यु शैया व यम दंष्ट्रा में पड़ा है। उसने डरे हुए तथा खिन्न मन से क्रोध भरे नेत्रों द्वारा मेरी ओर देखकर कहा कि –

किं तवापकृतं राजन् ! वने निवसता मया।
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया।।

– अ० कां० सर्ग ६३। ३८ ।३६

"राजन् ! मैंने तेरा क्या अपराध किया है जो तूने गुरुजनों (माता–पिता) के लिए नदी से जल लेते हुए मुझको विष भरे वाण से इस भाँति मारा है ?

मुझे अपने मरने पर शोक नहीं ! किन्तु माता पिता के कष्ट का शोक है। यहाँ से निकट ही मेरे माता–पिता का आश्रम है। शीघ्र ही जाकर उन्हें प्रसन्न कर और जल से उनकी पिपासा को शान्त कर तथा मेरे शरीर से वाण निकाल जिससे मैं सुखपूर्वक प्राण त्याग दूँ, क्योंकि अब मेरा जीवन असम्भव है।"

> ● **यह तपस्वी 'श्रवण कुमार' के नाम से जगत् प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण में इसका नाम नहीं दिया है। (सम्पादक)**

तब मैंने काँपते–२ वाण निकाल दिया और जल लेकर उसके अन्धे माता–पिता के पास जाकर रख दिया। उनके पुत्र नाम से पुकारने पर मैंने कहा कि महाराज! मैं आपका पुत्र नहीं किन्तु राजपुत्र (क्षत्रिय) दशरथ हूँ। मैं अन्धेरे में, प्रजा के हित के लिए हिंसक जीवों के मारने के निमित्त सरयू नदी

के तीर पर घूम रहा था। घड़े से जल भरने के शब्द को हाथी का समझकर मैंने विष भरा वाण छोड़ दिया जिसके लगने से आपके जीवन सुख की चिंता करता हुआ आपका पुत्र स्वर्ग को चला गया है। भगवन्! मुझसे यह सब कुछ अज्ञान से हुआ है इसलिए आप क्षमा करें।

राजा को शाप

यह सुनकर मुनि और मुनिपत्नी बहुत शोकाकुल हुए और उन्होंने मुझसे अपने पुत्र के निकट ले जाने को कहा—मैं उन्हे वहाँ ले गया। वहाँ जाकर उन्होंने बहुविधि विलाप किया और उसके नित्य कर्मो को स्मरण करके कहने लगे—

कस्य वा पररात्रे हं श्रोष्यामि हृदयंगमम्।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः।।
को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम्।।

— अ० कां० सर्ग ६४ श्लोक ३२।३३

"हे पुत्र ! रात्रि के अन्त में हम किसके मुख से वेदशास्त्र की मधुर ध्वनि सुनेंगे और तेरे बिना अब कौन प्रातः स्नान, संध्या, अग्निहोत्र कर हमारी उपासना (श्राद्ध—तर्पण) व शुश्रूषा करेगा और तेरे मरण के शोक से पैदा हुए दुःख को कौन दूर करेगा ?

इस शोक के पीछे मुनि ने पुत्र के लिए प्रार्थना की कि—

अपापो सि यथा पुत्र ! निहतः पापकर्मणा।
तेन सत्येन गच्छा शु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम्।।४०
यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
हतास्त्वभिमुखाः पुत्र ! गतिं तां परमां व्रज !।।४१
यां गतिं सगरः शैव्यो दिलीपो जनमेजयः।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक।।४२
या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या।
भूमिदस्या हिताग्नेश्च एकपत्नी व्रतस्य च।।४३
गोसहस्त्रप्रदातृणां गुरुसेवाभृतामपि।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक।।४४
नहि त्वस्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम्।
तत्र तु यास्यति ये न त्वं निहतो मम बान्धवः।।४५

— अ० कां० सर्ग ६४

हे धर्मज्ञ पुत्र ! जिस गति को शूरवीर युद्ध में मरकर व संन्यासी संन्यास के व्रत का पालन कर प्राप्त होते है, उस गति को तू प्राप्त हो। पुत्र ! जिस प्रकार तू धर्मात्मा और निष्पाप था, उसी प्रकार पुण्यात्माओं की गति को तू प्राप्त हो, वीर ! जिस गति को महाराज सगर, शैव्य, दिलीप, नहुष, जनमेजय, 'धुन्धुमार' तथा अन्यान्य स्वाध्यायी, अग्निहोत्री तपस्वी, भूमि, अन्न, गौ, विद्या आदि के दान करने वाले और एक स्त्री व्रत पालन करने वाले, गुरुभक्ति, पितृसेवा, यज्ञों के कर्ता तथा घर में अग्नि आधान करने वाले प्राप्त हुए है, उस गति को तू प्राप्त हो, क्योंकि हमारे कुल मे उत्पन्न हुओं की अशुभ गति कभी नहीं होती।'

प्रार्थना के पश्चात् हे सहधर्मिणी ! उन्होंने मुझे यह कहकर शाप दिया कि चूँकि तूने अज्ञान से हमारे पुत्र का वध किया है, अतः तुझे ब्रह्महत्या का तो दोष नहीं लगेगा। परन्तु इतना अवश्य होगा कि तेरी मृत्यु का कारण भी पुत्र वियोग ही होगा।

सो हे विदुषी ! उस कर्म के फल को ही मैं आज भोग रहा हूँ जैसे कि कुपथ्य– भोजी अपने भोजन का फल भोगता है।

तस्यायं कर्मणो देवि ! विपाकः समुपस्थितः।
अपथ्यैः सह सम्भुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा।।

– सर्ग ६४।५६

दशरथ का स्वर्गवास

इतना कहकर राजा पहले से भी अधिक निर्बल हो गया, उसकी दृष्टि बहुत ही मन्द हो गई। और –

हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत।।
हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि।।
इति रामस्य मातुश्च सुमित्रयाश्च संनिधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत्।।

– सर्ग ६४ श्लोक ७५।७८

हे महाबाहु राघव, हे मेरे कष्टों को नष्ट करने वाले, हा पिता के प्यारे हा पुत्र ! तुम कहाँ गये, हा कौशल्ये, हा सुमित्रे ! मुझे कुछ नहीं दीख रहा ! हा क्रूर मेरी शत्रु, कुल का नाश करने वाली कैकेयी! इस प्रकार, राम की माता और सुमित्रा के सामने शोक करते–करते दशरथ अन्तिम गति को प्राप्त हो गये।

राजा के शव की रक्षा

अयोध्या–पति सूर्यवंश के नेता मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के जन्मदाता, महायोद्धा, इन्द्र–सखा महाराजा दशरथ की इस अकाल मृत्यु को सुनकर समस्त अन्तःपुर में कोलाहल मच गया। राजधानी और राज्य भर के नर–नारी अपने जीवनदाता और भूमिपति के वियोग से दुःखी हुए हाहाकार कर रोने लगे। कौशल्यादि देवियाँ प्राण त्याग के लिए उद्यत हो गईं। प्रकाशमान अयोध्या काली रात्रि की भाँति प्रतीत होने लगी। सूर्य प्रभा हीन, समुद्र जलहीन और अग्नि तेजहीन प्रतीत होने लगी। पशु, पक्षी, जड़ जंगम तक में शोक के चिन्ह दिखाई देने लगे। प्रतीत होता था कि आज केवल राजा नहीं मरा, किन्तु राष्ट्र भर का जीवन चला गया है। ऐसे समय में यदि वसिष्ठादि महर्षि राज्य का प्रबन्ध न करते तो आश्चर्य न था कि सम्पूर्ण राष्ट्र नष्ट–भ्रष्ट हो जाता।

अन्त में राज्यसभा के सभ्यों ने समस्त कोलाहल को शान्त कर राजा के शव को सुरक्षित रखने के लिए औषधि युक्त तैल सिद्ध कराकर अयोध्यापति के शव की रक्षा की और राजा की अन्तिम इच्छा के अनुसार सारी क्रियाएँ आरम्भ कर दीं –

तैलद्रोण्यां तदा मात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वागयथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्।।

– अ० कां० स० ६६ ।४१

भरत का बुलाना

रात के व्यतीत होने पर राज्य के मुख्य अधिकारी राज्य प्रबन्ध के लिए दूसरे मन्त्रियों सहित सभा में गये और वहाँ बैठकर भरत के बुलाने तथा तब तक राज्य प्रबन्ध करने के लिए वसिष्ठ महाराज को नियुक्त करने का निश्चय किया।

ऐसा निश्चित कर भरत के लाने के लिए कश्मीर में दूत भेज दिया और तब तक राज्य–प्रबन्ध के लिए महर्षि वसिष्ठ जी को राज्य भार सौंपते हुए उन्होंने अराजकता की निन्दा की और वसिष्ठ से प्रार्थना की–

इक्ष्वाकु वंश का राज्यासन खाली है, आप शीघ्र इसको संभालिये क्योंकि राजा के बिना राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। इस प्रार्थना को स्वीकार करके राज्य भार महर्षि वसिष्ठ ने ग्रहण कर लिया।

उधर जिस दिन दूत को भरत के पास पहुँचना था भरत को बुरे–२ स्वप्न आये और चित्त में नाना विधि दुष्ट संकल्प उत्पन्न होने लगे, इतने में राजदूत ने भरत को शीघ्र अयोध्या में बुलाने का संन्देश दिया, जिसे सुनकर भरत और भी चिन्ता युक्त हो गये और वह सटपटाती वाणी से बोले–'हे दूत यह तो कहो कि हमारे माता–पिता तो प्रसन्न हैं ? श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण जी तो कुशलपूर्वक हैं। माता कौशल्या,सुमित्रा और जननी कैकेयी तो अच्छी हैं ? यह तो बताओ कि चलते समय उन्होंने

तुम्हें क्या कहा था ? दूत ने कहा कि महाराज ! सब ठीक हैं। आपको शीघ्र बुलाया है। अब देर न कीजिये और बहुत जल्दी रथ मँगाइये।

भरत का आगमन

तब भरत अपने नाना तथा मामा से आज्ञा लेकर तुरन्त रथ पर आरूढ होकर अयोध्यापुरी की ओर चल दिये। भरत जी का चित्त मार्ग में भी उदास रहा और उन्हें अयोध्या पहुँचने पर भी कोई आनन्द के लक्षण दिखाई न दिये। जब वह अयोध्या पहुँचे तो उन्होंने दूत से कहा– भाई ! यह मनोहर अयोध्या तो उजड़ी सी दीखती है। इसमें तो सदा आनन्द उत्सव के गीत और वाद्य एवं वेदपाठ सुनाई दिया करते थे पर आज वह सुनाई नहीं देते। सड़कें भी मलिन पड़ी हैं और सब मनुष्यों के मुख उदासीन प्रतीत होते हैं। बताओ तो सही कि क्या बात है।

इतने ही में दूत भरत को राजमहल में ले आया। भरत ने जब भीतर जाकर राज्यासन पर महाराजा दशरथ को न देखा तो यह सोचकर कि पिताजी अन्तःपुर में होंगे, माता कैकेयी के भवन में गये।

कैकेयी के भवन में भरत

भरत को आते देखकर चिरकाल से बाट देख रही रानी कैकेयी बडे उत्साह से उठी और भरत की ओर चल दी। भरत ने माता के चरणों में झुककर प्रणाम किया और रानी ने पुत्र को छाती से लगाया तथा सिर सूंघा। रानी के पूछने पर भरत कैकेयी देश की राजी–खुशी बताकर माता से घबराते हुए बोले कि माता ! यह तो बताओ कि हमें ऐसी जल्दी क्यों बुलाया है, श्री पिताजी कहाँ हैं ? शीघ्र बताओ क्योंकि हम उनका दर्शन करना चाहते हैं। हमें उनके दर्शन किये बहुत दिन हो गये। रानी ने साधारणतया उत्तर दिया–पुत्र ! राजा तो वहाँ चले गये जहाँ सबको जाना है। इतना सुनते ही भरत शोक में पड़ गये, पिता के गुणों को स्मरण करते–२ रोते हुए मूर्छित हो गये।

जब मूर्छा खुली तो भरत माता से पूछने लगे कि माता ! किस व्याधि से पीड़ित होकर महाराज परलोक सिधारे तथा उनका क्या औषधि–उपचार किया गया ? माता ! मैं बड़ा मन्दभाग्य हूँ जो अन्तकाल में पिताजी के दर्शन न कर सका।

धन्य हैं राम लक्ष्मणादि जिन्होंने पिता की अन्तकाल तक सेवा की और उनके अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त किये। अस्तु माता ! शीघ्र बताओ कि मेरे सम्मान्य बड़े भाई राम, जिनका मैं दास हूँ वह कहाँ हैं और अन्त समय में महाराज क्या कहते हुए इस लोक से पधारे हैं ? यह भी बताओ कि मेरे लिए क्या कोई विशेष आज्ञा दे गये हैं ? यह सुन कैकेयी बोली–

पुत्र ! राजा अन्तकाल में हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते ! कहते–कहते इस लोक को त्याग गये हैं। यह सुन दुःखी मन से भरत ने पूछा माता ! तो राम, सीता और लक्ष्मण कहाँ हैं ?

कैकेयी बोली–"पुत्र ! वे तो तपस्वियों की भाँति चीर–वल्कल धारण कर दण्डक वन में निवास करते हैं।

यह सुनकर भरत जी बड़े आश्चर्य तथा कष्ट से अचम्भित होकर पूछने लगे–

तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशंकया।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात् प्रष्टुं समुपचक्रमे।।४४
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित्।
कच्चिनाढ्यो दरिद्रो वा तेनपापो विहिंसितः।।४५
कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोभिमन्यते।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः।।४६

– अ० कां० सर्ग ७२

"अहो माता ! क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन हर लिया था अथवा किसी धनवान वा निर्धन पुरुष को बिना अपराध के मार दिया था अथवा किसी स्त्री पर दुष्ट संकल्प किया था कि जिसके फल स्वरूप राजा और राज्यसभा ने न्याय का अवलम्बन कर सर्व गुण सम्पन्न युवराज राम को स्त्री और भाई सहित कठोर वन का वास दिया है। माँ जल्दी बताओ क्योंकि मेरी आत्मा इस समाचार को सुनकर सूर्यवंश के यश चरित्र के मलिन होने के सन्देह से क्लेश पा रही है।"

इससे मालूम होता है कि आर्य लोग दण्ड देने में राजपुत्र के साथ भी लिहाज नहीं करते थे और उस समय में ये तीनों कर्म इस दण्ड के योग्य समझे जाते थे। राष्ट्र कल्याणाभिलाषी लोग व आर्य जाति अब भी इसका पालन करें।

भरत के इन आर्य भावों को सुनकर कैकेयी चपलता से बोली–

न ब्राह्मण धनं किञ्चिद्हृतं रामेण कस्यचित्।
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।।४८
मया तु पुत्र ! श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्।।४६
मा शोकं मा च सन्तापं धैर्यमाश्रय पुत्रक !
त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम्।।५३

– अ० कां सर्ग ७२

"पुत्र ! राम ने न किसी ब्राह्मण का धन हरा और न उसने किसी निरपराध मनुष्य की हिंसा की थी। परस्त्री को तो राम दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते थे। किन्तु वत्स! मैंने राम का राज्याभिषेक सुनकर तेरे हित के लिए राजा से दो पुराने वर माँगे, जिसमें एक से राम को १४ वर्ष का वनवास और दूसरे से तेरे लिए राज्य तिलक। उसी से यह सब परिवर्तन हुआ।

सो अब तू शोक सन्ताप को त्यागकर राज्य शासन कर क्योंकि यह नगरी और देश तेरे आधीन हैं और तू इसका स्वामी है।''

इस बात को सुनकर धर्मात्मा भरत को बड़ा भारी दुःख हुआ और इसी दुःखित दशा में वह कैकेयी से कहने लगा कि विचारहीन रानी ! भला रामचन्द्र के बिना हमें राज्य से क्या काम ? अरी दुष्टे! अब घाव पर लवण क्यों डालती है ? इधर तूने राजा को मारा उधर उदार धर्मात्मा राम को तपस्वी बनाकर वन में भेज दिया। अरी स्वार्थिनी! तूने तो अपनी ओर से सूर्यवंश की मर्यादा बिगाड़ने में कोई न्यूनता नहीं रखी पर स्मरण रख कि मैं तेरा मनोरथ कभी पूरा नहीं करूँगा। अब तुझे दुख देने के लिए मैं वन में जाकर रामचन्द्र जी को यहाँ बुलाकर तेरे सामने ही उन्हें महाराज बनाऊँगा और फिर मैं देखूंगा कि तू क्या करती है ? ज्ञानहीने ! देख तेरे सम्मुख ही महाराज रामचन्द्र जी का दास बनकर मैं उनकी सेवा करूँगा। अरी पति–घातिनी ! तूने मुझको ही नहीं सारी अयोध्या को दुःख दिया। तुझे अवश्य इसके फल में नरक (घोर दुःख) भोगना पड़ेगा। इतने में ही आभूषण और वस्त्रों से शोभायमान और मन में प्रसन्न होती हुई, मन्थरा भी आ पहुँची जिसे देखकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न के नेत्र लाल हो गये, क्रोध के मारे उसके होठ फड़फड़ाने लगे। जब कुबड़ी मन्थरा आगे बढ़ी, तब शत्रुघ्न ने उसके कूबड़ में बड़े वेग से एक लात मारी और धिक्कार कर उसको वहाँ से निकाल दिया। यदि भरत न रोकते और न समझाते तो उसके प्राणों का अन्त ही हो गया होता।

कौशल्या का भरत को मिलना

अभी यह विवाद हो ही रहा था कि माता कौशल्या सुमित्रा सहित भरत से मिलने के लिए कैकेयी के भवन में आ गई, जिन्हें देखकर भरत और शत्रुघ्न ने दोनों को प्रणाम किया जिसे स्वीकार कर माताओं ने दोनों को हृदय से लगाया और उनका सिर सूंघा। फिर आशीर्वाद देते हुए, कौशल्या ने कहा–पुत्र ! कैकेयी ने तुम्हारे लिए यह राज्य बड़ी कठिनाई से प्राप्त किया है और तुम भी इसमें प्रसन्न होंगे। सो अब यह राज्य ग्रहण करो।

बेटा ! अब तुम निर्भय होकर अकण्टक इस राज्य को सुख से भोगो। पर हमें नहीं जान पड़ता कि राम को चौदह वर्ष का वनवास दिलाकर उसको क्या मिल गया, जिससे न हमें क्लेश होता न तेरे पिता मरते और न जनक–नन्दिनी को ही असह्य कष्ट भोगने पड़ते। अस्तु, अब हमारी यही इच्छा है कि तुम्हारी माता हमको और सुमित्रा को हमारे पुत्र के पास वन में भिजवा दे, तुम ही आज्ञा दो तो हम अपने प्यारे रामचन्द्र के पास अपने आप ही चली जायें या तुम ही वहाँ पहुँचा दो। फिर तुम निर्भय होकर राज्य करना। यह बात सुनकर भरत को बड़ा दुःख हुआ और वह कौशल्या माता के चरणों में गिर पड़ा। उसे रोते–रोते मूर्छा आ गई।

भरत की शपथः आर्यों का उच्चादर्श

जब भरत की मूर्छा खुली तो वह हाथ जोड़कर माता कौशल्या से बोला– "आर्ये! तुम राम में मेरी प्रीति को जानती हुई भी क्यों मुझ अनजान पाप रहित को ऐसा कहती हो ? माता ! यह जो कुछ हुआ, वह मेरी सम्मति से नहीं हुआ और मैं धर्म से कहता हूँ कि यदि राम का वनवास मेरी सम्मति से हुआ है तो मुझे समस्त शास्त्र पढ़ने पर भी उनका तत्व समझ में ना आये, तथा मैं नीचों का सेवक बनूं। माता यदि आर्य राम के वनवास में मेरी सम्मति हो तो मैं उस पाप का अधिकारी बनूं जो भृत्यों से काम कराकर वेतन न देने वाले को, पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाले राजा के साथ द्रोह करने वाले पुरुष को, प्रजा से कर (टैक्स) लेकर समय पर प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा को या तपस्वियों और मुनियों से यज्ञ करा कर प्रतिज्ञा करके दक्षिणा न देने वाले गृहस्थ को लगता है। माता ! जिसकी अनुमति से आर्य राम वन को गये हों, वह सूक्ष्म शास्त्रों के तत्वों को सुनकर भूल जावे और निर्दयता से अकर्तव्य कर्म करे। गुरुओं का अनादर करे, गौओं को पाँव से स्पर्श करे, गुरुजनों के साथ अनुचित विवाद करे, मित्र के साथ घोर द्रोह करे, विश्वास से एकान्त में कहे हुए, किसी सज्जन के भेद को दुष्ट भाव से सर्वत्र प्रकाश करे और वह लोक में निर्लज्ज, कृतघ्न और आलसी होकर सज्जनों का द्वेषी होवे। वह पुत्र, मित्र, दास और भृत्यों से युक्त होकर भी अकेला रहे और मिष्ठान्न न भोजन करे।'

"देवि ! जिसकी सम्मति से आर्य को वनवास मिला है उसकी वैसी ही गति हो, जैसी समान गुण, कर्म, और स्वभाव वाली पत्नी को न पाकर गृहस्थ के कर्मो से हीन, सन्तान रहित पितृ ऋणी होकर मरने वाले की होती है।

वह निःसन्तान होकर अकाल मृत्यु का ग्रास हो। माता ! उसे वह पाप लगे, जो स्त्री बालक, कन्या, और वृद्ध को मारने, भृत्य को संकट में त्यागने, विष–मद्यादि बेचकर पेट भरने से लगता है। माता! जिसकी सलाह से आर्य को वनवास मिला है। वह युद्ध में शत्रुओं की महती सेना देखकर पराङ्मुख होकर शत्रुओं के ही शस्त्रों से मारा जाये, पुराने चीथड़े पहन, हाथ में कपाल लिए जगत् में भीख माँगता फिरे। मदिरा आदि से मदान्ध हुआ सदा व्यभिचार, जुआ आदि दुष्ट कर्म में रत और क्रोधादि में आसक्त रहे। उसका मन कभी धर्म की ओर न झुके, वह सदा कुपात्र को दान करे।"

"देवि ! जो पाप दोनों सन्ध्याओं में शयन करने वाले, आग लगाने वाले, मित्रद्रोही, गुरु–तल्प–गामी, देवपितृ की शुश्रूषा–सेवा न करने वाले को होता है, वही उस पापी को हो जिसकी सलाह से आर्य वन को गये हैं। माता ! वह सत्पुरुषों के लोक से, सत्पुरुषों की कीर्ति से, सत्पुरुषों के कर्म से भ्रष्ट हो जाय। माता–पिता की सेवा से वञ्चित रहे। गृहस्थी परिवार वाला होकर दीर्घ रोगी और दरिद्री हो। अर्थियों की आशाओं को पूर्ण न कर सके। सदा छल–कपट से निर्वाह करे। सदा उदासीन, राजा के भय से भयभीत और पापधारी रहे। ऋतु– स्नाता अपनी भार्या को वीर्य दान न कर सके। ब्राह्मणों के यज्ञ और योगादि को नष्ट करे। छोटे और निर्बल बच्चे वाली गौ के सम्पूर्ण दुग्ध को दोह ले। अपनी धर्मपत्नी को त्याग कर परस्त्री से प्रेम करे। सदा, विद्या, विचार और धर्म कर्म से हीन रहे– ऐसा होने में जो पाप होता है, वह उसे लगे जिसकी सलाह से आर्य वन को गये हैं।"

"माता ! पीने के पानी को दूषित करने, प्यासे को पानी की आशा देकर वंचित रखने, सज्जन से विवाद करने का और सन्मार्ग न जाने में जो पाप होता है, वही पाप मुझको लगे यदि आर्य मेरी सम्मति से वन को गये हैं।"

पाठक ! इन शपथों को केवल शपथ न समझें। यह आर्य जाति के उच्च चरित्र, आदर्श व्यवहार और कर्तव्य निष्ठा की द्योतक हैं जिनका विचार व अनुष्ठान आपको ऊँचा करेगा। (सम्पादक)

इस प्रकार शपथ खाते–खाते जब भरत मूर्छित हो गये, तब माता कौशल्या ने उनको हृदय से लगाया और कहा कि "हे पुत्र ! मैं तुम्हारे भ्रातृ–स्नेह से प्रसन्न हूँ। तुम शोक मत करो, तुम्हारे दुःखी होने से हमें भी दुःख होता है। तुम सच्चे धर्मात्मा हो। तुमने अपना धर्म नहीं त्यागा। परमेश्वर तुमको प्रसन्न रखे।"

महाराजा का वैदिक अन्त्येष्टि संस्कार

इस शोकावस्था में मग्न भरत को देखकर वसिष्ठ ने कहा कि पुत्र ! अब शोक वृथा है। शोक त्यागकर राजा का अन्त्येष्टि संस्कार (प्रेत क्रिया) करना उचित है। यह सुनकर भरत ने मंत्रियों को सामग्री (हव्य–कव्य) मंगवाने की आज्ञा दी और पन्द्रह दिन के पड़े पिता के देह को उठाया और पिता के गृह्याग्नि से अग्नि लेकर श्मशान की वेदि में पहुँचाया। सामग्री में चन्दन, अगर, तगर, गूगल, सरल, पद्यनक, देवदारु, और घृत आदि रोग विनाशक, पुष्टि कारक तथा दुर्गन्ध विनाशक औषधियाँ डाली गई फिर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा वेद मन्त्रों से पिता के देह को अग्नि चिता में स्थापन कर अन्तिम यज्ञ किया और अन्त में पितृमेध के मन्त्र सामगायन, पिता की आत्मा के लिए सदगति दाता परमात्मा से प्रार्थना की। तदनन्तर स्त्रियों को आगे करके सब लोग नगर में आये–

**ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यगाराद्बहिष्कृताः।
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते हूयन्ते यथाविधिः।।१३
चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारूणि चाहृत्य चितां चक्रू स्तथापरे।।१६
गन्धानुच्चावचांश्चायांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम्।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः।।१७
तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः।
जगुश्च ते यथा शास्त्रं तत्र सामानि सामगाः।।१८**

– अ० का० सर्ग ७६

संस्कार करके घर में आकर फिर सबने स्नान किया, इसके अनन्तर भरत ने उस स्थान पर जहाँ महाराज का देह पड़ा था, दस दिन तक हवन किया और + दसवें दिन शुद्धि स्नान हुआ। फिर बारहवें दिन महाराज के चिर स्मरण के लिए बहुत से स्थानों में विद्यालय, जलाशय, भोजन भण्डार, विश्राम भवन बनाने की आज्ञा दी। ● तेरहवें दिन महाराज की चिता को फिर देखा जहाँ पर राजा का देह भस्म तथा दग्धाग्नि रूप में परणित हुआ था, उसे देखकर विलाप करते–करते भरत मूर्छित होकर काष्ठवत् भूमि पर गिर पड़े परन्तु मन्त्रिगण उन्हें उठाकर राजभवन में ले आये।

+ स्मृतियों में दसवें दिन ब्राह्मण की और बारहवें दिन क्षत्रिय की शुद्धि का सामान्य नियम है। पर जैसे श्रोत्रिय ब्राह्मण की शुद्धि तीसरे दिन होती है, वैसे ही स्वकर्म निरत क्षत्रिय दस दिन में शुद्ध होता है-

क्षत्रियस्तु दशाह्ने स्वकर्म निरता शुचः।। पराशर।।

● तेरहवें दिन तक दाह वेदि में महाराज की भस्म अस्थि आदि के विद्यमान रहने से प्रतीत होता है कि उस समय तक तीसरे-चौथे दिन अस्थि संचयन, पुनः पिण्डदान दशाभ्यान्तरो पौराणिक क्रिया की गन्ध भी न थी, और न ही इस विधि को वाल्मीकीय रामायण में मिलाने का किसी पौराणिक ने साहस ही किया है।

(देखो वा० रा० अ० कां० सर्ग ७७ श्लोक ८) सम्पादक

घर में आकर भरत जी उस दिन शोकमग्न ही रहे। प्रातःकाल होते ही मन्त्री गण तथा माताओं ने वसिष्ठ जी के द्वारा भरत जी को राज्य सिंहासन स्वीकार करने के लिए पिताजी का सन्देश सुनाया और अराजकता के दुष्ट फल का स्मरण कराकर राज्य शासन करने को कहा– इस पर भरत जी ने कहा –

रघुकुल में सदा से यह रीति चली आती है कि सबसे बड़ा भाई राजा बने, और धर्मानुसार होना भी ऐसा ही चाहिए। फिर आप लोग मुझ से ऐसा अधर्म क्यों कराते हैं? भला रामचन्द्र जी के होते हुए मैं कैसे राज कर सकता हूँ। और –

अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसुनः।।

– सर्ग ८२।१४

हे गुरु ! यदि मैं राज्य के लोभ से इस अनार्य तथा स्वर्ग से पतित करने वाले पाप कर्म को करूँगा, तो मैं सूर्यवंश को कलंकित करने वाला कुलपाँसु हूँगा।

मैं ऐसे अधर्म का काम नहीं कर सकता। जो यह कहो कि श्रीरामचन्द्र तो वन में चले गये और उनके पीछे तुमको ही राज्याधिकारी होना उचित है तो मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं राज्य कभी नहीं करूँगा। हाँ, राम राज्य करेंगे और मैं वन में रहूँगा या उनकी सेवा यहाँ रहकर करूँगा। किन्तु कुल मर्यादा और धर्म के सम्मुख माता कैकेयी की दुष्ट इच्छा कभी भी पूर्ण न हो सकेगी। मैं इस समय रामचन्द्र जी के दर्शनों को जाता हूँ और उनको यहाँ लाकर राज्य तिलक कराकर उनकी सेवा करूँगा।

भरत की वन यात्रा

यह कहकर भरत ने वनयात्रा की तैयारी प्रारम्भ कर दी। गुरु वसिष्ठ ने बहुत समझाया पर अन्त में भरत ने दृढ़ता से कहा कि हे गुरो ! क्या मैं सूर्यवंश की संतान नहीं जो राज सुख के लोभ वंश की मर्यादा तोड़ दूँ ? आप मुझे ऐसी सम्मति न दें। मैं आपसे सच कहता हूँ कि मैं रामचन्द्र जी के लेने के लिए अवश्य ही वन में जाऊँगा और हमारी प्रार्थना पर वे अवश्य अयोध्या में आ जायेंगे। जो नहीं आवेंगे तो मैं भी उनके साथ वन में ही रहूँगा। उनके बिना मुझको अयोध्या से क्या प्रयोजन है ? जब भरत रामचन्द्र के पास वन को जाने लगे तब उनकी मातायें और सेनायें, बहुत से पुरवासी नर–नारी भरत के रोकने पर भी रामचन्द्र के दर्शन के लिए उनके पीछे–पीछे चल पड़े और मन में बड़े प्रसन्न हुए। वे समझते थे कि राम के बिना मर्त्यलोक का तो क्या, स्वर्ग–लोक का भी सुख आनन्ददायक नहीं। अब उस आनन्ददायक राम के दर्शन करेंगे और उनको बुला राजा बनाकर सब सुख से रहेंगे। जिस मार्ग से रामचन्द्र वन को गये थे, उसी रास्ते से भरत भी नाना कष्टों, दुःखों और क्लेशों को सहते हुए श्रीराम के दर्शनार्थ गये और अपने अनुगामी, सम्बन्धियों, कर्मचारियों, प्रजा के नर–नारियों को भी आदर व स्नेह से देखते हुए श्रीराम के गुणों को वर्णन करते हुए साथ ले गये।

भारद्वाज की अतिथि सेवा- मार्ग में भरत निषादपति गुह से मिले और मैत्री कर श्रीरामचन्द्र जी का स्थान पूछकर सर्व मण्डली के साथ प्रयागराज में भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। महर्षि वसिष्ठ और भरत को देख भारद्वाज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सब पुरुषों से कुशल क्षेम पूछने के अनन्तर रात्रिवास करने को कहा पर भरत ने इस विचार से कि बहुत से मनुष्यों का प्रबन्ध करना ऋषि के लिए कठिन होगा चलने की आज्ञा माँगी। जिस पर ऋषि ने कहा कि आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। यहाँ ही निवास कीजिए। अन्ततः भरत के स्वीकार कर लेने पर भरद्वाज ने आश्रमवासियों को सबका यथायोग्य सम्मान करने की आज्ञा दी। फिर क्या था, ऋषि शिष्यों ने राजा और प्रजा के लिए सब प्रकार के षड् रस सम्पन्न भोजन, देश–देशान्तरों में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के फल–फूल, कन्द–मूल, कुलोचित वस्त्र, पात्र, भूषण, आदि उपस्थित कर दिये। सबके स्नान के लिए स्थान–स्थान पर जल, आसन, पादुका, यज्ञ–पात्र वेदि, हवन, सामग्री, घृत स्वाध्याय की पुस्तकें सेवा के लिए अनुचरी व अनुचर, भाँति–२ के पीने योग्य जल, रस सुगन्धि युक्त द्रव्य उपस्थित कर दिये, जिन्हें देखकर न केवल साधारण अनुचर किन्तु बड़े–बड़े राज कर्मचारी भी मुग्ध हो गये, इस आश्रम को स्वर्ग मानने लगे। राजा भरत स्वयं ऋषि की महिमा को अपने मन में अनुभव करने लगे और बहुतों ने तो इस स्थान को स्वर्ग से भी अधिक सुखदायी मानकर स्पष्ट कह दिया कि–

नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्यामः दण्डकान्।
कुशलं भरतस्या स्तु रामस्यास्तु तथा सुखम्।।

– अ० कां० सर्ग ९१। ५६

हम न तो अयोध्या को जायेंगे न दण्डकारण्य को (जहाँ श्री रामचनद्र जी थे), भरत का कुशल बना रहे और श्री रामचन्द्र भी सुखी रहें। (हम तो अब यहीं रहेंगे।)

जो लोग कहा करते हैं कि ब्राह्मण का काम निर्धन रहना है, ब्राह्मण सदा से भिक्षुक ही हैं वे भरद्वाज की अतिथि सेवा को ध्यान से पढ़ें। जिससे प्रसन्न हुए अयोध्यावासियों ने अयोध्या तथा स्वर्ग सुख से अधिक प्रिय राम के सहवास एवं दर्शन की भी इच्छा त्याग दी थी। (सम्पादक)

तमृषिः पुरुष व्याघ्रं प्रेक्ष्य प्राञ्जलिमागतम्।
हुताग्निहोत्रो भरतं भरद्वाजो भ्यभाषत।।

— सर्ग ९२।२

अगले दिन प्रातःकाल भरत को हाथ जोड आता देख अग्निहोत्र किये हुए भरद्वाज मुनि बोले– 'हमारे आश्रम मे यह रात सुख से तो बीती ?'

इस पर भरत जी हाथ जोड़कर बोले–

सुखोषितो स्मि भगवन् समग्रबलवाहनः।
तर्पितः सर्वकामश्च सामैत्यो भगवंस्त्वया।।

— सर्ग ९२।५

भगवन् ! आपके आश्रय में रात्रि बड़े सुख से व्यतीत की है। आपकी दी हुई सामग्री से हम पूर्ण रीति से प्रसन्न हैं।

आप अब कृपा करके श्री रामचन्द्र के आश्रम का मार्ग बताइये। तब भरद्वाज ने कहा–भरत ! यहाँ से चौबीस कोस पर मन्दाकिनी के तट पर रम्य चित्रकूट आश्रम में कुटी बना कर राम लक्ष्मण बसते हैं।

भरत आगमन से लक्ष्मण को सन्देह– भरद्वाज से श्रीराम का पता पूछ प्रणामादि कर, माता और स्त्रियों सहित भरत उस ओर चल दिये और धीरे–२ वाल्मीकि जी के आश्रम में होते हुए वहाँ से श्री रामचन्द्र जी का कुशल क्षेम पूछकर चित्रकूट की ओर चले। जब चित्रकूट के निकट पहुँचे तब भरत जी श्रीराम की कुटी देखने के लिए एक ऊँचे पेड़ पर चढ गये और वहाँ से जब राम की कुटी और अग्निहोत्र का धुआँ दिखाई देने लगा तब भरत मन में बडे प्रसन्न हुए। नीचे उतर कर भरत जी ने वसिष्ठ जी से कहा कि आप सब माताओं को लेकर पीछे आइये। सब सेना को वहीं ठहरने की आज्ञा देकर भरत स्वयं शत्रुघ्न और सुमन्त के साथ श्री रामचन्द्र जी कुटी की ओर पैदल चल दिये।

जब भरत की सेना वन में पहुँची तब बहुत सी धूलि उड़ती देख और वनैले जीवों को व्याकुलता से इधर–उधर भागते जान रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा– भाई ! यह देखो कैसा कोलाहल मच रहा है ? ये हाथी, भैंसे, हिरण आदि जीव सिंहों से डरकर तो नहीं भागे या कोई राजकुमार तो आखेट खेलने नहीं आया ! देखो तो यह हल्ला–गुल्ला क्यों मच रहा है। यह सुन लक्ष्मण तुरन्त एक ऊँचे पेड़

पर चढ़कर चारों ओर देखने लगे तो उत्तर दिशा में बहुत से हाथी, घोड़े और सेना दिखाई दी। यह देखकर लक्ष्मण तुरन्त उस पेड़ से उतर कर श्री रामचन्द्र से बोले कि महाराज ! यह तो बड़ी भारी सेना है। अब आप सीता को किसी कन्दरा में बैठाकर अपने कवच आदि पहन लीजिये क्योंकि यहाँ घोर युद्ध होगा। श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि यह तो देखो कि सेना किसकी है? इस पर लक्ष्मण बड़े क्रोध से बोले कि हे राम ! वह कैकेयी का पुत्र हम दोनों को मारने आया है, यह उसी की सेना है। देखिये, धूलि उड़ती दीख पड़ती है। अब हमको शस्त्र–अस्त्र बाँध कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाना ही ठीक है। आज हम भरत को संग्राम में देखेंगे। हे वीर ! जिसके कारण आप, मैं और सीता ने राजपाट छोड़कर वन में कष्ट उठाया है, यह वही भरत तो आ रहा है। अब हम उसको मार डालेंगे, इसके मारने से कुछ पाप भी नहीं होगा, क्योंकि जो पहले दुःख दे, उसका मारना कुछ बुरा नहीं है। बस भरत के मारे जाने पर आप निर्भय होकर राज कीजिए। निस्सन्देह कैकेयी राज्य के लोभ से आज अपने पुत्र को मरा हुआ देखेगी, पीछे से उसके पिता भ्राता भी जो इसकी सहायता को आवेंगे, वह सब भी मारे जायेंगे और फिर आप स्वयं भी मारी जायेगी। आज भूमि बड़े भार से हल्की हो जायेगी और मेरा भी क्रोध उतर जायेगा। आज आप मेरे तीरों से भरत की सारी सेना को कटी देखेंगे। आज चील, शृगाल और कुत्ते भी पेट भर भोजन पावेंगे।

लक्ष्मण जी को बहुत क्रोधयुक्त देखकर तथा उनके क्रोध और वीररस से भरे वचनों को सुनकर भगवान् श्री रामचन्द्र कहने लगे– भाई ! इस समय शस्त्र–अस्त्रों का क्या प्रयोजन ? यह विनयसम्पन्न धर्मात्मा भरत आ रहे हैं। हम तो पिताजी से चौदह वर्ष के वनवास की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, अब भला हम भरत को मारकर सारे जगत में अपनी निन्दा करायेंगे ? कभी नहीं। हे लक्ष्मण ! जो चीज अपने भाई बन्धु के नाश से मिले, मैं उसे विष समझता हूँ। मैं भाइयों की हानि कर अपना सुख राज्य नहीं चाहता, नहीं तो तुम सरीखे वीर होते हुए, पृथ्वी का राज्य ले लेना कुछ भी कठिन नहीं है, पर अधर्म से तो मैं त्रैलोक्य का भी राज्य नहीं चाहता। मुझको जो सुख तुम्हारे और भरत के बिना हो उसको अग्नि जला दे।

मेरे विचार में तो मेरे प्राणों से भी प्रिय भरत जब ननिहाल से आये होंगे तब हमारे वनवास का वृत्तांत सुना होगा। भरत धर्मात्मा तो हैं ही। अपनी कुल रीति और धर्म मर्यादानुसार माता को बुरा–भला कह कर पिता जी से आज्ञा लेकर हमसे मिलने तथा लौटाने को आये होंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि भरत हमको दुःख देने आये हों। क्या कभी तुम्हारा भरत से विरोध हो गया था जो ऐसा विचार करते हो ? प्यारे ! देखो अब तुम भरत से कोई कठोर बात न कहना और जो कोई आक्षेप युक्त बात तुमने भरत से कही तो हम से कही समझना। यदि राज्य के लोभ से तुम ऐसा विचार करते हो तो जब भरत हमसे मिलेंगे तब हम उनसे कह देंगे कि तुम राज्य लक्ष्मण को दे दो। स्मरण रखो कि जिस समय हमने भरत से कहा–वे तुरन्त तुमको दे देंगे।

यह सुनकर लज्जा के मारे लक्ष्मण का सिर नीचा हो गया, फिर रामचन्द्र से उन्होंने क्षमा माँगी और कहा कि अब हम भरत को पिताजी के समान समझेंगे।

जब भरत, शत्रुघ्न तथा मंत्री और गुरुजनों के सहित चलते–२ श्रीराम की कुटी के निकट आये तब देखा कि श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण सहित मृगछाला तथा चीर वल्कल धारण किये बैठे हैं। बस देखते ही शोकातुर हो रोने लगे और रुँधे हुए कण्ठ से बोले– हा ! राजा रामचन्द्र जी के शरीर में सुगन्धित केशर, चन्दन, कपूर आदि लगाये जाते थे, आज उनके शरीर में धूल लग रही है। हा ! जिसके कारण बड़े भाई को इतना कष्ट हुआ मेरे उस जीवन को धिक्कार है। संसार भर के निन्दा के पात्र इस जीवन से क्या लाभ है। ऐसे कहते–२ भरत जी ने रामचन्द्र जी के चरण छूने के लिए हाथ बढाये, पर हाथ न पहुँच सके और वे शोक से मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े। शत्रुघ्न ने रामचन्द्र जी के चरणों को प्रणाम किया। श्री रामचन्द्र ने दोनों भाइयों को उठाकर हृदय से लगा लिया। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण सुमन्त और गुह से भी हृदय लगाकर मिले।

श्रीराम के नैतिक और धार्मिक प्रश्न तथा पितृ शोक!

तदनन्तर श्रीराम ने भरत के आँसू पोंछकर उनको अपने आसन पर बैठा लिया और कहने लगे–

क्व नु ते भूत्पिता तात ! यदारण्यं त्वमागतः।
न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ।।४
तात! कच्चिच्च कौशल्या, सुमित्रा च प्रजावती।
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकेयी।।१०
कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रे बहुश्रुतः।
अनसूयुरनुद्रष्टा, सत्कृतस्ते पुरोहितः।।११
कच्चिदग्निषु ते युक्तो, विधिज्ञो मतिमानृजुः।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा।।१२
इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम्।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित् त्वं तात ! मन्यसे।।१४
कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चेगिंतज्ञाश्च कृतास्ते तात ! मंत्रिणः।।१५
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञा भवति राघव।
सुसंवृतो मंत्रिधुरैरामात्यैः शास्त्रकोविदैः।।१६
कच्चिन्न् मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति।।१८
कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।।३२

कच्चिद् स्त्रियः सान्वयसे कच्चित्तास्ते सुरक्षिताः।
कच्चिन्न श्रद्दधा स्यासां कच्चिद् गुह्यं न भाषसे।।४६
कच्चिदर्थं कामञ्च धर्मं च जयतां वर।
विभज्य काले कालज्ञ ! सर्वान्वरद ! सेवसे।।५३

– अयोध्या कां० सर्ग १००

'प्यारे भाई ! पिताजी कहाँ गये जो तुम वन को आये हो। प्रतीत होता है कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है। हे तात ! तुम तो बहुत दिनों से ननसाल को गये थे, बहुत दिनों में मिलने और दुर्बल हो जाने के कारण हमने तुमको देर में पहचाना, भला तुम गुरु वसिष्ठ की सेवा तो करते हो ? भला कौशल्या कैकेयी और सुमित्रा तो प्रसन्न हैं ? भला अग्निहोत्र के समय को स्मरण कराने के लिए तुमने वेदपाठी पुरोहित तो नियत कर लिया है ? हे तात ! वाण–विद्या और सब शास्त्रों के जानने वाले सुधन्वा जी को तुम प्रसन्न रखते हो ? भला तुम्हारे मन्त्री तो तुमको अच्छी सम्मति देते हैं ? भला तुम्हारे मन की बात समय से पहले तो कोई नहीं जान लेता ? भला तुम्हारा सेनापति तो अच्छा है ? सेना का वेतन देने में तुम कृपणता तो नहीं करते ? भला प्रजा का तुम पर प्रेम तो है ? चोर और डाकुओं से प्रजा की रक्षा तो तुम अच्छी प्रकार करते हो ? अच्छे भोजन अकेले ही तो नहीं खा लेते ? अपने बान्धवों को भी खिलाते हो या नहीं?'

राजनीति के श्रेष्ठतम सूत्र इस प्रकरण में सन्निहित हैं।

यह सुनकर भरत ने कहा कि महाराज ! आप मुझसे राजनीति की बातें क्यों पूछते हैं ? मुझे इनसे क्या प्रयोजन ? हमारी तो कुल रीति है कि बड़े भाई के होते हुए छोटा भाई राजा नहीं हो सकता इसलिए आप हमारे साथ अयोध्या चलें और कुल रीति रखने के लिए राज्य तिलक कराकर राजा बनें और प्रजा की रक्षा करें। जिनको लोग अब तक राजा मानते थे वह तो देवलोक वासी हो गये हैं। मैं तो कैकय देश में रहा और आप वन में। वहाँ आपके शोक में राजा स्वर्ग को चले गये। अब उठिये और सीता तथा लक्ष्मण सहित उजड़ी अयोध्या को फिर बसाइये। राम ! आपने मेरी माता की इच्छा पूर्ण की और मुझको राज दिया, परन्तु आपका दिया वही राज मैं आपको देता हूँ। आप ऐसा कीजिये कि जिससे हम लोग आपको राजसिंहासन पर बैठे देखें।

राम का पितृ शोक

जब श्री रामचन्द्र जी ने भरत के मुख से राजा दशरथ का स्वर्गारोहण सुना तब हा ! कह मस्तक पर हाथ धर संसार गति व पिता के उपकारों को स्मरण करने लग गये ! कुछ देर पीछे इसी चिन्तन में मूर्छित हो गये। जब मूर्छा खुली तब भरत से बोले– भरत! जब पिताजी ही स्वर्ग को चले गये तब मैं अयोध्या जाकर क्या करूँगा ? भला अब मैं वहाँ चलकर उस महात्मा का क्या उपकार करूँगा ?

हा ! अब मुझको बिना पिताजी के कौन शिक्षा देगा, और जिन बातों से हमारे कानों को सुख होता था, उन्हें अब कौन सुनायेगा ? हे लक्ष्मण ! अब हम बिना पिता के हो गये। हे सीते ! तुम भी अब बिना श्वसुर के हो गईं।

कैसी मानव सुलभ अन्तर्वेदना है राम के इन शब्दों में।

राम का उपदेश

इतने में सब बन्धु और मातायें चित्रकूट पर आ गये रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण ने पूज्यों को प्रणाम करके उनका सत्कार किया। उस दिन राजा की मृत्यु का चिन्तन कर शोकमग्न रहे। दूसरे दिन उन्हें राम ने उपदेश दिया कि मरे का शोक करना वृथा है। यह कर्म तो अवश्यम्भावी हैं। जैसे पके हुए फल और अग्निदग्ध काष्ठ स्वयं गिर जाते हैं, वैसे ही वृद्धावस्था में देह छूट जाती है। जितनी भौतिक उन्नति है वह सब पतनशील है। जितने जीवन हैं, सब मरण फल वाले हैं। इनमें शोक निरर्थक है। सोच (चिन्तन) तो मनुष्य को आत्मा के उद्धार और परलोक के जीव का करना चाहिए। यह सुन कर भरत ने कहा –भगवन्! आपका उपदेश सत्य है। जिनकी जीवन–मरण में ऐसी निष्ठा हो, वह वास्तव में दिव्य जीवन धारी और अमर है। हमको शोक है कि आप हमें त्यागकर वन में आ बैठे हैं।

महाराज ! यह वनवास, यह चीर, वल्कल और जटाधारण, राजाओं के योग्य नहीं। राजाओं का प्रथम धर्म (कर्तव्य) राज्याभिषेक ग्रहण कर प्रजा का पालन करना है। आप कृपा कर अयोध्या में पधारिये और प्रजा की सब प्रकार से रक्षा कीजिये –

ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान् कर्त्तुमर्हति।
एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्या भिषेचनम्।।

– अ० कां० स० १०६।१६

यह सुन रामचन्द्र ने कहा–भरत ! तुम ठीक कहते हो। तुम्हारे लिए यही उचित है, पर हमको पिता की आज्ञा को पालन करना है। सत्यव्रती पिता ने तुम्हें राज्य दिया है, और मुझे वनवास। जिस प्रकार मैं वनवास भोग रहा हूँ वैसे ही आवश्यक है कि राज्य तुम भोगो।

जाबालि की कुप्रेरणा– इसके बाद में अयोध्यावासियों के हित कि लिए राजमन्त्री जाबालि ने कहा–राम ! तुम किस विश्वास में आकर १४ वर्ष का घोर वनवास भोगते हो। चलो, अपने निष्कंटक राज्य को भोगो जो तुम पिता की आज्ञा, पितृऋण व सत्य प्रतिज्ञा–पालन आदि का विचार कर रहे हो, ये सब मिथ्या है। संसार में कौन किसका पिता और गुरु है। मृत्यु (काल) इस बात को स्पष्ट कर देता है कि जगत् में किसी का कुछ सम्बन्ध नहीं। संसार में दान, धर्म, सत्य, व्रत, यज्ञ आदि सब वृथा हैं।

नवीन वेदान्तियों की कुप्रेरणायें भी इसी प्रकार की (वैदिक) कर्तव्य पथ से हटाने वाली होती हैं।

यह सुन राम ने पहले धर्म की महिमा वर्णन की और फिर यह कहा कि मैं लोभ, मोह, अज्ञान, भय वश भी सत्य धर्म की मर्यादा का भेदन न करूँगा क्योंकि सत्य में ही सारे जगत् का जीवन और सुख ठहरा हुआ है। अन्त में अपने पिता की नीति की इस अंश में निन्दा की कि–

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्।।

– अ० कां० स० १०६ श्लोक ३३

"जाबालि !यह जो तुम नरक में ले जाने वाली बातें करते हो, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। दोष मेरे पिता का ही है जिन्होंने तुम जैसे विषम बुद्धिवाले को जगत् का कल्याण करने वाली सभा का सभ्य बना रखा है।"

इस प्रकार राम को क्रुद्ध हुए देखकर वसिष्ठ आदि वृद्ध कहने लगे कि राम ! यह इसका अपना मत नहीं, किन्तु आपको अयोध्या ले जाने के लिए इसने यह सब कुछ कहा है। आप इसका कुछ ख्याल न करें। किन्तु प्रजा की, हम सब लोगों की इच्छा पूर्ण करने के लिए आप अयोध्या में चलकर राज्य संभालें।

वसिष्ठादि पूज्यों के ऐसा कहने पर भी श्री रामचन्द्र ने यही यहा कि चांदनी चन्द्रमा से अलग हो जाय, हिमालय हिम को त्याग दे, समुद्र अपनी सीमा को उलांघ जाय, पर मैं पिता की आज्ञा को नहीं त्यागूंगा–

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।

– अ० कां० स० ११२ श्लोक १८

भरत की आदर्श भातृ-भक्ति

यह सुन भरत ने कहा– महाराज ! अगर ऐसा है तो आप अपनी पादुका दे दीजिये। मैं उनको सिंहासन पर रख कर आपकी ओर से प्रजा–शासन करूँगा और अयोध्या त्याग वनवासियों की भाँति चौदह वर्ष तक (जब तक आप न आवें) सब भोग रहित हो, नन्दी गाँव में बसूंगा। आप चौदह वर्ष पूरे होते ही अयोध्या में पधारें। यदि ऐसा न हुआ तो मैं शरीर त्याग दूंगा। भरत के इस आग्रह पर रामचन्द्र ने उसे पादुका दे दीं जिन्हें लेकर भरत प्रसन्न मन अयोध्या को लौट आये और मुनि वेष में नन्दी गाँव में बसकर प्रजा पालन करने लगे। पर सिंहासन पर राम पादुका ही राजा रूप से स्थापित रहीं।

अनसूया का सीता को उपदेश– भरत के चले जाने और ऋषियों के कहने पर रामचन्द्र जी ने खर–दूषण आदि राक्षसों और सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जीवों से प्रजा की रक्षा के लिए चित्रकूट से चलने का विचार किया। अतः वहाँ से चलकर रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण सहित अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अत्रि ऋषि की पत्नी महातपस्विनी 'अनसूया'' के गुण वर्णन कर राम

ने सीता को उसकी चरण वन्दना, सेवा–शुश्रूषा करने तथा उससे उपदेश लेने को कहा, जिसे स्वीकार कर सीता ने अनसूया को प्रणामादि किया और उसके पूछने पर, अपने जन्म, विवाह, माता के उपदेश और वनवास की कथा सुनाई। प्रसन्न होकर अनसूया ने पतिव्रत धर्म एवं पतिसेवा का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा–

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता तासां लोका महोदयाः।।२३
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।२४

"सीते ! पति चाहे नगर में हो या गाँव में, गुणी हो या निर्गुणी, सदाचारी हो या दुराचारी, आर्य स्वभाव वाली स्त्रियों को उसकी पूरी श्रद्धा से सेवा करनी चाहिए। जो स्त्रियाँ भर्ता को प्रसन्न रखती हैं, उनका लोक, परलोक में महान् यश होता है।"

इस उपदेश को आदर से श्रवण करती हुई सीता ने कहा–देवि ! मैं पहले से ही उपदेश का पालन करती हूँ क्योंकि विवाह के समय मेरी जननी ने मुझे यही उपदेश दिया था जो मुझे अक्षरशः स्मरण है। इसके पीछे वन के कष्ट और उनका उपाय बताते हुए, ऋषिपत्नी अनसूया ने सीता के पहनने के लिए दिव्य वस्त्र दिये, जिनको मैल कम लगता था और जो मलिन होने पर अग्नि में धर देने से स्वच्छ हो जाते थे। अब यहाँ से ऋषियों के कल्याण के लिए राम, सीता और लक्ष्मण सहित दण्डकारण्य का मार्ग पूछकर दण्डकारण्य को चले गये।

।। अयोध्याकाण्ड समाप्त।।

।। ओ३म् ।।

अरण्य काण्ड

दण्डकारण्य में प्रवेश

चित्रकूट से चलकर ज्यों ही श्रीराम ने नाना प्रकार के वृक्षों, मृगों, पक्षियों से शोभित तथा नित्य यज्ञानुष्ठान करने वाले महातपस्वी, वातभक्षी, जलपायी फल मूलाहार के खाने वाले ऋषि मुनियों से सुभूषित दण्डकारण्य को देखा, जहाँ कि प्रत्येक पुरुष ब्रह्मतेज से प्रकाशमान तथा ब्रह्मोपासना में मग्न था तो बड़े प्रसन्न हुए। इस आश्रम में चारों ओर से वेदों की पवित्र ध्वनि आ रही थी और यज्ञ का धूम दशों दिशाओं के वायु को शुद्ध कर रहा था। जब उस तपोभूमि के ध्यानरत मुनियों ने राम सीता तथा लक्ष्मण का आगमन सुना तो सब ऐसे प्रसन्न हुए जैसे कि चन्द्रोदय होने से प्रजा होती है। सबने राम को एक पर्णशाला में कुशासन पर बिठाया और अतिथि सत्कार कर स्वस्तिवाचन के बाद कहा कि आप नगर में हों, या वन में, आप हमारे राजा हैं और राजा का धर्म है कि प्रजा की वैसी ही रक्षा करे जैसे गुरु शिष्यों व पिता पुत्रों की करता है। राजा वास्तव में दण्डधारी, गुरु, मान्य और पूज्य है –

पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः।।१६
नगरस्थो वनस्थो वा त्वन्नो राजा जनेश्वरः।।२०

– अरण्य कां० सर्ग १।

विराध वध

इस प्रकार मुनियों से सत्कृत हो, रामचन्द्र सूर्योदय हो चुकने पर सब मुनियों से आज्ञा ले वन में घूमने लगे। नाना मृगगणों से व्याप्त, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से युक्त, वृक्ष, बेल और गुच्छों वाले, दूर तक न दिखने वाले तालाब से शोभित अनेक प्रकार के पक्षी तथा झींगुर आदि के शब्दों से गुंजायमान वन के मध्य राम और लक्ष्मण ने देखा। फिर उस गहन वन में सीता सहित राम ने पर्वत के शिखर तुल्य घोर शब्द करने वाले एक राक्षस को देखा। वह राम, सीता और लक्ष्मण को देखकर, अति क्रुद्ध हो उनकी ओर दौड़ा। वह भयंकर शब्द से भूमि को कँपाता हुआ, सीता को गोद में उठाकर रामचन्द्र से बोला– तुम दो तपस्वी एक स्त्री के साथ क्यों रहते हो ? तुम धर्मात्मा ज्ञानी, मुनियों को दूषित करने वाले कौन हो ? यह वन बड़ा दुर्गम है, मेरा नाम विराध है। मैं नित्य ऋषियों

का माँस खाता हुआ, इस वन में घूमता हूँ। यह सुन्दर नारी मेरी भार्या होगी और मैं युद्ध में तुम दोनों पापियों का रुधिर पान करूँगा उस दुष्ट विराध के ऐसा कहने पर जानकी भय से काँपने लगी। विराध की गोद में गई सीता को देखकर उदास मुख हो राम ने लक्ष्मण से कहा– हे लक्ष्मण राजा जनक की पुत्री और मेरी भार्या शुभाचरण करने वाली सीता को विराध की गोद में बैठी हुई देखो। हे भाई! कैकेयी का वर के रूप में जो अभिप्राय हमारे लिए था, वह आज सम्पूर्ण हो गया। दूरदर्शिनी जो पुत्र को राज्य दिलाकर ही सन्तुष्ट नहीं हुई और जिसने सबका हित चाहने वाले मुझे वन में भिजवाया, उस मेरी बिचली माता का मनोरथ आज पूर्ण हो गया। सीता के परपुरुष के स्पर्श से मुझे जो दुःख हुआ है वह न तो पिता के वियोग से हुआ न ही राज्य के हरण से। शोकातुर राम के ऐसा कहने पर सर्प के समान फुंकारते हुए क्रुद्ध लक्ष्मण ने कहा– हे आर्य ! इन्द्र के समान आप तो सब के नाथ हैं फिर मुझ सेवक के होते हुए इस प्रकार शोक क्यों करते हो ? मेरे वाण से आज यह विराध मारा जायेगा, और इसके खून को भूमि पीयेगी।

यह कहकर हंसते हुए लक्ष्मण ने उस राक्षस से पूछा कि आप कौन हैं जो इस वन में स्वच्छन्द विचरते हैं ! अपनी गम्भीर आवाज से सम्पूर्ण वन को गुंजायमान करता हुआ, विराध उनसे फिर बोला कि पहले मुझे बताओ कि तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे? तत्पश्चात् तेजस्वी राम ने क्रोध से प्रज्वलित मुखवाले उस राक्षस को अपना इक्ष्वाकु कुल बतलाया और कहा वन में घूमने वाले हम दोनों युद्ध आचरण वाले क्षत्रिय हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि तुम कौन हो जो दण्डकवन में घूमते–फिरते हो। इस पर विराध सत्य पराक्रमी राम से बोला कि हे राजन् ! मैं अपना वृत्तान्त बतलाता हूँ, आप सुनो। मैं जय नामक राक्षस का पुत्र हूँ और मेरी माता का नाम शतह्रदा है। पृथ्वी पर सब राक्षस मुझे विराध नाम से पुकारते हैं। तप से और ब्रह्मा की कृपा से मुझे यह शक्ति प्राप्त है कि संसार में मुझे कोई शस्त्र से न तो मार सकता है, न काट सकता है और नहीं भेदन कर सकता है। इसलिए तुम इस स्त्री को छोड़कर और फिर इसकी इच्छा न करते हुए शीघ्र ही जैसे आये थे वैसे चले जाओ, अन्यथा तुम जीवित नहीं रहोगे। यह सुन क्रोध से लाल नेत्र करके रामचन्द्र जी पापी और विकृत आकार वाले राक्षस से बोले–अधम, तुझे धिक्कार है। तू अपनी मृत्यु को ढूंढ़ता फिरता है। ठहर जा, रण में अभी तेरी मृत्यु हो जायेगी, मुझसे बचकर तू जीवित नहीं जा सकता। तत्पश्चात् धनुष पर डोरी चढ़ाकर राम ने तेज बाण उस पर छोड़े और उसे मार डाला। विराध की मृत्यु सुन ऋषि बड़े प्रसन्न हुए।

शरभंग ऋषि का आश्रम

विराध को मार कर सीता–लक्ष्मण सहित श्रीराम शरभंग ऋषि के आश्रम में गये और ऋषि को प्रणाम कर आज्ञा लेकर बैठ गये। उस समय ऋषि के दर्शन को वहाँ देवराज इन्द्र ऐसे विमान से आये हुए थे जो सदा पृथ्वी से ऊपर रहता था, जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणें। इस विमान में हर समय चलने वाले, ठण्डी–गर्म हवा देने वाले पंखे लगे हुए थे। इसके अन्दर का प्रकाश पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था।

इन्द्र के चले जाने पर शरभंग ने श्रीराम से कहा आपके आने का समाचार हमें तपोबल से पहले ही ज्ञात हो गया था। अब हम इस शरीर को त्यागने वाले हैं। आपके दर्शन का संकल्प था। अब हम शीघ्र योगबल से देह को छोड़ देंगे क्योंकि यह शरीर अपने सब प्रकार के कर्तव्य कर्मों से निवृत्त हो चुका है।

आप अब सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम को जाइयेगा। वहाँ आपको सब प्रकार का सुख मिलेगा। इतना कहकर मुनि ने अग्निहोत्र किया और अन्त में पूर्ण आहुति का मन्त्र हुए स्वयं अर्पित हो गये। शरभंग जी का परलोक गमन सुनकर ऋषि, मुनि वहाँ इकट्ठे हो गये। इनमें बहुत से ऐसे तपस्वी व्रती थे जो केवल फल–फूल, कन्द–मूल पर निर्वाह करते थे। कई एक ऐसे थे, जो शाक पात खाते थे। अनेकों जल व वायु भक्षण कर निर्वाह करते, योगबल बढ़ाते और शम–दम में युक्त वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान करते थे। इनमें से कई कुटिया बनाकर और कई पृथ्वी, वृक्षों के ऊपर ही शयन करते थे।

ऋषियों की प्रार्थना

शरभंग के गुण वर्णन करने के बाद सब ऋषियों ने मिलकर श्रीराम से प्रार्थना की– हे राघव! आप इस पृथ्वी के स्वामी हैं। देश–देश में आपकी शूरता फैल रही है। आज आपके समान और कोई राजा नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में बहे जाते को नौका मिल जाने पर प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता आज आपके दर्शन से हमको हुई है।

राजन् ! देखिये, कैसा घोर अनर्थ हो रहा है कि राक्षस लोग हमारे यज्ञों को विध्वंस करते हैं और ऋषि मुनियों को मारकर खा जाते हैं। पम्पा नदी से मन्दाकिनी और चित्रकूट तक ये नीच बड़ा उपद्रव कर रहे हैं। हम आपको शरणागत पालक समझ कर आपकी शरण आये हैं। आप कृपा कर राक्षसों से हमारी रक्षा करो, क्योंकि इस पृथ्वी में आपके अतिरिक्त और कोई हमारी रक्षा करने में समर्थ नहीं है –

ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम ! वध्यमानान्निशाचरैः।।१६
पर त्वत्तो गतिर्वीरपृथिव्यां नोपपद्यते।।२०

– अरण्य काण्ड स० ६

यह सुनकर श्रीराम बोले–पूज्य गण ! आप इस प्रकार कहने के योग्य नहीं। मैं तो आप सब तपस्वियों की आज्ञा पालने वाला हूँ और इसीलिए वन में आया हूँ। आप आज्ञा करें, क्योंकि अपनी इच्छा से आपके कार्य सिद्ध करने के लिए ही मैं आया हूँ। आप चिन्ता न करें, अब मैं इन राक्षसों का अवश्य मारूँगा–

निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन।
सकल मुनिन के आश्रमहिं, जाइ-जाइ सुख दीन।।

(तुलसीदास)

सुतीक्ष्ण ऋषि का आश्रम

तदनन्तर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित ऋषियो से विदा होकर सुतीक्ष्ण जी के आश्रम को चले और मार्ग मे बड़ी-बड़ी नदियो को पार कर तथा वन को उलाँघ कर, उनके आश्रम में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होने ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि से यथायोग्य मान प्राप्त कर श्रीराम देश एवं धर्म सम्बन्धी बातचीत करने लगे। सायंकाल होने पर सन्ध्या उपासना कर रात्रि भर वे वहाँ रहे–

तमेवमुक्त्वा परमं रामः संध्यामुपागमत्।।१२
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत्।।१३

– अरण्य का० सर्ग ७

दूसरे दिन नियत समय (ब्रह्म मुहूर्त) में उठकर सन्ध्या, अग्निहोत्र और मुनि की चरण वन्दना कर, श्रीराम ऋषि की सम्मति ले अन्य मुनियों के आश्रमों को चले।

सीता का दयाभाव

मार्ग में चलते हुए सीता ने प्रेम से युक्त स्निग्ध वाणी से कहा–स्वामिन् ! धर्म का बल बड़ा है, पर उसे अधर्म सूक्ष्म भावों से आकर दूषित कर देता है। उन्ही लोगों का धर्म शुद्ध रहता है, जो काम से पैदा होने वाले व्यसनों से बचे रहते हैं, काम के तीन बड़े व्यसन है– (१) झूँठ बोलना (२) परस्त्रीगमन (३) बिना वैर किसी को मारना। सो पहली दो बाते तो आप में न थी, न हैं और होंगी। परस्त्री गमन तो आपके संकल्प में भी नही आया, क्योकि आप पक्के एकस्त्रीव्रती हैं और पूर्ण धर्मात्मा तथा सत्य प्रतिज्ञ हैं–

मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव।४
कुतो भिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम्।।५
मनस्यपि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित्।
स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज।।६

– अरण्य का० सर्ग ६

पर तीसरी बात जीव–हिंसा की आप में है, क्योंकि आप अभी ऋषियों से प्रतिज्ञा करके आये हो कि हम तुम्हारे यज्ञों के नाश करने वाले, तुम्हें दुःख देने वाले राक्षसों को मारेंगे। भगवन् ! जब

से आप इस दण्डकारण्य में आये हैं, तब से ही यह बात उत्पन्न हुई। इससे मुझको बड़ा शोक है और मैं सदा विचारती रहती हूँ कि इसका क्या फल होगा? इस विचार से मैं महाराज ! आप दोनों भाइयों का यहाँ आना अच्छा नहीं समझती क्योंकि आप दोनों भाई शस्त्र बाँधे हुए और क्षत्रिय वर्ण हैं। क्षत्रिय के पास शस्त्र और अग्नि के पास सूखा ईंधन हो तो ये अवश्य इनके बल को बढ़ाते हैं–

क्षत्रियाणामिहधनुहुताशस्येन्धनानि च।
समीपतः स्थित तेजो बलमुच्छ्यते भृशम्।।१५

– अरण्य काण्ड सर्ग ६

मैं आपको उपदेश नहीं करती, किन्तु स्नेह और मान से शास्त्र–वचन स्मरण करती हूँ। सो आप बिना अपराध किसी के मारने का विचार न कीजिए। जो आप कहें कि फिर क्षत्रियों के शस्त्र धारण करने से क्या प्रयोजन, तो वन में विचरते हुए क्षत्रियों का धनुष धारण करना, निरपराध जीवों के मारने को नहीं, वरन् जो वन में दुःखी लोग हैं, उनकी रक्षा करने के लिए है। इसलिए आप आर्तों (दुखितों) की ही रक्षा कीजिये–

क्षत्रियाणान्तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्।।२६

– अरण्य कां० स०६

फिर कोई दो बातें एक साथ भली प्रतीत नहीं होतीं। भला, कहाँ शस्त्र बाँधना, और कहाँ तपोवन निवास ? कहाँ तपस्वी और कहाँ क्षात्र धर्म ? इसलिए जहाँ का जो धर्म हो वहाँ वही करना चाहिए। यहाँ वन में आपको शस्त्रों से क्या काम ? जब आप अयोध्या जायेंगे, तब फिर शस्त्र धारण कर लेना, आपकी माता की यही आज्ञा थी कि मुनि वेश बनाकर वन में बसना। कुछ क्षत्रिय कर्म करने को तो उन्होंने कहा न था। जिस धर्म की आपको आज्ञा है वह कीजिये, क्योंकि धर्म ही से अर्थ और धर्म से ही सुख होता है। इस असार संसार में धर्म ही एक सार है। इसलिए आप भी अपने धर्म पर रहें।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।।३०
आत्मानं नियमै स्तै स्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः।
प्राप्तये निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम्।।३१

– अ० कां० स० ६

श्री राम की दृढ़ता

सीताजी के ऐसे स्नेह–स्निग्ध वचन सुनकर श्रीराम ने कहा–हे धर्मज्ञ जानकी ! तुम ने जो बातें

कहीं है वे बहुत अच्छी हैं। पर सुनो–

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त्तशब्दो भवेदिति। सर्ग १० ।३

'क्षत्रिय लोग जो धनुष धारण करते हैं, वह इसलिए कि कोई दुःखी होकर इनको अपने दुःख की बात न सुनावे।'

सो क्षत्रियों को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि किसी के दुखित वचन उनके कान तक न पहुँचें।

पर यहाँ तो एक नहीं अपितु सारे ऋषि दुःखी होकर मेरी शरण में आये हैं। ये ऋषि लोग राक्षसों से बहुत सताये गये हैं यहाँ के राक्षसों ने बहुत से ऋषि लोग खा डाले हैं और जो बचे हैं वे सहायता माँगते हैं। हमने उनको दुखी देखकर प्रतिज्ञा कर ली है कि हम आपकी सेवा करेंगे और आपके शत्रु राक्षसों को मारेंगे। अतः–

ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।।१७
मुनीनामन्यथा कर्त्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा।
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते ! सलक्ष्मणाम्।।१८
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्।।१९
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः।।२०

– अरण्य कां० सर्ग १०

अतः जानकी ! अब तो मैंने प्रण कर लिया है, सो जब तक हमारा शरीर है और जब तक देह में प्राण हैं, तब तक उनकी रक्षा करके अपना वचन पूरा करेंगे। वचन से नहीं फिरेंगे। मैं चाहे तुमको भी छोड़ दूँ, लक्ष्मण को भी छोड़ दूँ, और अपने जीवन को भी त्याग दूँ पर प्रतिज्ञा करके और वह भी ब्राह्मणों से अपने वचन कभी नहीं छोड़ूँगा। ऋषियों की रक्षा करना तो प्रतिज्ञा बिना ही मेरा कर्तव्य है फिर प्रतिज्ञा करके तो मैं कभी नहीं हटूंगा।

हाँ, यह तुमने जो हमारे सुख के लिये और हमारे स्नेह से कहा है, इससे हम बहुत प्रसन्न हैं।

अगस्त्य का आश्रम

इस प्रकार विचरते हुए श्री रामचन्द्र माण्डकार्णी मुनि के पंचाप्सर नामक तड़ाग को देखते हुए, कहीं चार मास, कहीं छः मास, कहीं दस मास, कहीं एक वर्ष या इससे भी अधिक सुखपूर्वक रहे। इस प्रकार मुनियों के आश्रमों में रहते–रहते उनके १० वर्ष व्यतीत हो गये। फिर सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये, उनसे कहा कि भगवन् ! मेरा चिरकाल से मनोरथ है कि मैं महर्षि अगस्त्य के दर्शन करूँगा, सुना है कि उन्होंने संसार के उपकार के लिए अनन्त कर्म किये हैं तथा सदा विद्या–विज्ञान की ज्योति

प्रकाशित कर रहे हैं। मेरी इच्छा है कि अपने हाथों शिष्यवत् उनकी सेवा करूँ। आप कृपा कर उनके आश्रम का मार्ग बताइये–

अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम्।
मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्त्तते।।३३
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम्।।३४

– अ० का० सर्ग० ११

श्रीराम के पूछने पर सुतीक्ष्ण ने कहा–हे राम ! मैं भी आपसे अगस्त्य के दर्शन करने के लिए कहने वाला था। शुभ हुआ जो आपकी स्वयं ही श्रद्धा है। यहाँ से चार योजन पर दक्षिण दिशा में उनके भाई "इध्मवाह" का आश्रम है वहाँ से एक योजन (चार कोश) पर अगस्त्य जी का आश्रम है। इस प्रकार मार्ग पूछकर , राम सीता और लक्ष्मण सहित वहाँ से चल पड़े। रात्रि रहकर, दूसरे दिन उस आश्रम में पहुँच गये, जहाँ यश और तपोबल से सूर्यवत् प्रकाशित तथा अपने प्रताप से मृत्यु स्वरूप दक्षिण दिशा को पवित्र बनाते हुए अगस्त्य मुनि रहते थे।

आश्रम का आदर्श वातावरण

आश्रम की शोभा इतनी भव्य थी कि देखते ही बनती थी। यहाँ सहस्त्रों देव, गन्धर्व, सिद्ध, याज्ञिक लोग, पतंग, ऋषि, महर्षि धर्म आराधना के लिए नियमपूर्वक जीवन बिता रहे थे। वृक्ष, लता, गुच्छ, गुल्म, कन्द मूल, फल–फूल, धातु–उपधातु सब वैज्ञानिक प्रक्रिया से निर्दोष एवं निर्मल किये गये थे। सब प्रकार के विषैले जीव, हिंसक, क्रूर जन्तु क्रूरता व हिंसा त्याग क्षुद्र मृगों व जन्तुओं के साथ स्नेह से जीवन व्यतीत करते थे। इतना ही नहीं–

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधिः।।६०

– अ० कां० सर्ग ११

वहाँ कोई मनुष्य झूँठ बोलने वाला, क्रूर, हठी, हत्यारा, पापाचारी जीवित ही नहीं रह सकता था, क्योंकि मुनि स्वयं इन सब दोषों से मुक्त पूर्ण वैदिक आचार रखने वाले थे।

इस आश्रम के द्वार पर जाकर राम ने लक्ष्मण से कहा– लक्ष्मण ! जाओ, अन्दर जाकर मुनि महाराज से कहो कि महाराजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र राम सीता और छोटे भाई के साथ दर्शनार्थ आया है। लक्ष्मण ने अन्दर जाकर उनके शिष्य से कहा–मुने ! सूर्यवंशी महाराज दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र राम अपनी पत्नी सहित महामुनि के दर्शनार्थ बाहर खड़ा है और मैं उनका छोटा भाई लक्ष्मण हूँ। हम सब ऋषि के दर्शन चाहते हैं। यह सुन शिष्य ने अन्दर जाकर महाराज अगस्त्य से राम का आगमन सूचित किया। उन्होंने आज्ञा दी कि उन्हें शीघ्र आश्रम में ले आओ।

आश्रम के वैज्ञानिक भवन

शिष्य गुरु की आज्ञा लेकर बाहर आया और बोला कि कौन राम हैं जो मुनि के दर्शनार्थ आये हैं। आइये, मुनि स्मरण करते हैं। पश्चात् वह मुनि शिष्य सीता लक्ष्मण सहित श्रीराम को बड़े आदर सत्कार से अन्दर ले गये। महामुनि के निकट ले जाने के पूर्व शिष्य ने श्रीराम को (१) ब्रह्मा का स्थान (२) अग्नि का स्थान (३) विष्णु का स्थान (४) महेन्द्र का स्थान (५) विवस्वान का स्थान (६) सोम का स्थान (७) भग का स्थान (८) कुबेर का स्थान (९) धाता का स्थान (१०) विधाता का स्थान (११) वायु का स्थान (१२) पाशहस्त महात्मा वरुण का स्थान (१३) गायत्री का स्थान (१४) आठ वसुओं के स्थान (१५) नागराज का स्थान (१६) गरुड़ का स्थान (१७) कार्तिकेय का स्थान (१८) धर्म का स्थान दिखाया।

प्रतीत होता है कि ये नाम विज्ञान सम्बन्धी शक्तियों के पैदा करने वाले स्थानों व साधनों के हैं। विज्ञानाचार्यों के नाम से ये विज्ञान-भवन होंगे जैसे आजकल के विश्वविद्यालयों में भी होते हैं।

राम को अपने निकट आते देखकर अनेक ऋषियों से घिरे हुए महामुनि अगस्त्य सम्मानार्थ आसन से उठ खड़े हुए। राम ने उनके चरणों पर सिर धरकर प्रणाम किया।ऋषि ने राम को उठाकर कुशासन दे, कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् अर्घ्यादि से उनका अतिथि पूजन किया। वानप्रस्थियों के योग्य फल–मूलादि का भोजन दिया। उस समय राम के यह शंका करने पर कि ऋषियों के आश्रम में राजपुत्र किस प्रकार अतिथि पूजन के पात्र हैं, ऋषि ने कहा–

अन्यथा खलु काकुत्स्थ ! तपस्वी समुदाचरन्।
दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत्।।
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियो तिथिः।।

– अरण्य का० सर्ग १२।२६।३०

जो तपस्वी होकर राजा का पूजन नहीं करते, वे दुष्ट साक्षी की तरह अपने माँसों को खाते हैं। क्योंकि, हे राम ! राजा सब लोगों की रक्षा तथा धर्म आचरण करने के कारण पूजा और सम्मान के योग्य है।

पूजन के पीछे महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को विश्वकर्मा का बनाया हुआ 'ब्रह्मदत्त' नाम का विष्णु धनुष, तीक्ष्ण वाणों से भरे हुए दो चाँदी के बने इषुधि (वाणकोष, भत्थे) तथा एक सोने के मुट्ठे वाला खड्ग दिया जिससे कि राक्षसों के मारने में सुगमता हो।

अगस्त्य मुनि के आश्रम के विवरण से मालूम होता है कि उस समय उनका आश्रम एक भारी विश्वविद्यालय व विज्ञान की शिक्षा का केन्द्रस्थान था जहाँ पर रसायन विद्या और शस्त्र-अस्त्रों की पूरी शिक्षा दी जाती थी।

- सम्पादक

इसके अनन्तर कुछ दिन वहाँ रहने पर श्रीराम ने अगस्त्य जी से किसी और उत्तम स्थान के विषय में पूछा तब अगस्त्य मुनि ने प्राकृतिक स्त्रियों के स्वभाव की आलोचना करते हुए तथा सीता के वन में आने के भाव की प्रशंसा करते हुए, श्रीराम को गोदावरी के तट पर 'पंचवटी' में वास करने की सम्मति दी क्योंकि वहाँ मधुर जल, वृक्षों की छाया, कन्द–मूल फल–फूल आदि की अनुकूलता थी।

पचंवटी की यात्रा और जटायु से भेंट

अगस्त्य जी से विदा होकर जब श्रीराम पंचवटी को चले, तो मार्ग में उन्होंने एक बडे देहवाले जटाधारी वृद्ध पुरुष को देखा–जिसे राक्षस समझकर राम ने पूछा, आप कौन हैं ? तब बड़ी मीठी और सौम्य भाषा में उसने कहा– बेटा! मैं तुम्हारे पिता दशरथ का सहाध्यायी मित्र हूँ–

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स ! मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः।।३
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।।

– सर्ग १४।४

यह सुनकर श्रीराम ने उसकी पितृवत् पूजा की और उसके कुल, गोत्र तथा नाम की जिज्ञासा की।

उत्तर में उस ब्राह्मण ने अपने कुल का विस्तार से वर्णन करते हुए बताया कि मैं अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह के सहयोगी मरीचि के कुल में कश्यप गोत्र के राजा अरुण का पुत्र जटायु हूँ। मेरी माता का नाम श्येनी था और मेरी बड़े भाई का नाम सम्पाति है। पुत्र ! यदि आप चाहें तो मैं आपके पास रहकर आपके वनवास समय में आपकी सहायता करूँ। जब आप लक्ष्मण सहित वन में आखेट आदि के लिए जाया करेंगे तो मैं सीता की रक्षा किया करूँगा–

सो हं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे।। सर्ग १३।।३४

स्पष्ट है जटायु पक्षी नहीं था। विशद् विवेचन के लिये समीक्षा प्रकरण (भाग २) देखें।

जटायु के मिलने से प्रसन्न हो राम पंचवटी में पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर जल तथा छायावान् वृक्षों के निकट कुटिया के लिए सम भूमि देखकर लक्ष्मण से कहने लगे, हे वीर! यह बड़ा सुन्दर और सुखद स्थान है। यहाँ पर पर्ण कुटिया बनाओ। हे सौमित्र! यहाँ ही हम इस महात्मा जटायु के साथ निवास करेंगे।

इह वत्स्याम सौमित्र सार्धमेतेन पक्षिणा (बन्धुना)।

– अरण्य का० सर्ग १५।१६

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने बहुत जल्दी बाँस तथा बड़े पत्तों वाले वृक्षों के पत्तों को काटकर पत्थरों की शिला और मिट्टी से एक बड़ी सुन्दर मनोरम तथा दर्शनीय कुटिया बना दी और साथ ही एक ओर यज्ञवेदी बना दी। इसके कुछ दूरी पर अपने और महात्मा जटायु के लिए अलग–२ कुटिया बना दी, जिन्हें देख राम बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मण की कार्य–कुशलता, भावज्ञता व पुरुषार्थवत्ता की प्रशसा करते हुए वहाँ नियमपूर्वक रहने लगे। वे सम्पूर्ण कार्य अपने हाथों से करते हुए, ऋषियों की भाँति जीवन बिताने लगे।

शूर्पणखा का आगमन

इस प्रकार श्रीराम जब पंचवटी में रहने लगे तो वहाँ के मुनियों के सब प्रकार के त्रास मिट गये।

जब ते राम कीन्ह तहँ वासा। सुखी भये मुनि बीते त्रासा।।

पंचवटी में रहते हुए, राम ने लक्ष्मण को धर्म और नीति विषयक अनेक उपदेश दिये। एक दिन राम सीता लक्ष्मण सहित जब गोदावरी से स्नान करके आश्रम में आये तथा प्रातःकालीन सन्ध्या यज्ञादि से निवृत्त हुए तभी एक राक्षसी घूमती हुई श्रीराम की कुटी के पास आई। राम के रूप–सौन्दर्य को देख वह उन पर मोहित हो गई। थोडी देर में श्रीराम के निकट आकर उसने कहा कि तुम मुनियों का भेष बनाये, जटा रखाये, धनुष बाण लिए हुए, इस राक्षसों के देश में क्यों आये हो ? तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है और तुम कौन हो ? अपना समस्त वृत्तांत तो बतलाओ। यह सुन कर राम ने सब कुछ बताया, सीता और लक्ष्मण का परिचय देकर कहा कि हम पिता की आज्ञा–पालन करने के लिए यहाँ आये हैं। तू बता कि तेरा नाम–धाम, कुल आदि क्या है। इस पर राक्षसी ने कहा कि मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं यथेच्छया रूप बना सकती हूँ। आपने लंकेश्वर रावण का नाम सुना होगा। वह मेरा भाई है, उसके प्रताप से ही मैं निर्भय होकर इस वन में फिरती हूँ। मेरे दो भाई और हैं। उनमें एक विभीषण है, उसका स्वभाव बड़ा शान्त तथा धार्मिक है। वह राक्षसी भावों से सर्वथा परे रहता है। दूसरे का नाम कुम्भकर्ण है, वह बड़ा बली है। इनके अतिरिक्त खर–दूषण दो और मेरे बलिष्ठ भाई हैं, मुझ में भी उनसे कम बल नहीं है।

मैं आपको अपना पति बनाना चाहती हूँ तथा इसी विचार से यहाँ आई हूँ–

तुम सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संयोग विधि रचा संवारी।। तुलसी०

अतः आप मेरे साथ विवाह कर लो। मुझमें सब प्रकार के गुण हैं। मुझे तिरस्कार करने वाला कोई नही है। जो कहो कि इस कुरूपा सीता की क्या गति होगी, सो इसको तो मैं तुम्हारे इस भाई के साथ खा ही लूंगी।

यह सुन श्रीराम बोले– मैं तो स्त्री वाला हूँ, यह मेरी प्रिया सीता विद्यमान है। इसलिए अब दूसरा विवाह नहीं कर सकता। यह मेरा छोटा भाई यहाँ स्त्री के बिना है और बड़ा शूरवीर तथा रूपवान् है। तुम इसके साथ विवाह कर लो।

तब शूर्पणखा ने लक्ष्मण के निकट जाकर विनय की कि आप मेरे साथ विवाह कर लें। मुझसे अच्छी तथा रूप–लावण्यवती स्त्री आपको और कोई नहीं मिलेगी। लक्ष्मण ने मुस्करा कर कहा–

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सो हमार्येण परवान्भ्रात्रा कमलवर्णिनि।।६

– अरण्य कां० सर्ग १८

'हे मृगनयनी ! कमलवर्णिनी ! मैं तो श्रीराम का दास हूँ, मेरी स्त्री बनकर तुम दासी और पराधीन क्यों बनना चाहती हो, मैं तो सब प्रकार से भाई के वश में हूँ। तुम भी पराधीन हो जाओगी और–

"पराधीन सपनेहूं सुख नाहीं।"

इसलिए तुम हमारे बड़े भाई की स्त्री बनो। तुम्हारे हमारे रंग में भी भेद है। इनकी यह स्त्री तुम्हारी समझ में कुरूपा और बूढ़ी है ही, बस तुमसे मिलते ही वे इसे छोड़ देंगे !'

अब वह राक्षसी फिर श्रीराम के समीप आई। उन्होंने समझा बुझाकर फिर लक्ष्मण के पास भेजा। जब लक्ष्मण ने फिर वही उत्तर दिया, तब राक्षसी ने विचारा कि सीता के सामने ये मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, इसलिए पहले मैं सीता का ही भक्षण कर लूँ। इस विचार से रौद्र रूप धर कर वह सीता की ओर बढ़ी। सीता जी मारे भय के कांपने लग गईं। तब क्रोध में श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा–वीर इसका उपाय करो। मूर्खों और दुष्टों से सौजन्य व उपहास अच्छा नहीं होता, हे श्रेष्ठ ! इसे विरूप कर दो।

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन।।१८।१६
इमां विरूपामसती मतिमत्तां महोदरीम्।।१८।२०

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने झट खड्ग निकाला और उसके नाक–कान काट लिये। अब वह नकटी और कनकटी होकर श्रीराम को गालियाँ निकालती तथा रोती चिल्लाती हुई अपने भाई खर और दूषण के समीप जाकर विलाप करती हुई धड़ाम से काष्ठवत् पृथ्वी पर गिर गई।

खर और दूषण का वध

जब उसके भाई खर ने अपनी बहिन के नाक–कान कटे देखे तब क्रोध में लाल नेत्र कर बोला बहिन ! कहो यह किसने तुम्हारे नाक–कान काटे हैं ? भला वह कौन है जिसने विष से भरे पात्र को मुख लगाया है, तथा वह कौन है जो विषैले कृष्ण सर्प को अंगुली से छेड़ रहा है ? वह कौन है जिसने काल फाँसी में अपना गला डाला है ? और तो क्या देवराज इन्द्र भी हमसे वैर कर सुख से नहीं सो सकता। जिसने तुमसे यह बुरा बर्ताव किया है, वह आज अवश्य हमारे तीक्ष्ण वाणों से मारा जायेगा। हम नहीं जानते कि आज किसके सिर पर काल खेल रहा है और आज किसके माँस से चील और कौओं का पेट भरेगा ? बहिन उठो ! बता दो वह कौन है जिसने तुम्हारी यह दशा की है ?' तब रोती हुई शूर्पणखा बोली– "भाई ! रूपवान्, शूरवीर, तपस्वी राजा दशरथ के पुत्र दोनों भाई वन में ठहरे हुए

हैं। एक बड़ी रूपवती सीता नामक स्त्री भी उनके साथ है। उन्हीं दोनों ने मेरी यह दुर्दशा की है। अब जब तक मैं उनका रक्त न पीलूँगी, तब तक मुझे शाँति नहीं है। पहली बार तुमसे मेरा यही काम पड़ा है, बस इसे करदो नहीं तो मैं मर जाऊँगी।''

यह सुनकर खर–दूषण ने पहले बड़े–२ चौदह राक्षस भेजे पर जब उनके मारे जाने की खबर आ गई तो **बारह प्रसिद्ध-२** युद्धनायकों के साथ सहस्त्रों राक्षस भेजकर पीछे आप भी मुख्य सेनापति बन शूर्पणखा को आगे कर राम की ओर चल पड़े। राम का बल देखने के लिए बहुत से राक्षस दल भेज कर, कुछ अपने पास रखकर खर–दूषण स्वयं एक पहाड़ी के पास ठहर गये।

- **वे बारह ये थे- १. श्येनागमी, २. पृथुग्रीव, ३. यज्ञशत्रु, ४. विहंगम, ५. दुर्जय, ६. कवीराक्ष, ७. परुष, ८. कालकामुकं, ६. हेममाली, १०. महामाली, ११. सर्पास्य, १२. रुधिराशन।**

काले बादल की तरह राक्षस सेना को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– वीर ! यद्यपि तुम उन सबको मार सकते हो पर मैं आज स्वयं ही इनको मारना चाहता हूँ, इसलिए तुम सावधानी से सीता की रक्षा करो।

सेना के आने पर अग्निपुञ्ज के समान तेजवान् कवच धारणकर श्रीराम धनुष टंकारते हुए, राक्षसों की ओर चल दिये और बोले, हे राक्षस लोगो ! हम राजा दशरथ के पुत्र उनकी पतोहू सहित इस वन में आये हैं, तपस्या करते हैं। तुम हमारे ऊपर क्यों चढ़े आते हो ?

हमने ऋषियों से प्रतिज्ञा कर ली है कि पापी राक्षसों को मारेंगे, इसलिए हम धनुष–बाण चढ़ाये हुए हैं। जो तुम लोगों को अपने प्राण प्यारे हों, तो यहाँ से भाग जाओ नहीं तो सामने खड़े हो जाओ। देखो, भागना नहीं। राक्षस भी बड़े निडर थे, हँसकर कहने लगे कि ओहो ! हमारे राजा खर को छेड़कर क्या तुम जीता रहना चाहते हो ? भला हमारी इतनी भारी सेना से तुम अकेले ही लड़ोगे ? अरे लड़ना तो क्या तुम तो हमारे सामने ठहर भी नहीं सकोगे। यह यहकर राक्षस लोग अपने–२ शस्त्र लेकर रामचन्द्र की ओर आक्रमण करने को दौड़े और श्रीराम के ऊपर वाणों की वर्षा करने लगे। तब राम भी अपने तीक्ष्ण वाणों से उनके वाणों को काटने लगे। थोड़ी ही देर में श्रीराम ने उन सब राक्षसों को मार गिराया। जब सब राक्षस मर गये तब शूर्पणखा रोती हुई खर के पास गई चिल्लाकर आक्षेप करती हुई बोली कि भाई ! मेरे नाक–कान कटे सो कटे, पर तुम्हारे भी सब राक्षस मारे गये। मुझको तो अब बड़ा ही भय लगता है। तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ? मेरे विचार में तो तुममें राम से लड़ने की शक्ति ही नहीं, वह तो अकेला ही सबको मारे देता है। अरे उसका छोटा भाई भी बड़ा बलवान् है। जब वे दोनों लड़ेंगे, तब क्या ठिकाना रहेगा ? इसलिए जो तुम अपने को शूरवीर समझते हो तो शीघ्र राम को मारो, पर आशा नहीं कि तुम कुछ कर पाओगे। शूर्पणखा के वचन सुनकर राम को तुच्छ समझने वाला पर उनके काम से विस्मित हुआ, खर अपने भाई दूषण और प्रधान योद्धाओं को साथ लेकर **१. मुग्दर, २. पट्‌ठिश, ३. त्रिशूल, ४. परशु, ५. खडंग, ६. चक्र, ७. तोमर, ८. शक्ति, ६. परिध, १०. अतिमात्र, ११. गदा, १२. असि, १३. मूसल, १४. वज्र** आदि विविध शस्त्रास्त्रों से भूषित हो युद्ध में पहुँचा।

राक्षसों के इस दूसरे सेना–दल को देखकर राम ने सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर युद्ध करना आरम्भ कर दिया और अपने तीक्ष्ण वाणों से शत्रुओं के शस्त्र काटने तथा प्राण हरने लगे। यहाँ तक कि थोड़े ही काल में उन्होंने सैकड़ों राक्षसों को मार दिया और उनके शस्त्र तोड़कर दूषण को भी मार डाला। दूषण की मृत्यु को सुनकर खर ने बड़े क्रोध से अपने सारथी से कहा कि मुझे राम के पास ले चलो। राम के सामने जाते ही उसने उन पर नाना प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। पर धन्य है आर्यपुत्र राम को जिसने अकेले ही सब शस्त्रों की चोटों को सहकर खर के रथ पर ऐसे शस्त्र चलाये जिससे उसका रथ टूट गया और जब वह फिर लड़ने को बढ़ा तब राम ने तत्क्षण ब्रह्मदण्ड लेकर इस रीति से उसकी छाती में मारा कि जिससे अग्नि–दग्ध काष्ठ की भाँति वह भूमि पर दग्ध होकर गिर पड़ा और उसी समय उस के प्राण निकल गये।

खर के मरते ही चारों ओर से ऋषि–मुनि और देवता विमानों में बैठे हुए राम पर पुष्पों की वर्षा करने लगे और स्वस्तिवाचन के मन्त्रों से राम के लिए मंगल–कामना करने लगे–

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज।
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः।।

– सर्ग ३० ।३६

हे दशरथ–पुत्र राम ! आपने हमारा काम कर दिया है, अब दण्डकारण्य में महर्षि निर्भय धर्माचरण करेंगे। राम ने उनको प्रणाम किया। सीता–लक्ष्मण के पास बैठकर राम परमेश्वर का धन्यवाद करने लगे।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते।
सुर नर मुनि सबके दुख बीते।। तुलसी०

रावण को सूचना

राक्षसों के मरते ही 'अकम्पन' नामक राक्षस ने रावण के पास जाकर सेना सहित खर दूषण की मृत्यु सुनाकर और सीता के रूप की श्लाघा करके रावण से कहा–राजन्! आप उस देवी को हर ले आवें। इससे एक तो उसके वियोग में राम मर जायेगा और दूसरे आपको स्त्री रत्न प्राप्त हो जायेगी।

सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति।३१।३१

इस बात को उत्तम जानकर रावण सीता के हरने के लिए घर से चल पड़ा और मार्ग में ताड़का के पुत्र मारीच से कहने लगा कि तुम सीता के हरने में मेरे मन्त्री (सलाहकार) का काम करो–

तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे। ३१।४१

पर मारीच ने यह कहकर उसे लौटा दिया कि राजन् ! तुम्हारे नाश के लिए किसी ने तुम्हें यह विष–मन्त्र दिया है।

रावण के बुरे दिन

पहले चक्र में तो मारीच की हित शिक्षा ने रावण को बचा दिया था पर इस लोकोक्ति के अनुसार कि 'जब बुरे दिन आते है तो अपना भला–बुरा दिखाई नही देता।' रावण शूर्पणखा के दुष्ट मन्त्र से फिर उसी काल–चक्र मे पड गया। शूर्पणखा ने कहा– हे रावण ! बडी लज्जा की बात है कि तुम यहाँ निश्चिन्त बैठे हो। तुम सरीखे असावधान राजाओ का राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। देखो तो मेरी क्या दशा है ? तुम्हारी जनस्थान की सेना खर दूषण सहित मारी गई है और तुम्हे कुछ भी ध्यान नही है। रावण ! तू बुद्धिहीन और अन्धा है तथा तेरे चर (दूत) दुष्ट हैं। वे तुझे कोई सत्य समाचार नहीं देते और तू सदा भोगों के वश में रहता है। स्मरण रख कि तेरे जैसे प्रमादियो का राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। प्रमाद रहित, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, धर्मज्ञ बाहर के नेत्रों से सोये हुए भी नीति नेत्रों से जागने वाले, उपकारी पर प्रसन्नता तथा अनुपकारियो पर क्रोध दिखाने वाले राजाओ का ही राज्य चिरकाल तक रहता है और उन्हीं की लोग पूजा करते हैं–

अयुक्तवारं दुर्दर्शमस्वाधीनं नराधिपम्।
वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपंकमिव द्विपाः।३३।५
अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम्।३३।२०
नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा।
व्यक्त क्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः।३३।२१

– अरण्यकाण्ड सर्ग ३३

रावण, देख ! जिस राम ने सब राक्षस मार दिये हैं और–

एका कथंचिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना।
स्त्रीवधं शंकमानेन रामेण विदितात्मना।।१२

– अरण्यकांड सर्ग ३४

स्त्री–वध के पाप का विचार करके अकेली मुझे ही अपमानित करके बड़ी मुश्किल से छोडा है, क्या तूने उस राम के लिए कुछ किया ?

उसकी स्त्री बडी ही रूपवती है जो केवल तेरे ही योग्य है। उसी के लिए मेरे नाक–कान काटे हैं, सो जा और उसको हर कर ले आ। इसी से राम भी मर जायेगा।

रावण को मारीच की शिक्षा

इन बातों को सुनकर और रूपवती सीता के लालच में आकर मन्द भाग्य रावण सीता को हरने की इच्छा से मारीच के पास सहायता लेने के लिए गया और बोला–

मारीच ! राम बड़ा मूर्ख, पापी, पिता का निकाला हुआ, कर्कश स्वभाव, कामी और मर्यादाहीन है। उसको अवश्य दण्ड देना चाहिए तथा सीता को हरकर ले आना चाहिये।

यह सुन कर मारीच ने कहा—रावण ! प्रतीत होता है कि राक्षसों के बुरे दिन आ गये हैं, जो तुम ऐसे विचारों को नहीं त्यागते और न तुम्हें कोई पथ्य वचन का सुनाने वाला ही मिला। रावण सच जान कि—

न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः।।८
न च धर्मगुणैर्हीनः कौशल्यानन्दवर्धनः।
न च तीक्ष्णो हि भूयानां सर्वभूतहिते रतः।।९
न रामः कर्कशस्तात ! नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः।
अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि।।१२
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः।।१३

— अ० का० सर्ग ३७

राम पिता का त्यागा हुआ, मर्यादाहीन, लोभी, दुःशील और क्षत्रिय कुल पाँसु नहीं है और न वह गुणहीन, तीक्ष्ण स्वभाव, कर्कश, मूर्ख, विद्याहीन, अजितेन्द्रिय व मिथ्यावादी है। राम राजधर्म की मूर्ति, साधु, सत्यवादी, पराक्रम वाला और देवराज के समान सारे लोकों का राजा है।

अतः किसी की शक्ति नहीं कि उसकी स्त्री सीता को कोई हिला सके। अगर तू इस विचार को न छोड़ेगा, तो सब कुछ नष्ट कर लंका के एक—एक घर को भस्म हुआ देखेगा। रावण ! स्मरण रख कि—

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरंमहत्।
प्रमदानां सहस्राणि तव राजन् परिग्रहे।।३०
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान्।
मानवृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः।।३१
कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्।।३२

— अ कां० सर्ग ३८

आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लंका न राक्षसाः।।४१।१६

पर–स्त्री पर कुदृष्टि करने से अधिक कोई पाप नहीं है। इसलिए तू अपने स्त्रीव्रत में दृढ़ रह। यदि तू अपने कुल, राक्षस गण, मान, उन्नति, इष्ट अपने जीवन, स्त्री–पुत्र और मित्रों की रक्षा तथा राज्य भोगने की इच्छा करता है तो राम से विरोध मत कर।

मैं इस नाशकारी कर्म में तेरी सहायता करने में समर्थ नहीं हूँ। यदि तू मुझे बलात् ले जायेगा तो निस्सन्देह मेरी मृत्यु होगी। यदि तू किसी प्रकार छलादि से अथवा मेरी सहायता से सीता को लंका में ले भी जायेगा, तो न तो तू, न लंका, न एक भी राक्षस जीवित रह सकेंगे।'

इस शास्त्रीय उपदेश को सुनकर भी मृत्यु के मुख में जाने और अपने कुल व राज्य को नष्ट करने वाले रावण ने स्त्री–मोह में पड़कर क्रूरता तथा मृत्यु भय दिखाकर मारीच को सीता हरण जैसे घोर कुकर्म के लिए उद्यत कर लिया।

सीता हरण

निदान रावण बड़े सामान (विमान, अस्त्र–शस्त्रादि) के साथ वन में पहुँचा। उस सामान को उसने मारीच के पास कुछ दूरी पर रख दिया और स्वयं उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। जब राम लक्ष्मण हिंस्र जीवों के आखेट • और कन्द मूल आदि लेने के लिए कुटी से बाहर चले गये तो वह सीता की कुटी के पास पहुंचा और सीता के गुणों की प्रशंसा कर कहने लगा–

'देवि ! तुम कौन हो और यहाँ किस लिये आई हो ? वह पुरुष बड़ा भाग्यवान है जिसको तुम मिली हो। तुम किसकी स्त्री हो ? सीता ने अतिथि समझ कर आर्य पद्धति के अनुसार आसन, पाद्य अर्घ्यादि से सत्कार कर उसका कुशल क्षेम पूछा और फिर अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि मैं राजा जनक की पुत्री और राम की रानी हूँ। स्वयंम्वर रीति से जब मैं १८ वर्ष की थी और राम २५ वर्ष के थे, मेरा विवाह हुआ था। १२ वर्ष तक अपने नगर 'अयोध्या' में रही। १३ वें वर्ष में राज्याभिषेक के समय माता कैकेयी की प्रेरणा पर पिता (राजा दशरथ) की आज्ञा–पालन के निमित्त अपने देव समान पति तथा देवर (वीर लक्ष्मण) के साथ मैं यहाँ वन में आई हूँ। माता कैकेयी ने अपने पुत्र भरत को राज्य

• **कई लोगों का विचार है कि आखेट के लिए ही रावण की ओर से कपट मृग रचा हुआ था, अर्थात् मारीच सोने का मृग बनकर गया। राम उसके पीछे निकले और फिर राम को दुःख भरी वाणी 'त्राहि-त्राहि' सुनकर सीता ने लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए जाने को विवश किया। लक्ष्मण चले गये तब सीता हरी गई। यह कथा असत्य तथा असम्भव है और वाल्मीकि रामायण में भी पीछे से मिलाई हुई हैं- कारण (१) एक तो हेम मृग ही असम्भव है फिर (२) राम जैसे- ज्ञानी से उसका भेद छिपा रहना भी कठिन है (३) मारीच जैसे रामबल व धर्म तत्व के जानने वाले से यह चाल अयुक्त है (४) सीता और लक्ष्मण की बातचीत आर्य भावों के विरुद्ध हैं (५) रावण और सीता के वार्तालाप में इसकी गन्ध नहीं आती (६) ऐसा मानने में प्रसंग नहीं मिलता (७) श्री चि० वि० वैद्य जैसे समालोचक भी इसको नहीं मानते।**

- (सम्पादक)

और हमें चौदह वर्ष का बनवास दिलाया है। यह दोनों काम रानी ने पूर्व काल में युद्ध के समय प्राप्त किये दो वरों से किये हैं।

मम भर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।४७।१०
रामेति प्रथितो लोके सत्यवाञ्छीलवान् शुचिः।४७।११

बाल विवाह के पक्षपाती इस पर ध्यान दें। विशेष समीक्षा प्रकरण में देखें।

सीता की बातें सुनकर रावण ने सोचा कि अब देर नहीं करनी चाहिए और राम–लक्ष्मण के आने से पहले ही सीता को ले चलना चाहिए।

यह विचार कर रावण बोला–सीते ! तुम्हारा तो समस्त वृत्तान्त जान लिया। अब हमारी सुनो। देखो, जिसके डर से देवता, असुर, मनुष्य सदा काँपते हैं, हम वही राक्षसों के राजा रावण हैं। अब हम तुमको लंका में ले चलेंगे और तुमको अपनी पटरानी बनायेंगे । वहीं सुख से रहना और अच्छे–अच्छे भोग–भोगना। इतना सुनते ही सीता क्रोध से अग्नि रूप होकर बोली–

सर्वलक्षण सम्पन्न न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुव्रता।।३४
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।।३७
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि।।३६
मन्दरं पर्वत श्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि।।४०
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वयालेढि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि।।४१
अवसज्यशिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि।।४२
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि।
अग्नि प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तु मिच्छसि।।४३
कल्याणवृतां यो भार्यां रामस्याहर्तु मिच्छसि।
अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि।।४४

– अ० कां० सर्ग ४७

'अरे नीच ! मैं सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी, सिंह समान बली पूर्ण चन्द्र समान मुख वाले, धर्म-मूर्ति रघुकुल तिलक राम की धर्मपत्नी हूँ। तू गीदड़ होकर क्या बकता है? तू मुझे स्पर्श करने के कभी योग्य नहीं है। जैसे सूर्य की प्रभा को कोई नहीं छू सकता वैसे ही तू मुझे नहीं छू सकता।

'अरे ! क्या तेरा काल निकट आया हुआ है जो तू सिंहनी को कुपित कर रहा है। मूर्ख ! तू सिंह के मुख से मृग और विषधर सर्प के मुँह से दाँत निकालने की इच्छा करता है। क्या तू पहाड़ को हाथ से उठाना और कालकूट (तीव्र विष) पीकर शान्ति चाहता है ? क्या तू आँख को सुई से खुजलाना और छुरे की तेजधार को जिह्वा से चाटना चाहता है, जो राम की पतिव्रता स्त्री को ले जाना चाहता है।

मूर्ख ! तू गले में पत्थर बाँधकर समुद्र तैरना, हाथों से सूर्य और चन्द्रमा को तोड़कर और प्रचंड अग्नि पुञ्ज को सूत के वस्त्र से बाँधकर ले जाना चाहता है, जो सीता को कुदृष्टि से देखता है। अरे नीच ! याद रख, जो पतिव्रता राम पत्नी को हरना चाहता है, वह तीक्ष्ण मुख वाले शस्त्रों पर चलना चाहता है।'

इतना कहकर सीता डर से काँपने लगीं। सीता के इन वचनों को सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया। वह बोला– 'हे सीते ! हम कुबेर के भाई हैं। हमारे भाई और बेटे बड़े-बड़े बलवान् हैं। हमारे सामने मनुष्य तो क्या देव भी काँपते हैं। जब हम क्रोध करते हैं तो इन्द्र भी डरता है। जहाँ बैठते हैं, वहाँ वायु भी भयभीत होकर मन्द-मन्द चलता है। हमारी लंकापुरी इन्द्रपुरी से भी सुन्दर व सुरक्षित है। उसके चारों ओर समुद्र की खाई है। जब तुम हमारे साथ विचरोगी तो राम को सदा के लिए भूल जाओगी। रामचन्द्र तो हमारी एक अंगुली के भी बराबर नहीं है।'

यह सुनकर सीता ने कहा, रावण ! शोक है कि कुबेर का भाई होकर पर-स्त्री के लिए दुष्ट संकल्प रखता है। दुष्ट ! स्मरण रख, वे सब राक्षस शीघ्र ही नष्ट हो जावेंगे जिनका तू कर्कश, दुर्बुद्धि तथा अजितेन्द्रिय राजा है। सीता का दृढ़ संकल्प जान दुष्ट रावण ने बाँये हाथ से सिर और दाहिने हाथ से पैर पकड़ कर सीता को रथ में रख लिया। इस अपमान से पहले तो सीता मूर्छित हो गई। पश्चात् हा राम ! हा लक्ष्मण! करती जटायु का नाम लेकर जोर से कहने लगी–

जटायो ! पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पाप कर्मणा।।

– सर्ग ४६।३८

'हे आर्य जटायो ! देखो यह पापी राक्षस मुझे बलात् लिए जाता है। तुम मेरी दशा श्रीराम से ठीक-२ कह देना।'

सीता की दुःख भरी वाणी को सुनकर जटायु अपनी कुटिया से निकला और रावण को देखकर बोला– भाई ! तू इस निन्दित कर्म के करने के योग्य नहीं है। तू राजा है और यह कर्म राजा के धर्म के विरुद्ध है। यदि तुझे राम से बदला लेना है तो उसे वन से आ जाने दे, उससे युद्ध करके सीता को ले जाना। इस समय सीता मेरी रक्षा में है। मैं अपने मित्र राजा दशरथ की पुत्रवधू राम की स्त्री सीता की अपने जीवन से भी रक्षा करूँगा। इसलिए उचित यह है कि तू इसे छोड़ दे, अन्यथा तू मुझसे

युद्ध कर। यह सुनकर रावण जटायु को मारने दौड़ा, युद्ध आरम्भ हो गया। दो घड़ी तक रावण तथा जटायु का घोर युद्ध हुआ। पहले तो जटायु ने अपने शस्त्रों से रावण का धनुष–वाण और रथ तोड़कर सारथी मार दिया, परन्तु जब वह दूसरे रथ (विमान) पर चढ़कर लड़ने लगा तो वृद्ध जटायु उसके वाणों से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

तब विलाप करती हुई सीता को रावण लंका की ओर लेकर चल पड़ा। उस समय सीता ने एक पर्वत पर चार–पाँच भद्र पुरुषों को विचार करते देख, अपने कुछ भूषण और वस्त्र इस विचार से वहाँ फेंक दिये कि कभी राम मुझे ढूँढ़ते हुए यहाँ आयें तो उनको मेरा पता मिल जाय। इस प्रकार रावण लंका में पहुँचा और सीता को पतिव्रत धर्म से पतित करने में नाना प्रकार के उपाय करने लगा, पर सीता राजा जनक की धर्मात्मा पुत्री थी अतएव वह अपने धर्म से किञ्चित् भी चलायमान नहीं हुई।

रावण द्वारा भय एवं प्रलोभन

फिर एक दिन रावण सीता के पास जाकर बहुत कुछ लोभ और भय दिखाने लगा। उसने सीता से कहा– जानकी ! तुम अब मुझ से लज्जा क्यों करती हो ? मैं तुम्हारे पांवों पर अपना सिर नवाता हूँ। मुझसे प्रसन्न हो, मैं तुम्हारा सेवक और दास हूँ। अब तुम रामचन्द्र को भूल जाओ। जब तुम हमारी लंका में आ गई हो। भला राम की क्या शक्ति है जो यहाँ तक आ सकें। तुम्हारे वियोग में वह तो मर भी गये होंगे। तुम अपना बड़ा भाग्य समझो, जो मैं तुम्हारी इतनी विनती कर रहा हूँ, देखो ये सैकड़ों दासी तुम्हारी सेवा में हैं। भूषण और वस्त्र जैसे तुम चाहो, बनवाओ। अब तुम लज्जा को छोड़ो। अब तो तुम मुझको ही सब कुछ समझो। देखो, मेरे यहाँ पुष्पक विमान है। जब तुम कहीं का भ्रमण करना चाहो तो उस पर चढ़कर करो। अब तुम मेरी ओर देखो। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम मुझको अपना पति बनाओ।

इतना सुनकर सीता चिक की आड़ में बैठी–२ निर्भय होकर बोली– रावण ! महात्मा पुलस्त्य के कुल में जन्म लेकर भी तू क्यों अपने कुल को कलंकित करता है। देख! मेरे पति रघुकुल के दीपक हैं। वे बड़े धर्मात्मा और शूरवीर हैं। मुझको पूरी आशा है कि जब वे मेरा पता पा लेंगे, तब झट यहाँ से मुझको ले जायेंगे। स्मरण रख कि वे तुझको बिना मारे नहीं छोड़ेंगे। अरे नीच ! अब मैंने जान लिया कि तू मृत्यु के जाल में फँस रहा है।

इस प्रकार जब रावण सीताजी के पतिव्रत धर्म को बिगाड़ने की इच्छा से उनसे बातचीत करता और उसको नाना प्रकार के लोभ देता तब–२ सीता जी भी उसकी बड़ी निर्भयता से झिड़क देतीं और क्रोध में आकर कह दिया करतीं कि मैं राम की पतिव्रता स्त्री हूँ। चाहे सूर्य पश्चिम में निकलने लगे, चाहे अग्नि शीतल हो जाय और चाहे चन्द्रमा की किरणें भी उष्ण क्यों न हो जायें पर मैं अपने पतिव्रत धर्म को न छोड़ूँगी। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य को नहीं छोड़ सकती, उसी प्रकार मैं राम को नहीं त्याग सकती। जैसे वेदपाठी ब्राह्मणों के यज्ञ की अग्नि को चांडाल नहीं छू सकता, जैसे सिंह के आखेट को गीदड़ नहीं छीन सकता, वैसे ही तुम भी हमको नहीं पा सकते। रावण ! जो तू मेरे शरीर के बाँधने

व मारने का मुझे भय दिखाता है, सो हे रावण ! इस निश्चेष्ट शरीर को चाहे, मार या बांध, मेरा उद्‌देश्य (व्रत) इस शरीर को, जीवन को बचाने का नहीं किन्तु धर्म बचाने का है। सो मैं इसको किसी प्रकार भी नहीं त्यागूँगी।

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस।।५६।२१

अशोक वाटिका में सीता जी

जब रावण ने देखा कि यह शोक नहीं त्यागती तथा मेरा कहना भी किसी भाँति नहीं मानती, तब उसने अपनी दासी राक्षसियों से कह दिया कि तुम इसको अशोक वाटिका में रखो और समझाओ। सीता से भी कह दिया कि जो तुम आज से १ वर्ष के भीतर कहना नहीं मानोगी तो तुम्हारा शरीर खंड–२ कर बोटी–२ कटवा दूँगा और तुम्हें खा जाऊँगा। अब बहुत सी राक्षसियाँ सीता को अशोक वाटिका में ले गई और वहाँ उनको नाना प्रकार के भय दिखाने लगीं। सीता तो सच्ची पतिव्रता थी उन्होंने सोच लिया था कि चाहे प्राण चले जांय पर धर्म को आँच न आने दूँगी।

श्रीराम का खेद

जब दोनों भाई आखेट से लौटे तो उनको बड़ा खेद हुआ। जो राम पिता की मृत्यु, राज्य के त्याग, माता के वियोग से कुछ भी उदास नहीं हुए थे, उनका मुख–कमल आज कुम्हला गया और आँखें गीली हो गई। मुख की लाली जाती रही और शरीर की सारी कान्ति और क्रान्ति नष्ट–भ्रष्ट हो गई। कारण राज्य त्याग से उन्होंने पितृ–आज्ञा –पालन रूप धर्मानुष्ठान किया था और आज उनको अपनी सुकुमारी, अबला, पतिव्रता पत्नी को निर्जन वन में छोड़ना, एक पाप अनुभव होता था। कभी राम कहते, लक्ष्मण ! सीता को किसी हिंसक जीव ने खा लिया। कभी कहते कि कोई राक्षस हरकर ले गया। कभी विचारते कि नदी पर जल भरने गई होगी, पर जब वहाँ भी न पाते तो अधीर पुरुषों की भाँति हा सीते ! हा प्रिये !! हा जानकी राजदुलारी !! कहकर पुकारते और कहते कि उसको अवश्य किसी ने खा लिया होगा। कभी पशु–पक्षियों को सम्बोधित कर कहते –

हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नैनी।।

इस प्रकार विलाप करते–२ वे लक्ष्मण से बोले– हे लक्ष्मण ! अब हम सीता के बिना अयोध्या में किस प्रकार जायेंगे। कौशल्या, सुमित्रा और भाई भरत से क्या कहेंगे ? राजा जनक और जानकी की माता के हम किस प्रकार दर्शन करेंगे ? यह सुनकर उदासीन मुख से, पर धैर्य देते हुए लक्ष्मण बोले– "आर्यवीर! आप शीघ्र ही सीता को प्राप्त करेंगे। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। चलो सीता के पग चिन्हों को देखकर उसको ढूंढें।"

जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार

इस प्रकार चिन्ता ग्रस्त राम लक्ष्मण जब सीता को ढूंढते–२ पर्वतों की कन्दराओं, वृक्षों की कोटरों मे लाँघकर एक खुले स्थान मे आये तो उन्होंने घायल हुए पतगेश्वर जटायु महाराज को देखा और उसकी दशा का कारण पूछ सीता का वत्तान्त पूछा। इस पर जटायु ने दीन वाणी से कहा कि मेरे प्राण बलवान रावण ने लिये है और सीता आपका स्मरण करती–२ विवश होकर उसके साथ गई है। बेटा राम ! मैने सीता को छुड़ाने के लिए रावण से युद्ध किया और एक बार उसके धनुषबाण और रथ को तोड़ा तथा सारथी को भी मारा। मेरे ही तोड़े हुए ये सब सामान पड़े है, पर मेरे वृद्ध होने के कारण वह मुझे मारकर चला गया है –

एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरस्तथा।
अयमस्य रणे राम ! भग्नः साग्रांमिको रथः।।१८
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्ष निहतो भुवि।।१६

– अ० कां० सर्ग ६७

जटायु की अन्तकालीन अवस्था को देखकर तथा अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओं को स्मरण कर राम लक्ष्मण से बोले– 'वीर ! देख, मेरे भाग्य कितने बुरे है कि (१) राज्य नष्ट हुआ (२) वनवास मिला (३) पिता की मृत्यु हुई (४) सीता हरी गई (५) यह ब्राह्मण मारा गया। मुझसे बढ़कर कोई मन्दभाग्य नहीं, जिसे इस चराचर जगत् मे इतने विपति जाल बाँधे हुए है। यह मेरे पिता का मित्र महाबली जटायु मेरे ही भाग्य–विपर्यय से रण–भूमि में पड़ा है। यह कहकर राम ने जटायु को पितृ–स्नेह से आलिंगन किया और पूछा कि पिता ! वह राक्षस कौन है और किस दिशा में सीता को ले गया है ? जटायु ने कहा–पुत्र राम ! वह दुष्ट रावण सीता को दक्षिण दिशा की ओर मेरे देखते–२ ले गया। यह कहकर महात्मा जटायु ने ईश्वर परायण होकर योग विधि से उस क्षत एवं जीर्ण शरीर को त्याग दिया। राम ने जटायु की मृत्यु को पिता की मृत्यु और सीता–हरण से भी अधिक दुखदायी समझकर पुत्र धर्म के नाते वन–काष्ठ एकत्र कर लक्ष्मण के साथ उस वीर महात्मा का वेद शास्त्र की विधि से अन्त्येष्टि संस्कार किया और फिर लक्ष्मण से उसके गुणानुवाद कहकर परमात्मा से उसके लिए प्रार्थना की –

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्।।२६
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्।
गृधराज महसत्त्व ! संस्कृतश्च मया व्रज।।३०

– अ० कां० सर्ग ६८

'हे सर्वेश्वर न्यायकारिन् प्रभो ! जो गति यज्ञशीलों और आहिताग्नि पुरुषों तथा धर्मयुद्ध में सम्मुख होकर मरने वाले वीरों, अनाश्रितों को भूमिदान करने वाले राजाओं की होती है, वही गति इस महात्मा की हो।'

भीलनी को उपदेश

महात्मा जटायु के संस्कार से निवृत्त होकर रामचन्द्र लक्ष्मण सहित आगे को चल पड़े। अभी थोड़ी दूर ही गये थे कि शूर्पणखा की भाँति 'अयोमुखी' नामक राक्षसी आकर इनको दुखित करने लगी। तब लक्ष्मण ने उसके नाक–कान काट लिए फिर वह वहाँ से भाग गई। तदनन्तर जब कुछ और आगे गये तो 'कबन्ध' नामी राक्षस मिला जो अत्यन्त क्रूरता से राम–लक्ष्मण को दुःख देने लगा। राम ने उसकी दोनों भुजायें काट दीं, मरते समय उसने राम का नाम, धाम, काम पूछकर क्षमा प्रार्थना करते हुए सीता को पाने के लिए पम्पा के तट पर ऋष्यमूक पर्वत में बसने वाले वानरराज सुग्रीव की मदद को आवश्यक बताया, तथा प्राण छोड़ते समय अपना संस्कार वैदिक रीति से करने को कहा। 'कबन्ध' का संस्कार कर राम–लक्ष्मण ने पवित्र वृक्षों, फलों, सुगन्धित पुष्पों वाली नदी पुष्करणी (पम्पा) की यात्रा की। अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि मार्ग में ● शबरी नाम की भीलनी का बड़ा रम्य आश्रम मिला। उसको देखने के लिए जब राघव आगे बढ़े तब वह बड़ी प्रसन्नता से उठी और राम–लक्ष्मण का स्वागत किया। इनकी पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय से विधिपूर्वक सेवा की और अपने आश्रम की यज्ञवेदि स्वाध्याय का स्थान दिखाया, जिसे देखकर राम ने उसके तप की बहुत प्रशंसा की और कुछ काल वहाँ रहे, आतिथ्य प्राप्तकर ऋष्यमूक की ओर चल पड़े। वृक्षों, लताओं, कुञ्जों, वन के मृग–पक्षियों को देखते हुए राम लक्ष्मण सहित पम्पा के तट पर पहुंच गये और थोड़ा विश्राम करने के पीछे लक्ष्मण से बोले–वीर ! तू शीघ्र महाराजा अंशुमान् के पुत्र वानरराज सुग्रीव के पास जा, क्योंकि सीता को ढूंढ़ने में देरी करना मेरे लिए बड़ा ही क्षोभदायक है।

● **१. प्रतीत होता है कि रामायण के समय में मानव मात्र को वेद तथा वैदिक कर्मों के अनुष्ठान का पूर्ण अधिकार था। २. भीलनी के जूठे बेर खाने का वर्णन वा० रा० में बिलकुल नहीं है और जूठा खाना-खिलाना निन्दित भी है। - सम्पादक**

।। अरण्यकाण्ड समाप्त।।

।। ओ३म् ।।

किष्किन्धा काण्ड

हनुमान और सुग्रीव

अब श्रीराम और लक्ष्मण सीता को ढूंढते हुए ऋष्यमूक (मलयाचल) पर्वत के पास पहुँचे जहाँ पर वानरराज सुग्रीव अपने मन्त्री हनुमान् आदि के साथ वास करता था। वास्तव में इनके रहने का स्थान किष्किन्धा पुरी था, परन्तु वह ऋष्यमूक पर वास करता था। सुग्रीव का बड़ा भाई 'बाली' बड़ा शूरवीर राजा था। सुग्रीव धर्मात्मा तथा सरल स्वभाव का पुरुष था और बाली क्रूर तथा हठी मनुष्य था। किसी बात पर रुष्ट होकर बाली ने सुग्रीव को अपने राज्य से निकाल दिया था। निकालते समय एक वस्त्र के सिवा किसी वस्तु वा बन्धु को अपने साथ नहीं लेने दिया। सुग्रीव बाली के भय से उस पर्वत पर एक दुर्ग का आश्रय लेकर रहने लगा। सुग्रीव की सज्जनता को जानकर इसके मन्त्रियों में से हनुमान आदि चार–पाँच मुख्य मन्त्री तथा कुछ सैनिक इसके पास आ गये और उन्होंने यावज्जीवन सुग्रीव की विपदा में सहायता करना अपना व्रत बना लिया। महाराजा सुग्रीव राम–लक्ष्मण को दूर से आते देखकर बहुत डरा और सोचने लगा कि कहीं इनको बाली ने मेरे मारने के लिए तो नहीं भेजा ? यह सोचकर उसने हनुमान को परीक्षा के लिए भेजा।

हनुमान की राम से भेंट

हनुमान सुग्रीव को साहस देकर तथा ब्राह्मण का रूप रखकर श्रीराम, लक्ष्मण के पास गये और विनीत भाव से उनको प्रणाम कर, उचित पूजा एवं प्रशंसा कर बोले –

'हे राजर्षे ! देव समान तेजस्वी महात्मन् ! आप तपस्वियों के वेष में इस नदी एवं वन की शोभा को बढ़ाते हुए, सुवर्ण समान देह वाले, सुन्दर धनुषों को धारणकर, वन्यजीवों को त्रासित करने वाले, धैर्य की मूर्ति, सिंह समान, पराक्रमी, सूर्य चन्द्र के सम तेजस्वी कौन हैं और इधर कैसे पधारे हैं ?

यह सुनकर राम के आदेश से लक्ष्मण ने पूछा कि आप कौन हैं और किसके दूत हैं ?

हनुमान ने आदर भरे शब्दों में अपना और सुग्रीव का परिचय देते हुए कहा –

युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं विद्धि वानरं पवनात्मजम्।।३।२२

'हमारा राजा सुग्रीव है। वह आपसे मित्रता चाहता है वह बड़ा धर्मात्मा और विद्वान् है। मैं पवन पुत्र उसका मन्त्री हूँ।

यह सुनकर राम बोले–लक्ष्मण ! देखो यह सुग्रीव का मन्त्री कैसा चतुर तथा विद्वान् है और कैसी कल्याण भरी स्पष्ट वाणी बोलता है। इतनी देर बोलने पर भी इसने कोई शब्द असंस्कृत (अशुद्ध) नहीं बोला– निश्चय है कि यह वेद और वेदांगों का पूर्ण पण्डित है क्योंकि –

नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवविभाषितुम।।२८
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।२६
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषःसंविदितः क्वचित्।।३०
संस्कारक्रम संपन्ना मद्भुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम्।।३२
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।
सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयो नघ।।३४

– किष्किन्धा का० सर्ग ३

बिना ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद के जाने ऐसा कोई नहीं बोल सकता। निस्संदेह इसने अनेक बार व्याकरण पढ़ा है और यह बड़े सभ्य, सुशिक्षित तथा संस्कारवान् माता–पिता का नियम पूर्वक जीवन–व्रत रखने वाला पुत्र है। इसके मुख, नेत्र, मस्तक व भ्रू–भाग में किसी प्रकार का भी दोष व चञ्चलता दिखाई नहीं देती तथा और भी किसी अंग, स्वभाव तथा चेष्टा में त्रुटि प्रतीत नहीं होती, जिस पार्थिव (राजा) का ऐसा दूत न हो, उसने कार्य सिद्ध नहीं हो सकते। जिसका यह दूत है उसके सब कार्य सिद्ध ही हैं।

जो लोग हनुमान को बन्दर समझते व मानते हैं वे कृपया महर्षि वाल्मीकि जी के लिखे इन राम वचनों को ध्यान से पढ़ें और सोचें कि क्या कभी बन्दर भी वेद-वेदांग पढ़ सकता है। राम जैसे विद्वानों के सामने अपने संस्कारों और शील-सौन्दर्य का प्रभाव डाल सकता है ?

- सम्पादक

इसके बाद लक्ष्मण ने अपना कुल नाम आदि सहित सारा वृत्तांत सुनाया और कहा– हे हनुमान! यद्यपि हमारा कुल और बल जगत् प्रसिद्ध हैं। परन्तु इस समय सीता के हरे जाने और दनु–पुत्र कबन्ध के कहने पर हम आपकी शरण में आते हैं। आप हमें अवश्य शरण में लें–

अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ।४।१७

हनुमान ने राम–लक्ष्मण को सीता पाने का विश्वास दिलाते हुए कहा– सुग्रीव भी आपकी भाँति भाई की क्रूरता के कारण, राज्यभ्रष्ट हुआ तथा स्त्री से वियुक्त, पर्वत पर निवास करता है। आप चलकर उससे मैत्री सम्पादन करें, फिर अवश्य आपका और उसका कार्य सिद्ध हो जायेगा।

सुग्रीव से मित्रता

तब दोनों भाई हनुमान के साथ हो लिए। पर्वत पर पहुंच कर सुग्रीव से मिले, शिष्टाचार के पीछे यज्ञ–वेदि में समिधा लगाकर, परमात्मा को साक्षी रखकर दोनों ने गूढ़ मैत्री का व्रत धारण किया और आपस में हाथ में हाथ मिलाकर एक आसन पर बैठकर विचार करने लगे और एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखते हुए कहने लगे कि अब अपना सुख और दुःख एक ही है –

काष्ठयो स्वेनरूपेण ● जनयामास पावकम्।
दीप्यमानं ततो वन्हिं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम्।।५।१५
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ।
ततः सुप्रीत मनसौ तावुभौ हरिराघवौ।।५।१७
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ व तृप्तिमभिजग्मतुः।
त्वं वयस्यो सि हृद्यो मे ह्येकं दुखं सुखं च नौ।।५।१८

● कहीं-कहीं 'हस्तेन' पाठ हैं।

इसी प्रकार कुछ देर तक प्रेम पूर्ण वार्तालाप द्वारा एक दूसरे को साहस देने के बाद सुग्रीव ने राम से कहा, राघव ! आप अब सीता के वियोग का दुःख हृदय से निकाल दें क्यों कि सीता चाहे पृथ्वी के किसी स्थान पर हो, मैं उसका शीघ्र पता लगाऊँगा। और हाँ ! मेरे पास कुछ भूषण और वस्त्र हैं। उन्हें देखिये ! कदाचित् वे सीता के ही हों क्योंकि एक दिन जब मैं अपने मन्त्रियों से विचार कर रहा था, तो विमान पर से हा राम ! हा लक्ष्मण ! का उच्चारण करती हुई एक स्त्री ने यह मेरी ओर फेंके थे। सुग्रीव ने भूषण और वस्त्र मँगाकर राम के आगे रखे।

यतिवर लक्ष्मण का आदर्श

भूषणों को देखकर राम का हृदय शोक–व्यथा से उमड़ आया। मन को रोककर वह लक्ष्मण से बोले– देख लक्ष्मण ! क्या वह तेरी भावज के ही भूषण हैं ?

श्री राम जी भूषण लक्ष्मण को दिखाते जाते थे, परन्तु लक्ष्मण हाथ, कण्ठ तथा सिर के भूषणों को देखकर बोले–भ्रातः ! मैं इनको नहीं पहचान सकता, पर जब पाँव के नूपुर देखे, तब वह झट बोल उठे कि हाँ, आर्य ! यह माता सीता के ही भूषण हैं। सुग्रीव आदि ने अचम्भित होकर पूछा कि लक्ष्मण!

जब तुम्हें सीता के पास रहते इतना लम्बा काल हो गया है, तो तुम उसके भूषणों को क्यों नहीं पहचान सके ? किन्तु केवल नूपुर कैसे पहचान लिये ? इस पर लक्ष्मण बोले– मित्र ! मैं कुण्डल, केयूर, हारादि को इसलिए नहीं पहचान सकता कि मैंने कभी सीताजी को ऊँची दृष्टि से नहीं देखा।मैं केवल उनके पाँवों को ही चरण–वन्दना के समय ● देखा करता हूँ–

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात्।।६।२२

● **पाठक ! आप अपने महापुरुषों के भावों को देखें जो राजकुमार होने पर वन में बारह वर्ष तक एकान्त में भाई की स्त्री तक को आँख उठाकर नहीं देखते। सचमुच जिस जाति में लक्ष्मण जैसे संयमी वीर हों, वह क्यों न जगत् पर विजय प्राप्त करे ?**

राम सीता के दुःख का स्मरण करते हुए अधीर से हो गये और नाना विधि वाक्यों से शोक प्रकाशित करने लगे। राम को धैर्य देते हुए सुग्रीव ने कहा– राम ! शोक मत करो, मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि जानकी का शीघ्र ही पता लग जायेगा। मुझे भी आपकी भाँति स्त्री–वियोग का दुःख है, पर मैं न शोक करता हूँ, न धैर्य छोड़ता हूँ। जब मुझ जैसा– साधारण मनुष्य शोक नहीं करता तो आप महात्मा होकर शोक क्यों करते हो ?

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे।
विमृशन् च स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति।।७।६
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयन्ते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि।।७।१२

'हे राम ! धृतिमान् पुरुष व्यसन में, भारी कष्ट में, धन के नाश में तथा जीवनान्त में भी विचार करते हैं, शोक नहीं करते। जो शोक करते हैं उनका सुख नष्ट हो जाता है, तेज हीन हो जाता है और बहुधा जीवन में भी सन्देह हो जाता है। हे राजेन्द्र ! आप शोक त्याग कर धैर्य का आश्रय लें।'

बाली के वैर का कारण

सुग्रीव के उपदेश से शोक त्याग कर राम ने सुग्रीव से पूछा–

'मित्र ! तुम्हारे और बाली के विरोध का क्या कारण है ?' सुग्रीव ने कहा– राम! जब मेरे पिताजी उपराम हो गये, तब बड़ा और बली होने के कारण मंत्रियों ने बाली को राजा बना दिया और मैं उसके सामने भृत्यों की भाँति रहने लगा। जब कुछ काल उनको राज्य करते हुए व्यतीत हुआ तो एक बार अर्द्ध रात्रि के समय दुन्दुभि असुर का बड़ा पुत्र जिससे स्त्री हरने के कारण बाली का विरोध था, किष्किन्धापुरी में आकर क्रूरता करने लगा। जब हम सबने पीछा किया तो वह भाग गया।

फिर मैं और बाली उसके पीछे एक पहाड़ी के मार्ग में गये। मुझे बाली ने कहा—सुग्रीव! तुम यहाँ ठहरो, मैं इसको मार कर आता हूँ। उसके कथनानुसार मैं वहीं ठहरा रहा। जब बाली को गये एक वर्ष से भी अधिक हो गया तब मैं बाली को मारा गया समझ कर उस पहाड़ी मार्ग को पर्वत शिलाओं से बन्द कर किष्किन्धा में आ गया। राज्य खाली देख और राजपुत्र अंगद को छोटा जान, सारी प्रजा और मन्त्री लोगों ने मुझे ही राजा बना दिया। जब राज्य करते हुए मुझे कुछ समय बीत गया, तो बाली उस असुर को मारकर और कष्ट से मार्ग की शिलाओं को हाथों से उठाकर किष्किन्धा पुरी में आया जिसे देखकर हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने बड़े मान से उसे प्रणाम किया।

किन्तु मुझे राजा देखकर बाली के मन में यह झूँठा विश्वास बैठ गया कि सुग्रीव राज्य के लोभ से पहाड के मार्ग को जान—बूझकर मेरे मारने के लिए बन्द कर आया था। यह सोचकर उसने मेरे प्रणाम का उत्तर भी न दिया और बल से राज्य प्राप्त करते ही उसने मेरा सर्वस्व तथा स्त्री भी हर कर मुझे राज्य से निकाल दिया। मेरे साथी हनुमान आदि कुछ मन्त्री और भद्र जन मेरे पास आ गये और अब हम उसी के भय से इस पर्वत पर इस दुर्ग में रहते हैं। यही हमारे आपस के वैर का कारण है, यदि आप कुछ कर सकते हैं तो करें।

श्रीराम ने कहा—'मित्र ! हमारे पास बड़े—बड़े घोर शस्त्र हैं जिनके सामने कोई शत्रु नहीं बच सकता। वह स्त्री हरने वाला तब तक ही जीता है, जब तक मेरे सामने नहीं आता।

श्रीराम की शस्त्र परीक्षा

राम के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव ने कहा—राघव ! मैंने आपका शस्त्र—कौशल नहीं देखा। किसी समय यदि अपना प्रयोग दिखायें तो अच्छा हो। यह सुनकर राम ने धनुष पर वाण चढ़ाकर छोड़ा, जो साल के सात वृक्षों को बींधकर पार हो गया जिसे देखकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ। अब उसे पक्का विश्वास हो गया कि इनकी सहायता से अवश्य बाली मारा जायेगा।

बाली सुग्रीव का युद्ध

राम की शस्त्र विद्या को जाँचकर राम के सहारे सुग्रीव किष्किन्धा में गया और वहाँ जाकर युद्धार्थ बाली को ललकारा। जब बाली आया तो युद्ध होने लगा, परन्तु दोनों का एक रूप तथा एक वर्ण होने के कारण दूर बैठे राम कोई सहायता न कर सके कि कदाचित् धोखे में सुग्रीव ही न मारा जाय और हमारा काम बीच में ही रह जाय। युद्ध में जब बाली को बलवान् देखा तब सुग्रीव वहाँ से हट आया। राम से पूछने पर मालूम हुआ कि दोनों के समान रूप तुल्य आकृति होने के कारण राम सहायता नहीं कर पाये, इसलिए राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सुग्रीव के गले में पुष्प माला बाँध दी, जिससे युद्ध में बाली और सुग्रीव का भेद प्रतीत होता रहे।

तारा का निवेदन

दूसरे दिन सुग्रीव ने युद्धार्थ बाली को ललकारा। जब बाली क्रोधयुक्त होकर घर से निकलने लगा, तब उसकी स्त्री तारा ने कहा—नाथ ! आप युद्ध के लिए मत जायें। अब सुग्रीव अकेला लड़ने नहीं आया, बल्कि वह किसी बलधारी, धर्मात्मा, दृढ़प्रतिज्ञ और कृतज्ञ मित्र की सहायता से आ रहा है। वह बड़ा बुद्धिमान है। उसको आप निर्बल न समझें। मैंने राजकुमार अंगद से भी सुना है (उसको वन में जाने वाले गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है) कि सूर्यवंशी दशरथ के पुत्र महाबली, शूरवीर राम और लक्ष्मण आये हुए हैं। स्वामिन् ! आप उनसे और सुग्रीव से प्रीति कीजिये, इसी में आपका हित है।

यह सुनकर बाली बोला, प्रिये ! तुम अन्दर जाकर महलों में बैठो। मैं तुम्हारे स्नेह का कृतज्ञ हूँ। पर तुम वीर धर्म को नहीं जानतीं—

अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम्।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते।।१६।३
सोढुं न समर्थो हं युद्धकामस्य संयुगे।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम्।।१६।४
न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करष्यति।।१६।५

'वीर के लिए युद्धार्थ बुलाये जाने और अपमान के शब्द कहे जाने पर घर में बैठे रहना, मरने से भी बुरा है। इसलिए सुग्रीव की युद्धार्थ ललकार को मैं सहन नहीं कर सकता, चाहे कुछ हो। राम की ओर से तुम कुछ भय मत करो, क्योंकि जब मैं उसका कुछ नहीं बिगाड़ता, तो वह धर्म के तत्व को जानने वाला कैसे पाप करेगा ?''

बाली के इन शब्दों को सुनकर विवश होकर तारा पति को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, राजमहल को चली गयी और वेदों को जानने वाली वह स्वस्तिवाचन व प्रार्थना कर, शोक मोह से युक्त स्त्रियों के साथ राजमहल में बैठ गई।

बाली का वध और राम पर आक्षेप

तारा को पीछे हटा व झिड़क कर, जब बाली आगे बढ़ा और सुग्रीव से युद्ध करने लगा तो कई मुहूर्त तक युद्ध होता रहा। जब सुग्रीव निर्बल होकर गिरने लगा तो राम ने रत्न जटित सुवर्ण माला पहने बाली की छाती में ऐसा वाण मारा कि उसके लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और तत्क्षण उसका बल घटने लगा। राम के वाण से मृत्यु को निकट समझकर बाली बोला—राम ! तुम तो अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हो और व्रती कहलाते हो। दूसरे के बदले लड़ने और दूसरी ओर मुख होने पर मुझको मारने में तुमको क्या लाभ हुआ, इस पाप कर्म को तुमने क्यों किया ? राघव ! शम, दम, क्षमा, धृति,

सत्य और पराक्रम से विरोधियों को दण्ड देना राजाओं का धर्म होता है। इसलिए तुमने इन सबको जानते हुए यह पाप कर्म क्यों किया ? अगर मैं तुम्हारे राज्य या नगर में पाप करता, तब तुम मुझे मारते परन्तु तुमने मुझे निर्दोष ही मारा है। मैंने तो तुम्हारी कोई अवज्ञा भी नहीं की। भूमि, धन और स्त्री ये युद्ध के निमित्त होते हैं, पर यहाँ तो इनमें से कोई भी नहीं, फिर तुमने यह नरक का देने वाला प्राणि हिंसक रूप कर्म क्यों किया? राम ! तुम्हें स्मरण होगा कि–

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चौरः प्राणिवधे रतः।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः।।१७।३६

राजा को मारने वाला, ब्रह्म हत्यारा, गौहिंसक, चोर, प्राणियों का वध करने वाला, वेद विरोधी नरक को जाता है।

यदि तुमने सीता को ढूंढने के लोभ में सुग्रीव के लिए मुझ अपराधरहित को मारा है, तो यह काम तुम मुझे ही कह भेजते। मैं तुम्हारी सीता को समुद्र के मध्य और पाताल के गढ़ों से भी ले आता और उस दुष्ट रावण को भी बन्दियों की भाँति बाँधकर ले आता। आर्य ! यह तो उचित होगा कि मेरे स्वर्ग सिधारने पर राज्य सुग्रीव करे, परन्तु यह तो बहुत अनुचित हुआ जो तुमने अधर्म से मुझे मारा। राम! तुम वन में धर्म पालने के लिए आये हो, किन्तु मुझे तो तुमने वधिक की भाँति अज्ञान में ही मारा है। नाथ ! आपको तो हम दोनों भाई एक से थे फिर किस कारण आपने मुझे मारा ?

धर्म हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेउ मोहि व्याधि की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा।।

श्री राम का उत्तर

यह सुन राम बोले–बाली ! सुनो जो तुम कह रहे हो, वह सब चंचलता से कह रहे हो। देखो यह सारी भूमि सूर्यवंशियों की है। सूर्यवंश का सम्राट भरत जगत् का शासन कर रहा है। हम उसी की आज्ञा पालने वाले कर्मचारी हैं। जो धर्म पर न चले उसको दण्ड देने का हमें भी अधिकार है। धर्म–शास्त्र की आज्ञा है कि यदि पापी को राजा दण्ड नहीं देता, तो उसके पाप को राजा भोगता है। चाहे पाप करने वाला किसी भी देश, काल ,वर्ण–आश्रम व योनि में ही क्यों न हो।

देखो शास्त्र में बड़ा भाई, पिता और गुरु तीनों पिता समान और छोटा भाई, पुत्र तथा शिष्य तीनों पुत्र के तुल्य हैं। सो तुम अपने कर्म को सोचो–

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।।१८।१८
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पाप कर्मकृत्।।१८।१६

न च ते मर्षये पापं क्षत्रियो हं कुलोद्गतः।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः।।१८।२२
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः।
भरतस्तु महीपाले वयं त्वादेशवर्तिनः।।१८।२३

तुमने सनातन (वैदिक धर्म) की मर्यादा को त्याग कर इस महात्मा सुग्रीव की स्त्री 'रूमा' को जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान थी, इसके जीते जी पापाचार के लिये घर में रखा। बस, इसलिए मैंने शास्त्रानुसार यह दण्ड दिया है। मैं क्षत्रिय होने के कारण इस पाप को देख नहीं सकता। तुम धर्म से गिरे जा रहे थे। इसलिए इस पाप का यही दण्ड था। इसमें कोई पाप नहीं, यदि तुम विचारोगे तो तुम्हें यह ठीक लगेगा।

बाली ! हमारे पूर्वज मान्धाता ने ऐसा घोर पाप करने वाले एक दुष्ट को यही दण्ड दिया था और उसे किसी ने पापी नहीं कहा था।

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुन शठ ये कन्या समचारी।।
इन्हें कुदृष्टि विलोक जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

बाली ! राजा लोग इस संसार के जीवन, धन–सम्पत्ति और सत्य धर्म के भी दाता होते हैं, इसलिये यदि तुझे धर्म की मर्यादा स्थिर रखने के लिए दण्ड दिया गया है तो यह पाप नहीं है। तुम केवल क्रोध वश होकर हमारे कर्म की निन्दा करते हो।

बाली का अन्तिम सन्देश

राम के सत्य धर्म युक्त उपदेश को सुनकर तथा अपने दुष्ट चरित्रों को याद कर बाली बोला– राम ! आपने जो मुझे दंड दिया है सो ठीक किया। अब यह बालक अंगद तथा उसकी माता (सुषेण की कन्या) 'तारा' आपके अधीन है। मैं चाहता हूँ कि जिस प्रकार आप में भरत–लक्ष्मण की प्रीति है, वैसी प्रीति इसकी सुग्रीव में हो जाय। सुग्रीव को भी आप समझा दें कि वह तारा का कभी अपमान न करे क्योंकि वह सर्वथा निरपराध है। जो कुछ उसने कभी कहा– सुना भी है वह मेरे कहने पर किया है, स्वतः नहीं।

मालूम होता है कि रामायण के समय में पति के मरने पर पुनर्विवाह सनातन (वैदिक धर्म) के अनुकूल था। यही कारण है कि इसका नवीन टीकाकारों ने भी विरोध नहीं किया वरन् समर्थन किया है।
- सम्पादक

तारा का विलाप

बाली को मृत्यु–मुख में पड़ा देखकर उसकी पत्नी तारा नाना प्रकार से विलाप करती हुई कहने लगी– 'हे राजन् महाभाग ! उठ मुझसे बातचीत कर ! तेरे जैसे राजाओं को पृथ्वी पर पड़ना शोभा नहीं देता। उठ अपनी नगरी का प्रबन्ध कर तथा उसकी रक्षा कर। हे नृपसत्तम ! क्या तुम्हें अब रणभूमि की मिट्टी सबसे प्यारी लगती है, जो मेरे बार–२ बुलाने पर भी नहीं बोलते। हे आर्य ! क्या आपने अभी से अप्सराओं के प्रेम में अपने को बाँध दिया है, जो मुझसे नहीं बोलते। कभी कहती, हे पुत्र अंगद आ! आकर पिता को प्रणाम कर और इनके अन्तिम दर्शन कर, जिसने तुझे जन्म दिया है और जिसके दर्शन थोडी देर में दुर्लभ हो जायेंगे।'

इस अवस्था में बैठी तारा से हनुमान ने कहा, तारा ! तू विदुषी होकर क्या अशोच्य का शोक कर रही है, तेरा तो पुत्र है। अपने पुत्र का शुभ चिन्तन कर, महाराज के संस्कार की तैयारी कर क्योंकि अब बाली महाराज का जीवन थोड़े क्षणों का ही है। इस पर तारा ने कहा– हनुमान ! अंगद का जो कुछ करने वाले हैं, वह उसके पिता समान, आप लोग हैं। मैं दुखिया अभागिन क्या कर सकती हूँ ? सुग्रीव संस्कार की तैयारियाँ कर ही रहे थे कि इतने में बाली को फिर चेतना आई और उसने सुग्रीव को बुला कर कहा–भाई! देखो अब अन्त समय का वियोग है और इस अवस्था में सब झगड़े शान्त हो जाते हैं। अब तुम भी अपने हृदय से मेरे किये अपराधों को निकाल दो और अपने पिता तथा पितामह के प्राप्त राज्य को अच्छी नीति से पालो। यह मेरा प्राण–प्रिय पुत्र अंगद और स्त्री तारा अब तुम्हारे अधीन हैं। तुम ही इनके बन्धु हो, तुम्हारा वीर अंगद तुम्हें राज्य में, युद्ध में बड़ी सहायता देगा और इसकी माता तुम्हें नीतिविचार में सहायता देगी। तुम इसके वचनों को आदर से सुनना और इसका योग्य मान रखना। यह बड़े बुद्धिमान पिता की विचारवती पुत्री है। राम का काम भी बिना संकोच के जल्दी करना, क्योंकि प्रतिज्ञा कर मित्र काम न करने में पाप लगता है। यह लो रत्न जटित सुवर्ण माला। इसको धारण करो, यह तुम्हारी राज्य–श्री को बढ़ाने वाली है। सुग्रीव ने सब बातों को अंगीकार करते हुए उस माला को भी बड़े आदर से ग्रहण कर लिया।

अंगद को उपदेश

फिर बाली ने अपने पुत्र अंगद की ओर आँख उठाकर कहा, बेटा ! देश काल देखकर सुख–दुःख तथा प्रिय–अप्रिय को सहन करते हुए, सुग्रीव के वश में रहो। जिस प्रकार पहले लाड़–चाव या मनोरंजन में रहते थे, वैसे अब मत रहना और सदा सुग्रीव के अमित्र तथा शत्रुओं से परे रहना। कभी अधिक नम्रता व उद्धतता में नहीं रहना किन्तु सदा अपने राजा के अनुकूल रहकर उसके वश में काम करना। इतना कहते ही बाली के प्राण शरीर से निकल गये। सारे राज्य में हाहाकार मच गया। राजकुमार अनाथ और रानियाँ विधवा हो गईं। वैधव्य दुःख को असह्य समझती हुई तारा रोने लगी, स्वामिन् ! अब मुझ अनाथ को किसके आश्रय में छोड़े जा रहे हो ? मुझे भी साथ ले चलिये। संसार

में पतिहीन स्त्री पुत्र,पौत्र, धन,–धान्य रखती हुई भी विधवा कहलाती है। कभी–कभी विलाप में कहती कि भद्र पुरुषो ! कभी किसी बुद्धिमान को अपनी कन्या शूरवीर व राजा से नहीं व्याहनी चाहिए, क्योंकि शूर–पत्नी सदा विधवापन के द्वार पर रहती है। मुझे देखो, मैं वीर–पत्नी सदा विधवापन के द्वार पर रहती रही हूँ। मुझे देखो, मैं वीर–पत्नी होने के कारण विधवा बनाई गई हूँ। इसी प्रकार सुग्रीव, हनुमान, बाली का मुख्यमन्त्री तथा सारी प्रजा विलाप करने लगी।

इनकी शोकाकुल अवस्था को देख, श्रीराम ने सुग्रीव, तारा और अंगद को समझाते हुए कहा– सुग्रीव उठो और शोक त्यागो। प्राण वियोग के पीछे शोक करना वृथा है। अब इसका संस्कार करो, संस्कार के लिए दिव्य पलाशादिक काष्ठ चन्दन की लकड़ी इकट्ठी करो।

बाली का वैदिक विधि से अन्त्येष्टि संस्कार

तारा ने बाली की मृत देह उठाने के लिए ऐसी सुन्दर पालकी बनाई, जैसा कि उत्तम विमान होता है। उस पर नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, पुष्प डाले। इसके पश्चात् सुग्रीव से कहा कि आर्य! राजा बाली का शीघ्र और्ध्वदैहिक संस्कार विधिपूर्वक करो।

और्ध्वदैहिकामार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ।२५ ।३०

तब बाली की देह को चिता में रखकर पितृमेध के मन्त्रों की विधि से हवन करते हुए संस्कार किया गया।

संस्कार (भस्म) हो जाने पर सब मिलकर जल–क्रिया (स्नान) के लिए नदी पर गये और स्नानान्तर सबने अंगद को शोक त्यागने का उपदेश किया।

सुग्रीवेण ततः सार्धं सो गंदः पितरं रुदन् ।
चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः।।२५ ।४६
ततो ग्नि विधिवद्दत्त्वा सोपसव्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।।२५ ।५०
संस्कृत्य बालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः।
आजग्मुरुदकं कर्त्तुम् नदीं शुभजलां शिवाम्।।२५ ।५१

वैदिक कर्मों और संस्कारों के करने वाले कुलों को भी यदि बन्दर कहा जाये, तो शूद्रों को न मालूम क्या कहना चाहिये। **-सम्पादक**

सुग्रीव को राजतिलक और अंगद को यौवराज्य

बाली के संस्कार के पीछे राष्ट्र को बिना राजा के बुरा जान, राजा के अभिषेक की तैयारी की गई। राजतिलक के योग्य औषधि, भूषण, वस्त्र आदि तैयार कर लेने के पश्चात् हनुमान श्रीराम के पास जाकर बोले—महाराज ! आप किष्किन्धा में चलकर अपने हाथ से अपने मित्र को अभिषेक दीजिये, क्योंकि बिना राजा के प्रजा का कल्याण नहीं हो सकता। राज्याभिषेक की सब सामग्री तैयार है।

यह सुन राम ने कहा—हनुमान ! मैं तुम्हारे स्नेह आदर से प्रसन्न हूँ पर मुझे चौदह वर्ष पर्यन्त किसी नगर में प्रवेश नहीं करना है, इसलिए तुम्हीं राजविधि से सुग्रीव को तिलक दे दो। राज्य पर वास्तव में अधिकार तो अंगद का है, परन्तु वह अभी बालक है और इस समय राज्य—भार नहीं उठा सकता, इसलिए आगे को युवराज का पद अंगद को दे दो।

इससे मालूम होता है कि सुग्रीव आदि के घरों में सब संस्कार होते थे क्योंकि बाली के दाहान्तर अंगद ने यज्ञोपवीत बदला था। -सम्पादक

स्नातो यं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथावधिः।२६।६
तस्य पांडुरमाजहुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम्।२६।२३
शुक्ले च बालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे।
तथा रत्नानि सर्वाणि सर्व बीजौषधानि च।२६।२४
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च।
शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम्।२६।२५
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यंबुजानि च।
चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून्।२६।२६
अक्षतं जात रूपं च प्रियंगुं मधु सर्पिषी।
दधि चर्म च वैयाघ्रं परार्ध्ये चाप्युपानहौ।२६।२७
समालम्भनमादाय गोरोचनं मनः शिलाम्।
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराकन्याश्चषोडश।२६।२८
ततस्ते वानर श्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधिः।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान्।२६।२६
ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम्।
मांसपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः।।२६।३०

राम की आज्ञा पाकर सुग्रीव को सर्वौषधि से शुद्ध–परिष्कृत जल से स्नान कराकर सारी प्रजा की सम्मति से हनुमान ने सुग्रीव को राज सिंहासन पर और वीर अंगद को युवराज के आसन पर बिठा दिया। राज्याभिषेक के समय महात्मा सुग्रीव पर रत्न जटित सोने का छत्र सफेद बालों के नर्म और मन्द वायु देने वाले चाँदी के दो पंखे, यशकारी सुवर्ण के दण्ड शोभा दे रहे थे। सब प्रकार के रत्न, सब जीवनीय औषधों के सत्व सुन्दर वृक्षों व लताओं की पत्तियाँ, सुगन्धित और मनोहर कुसुम, शुक्ल वस्त्र, सफेद चन्दन और कपूर का लेपन, सुन्दर गन्धवाली पुष्प मालायें, जल–स्थल में होने वाले पदार्थ, दिव्य चन्दन, बहुविधि सुगन्धियें, अक्षत, जातरूप प्रियंगु सहित घृत, दधि, व्याघ्रचर्म, उत्तम उपानह (जूते) गोरोचन, मनशिला,भक्ष्य भोज्य, रत्न, वस्त्र, फल, कन्द–मूल, धन और धान्य उस समय उपस्थित किये गये थे।

सबसे प्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें ऋत्विक, अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा के आसन पर बैठाया गया। फिर सुन्दर समिधाओं से अग्निकुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित कर, वेद मन्त्रों से पवित्र हवि और विधि से वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा हवन कराया गया तथा राजा व प्रजा के लिए शान्ति की प्रार्थना की गई।

अग्निहोत्र के पीछे सोने के सुन्दर सिंहासन पर महाराज सुग्रीव को पूर्वाभिमुख बैठाकर, सब मन्त्रीगणों ने राजा के महत्व को पढकर, पूरी विधि से गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, हनुमान और जाम्बवान् के द्वारा प्रसन्न चित्त होकर राजतिलक किया। तिलक के पीछे मन्त्री–मंडल तथा प्रजा के प्रतिनिधियों ने राजा को प्रणाम किया। राजकीय आज्ञा मानने एवं शासन में राजा को सब प्रकार की सहायता देने की प्रतिज्ञा की।

राजतिलक हो जाने पर मन्त्रिमंडल की सम्मति और श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव महाराज ने स्वयं उठकर अपने हाथों से वीर अंगद को युवराज के सिंहासन पर बिठाया और उसे सबके सम्मुख राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनाकर परमेश्वर से उसकी आयु के लिए प्रार्थना की।

सुग्रीव के राजतिलक समारोह के इस समस्त वृत्त को पढ़कर भी क्या कोई अपने इस महान् पूर्वजों को बन्दर कहने का दुस्साहस करेगा ?

अंगद को युवराज बनाने पर चारों ओर से साधु–२ की शुभ ध्वनि आने लगी, सब लोग महाराजा सुग्रीव की नीति तथा भगवान् रामचन्द्र के दयाभाव की प्रशंसा करने लगे।

आज से फिर महाराज सुग्रीव अपनी रानी रूमा सहित प्रजा पालन करने लगे।

राम–लक्ष्मण चातुर्मास (वर्षा काल) बिताने के लिए प्रस्रवण नामक पर्वत पर कुटी बनाकर रहने लगे जहाँ पर सब प्रकार के फल, फूल, कन्द, मूल, नदी तथा जलों की अनुकूलता थी।

जब कभी सीता के वियोग से श्रीराम का चित्त मोहग्रस्त होता, तो लक्ष्मण शास्त्र–वचनों तथा अपनी वीरता के भरोसे सीता को ले आने के उत्साह से उनका मोह दूर करते, इन चार महीनों में लक्ष्मण ने राम की पहले से भी अधिक सेवा की।

हनुमान की चेतावनी

सुग्रीव के राज्य–कर्म–भोग में लग जाने पर जब वर्षा काल का अन्त आ गया तो हनुमान महाराज सुग्रीव के पास आकर बोले–''महाराज ! आपने राज्य प्राप्त कर लिया, यश भी उपलब्ध किया। कुल कीर्ति लक्ष्मी भी ले ली, पर अभी मित्र संग्रह शेष है सो वह भी जल्दी प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि जो समय पर मित्रों की प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है उसका राज्य, कीर्ति, लक्ष्मी और यश चारों ओर बढ़ता है।

इसलिए राजन् ! आप सब कर्मो को छोड़कर, अपनी कुल–प्रतिष्ठा बढ़ाने और राज्य दिलाने वाले राम का कार्य करें। अर्थात् उनकी महिषी सीता के ढूंढने का यत्न करें। एक तो वह आपके मित्र हैं, दूसरे आपके प्रथम उपकारी हैं, क्योंकि पहले उन्होंने इन्द्र सम बली व प्रतापी बाली को मार कर आपके प्राण, धन, स्त्री और पुत्र की ही रक्षा नहीं की, किन्तु आपको महाराजा बना दिया है। अतः अब उचित यही है कि आप अपने वीर और चतुर योद्धाओं को भेजकर सीता का पता लगायें।

हनुमान् के इस आवश्यक और हितकारी सन्देश को सुनकर सुग्रीव ने सीता के ढूंढ़ने का विचार किया, इसके लिए नील को सबसे योग्य समझकर इस काम को करने की आज्ञा दी। सुग्रीव ने नील से कहा कि तुम चारों दिशाओं में सीता की सुध लाने के लिए योग्य दूत भेजो, जहाँ–२ तुम्हारा जाना जरूरी हो वहाँ–२ तुम जाओ।

राम का सीता स्मरण

इधर सुग्रीव तो नील को आदेश देकर फिर अपने काम में लग गया, उधर वर्षा के बीत जाने और आकाश के निर्मल तथा मार्गो के शुद्ध हो जाने के कारण स्नेह व पत्नी पालन के धर्म के कारण राम सीता का स्मरण करने लगे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा–'वीर ! प्रतीत होता है कि सुग्रीव को हमारे और सीता के कष्ट का ध्यान नहीं है। उसे राजभोग में पड़ जाने के कारण अपने प्रतिज्ञात वचनों का भी स्मरण नहीं रहा और किष्किन्धा को प्राप्त करके उसे यह भी स्मरण नहीं रहा कि शुभ–अशुभ वचनों के पालने वाला और द्वार पर बैठे हुए, अर्थियों के अर्थ पूरा करने वाला पुरुष ही वीर–श्रेष्ठ है।'

'लक्ष्मण ! तुम किष्किन्धा में जाकर उस प्रमादी से कह दो कि यदि तुम सत्य से फिरोगे और सीता पाने में सहायता न करोगे, तो हम तुम्हें भी बन्धुओं सहित उसी वाण से हनन कर देंगे। उसी मार्ग का यात्री बनायेंगे, जिसका तुम्हारा भाई बाली बना है क्योंकि हमारे लिये वह मार्ग संकुचित (तंग) नहीं है।'

लक्ष्मण का किष्किन्धा-गमन

राम के सन्देश को लेकर किञ्चित् क्रोधयुक्त होकर लक्ष्मण किष्किन्धा में सुग्रीव को समझाने के लिए चले। जब लक्ष्मण किष्किन्धा में पहुँचे तो वानरों ने उनका स्थान–स्थान पर स्वागत किया।

कुछ दूर और आगे चले तो उन्हें युवराज अंगद मिले, जिन्होंने बड़ी नम्रता से उन्हें प्रणाम किया सत्कार पूर्वक नगर दिखाते हुए उन्हें राजभवन की ओर ले चले, और राजसभा एव भवन में लक्ष्मण के आने की सूचना दी।

लक्ष्मण के सकोप आने का समाचार पाकर सुग्रीव बड़े भयभीत हुए। उन्होंने भय दूर करने के लिए मुख्य–मन्त्री और योद्धा हनुमान् को बुला भेजा।

हनुमान् के आने पर, सुग्रीव आसन से उठकर, गुप्त विचार के स्थान में जाकर बोले– मन्त्रिवर! मैं राम–लक्ष्मण से नहीं डर रहा, किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा करके, उसका पालन नहीं किया इससे डरता हूँ। इस कर्म से महात्मा राम जैसे मित्र का मुझ पर कोप हो गया है। यद्यपि यह सत्य है कि मित्र बनाना सुगम है पर मित्रता को निबाहना कठिन है।

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम्।।३२।७

तुम बताओ कि अब मैं इस अपराध का क्या प्रायश्चित करूँ ? हनुमान ने कहा– राजन! राम का कोप सच्चा है, इसीलिये उसने लक्ष्मण को भेजा है। तुम प्रमाद में पड़कर अपने कर्तव्य को भूल गये हो। देखो, कब से आकाश निर्मल और मार्ग शुद्ध हो गये हैं। क्या तुमने कोई उपाय सीता के ढूँढ़ने का किया ? इसलिए तो लक्ष्मण कोपयुक्त होकर यहाँ आये हैं। अब हाथ जोड़कर लक्ष्मण से क्षमा माँगने के सिवाय इस अपराध में कोई अन्य उपाय नहीं हो सकता।

राजन् ! शास्त्र में लिखा है कि मन्त्री पद पर नियुक्त मन्त्रियों को राजा से हितकर वाक्य अवश्य कह देना चाहिए, इसीलिये मैंने निर्भय होकर यह निश्चित वचन कहा है–

नियुक्तं मंत्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवोहितम्।
अतएव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः।।३२।१८

तारा और लक्ष्मण का सम्वाद

अंगद के साथ चलते हुए जब लक्ष्मण राज्यसभा में पहुँचे तो राजमन्त्रियों ने उनका राम के समान आदर किया। राज्यसभा में लक्ष्मण का आना सुनकर सुग्रीव ने राजनीति को जानने वाली तथा बोलने में अति चतुर 'तारा' से कहा कि हे सुन्दरी ! तू जानती है जिस कारण राघव मुझ पर अप्रसन्न हैं इसलिए अपने अनुभव और बुद्धि से जो कुछ तू उचित समझती है, वह कर यदि तू स्वयं मिलकर उन्हें शान्त करना चाहती है, तो उन्हें यहाँ बुला ले क्योंकि वह तेरे नीति भरे शान्त शब्दों से अवश्य शान्त हो जायेंगे और तेरे सामने किसी प्रकार का कोप नहीं करेंगे, क्योंकि महापुरुष कभी स्त्रियों से कठोरता नहीं दिखाया करते। हम उस निर्मल और जितेन्द्रिय महात्मा को यहाँ लाते हैं, तुम उन्हें शान्त करो–

अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि।।

त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति।
नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुण।।३६

सुग्रीव और तारा में अभी बातचीत हो रही थी कि लक्ष्मण भी – **१. अंगद २. मैंद ३. द्विविध ४. गवय ५. गवाक्ष ६. गज ७. शरभ ८. विद्युन्माली ६. सम्पाति १०. सूर्याक्ष ११. हनुमान १२. वीर बाहु १३. सुबाहु १४. नल १५ कुमुद १६. सुषेण १७ तार १८. जाम्बवान् १६. दधिवक्र २०. नील २१. सुपाटल २२. सुनेत्र** आदि राजमन्त्रियों तथा प्रधान राजकर्मचारियों के दिव्य और मनोहर स्थानों को देखते हुए, महाराज सुग्रीव के भवन में पहुँच गये। वहाँ जाकर सब प्रकार के प्रबन्ध को देखा। कर्मचारियों ने बड़े सम्मान से उनका स्वागत किया और निश्चित स्थान पर बैठाया।

महारानी तारा ने अन्य स्त्रियों सहित लक्ष्मण का सत्कार व पूजन किया, फिर बोली– हे मनुजेन्द्र पुत्र! आपके कोप का क्या कारण है ? कौन है, जो आपकी आज्ञा में नहीं रहता ? कौन है जो सूखे हुए वृक्षों के जंगल को आग लगने पर उसमें निश्चिन्त होकर बैठता है अर्थात् यहाँ तो सब तरह से आपके आदेश को माना जाता है।

इससे रामायण काल में आर्य पुरुषों का स्त्री जाति के प्रति जो आदर भाव था, उसका पूरा-२ पता लगता है। उसमें यह भी सिद्ध है कि उस समय राज घराने तक की स्त्रियाँ विद्वान महापुरुषों से बातचीत करने में संकोच नहीं करती थीं, और न किसी प्रकार का परदा वर्तमान था। क्या कोई पुरुष उस राजा को बन्दर कह सकता है जिसकी सभा के २२ मुख्यमन्त्री हों ? क्या तारा जैसी विदुषी देवी को बन्दरी माना जा सकता है। -सम्पादक

तारा के इन आदर युक्त वाक्यों को सुनकर शान्त मन से (एक स्त्री के मानार्थ) नीचे नेत्र कर लक्ष्मण बोले–

हे कार्य तत्व को जानने वाली ! क्या तेरा पति कामादि से अन्धा हुआ है जो अपने हित करने वाले राम के कार्य को भुलाये बैठा है। क्या इसने मद्यपान किया है जो धर्मार्थहीन राज्याभिमान में पड़कर पूर्व की हुई प्रतिज्ञा को चार महीनों के गुजर जाने पर भी कुछ नहीं विचारता ? यदि वह मद्यपी है, तो स्मरण रखे कि इससे धर्म, अर्थ और राज्य आदि सबका नाश हो जायेगा।

हे सुभगे ! तू ही कोई दूसरा उदाहरण बता, जिसने इस तेरे पति की भाँति किसी उपकारी मित्र के काम आ पड़ने पर काम करने में प्रमाद किया हो ?

लक्ष्मण के इन धर्म, अर्थ और सचाई युक्त मीठे तथा नम्र शब्दों को सुनकर तारा फिर बोली–

'राजपुत्र ! यह आपके कोप का समय नहीं और न अपनों में कोप करना ही चाहिए। यदि उस सुग्रीव का प्रमाद भी हो तो आपको क्षमा करना चाहिए। वीर ! आप बड़े हैं। आपका कुलज स्वभाव शान्त है। आप तपोमूर्ति हैं, आपको इस चंचल प्रकृति के पुरुष पर अवश्य दया करना योग्य है। राघव! कई दशाओं में ऋषियों से भी प्रमाद हो जाता है। मैं इसके स्वभाव और आपके कोप–कारण को भली भाँति जानती हूँ। अब आप क्षमा ही करें। हे नरोत्तम ! आपका काम तो चिरकाल से (आपके आने से

पूर्व) आरम्भ किया हुआ है उसके लिए अनेकों पुरुष गये हुए भी हैं पर उसका कोई फल नहीं हुआ। इसलिये राजा आपके सम्मुख में आता हुआ लजाता है। आप उसे क्षमा करें।

जब तारा कुछ शान्त कर चुकी, तो बाहर के द्वार से सुग्रीव अपनी पत्नी रूमा सहित आकर लक्ष्मण के पांवों में गिर पड़े। सुग्रीव को देख लक्ष्मण बोले—सुग्रीव ! जो राजा, जितेन्द्रिय, दयालु, कृतज्ञ और सत्यवादी होता है वह बढ़ता है। किन्तु जो पाप में लगकर उपकार करने वाले मित्रों से भी झूंठी प्रतिज्ञा करता है, उससे क्रूर और कौन है? सुग्रीव ! झूठ बोलना, गौ—हत्या से भी भारी हत्या है। जो प्रतिज्ञा करके उपकारी मित्रों के काम को नहीं करता, वह कृतघ्न और वध के योग्य है।

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।३४।१२

सुग्रीव ! स्मरण रखो कि धर्म—शास्त्र में गौ—हत्यारे, मदिरा पीने वाले, चोर, व्रत—भंग करने वाले के लिए प्रायश्चित है, परन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित नहीं है।

इसलिए सुग्रीव ! तू अनार्य और झूठा है अतः राम का तुझ पर कोप है। यदि तू ऐसा ही रहा तो याद रख राम तेरी भी बाली की सी गति करेंगे।

यह सुन चन्द्रमुखी और नीति भंडार तारा फिर बोली लक्ष्मण ! तुम से ऐसे कठोर वाक्य सुनने के वानर—राज योग्य नहीं, न सुग्रीव अकृतज्ञ, शठ, क्रूर, अनृतवादी व कुटिल है—

नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः।
नैवानृतकथोवीर न जिह्मश्च कपीश्वरः।।३५।३

आपके किये उपकार को यह भूल नहीं गया, किन्तु यह जानता है कि राम ही की कृपा से राज्य, रूमा और मैं (तारा) प्राप्त हुए हैं। आपके काम में जो देरी हुई है, वह साधारण दोष से हुई है, इसलिए आप क्षमा करें। मैं सुग्रीव के लिए प्रार्थना करती हूँ कि आप कोप को त्याग दें।

रूमां मां चांगदं राज्यं धनधान्यपशूनि च।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदितिमतिर्मम।।३५।१३

मेरा विश्वास है कि राम के लिए सुग्रीव रूमा (स्त्री) मुझे (तारा), अंगद (पुत्र), राज्य, धन—धान्य पशु आदि सब कुछ त्याग देगा, परन्तु सीता को अवश्य ढूँढ कर लावेगा।

सुग्रीव का राम के पास जाना और राम की उदारता

इस प्रकार तारा की नीति व सुग्रीव की विनय से शान्त हुए लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार बोले—"वानरराज ! मैं तेरे स्वभाव और पवित्रता पर प्रसन्न हूँ, पर सीतान्वेषण के विचार के लिए अब तुम राम के पास चलो।" यह सुनकर सुग्रीव ने बहुत से घोड़ों से चलने वाला सोने का यान मंगाया, उसमें लक्ष्मण सहित बैठकर राम के पास पहुँच गया। सुग्रीव ने बड़ी नम्रता से प्रणाम किया। श्रीराम ने बड़े

प्रेम और आदर से आलिंगन कर कहा– धर्मात्मन् ! बैठिये। अच्छी प्रकार बैठने पर, राम ने सीता के अन्वेषण के विषय में पूछा, सुग्रीव ने अपने अपराध की क्षमा माँगी। श्रीराम ने प्रसन्न होकर कहा कि कोई चिन्ता नहीं, मित्र ! ऐसा हो ही जाता है। अब यत्न करना चाहिए। यह निश्चय रखिये हम आपकी रक्षा में सब शत्रुओं को युद्ध में जीत लेंगे। क्योंकि मेरे आप एक मित्र हैं इसीलिए आप मेरी सहायता कीजिये–

त्वत्सनाथः सखे सख्ये जेतास्मि सकलान्नरान्।
त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि।।३६।५

ऐसा विचार हो ही रहा था कि सुग्रीव की सब सेना और सेनापति वहाँ पहुँच गये, जिनके वीरास्त्र, तेजस्वी मुखों और दृढ़ांगों को देखकर राम बड़े विस्मित और प्रसन्न हुए।

सीतान्वेषण की आज्ञा

सारी सेना को सुग्रीव ने चारों दिशाओं के लिए चार भागों में बाँटा और सबको स्थान, मार्ग, भिन्न–भिन्न दिशाओं के विशेष वृत्तान्त बताकर सीता की खोज के लिए काल निर्धारण कर दिया, सबको सुना दिया कि–

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्।।४०।७०

अर्थात् एक महीने से अधिक कोई बाहर न रहे, वरन् जानकी जी को लिवाने के लिए कार्य में कृतकार्य होकर स्वराज्य में लौट आयें। यदि कोई एक मास से अधिक बाहर रहेगा, तो मुझसे वध्य होगा। (मारा जायेगा) किन्तु जो मनुष्य सबसे पहले सीता की सुध लायेगा। वह अनेक अपराध करने पर भी मेरा प्रीति–भाजन होगा।

सीता को ढूंढना

इस प्रकार सबको आज्ञा देकर सुग्रीव ने देश काल और अनुभव की अनुकूलता देखकर, उत्तर में शतबलि को, पूर्व में तार, अंगद आदि वीरों के साथ हनुमान को, पश्चिम–दक्षिण में अपने श्वसुर सुषेण को मार्ग की सब घटना बताकर भेज दिया और आने के लिए एक महीने की फिर ताकीद कर दी।

राजा से आज्ञा लेकर सब मण्डलियाँ अपने–अपने निर्धारित मार्गों में सीता को ढूंढ़ने तथा पूछने लगीं।

स्वयंप्रभा का दर्शन

इस प्रकार ढूंढ़ते–२ हनुमान् और अंगद आदि एक घने वन में चले गये। यहाँ ये सब भूख–प्यास से पीड़ित और हताश हुए फिर रहे थे, कि उन्हें दूर से एक आश्रम दिखाई दिया, जहाँ पर एक

तपस्विनी नियताहारा, प्रकाशमान्, काले मृग चर्म को पहने फिर रही थीं। उसे देखकर ये सब वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर हनुमान् ने उसका कुल–गोत्र, वहाँ रहने का कारण आदि सब पूछा जिसके उत्तर में तपस्विनी ने कहा– हनुमान्! यह 'मय' नामक दानव का रचा हुआ रमणीय आश्रम था। कालान्तर में यह आश्रम मेरी सखी हेमा को प्राप्त हो गया। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। हेमा नृत्य तथा संगीत में बड़ी निपुण है। मै उसी की आज्ञा से इस आश्रम की रक्षा करती हूँ। आप यहाँ बैठिये। मैं आपके सत्कार के लिए पवित्र फल कन्द–मूल लाती हूँ, जिन्हें खाकर आपका सब श्रम दूर हो जायेगा। यह कहकर स्वयंप्रभा वन में गई, उसने फल–मूल लाकर इनका वेदविधि से पूजन किया।

इस तपस्विनी की अतिथि पूजा से प्रसन्न होकर हनुमान् आदि वीर बोले–देवि ! हम भूख–प्यास से मरने वाले ही थे कि आपने अतिथि–सत्कार से हमें जीवन दान दिया है। अब आप आज्ञा करें कि हम आपका क्या प्रत्युपकार करें ?

यह सुनकर स्वयंप्रभा बोली, वीरो ! मैं तुम सब पर प्रसन्न हूँ। इस समय तप–धर्म का अनुष्ठान करती हुई मुझको किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है किन्तु तुम्हें कोई जरूरत हो तो बताओ–

सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां तपस्विनाम्।
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित्।।५२।१६

यह सुनकर हनुमान् बोले–धर्मचारिणी ! हम सब इस समय तेरी शरण को प्राप्त हुए हैं। हमें सुग्रीव महाराज की जल्दी लौटने की आज्ञा थी और वह भी सीता को लिवाकर परन्तु हमारा बहुत सा समय यूँ ही चला गया और सीता का कुछ पता नहीं चला। मार्ग कठिन है, अभी हमें समुद्र तट तथा उसकी बस्तियाँ भी ढूंढनी हैं। इसलिये तुम हमें वहाँ तक पहुंचाने की कृपा करो।

यह सुन स्वयंप्रभा ने एक शीघ्रगामी विमान पर बैठाकर सबको एक बार ही प्रस्रवण पर्वत पर छोड़ दिया जो कि समुद्र के तट पर है, 'यह सागर है, यह प्रस्रवण पर्वत है। आपका कल्याण हो, अब मैं जाती हूँ' यह कहकर 'स्वयंप्रभा' झट अपने आश्रम पर चली गई–

एषः प्रस्रवणः शैलः सागरो यं महोदधिः।
स्वस्ति वो स्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः।।५२।३२

"सम्पाति" के दर्शन

समुद्र तट पर आकर भी जब इनको सीता का कुछ निश्चित पता न लगा, तब अंगद आदि वानरों ने वानरराज सुग्रीव की आज्ञा को स्मरण कर वहीं प्राण त्यागने की ठान ली क्योंकि एक मास व्यतीत हो चुका था। यद्यपि हनुमान् ने बहुत समझाया परन्तु वह अपनी बात पर तुले रहे।

'वानरों में यह विचार हो ही रहा था कि महात्मा जटायु का बड़ा भाई सम्पाति वहाँ आ पहुँचा। उसके दीर्घ आकार और तेजस्वी आकृति को देखकर, ये सब डरे और नाना विचार प्रकट करने लगे।

कोई कहता कि वह राक्षस है, कोई कहता कि सीता खोजने के बहाने से यम महाराज ने ही हमें यहाँ बुलाया है और, यह साक्षात् यम है।

इस प्रकार डर की अवस्था में विचारते हुए अंगद ने हनुमान से कहा– वीर ! हम तो व्यर्थ मर रहे हैं। न हमने राम का कार्य किया, न सीता की सुध पाई और न सुग्रीव का संकल्प पूरा किया। हमसे तो धर्म का जानने वाला महात्मा जटायु ही बड़ा सुखी है जो युद्ध में रावण से मारा गया। इससे एक तो वह सदा के लिए सुग्रीव के भय से छूट गया। दूसरे अपने कर्तव्य पालन के कारण परम गति को भी प्राप्त हो गया–

स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे।
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च परमां गतिम्।।५६।१३

सम्पाति से वार्तालाप

अंगद के इन शब्दों को सुनकर सम्पाति बड़ा दुःखी होकर कहने लगा, महाशय ! अच्छी प्रकार कहो कि मेरा चिरंजीवी तपस्वी भाई और दशरथ का मित्र, क्यों और किससे मारा गया और फिर उसकी क्या गति हुई ?

अंगद ने जटायु का रावण से युद्ध, रावण का रथ टूटना, सारथी का मारा जाना, जटायु का परलोक गमन और राम द्वारा उसका पितृवत् संस्कार, देवगति को प्राप्त होना, राम और सुग्रीव की मैत्री, बाली का मरण सुग्रीव का राज्य तिलक, सीता की खोज में किष्किन्धा से चलकर ढूंढते–२ "मय" निर्मित स्थान में पहुंचना, स्वयंप्रभा का अतिथि सत्कार, यान द्वारा प्रस्रवण पर्वत पर पहुंचना और सीता न पाने से प्राण त्याग का विचार– सब सुनाया।

जटायु की मृत्यु और वानरों का कष्ट सुनकर सम्पाति ने भाई के गुणों का वर्णन कर, शोक प्रकट किया और फिर अंगद से कहने लगा, युवराज ! मैं उस राक्षस के नाम, धाम और उसके क्रूर स्वभावादि को भली प्रकार जानता हूँ। वह काले मेघ के समान देह वाला रावण, जब सुवर्ण सदृश आभा तथा रेशमी वस्त्रों वाली विद्युत् समान देवी को हरण करके लिये जाता था तो वह देवी दीन वाणी से हा राम ! हा राम ! हा लक्ष्मण ! कहकर विलाप कर रही थी, तब ही मैं जान गया था कि कदाचित् यह सीता होगी, पूरा निश्चय न हुआ था।

हे वीर ! उस दुष्ट राक्षस रावण का समुद्र के बीच लंकापुरी में विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ बड़ा दृढ़ भवन है। उसके अन्तःपुर के स्थान में, सीता बन्दियों की भाँति पड़ी है, वह मैं तुमको दिखाऊँगा। तुम उसे इन नेत्रों से नहीं देख सकते और न वहाँ पर सर्वसाधारण की पहुंच ही है, उस नीच ने बहुत निन्दित कर्म किया है। उसको इसका फल अवश्य मिलेगा।

सुग्रीव के मंत्री सम्पाति से यह सम्पाति भिन्न था।

अंगद ! कर्तव्य तो मेरा था कि मैं अपने भाई के बैर का बदला भी लेता और श्रीराम का कार्य भी करता। परन्तु क्या करूँ, मैं वृद्ध होने के कारण, इस समय अधिक साहस नहीं कर सकता। हां, मैं यहाँ बैठा ही देख सकता हूँ कि सीता और रावण कहाँ हैं, कैसे हैं, क्योंकि हमारे पास दूर की वस्तु ठीक-ठीक देखने के लिए सुवर्ण (तंज) विद्या से बनाया हुआ दिव्य चक्षुबल (दूर वीक्षण-दूरबीन, ऐनक) है-

इहस्थो हं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।
अस्माकमपि सौवर्णं दिव्यचक्षुर्बलं तथा।।५८।३१

इसलिए अब तुमको समुद्र पार करने का यत्न करना चाहिए, जिससे तुम्हें शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो, और तुम सीता को यहाँ ले आओ।

यह कहकर सम्पाति स्नानादि के लिए चला गया और वहाँ से जब आया तब जाम्बवान् ने कहा-महात्मन् ! सीता कहाँ है और किसने उसे देखा तथा कौन उसे हर कर ले गया है ? यह सब कृपा करके कहिये।

यह सुन सम्पाति बोला-वीर ! एक दिन मेरा पुत्र सुपार्श्व समुद्र तट पर मेरे लिए कुछ खाने का पदार्थ लेने गया था। जब उसे आते हुए उस दिन असाधारण देरी हुई तो मेरे पूछने पर उसने बताया कि रावण, राम की महिषी सीता को हर ले आया है। सो आर्यवर ! मैं तो शारीरिक कर्म (युद्धादि) में अशक्त हूँ पर जो वाणी, बुद्धि और विचार से कर सकता हूँ वह करूँगा, और निश्चय रखिये कि वाणी तथा बुद्धि से ही मैं सबका हित करूँगा-

यत्तु शक्यं मया कर्तुं वाग्बुद्धिर्गुणवर्तिना।।५६।२३
वाङ् मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हितः।।५६।२४

इसलिये जैसे भी राम का हित समझते हो, वह करो। आप सब बड़े बुद्धिमान्, बलधारी और मनस्वी हैं। यद्यपि रावण का बल भी बड़ा है तथापि राम-लक्ष्मण के वाणों की सहायता होते हुए, आपके सामने वह शीघ्र ही क्षीण हो जायेगा। इसलिए वीरो! उठो और कार्यारम्भ करो। देर मत लगाओ। क्योंकि तुम्हारे जैसे बुद्धिमान् आलस्य में पड़ कर वृथा काल नहीं गँवाया करते।

समुद्र तैरने के विचार- सम्पाति के पुरुषार्थ भरे और आशाजनक वाक्यों को सुनकर अंगदादि सब वीर दक्षिणी समुद्र की उत्तरी दिशा पर पहुंच गये, किन्तु समुद्र के वेग से तथा बल को देखकर सबके मन खिन्न हो गये। यह देखकर अंगद ने कहा, वीरो! विषाद मत करो। विषाद और खेद दोषों का घर है। विषाद पुरुष के बल और पौरुष को नष्ट कर देता है। विषादी पुरुष को सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती। अन्ततः वह रात्रि विचार में ही चली गई। दूसरे दिन अंगद ने सारी सेना को सम्बोधित करते हुए कहा-कौन वीर है जो आज समुद्र के पार होगा और कौन है जो सौ योजन समुद्र को प्लव से पार करेगा, वह कौन वीर है जो सहस्त्रों नर-नारियों को चिन्ता से मुक्त करेगा ?

योद्धाओ ! यदि तुम में कोई सामर्थ्य रखता है तो इस समय अभय दान देकर वह हमें शान्ति दे और इस निष्कलंक कुल की कीर्ति को बढ़ाये।

तैरने की शक्तियाँ– युवराज अंगद के इस प्रभावोत्पादक भाषण को सुनकर गज ने १० योजन, गवाक्ष ने २० योजन, शरभ ने ३० योजन, ऋषभ ने ४० योजन, गंधमादन ने ५० योजन, मयन्द ने ६०, द्विविध ने ७०, सुषेण ने ८० और बूढ़े जाम्बवान् ने ६० योजन, तैरने को कहा, और सब चुप रहे। तब अंगद ने कहा– मैं १०० योजन जा सकता हूँ, पर मुझमें आने की शक्ति नहीं है। तब वाक् विशारद जाम्बवान् बोला–

भवान्कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः।
स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परंतप।।६५।२३

राजन् ! आप तो हमारे स्वामी और मूल हैं। आपकी तो स्त्रीवत् रक्षा करनी योग्य है क्योंकि स्वामी और स्त्री रक्षा करने के विचार से एक से हैं। अतः आपको हम नहीं जाने देंगे।

इस पर युवराज अंगद ने कहा कि–

यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानर पुंगव।
पुनः खल्विदमस्माभिः कार्य प्रायोपवेशनम्।।६५।२६

यदि मैं न जाऊँ और न कोई और पुरुष जाय तो फिर हम सबको मर जाना ही अच्छा है, क्योंकि कार्य किये बिना सुग्रीव के राज्य में जाना भी मरना ही है।

- **मालूम होता है कि उस समय दूर की वस्तुओं के देखने के लिये देखने की शक्ति बढ़ाने वाला कोई यन्त्र था, जिसे महर्षि वाल्मीकि 'चक्षुबल' कहते हैं। रामायण की टीका करने वालों ने लिखा है-'सा च विद्या वरुच ब्राह्मण तृतीय पचिकायमुक्ता' अर्थात् यह विद्या वरुच ब्राह्मण में लिखी है।**
- **इन लोगों के कथन से प्रतीत होता है कि लंका सागर का पाड़ा ४०० कोस का था पर अब वह सिर्फ ५८ मील है इसलिए तो यह कवि की अत्युक्ति है। उस समय योजन का प्रमाण कुछ और होगा।**
- **सचमुच यह नीति जय दिलाने वाली है।**

-सम्पादक

हनुमान को समुद्र लाँघने की प्रेरणा

अंगद के इस साहस भरे वाक्य को सुनकर जाम्बवान् बोला, राजन् ! घबराइये नहीं,मैं अभी उस वीर को प्रेरता हूँ जो इस कार्य को सिद्ध करके ही आयेगा।

यह कहकर जाम्बवान् ने हनुमान् की माता अञ्जना तथा पिता पवन के बल, व्रतनिष्ठा और दृढ़ता का वर्णन करते हुए हनुमान से कहा–

वीर वानर लोकस्य सर्वशास्त्र विशारद।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमत् किं न जल्पसि।।६६।२

हे समस्त शास्त्रों के विद्वान् हनुमान ! तुम एकान्त में चुपचाप क्यों बैठे हो, वानरों को उनका कर्तव्य कर्म क्यों नहीं बतलाते ? वीर ! यह राजा व प्रजा दोनों का काम है, तेरे बिना इसे कोई नहीं कर सकता। तू वायु के समान समुद्र को तैर सकता है। हम आज गतप्राण हुए पड़े हैं। तुममें सब बल और बुद्धियाँ हैं। इस प्रकार की स्तुति को सुनकर हनुमान् बोला– मैं इस सारे समुद्र को बाहुबल से तैर सकता हूँ । मेरे ऊरु, जंघा के वेग से उठा हुआ समुद्र–जल आकाश को चढ़ते हुए पानी के तुल्य होगा। मैं पार जाकर उधर से पृथिवी पर पाँव धरे बिना अर्थात् विश्राम किये बिना फिर उसी वेग से इस ओर आ सकता हूँ। मैं जब समुद्र में जाऊँगा तो खिन्न हुए लता–वृक्ष अवश्य आकाश में उड़ेंगे, अर्थात् अन्य स्थान का आश्रय ढूंढ़ेंगे। मित्रो विश्वास रखो–

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः।।६७।२६

मैं अवश्य सीता को देखूँगा और बुद्धिमत्ता से उसे अपना मानस भाव तथा चेष्टा दिखा दूँगा। आप निश्चिन्त रहें।

हनुमान् के उत्साह और उद्योग को देखकर सब वानर प्रसन्न हुए और कहने लगे, हे तात ! तूने जाति का महाशोक दूर किया है, तेरा सब प्रकार से कल्याण हो।

हम तेरी कार्य–सिद्धि के लिए स्वस्तिवाचन तथा शांति करण के मन्त्रों से मंगल की प्रार्थना करेंगे। तुम ऋषियों तथा जाति वृद्ध और गुरुओं की कृपा से इस महासागर को शान्तिपूर्वक तैर कर शीघ्र वापस आओ।

यह सुनते ही हनुमान् समुद्र में उतरने के लिए एक पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। हनुमान् के वेग से उस समय प्रतीत होता था कि पर्वत काँप रहा है। इस प्रकार हनुमान् के तैयार होने पर सारे वानरों में सन्तोष और आशा बँध गई।

।। किष्किन्धाकाण्ड समाप्त।।

।। ओ३म्।।

सुन्दर काण्ड

समुद्र पार जाना

इस प्रकार जाम्बवान् आदि की आज्ञा से तथा राम के कार्य के लिए ज्यों ही हनुमान् ने वीर वेग धारण कर यात्रा आरम्भ की, तो प्रतीत होता था, मानो वन–वृक्ष और पर्वत हनुमान् की वीरता से काँप रहे हैं। हनुमान् की यात्रा को देखने के लिए जो अनेकों वानर समुद्र तट पर आये हुए थे, उनके पूछने पर हनुमान् ने कहा–

यथा राघव निर्मुक्तः शरः श्वसन विक्रमः।।१।३६
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लंकां रावणपालिताम्।
न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लंकायां जनकात्मजाम्।।१।४०
बद्धवा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।
सर्वथा कृतकार्यो हमेष्यामि सह सीतया।।१।४२

मित्रवर ! जिस भाँति राम के हाथ से छूटा हुआ वायु समान वेग वाला वाण अपने कार्य को सिद्ध करता है, उसी भाँति मैं रावण–पालित लंका में जाऊँगा। यदि वहाँ लंका में सीता को न पाया तो जहाँ पता लगेगा, वहीं, जाकर उसी उत्साह एवं पुरुषार्थ से सीता की सुधि लाऊँगा, राक्षसों के राजा रावण को पकड़ कर यहाँ लाऊँगा। मैं सर्वथा सीता खोज के विषय में कृत कार्य होकर यहाँ आऊँगा।

यह कहकर महाबली हनुमान् समुद्र पार जाने के लिए समुद्र में प्रविष्ट हो गया। हनुमान् के प्रविष्ट होते ही समुद्र में ऐसा शब्द हुआ जैसा कि मेघ गर्जन से होता है।

हनुमान् की यात्रा के समय उसकी नौका पार्थिव होने पर भी वायु की भाँति प्रतीत होती थी, हनुमान् समुद्र के जिस देश में जाता, अर्थात् वह जिस–२ समुद्री भाग को तैरता वह उसकी शीघ्र गति से उन्माद रोगियों की तरह फेनिल हो जाता। सारांश यह कि जैसे उन्माद रोगी के मुख से झाग आदि आने लगते हैं वैसे ही समुद्र की दशा हो जाती।

न केवल यही किन्तु बड़े शब्द वाले समुद्र को एक ओर मेघ, वायु और दूसरी तरफ हनुमान् की यात्रा से पैदा हुआ वायु कम्पायमान कर देता था।

बलवान् कपि कुञ्जर ऐसे वेग से जाता था, मानो उसके सामने सागर द्रोणा के समान है। अर्थात् हनुमान् के यात्रा साधन (दिव्य नौका) के सामने समुद्र अपनी गम्भीरता को त्याग देता था।

हनुमान् की इस वीरता को देखकर, जहाँ इस ओर देव, गन्धर्व, पतंग, ऋषि–मुनि तथा मनुष्य उसे देखने लगे, वहीं दूसरी तरफ समुद्र में रहने वाले तथा यात्रा करने वाले भी उसे आदर दृष्टि से देखते थे।

सागर का सद्भाव– हनुमान को वेग से आते देखकर सूर्यवंश का मान करने वाला सागर • नामक पुरुष सोचने लगा कि–

तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति।
इक्ष्वाकु कुलमानर्थी चिन्तयामास सागरः।।१।८७
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः।
करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम्।।१।८८
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत् यथा कपिः।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सो तितरिष्यति।।१।९०

मैंने तो सूर्यवंशियों से कई प्रकार के लाभ पाये हैं। अब सूर्यवंशी युवराज पर विपत् पड़ी है। उसी की सहायता के लिए यह वानरवंशी नरवीर आ रहा है। इस समय् यदि मैंने इसकी सहायता न की तो मेरी सब ओर से निंदा होगी। अतः अब मैं ऐसा यत्न करूँ जिससे कि यह सुखपूर्वक विश्राम कर, अगले मार्ग को सरलतापूर्वक तर ले।

- **कई लोग सागर का अर्थ जलीय समुद्र लेते हैं पर वह अयुक्त तथा असम्भव है। कारण एक तो जड़ में ऐसे विचार असम्भव हैं, दूसरे आगे चलकर लंका की राक्षसी का वर्णन आता है। फिर पुल बाँधने के प्रकरण में भी आता है। यदि जड़ समुद्र में राम की भक्ति मानी जाय तो पार जाने के लिए पुल बाँधना आदि प्रयत्न मिथ्या सिद्ध होते हैं। हाँ, कवि का यह काव्यमय अलंकारिक वर्णन भी हो सकता है। - सम्पादक**

मेनाक पर विश्राम- यह विचार कर सागर ने हनुमान् से विश्राम के लिए कहा। हनुमान् ने भी मार्ग लम्बा समझ कर महात्मा सागर के कथनानुसार 'मैनाक पर्वत' पर विश्राम किया और वहाँ खान–पान की आवश्यकता को पूर्ण किया।

यहाँ से चलकर हनुमान् कई प्रकार के कष्टों को सहता हुआ, आगे 'सुरसा' से कुछ काल तक युद्ध कर, पूर्ण स्वस्थता से समुद्र के पार हो गया।

लंका प्रवेश

भयानक महासागर को तरकर, हनुमान् बिना किसी प्रकार के श्रम के लंका को देखने लगा। लंका के चारों ओर गहरी खाइयाँ और दृढ़ कोट थे। उसके इर्द–गिर्द सब वस्तुओं में फूल–फल देने वाले सुगन्धित तथा रोग–विनाशक वृक्ष,लता गुल्म लगे हुए थे। लंका के पर्वत समान बड़े और

चन्द्र–सूर्य के तुल्य कान्ति वाले महलों पर उग्र धनुषों को धारण किये राक्षस फिर रहे थे। महलों के ऊपर के बुर्जों पर शतघ्नी (तोपें) शिरोभूषणवत् शोभा दे रही थीं।

इस प्रकार लंका को देखकर तथा उसके उत्तरी द्वार पर बैठकर हनुमान् अपने मन में सोचने लगा कि सचमुच यहाँ तो आकर भी वानरों का अर्थ सिद्ध न होगा, क्योंकि लंकापुरी इतनी तीव्र–बुद्धि से रक्षित है कि युद्ध से इसका जीतना अशक्य है। अतः समुद्र पार कर नीति–निपुण राम यहाँ आकर भी क्या करेंगे ? यहाँ साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी नीति का संचार नहीं हो सकता। फिर मेरे और अंगद तथा सुग्रीव के बिना राम का यहाँ आना ही कठिन है। अस्तु अब तो जब तक सीता का पता नहीं मिल जाता तब तक उसी का विचार करूँ और वह जीती भी है या नहीं? इसका पता लगाऊँ।

फिर सोचने लगा, अहो ! इतनी सुरक्षित नगरी में मैं किस प्रकार प्रवेश कर सकता हूँ और बिना अन्दर प्रवेश किये सीता का सन्देश कैसे ला सकता हूँ। अतः कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि जिससे बिना राक्षसेन्द्र रावण को सूचना मिले मैं सीता से मिल सकूँ। अन्यथा यदि दुष्ट को कहीं पता लग गया तो वानरों का मुझ पर भरोसा, मेरा समुद्र का पार करना, राम का शुभचिन्तन सब व्यर्थ हो जायेगा।

परन्तु ऐसा क्यों हो सकता है जबकि राक्षसेन्द्र की आज्ञा बिना यहाँ वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती, और न उसके भीमकाय कर्मचारी गुप्तचर राक्षसों के ज्ञान से परे कोई चिरकाल तक ठहर ही सकता है। इसी प्रकार के संकल्प–विकल्प करते हुए हनुमान् को वहीं शाम हो गई, तो हनुमान् ने रात्रि के समय मदान्ध राक्षसों के मार्गों को त्यागकर किसी छुपे हुए मार्ग से उलांघ कर लंका पुरी में प्रवेश किया–

प्रदोष काले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्त महापथाम्।।२।५०

लंका समागम– रात्रि के समय जब हनुमान् लंका पुरी में प्रविष्ट हुआ तब वह उसकी दृढ़ता, ऐश्वर्य और विलक्षण रचना को देखकर पहले तो प्रसन्न हुआ, पर जब उसे यह विचार हुआ कि इसकी दृढ़ता, सुरक्षा हमारे कार्य में भारी विघ्नकारक है तो बहुत दुःखी हुआ क्योंकि वह जानता था कि यहाँ राम और उसके अनुयायियों का आना कठिन है। हनुमान् अभी उधेड़–बुन में ही था कि इतने में उसे वीर वेश में शस्त्र–अस्त्रों से सज्जित एक वीरांगना स्त्री मिली। इस स्त्री का नाम लंका था, इसके बुद्धि बल और वीरोचित साहस को देखकर रावण ने इसे बहुविध सेना व धनादि देकर लंका की रक्षा के लिये नियुक्त कर रखा था।

इसके कुछ काल के प्रबन्ध से ही सर्वसाधारण को निश्चय हो गया था, जब तक लंकापुरी की रक्षा लंका कर रही है, तब तक लंकापुरी की पराजय कठिन है।

हनुमान् को देखते ही लंका ने कई प्रकार के कटु शब्द कहे और उसके मनोबल को तोड़ना आरम्भ किया।

लंका के इस दुःसाहस को देखकर पहले तो हनुमान् ने स्त्री समझकर हाथ उठाने में संकोच किया, परन्तु जब उसकी धृष्टता बढ़ती देखी, तब इन्होंने बिना शस्त्र उठाये ही उसको तिरस्कृत कर

दिया। जब वह भूमि पर गिरकर आर्त्तस्वर करने लगी, तब तत्क्षण वीर हनुमान् ने उस पर कृपा की, उस पर और किसी प्रकार का प्रहार करना त्याग दिया।

ततस्तु हनुमान्वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपात ताम्।
कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम्।।३।४२

हनुमान् की कृपा से कृतार्थ हुई वह बोली– हे महाबाहो ! प्रसन्न होकर मेरी रक्षा कीजिये। हे सौम्य ! समय–२ पर सब बली होते हैं। अब निश्चय जानिये कि आपकी मनोकामना पूरी होगी, क्योंकि मुझे जीतने से आपने मुझ एक स्त्री को ही नहीं जीता किन्तु सारी लंका को ही जीत लिया है। सच पूछिये तो सीता के निमित्त अब दुरात्मा रावण का और अन्य सब राक्षसों के नाश का समय आ गया है। अतः हे महावीर ! तू स्वेच्छापूर्वक लंका के स्थान–२ में विचर और जो तेरा कार्य है उसको निश्चिन्त होकर कर।

लंका भ्रमण एवं बल निरीक्षण

'लंका' का अभिमान दूर कर हनुमान् लंकापुरी के अन्दर के भाग में चला गया, जहाँ राजा व राजकर्मचारियों के निज के भवन थे। फिरते–२ इसने बहुत से स्वाध्याय में लगे राक्षसों को देखा, अनेकों को मन्त्र पढ़ते व रावण की स्तुति गीत गाते सुना तथा कई स्थानों में अग्नि कुण्ड और अग्निहोत्र के साधनों को देखा। आगे चलकर लंकापति रावण का भवन भी देखा। इसके चारों ओर शस्त्र–अस्त्रों के धारण करने वाले, नीति –निपुण, कृतज्ञ अनेक वीर योद्धा खडे हुए थे। वह मन्दिर पर्वत के शिखर पर अपनी कान्ति से आकाशस्थ नक्षत्रों की भाँति चमकता था। उसके इर्द–गिर्द अनेक हाथी, घोड़े, रथ और विमान खड़े थे।

इसी प्रकार भ्रमण करते हुए हनुमान् ने रावण और उसके प्रधान पुरुषों का बल देखने के लिए **१. महोदर २. विरूपाक्ष ३. विद्युज्जिह्व ४. विद्युन्माली ५. बहुदंष्ट्र ६. शुक ७. सारण ८. इन्द्रजित ६. जम्बुमालि १०. सुमालि ११. रश्मि केतु १२. सूर्यशत्रु १३. वज्रकाय १४. धूम्राक्ष १५. संपाति १६. विद्युद्रू-पभीम १७. घन १८. विघन १६. शुकनाम २०. चक्र २१. शठ २२. कपट २३. ह्रस्वकर्ण २४. दंष्ट्र २५. लोमश २६. मत्त २७. ध्वजग्रीव सादिन २८. विद्युज्जिह्व २६. द्विजिह्व ३०. हतिमुख ३१. कराल ३२. विशाल ३३. शोणिताक्ष** आदि के भवनों को भी देखा जिससे लंका के बल का निरीक्षण कर लिया। इसी भाँति हनुमान् ने–

शिविका विवधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः।
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च।।६।३६
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च।
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च।।५।३७

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने।
स मंदरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम्।।६।३८

रावण के चित्रशाला गृह, लतागृह, नाना विधि शिविका क्रीड़ा भवन, दारु पर्वत, कामगृह, और दिवागृह को भी देखा, जिससे लंका के विज्ञानी व शिल्पी लोगों के बुद्धिबल का पता लग गया।

स्पष्ट है कि राक्षस भी मनुष्य ही थे और वैज्ञानिक प्रगति एवं भौतिक विकास में लंका राज्य पराकाष्ठा को प्राप्त था।

इन सबके देखने से हनुमान् को रावण की बहुत सी रीति–नीति का पता लग गया, जिसका फल आगामी युद्ध में बहुत ही हितकर हुआ।

रावण-भवन में सीता का भ्रम

सब स्थानों को देखकर, एक दिन पुनः हनुमान् ने रावण के पुष्पक विमानादि को चढ़कर देखा तथा स्त्री–मण्डल को देखते–२ उसने एक गौर वर्ण, सुवर्ण भूषणों से भूषित अन्तःपुर की ईश्वरीय और सर्वथा मनोहर अंगों वाली स्त्री को आनन्द में सोये हुए देखा जिसे देख, विचार किया कि यह रूप यौवन सम्पन्न स्त्री सीता ही होगी–

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवन सम्पदा।।१०।५३

फिर उसने सोचा कि राम से वियुक्त सीता इस प्रकार निश्चिन्त होकर सो नहीं सकती और न वह इस प्रकार भोग ही भोग सकती है। वह अलंकार धारण नहीं कर सकती है, दूसरे पुरुष को तो क्या वह देवराज इन्द्र को भी सेवन नहीं कर सकती, क्योंकि राम के समान गुणवान् तथा निर्दोष पुरुष अन्य कोई नहीं हो सकता। इसलिये यह कोई अन्य स्त्री है। मुझे सीता का समाचार और स्थान से लेना चाहिए। यह विचार कर हनुमान् पान भूमि की ओर चला गया।

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न नानमुपसेवितुम्।।११।२
नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम्।
न हि राम समः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि।।११।३
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः।
पान भूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः।।११।४

महावीर की धर्म-भीरुता

पान भूमि में सीता को देखते हुए हनुमान् ने एक दिन बहुत सी रूप–यौवन तथा मद से मदान्ध रमणियों को रावण से रमण करते देखा किन्तु जानकी को न देखा। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह सोचने लगा कि –

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।।११।३८
न हि मे परदाराणां दृष्टिविषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः।।११।३९

दुःख की बात है कि तुझे सीता माता का तो पता नहीं चला किन्तु अन्य कई प्रकार के धर्म लोप करने वाले, शास्त्र –निषिद्ध दृश्य सामने दिखाई पड़ते हैं, जो एक धर्मात्मा धर्मभीरु पुरुष को भी धर्म से शिथिल कर देते हैं। यद्यपि मेरी दृष्टि परस्त्री विषय में दूषित नहीं, तथापि आज मैंने पर–स्त्री को ऐसी दशा में अवश्य देखा है जिसका देखना शास्त्र में निषिद्ध है।

नेक्षेत नग्नां परस्त्रियम्। इति स्मृतिः।

इस विचार के साथ ही हनुमान् के हृदय में उस राजाज्ञा रूपी धर्म के नाश होने का भय उत्पन्न हुआ, जिसके लिए वह समुद्र लांघ कर इतनी दूर आया था। तब उसने दूत धर्म और मनुष्य धर्म की तुलना करते हुए विचारा कि–

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते।।११।४१
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तते।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्।।११।४२
ना न्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे।।११।४३
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्गते।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्।।११।४४
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया।
रावणान्तः पुरं सर्वं दृश्यन्ते न च जानकी।।११।४५

"यद्यपि मैंने सब दशाओं में स्त्रियों को देखा है, परन्तु मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही सब इन्द्रियों को शुभ व अशुभ कर्मों में प्रवृत्त करने वाला है, वही मेरा

मन व्यवस्था मे है। फिर स्त्री–मण्डल के अतिरिक्त दूसरी जगह सीता मिलेगी ही नही क्योंकि स्त्रियाँ सदा स्त्रियों मे ही देखी जाती है। जिस जाति का जो पदार्थ होता है, वह उसी जाति में जाना जाता है। स्त्री खो जाने पर हरिणो की पक्तियाँ नही ढूढी जाती। इसलिए शुद्ध मन से रावण के अन्तःपुर मे ही तब तक सीता को ढूढना चाहिए, जब तक वह पा नही जाती।"

शास्त्रीय वीरभाव

रावण के अन्तःपुर को देखकर भी जब हनुमान् को सीता का पता न लगा, तो उसने विचार किया, कि सीता का मिलना तो अब कठिन है, इसलिये किष्किन्धा को लौटना चाहिए। यह विचार अभी उठने भी न पाया था कि उसकी अन्तरात्मा ने उसे धिक्कारा कि हनुमान् ! तुमको वीर कहलाते हुए क्या यह कायरता और पुरुषार्थ रहित विचार शोभा देते है ? क्या तू निष्फल लौटकर अंगद, जाम्बवान् आदि बन्धुओं को मुँह दिखा सकेगा ? क्या तू योद्धा और वीर कहलाने के योग्य रहेगा ? नही ! नहीं!! इस विचार और निराशा को छोड़कर उत्साहपूर्वक सीता जी की खोज कर ! निःसन्देह तू कृतकार्य होगा, क्योंकि अनिर्वेद अर्थात् पुरुषार्थ सब सिद्धान्तो का मूल है–

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः।।१२।१०
अनिर्वेदी हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।।१२।११
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टे हमुत्तमम्।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान्।।१२।१२।

तब हनुमान् ने निश्चय कर लिया, कि अब मैं उत्साहपूर्वक यत्न करता हुआ न केवल एक दो स्थानों को देखूँगा, किन्तु रावण–शासित सब देशो में ढूंढूंगा।

इस निश्चय के पीछे हनुमान् ने कई दिन तक अनेकों देशों तथा अनेकों जातियों की स्त्रियों को कहीं • विमान पर चढ़कर, कहीं अन्दर जाकर, कहीं भवनों के ऊपर चढ़कर, कहीं किसी ओट में बैठ कर देखा। जब फिर भी सीता का समाचार न मिला तब उसको चिन्ता हुई कि सम्पाति के अनुमानानुसार सीता यहाँ नहीं होगी। या तो रामवाणों के भय से शीघ्र दौड़ते हुए रावण के विमान से सीता मार्ग में गिर पड़ी या उस सुकुमारी आर्य देवी का हृदय राम के वियोग में सागर के डरावने रूप को देखकर भयाक्रान्त हो गया और वह मर गई या इस उग्र बलधारी रावण की भुजाओं की पीड़ा को न सहकर उसने अपना जीवन त्याग दिया, अथवा इस तुच्छबुद्धि ने उसे बन्धुहीन देखकर अपने शील की रक्षा के प्रतिकूल समय में भक्षण कर लिया अथवा दुष्ट रावण की आज्ञा से इन राक्षसियों ने वह खा डाली होगी अथवा रावण के किसी अति गुप्त–स्थान में पिंजरे में मैंना की भाँति वह कैद होगी, अन्यथा वह राम–पत्नी जानकी रावण के वश में किस प्रकार आ सकती है ? दुःख की बात है, कि

बिना निश्चित प्रमाण के एकपत्नी–व्रती राम को मैं कैसे बता सकूंगा, कि वह नष्ट व प्रनष्ट है या मर गई है ? इसमें जो कुछ भी मैं कहूंगा, वह सदोष होगा। यदि सीता को बिना देखे ही मैं किष्किन्धा चला गया तो मेरा यह पुरुषार्थ किस काम आयेगा और समुद्र पार करने का क्या फल होगा तथा मुझे सुग्रीव तथा राम लक्ष्मण क्या कहेंगे ?

- **विमान पर चढ़ते उतरने और सब स्थानों में निःसंकोच जाने आने से प्रतीत होता है, कि हनुमान ने लंका में विशेष परिचय व मान प्राप्त कर लिया था। देखो वा० रा० सु कां० सर्ग ६, सर्ग १६ वा सर्ग १२ श्लोक २५। -सम्पादक**

यदि मैं जाकर यह कहूं कि "मैंने सीता नहीं देखी" तो इस कटु और इन्द्रिय सन्तापक वाक्य को सुनकर राम अपने प्राणों की त्याग देंगे, राम की मृत्यु को सुनकर उसका स्नेही भाई लक्ष्मण भी जीता न रहेगा। इस प्रकार राम–लक्ष्मण की मृत्यु सुनकर भरत के मरने को देखकर, शत्रुघ्न प्राण छोड़ देगा। इन सब पुत्रों के परलोकवास को जानकर इनकी मातायें (कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी) भी इस लोक में न रहेंगी। राम की इस दशा को देखकर कृतज्ञ तथा सत्य–प्रतिज्ञ सुग्रीव भी मर जायेगा। सुग्रीव की मौत को देखकर उसकी पतिव्रता स्त्री' रूमा' और अंगद की माता 'तारा' भी प्राण त्याग देंगी। इतने घोर संकट के हो जाने पर मेरे सहस्रों जातीय बन्धु भी विष खाकर, समुद्र में कूदकर या आग में जलकर मर जायेंगे। इसलिये मैं किष्किन्धा में जाकर इतने महा विनाश और रोदन का कारण कदापि न बनूंगा। हाँ, यदि सीता न मिली तो मैं समुद्र के किनारे चिता बनाकर प्रचण्ड अग्नि में प्रवेश करूँगा, समुद्र में डूब जाऊँगा अपना शरीर पक्षियों के अर्पण कर दूँगा अथवा वापस होकर वृक्ष मूल में बैठा जीवन व्यतीत कर दूँगा, परन्तु सीता को देखे बिना पीछे नहीं लौटूगां। मैं आर्य वीरों के पुरुषार्थ की तरह रावण को ही मार दूंगा। उसे उठाकर समुद्र के ऊपर–ऊपर ही राम के पास ले जाऊँगा। जब तक मैं यशस्विनी रामपत्नी को न देख लूँगा, तब तक लंका के स्थानों को ढूंढूंगा। यावज्जीवन इन्द्रियों को वश में रखकर आहार व्यवहार को नियम से निवाहता हुआ, यहाँ ही रहूंगा, ताकि मेरे वहाँ जाने से जिन अनर्थों के होने की आंशका है, वे न हों–

सागरानूपे देशे बहुमूलफलोदके।
चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि सद्धि मरणी सुतम्।।१३।३६
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वा सितेक्षणाम्।।१३।४५
यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तावदेतां पुरीं लंकां विचिनोमि पुनः पुनः।।१३।५२
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।
न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः।।१३।५३

अशोक वाटिका में प्रवेश

इस प्रकार विचार कर हनुमान् ने सोचा कि लंका में एक बड़ी वाटिका **''अशोक वाटिका''** है उसको भी देख लूँ, कदाचित् वहाँ ही सीता का पता मिले। यह विचार कर हनुमान अशोक वाटिका में चले गये। वहाँ विचरते हुए अन्होंने अनेक प्रकार की रजत, सुवर्ण और मणि मूँगा आदि से जटित पृथिवियों को देखा। सब ऋतुओं में फलने वाले वृक्ष और निर्मल सुशीतल जल बहाने वाली नदियाँ, नाना पक्षियों से युक्त सरोवर तथा बहुत से कृत्रिम पर्वत व पर्वतीय पदार्थों को देखा। वहाँ उन्होंने सोना, चाँदी तथा मणि पत्थर की वेदियों से भूषित और नाना वर्ण तथा नाना गन्ध वाले पत्र–पुष्पों से भरी लताओं से वेष्ठित वृक्ष देखे। बहुत से ऐसे वृक्षों को भी देखा, जिनकी चमक–दमक सुवर्ण के स्तम्भों व नक्षत्रों के समान थी और जिनके मध्य में चलने से हनुमान् पर इतनी प्रभा पड़ी कि हनुमान् अपने आपको सोने की देह वाला मानने लगा।

तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनो स्मीति सर्वतः।।१४।३६

इन वृक्षों और इनके फलों को देखकर हनुमान् विस्मित हुआ इधर–उधर सीता की जाँच के लिए फिरने लगा। बड़ी देर तक भी सीता का पता न पाकर वह एक ऐसी नदी पर पहुँचा, जिसका जल बड़ा शुद्ध और पवित्र था तथा अनेकों प्रकार के सहस्त्रों पक्षी नाना स्वरों से उसकी शोभा बढ़ा रहे थे।

सीता की ईश्वर-निष्ठा

इस नदी पर पहुंचकर हनुमान् की निराशा की अँधियारी बड़ी सीमा तक दूर हो गई और उसे आशा का पुण्य प्रकाश निकट प्रतीत होने लगा। यहाँ पहुंचकर उसने सोचा कि वह राजमहिषी तथा राजकन्या नित्य शुद्ध वायु सेवन की अभ्यासिनी है, अतः प्रातः सायं यहाँ भ्रमण करने के लिए अवश्य आयेगी और दूसरा सबसे बड़ा विचार जो कपिराज के मन में आया वह यह था कि उस समय प्रत्येक आर्यकुमार व कुमारिका के जीवन में नित्यप्रति सन्ध्या करना एक अनिवार्य अंग था। अतः हनुमान् को निश्चय हो गया कि–

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदी चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।।१४।४६
तभ्याश्चाप्यनुरुपेय मशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता।।१४।५०
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम्।।१४।५१

'सन्ध्याकाल में सन्ध्या करने के लिए जानकी इस शुभ जलवाली नदी पर निश्चय ही आयेगी, क्योंकि उस शुभ वैदिक पथ पर चलने वाली महाराज राम की परमप्रिया जानकी के लिए यह नदी और वाटिका सब प्रकार से योग्य है। यदि जानकी जीती है तो इस शीतल जल वाली नदी पर अवश्य ही आयेगी।'

पाठक ! पूर्वकाल की आर्य स्त्रियों के धर्म भाव को देखिये कि जिनके धर्मभाव की साक्षी देने में अन्य जाति के पुरुषों का भी इतना दृढ़ विश्वास है, कि यदि वह जीती है, तो अवश्यमेव- "अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधि मास्थितः। सावित्रीं चाप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः।।" मनुस्मृति के इस आदेश के अनुसार ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या करने के लिए अवश्य आवेगी। हनुमान को सीता के जीवित होने में पूरा निश्चय नहीं है पर जीवित होने पर वेद की आज्ञा पालने में पूरा निश्चय है। क्या इस समय में भी आपने किसी स्त्री में वेदाज्ञापालन का ऐसा दृढ़ व्रत सुना है ? सुनें भी कहाँ से जब कि वेदों के सिद्धान्तों के विरुद्ध शिक्षा देने वाले पुराण आदि ग्रन्थों को आप धर्मग्रन्थ माने हुए हैं, जिनमें स्त्रियों को और शूद्रों को वेद का अनधिकारी बताया गया है।

सीता की दशा का वर्णन

यह विचार कर हनुमान् जब आगे बढ़ा, तो क्या देखता है, कि एक अति कृश स्त्री मलिन भूषणादिकों को धारण किये आँसू बहाती हुई चली आती है। उसकी स्वर्ण समान देह, शोक रूपी धूम से अग्नि ज्वालावत् धूसरित हो गई है तथा उस स्त्री की प्रत्येक चेष्टा से पतिव्रत धर्म की किरणें निकल रही हैं।

इसे देखकर हनुमान् ने चित्त में विचार किया कि उपवास से कृश, पति वियोग से उदासीन और मन–मलीन सचमुच यह सीता देवी ही है जिसके लिए राम अहोरात्रि शोक, करुणा और दया से युक्त होते हैं तथा जिसके लिए उन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया और अब भी युद्ध के लिये उद्यत हैं तथा जिसके लिये मैंने सागर पार किया है और लंका में प्रवेश कर द्वार–२ पर देखा है। हाँ ! है भी सच, इस देवी के निमित्त जितने कष्ट उठाये जायँ वह इसके गुणों के आगे तुच्छ हैं। यदि इसके लिए जगत् भर के रत्न इकट्ठे कर दिये जायें, तो भी इसके आदर्श की उपमा नहीं कर सकते।

सर्वान् भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम्।।१६।१६
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्।।१६।२३

"यह सती इस पराधीन अवस्था में भी केवल पतिव्रत धर्म को दृढ़ रखती हुई अपने पूज्य पति राम की भक्ति के लिए सारे सुख भोगों को त्यागकर वन के कष्टों का ध्यान न कर, निर्जन वन में निवास करती है। अवश्यमेव इसके पुनः प्राप्त कर लेने से श्रीराम को वैसी ही प्रसन्नता होगी जैसी कि भ्रष्ट राजा को पुनः राज्य प्राप्त करने से होती है।"

धन्य है इसका पति प्रेम, जो यह काम, भोग, राज्य इष्टमित्र तथा बन्धुजनों से हीन होकर भी न तो राक्षसियों की ओर देखती है, और न इन फल–फूलों को ही निहारती है किन्तु एकचित्त होकर सदा राम का ही चिन्तन कर रही है।

हाँ, क्यों न हो, जब कि यह आर्यपुत्री है आर्यशास्त्रों के जानने वाली है। आर्यशास्त्र बताते हैं, कि–

भर्ता नाम परं नार्यो शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते।।१६।२६

"पति ही स्त्रियों का परम भूषण है। पति से वियुक्त स्त्रियाँ शोभायोग्य होने पर भी शोभाहीन हो जाती हैं।"

इस प्रकार दीनमुख होने पर भी राम के तेज से उज्ज्वलित बन्धुओं की रक्षा से हीन होने पर भी अपने शील की रक्षा से रक्षित सीता को देखकर हनुमान् आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगा तथा अपनी यात्रा की सिद्धि के सुख का अनुभव कर और राम के गुणों को स्मरण कर उनको प्रणाम करने लगा।

सीता और रावण का सम्वाद

अभी हनुमान् अपनी कार्यसिद्धि का चिन्तन ही कर रहा था कि इतने में रात्रि व्यतीत हो गई और ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाले तथा वेद–वेदांग जानने वाले यज्ञकर्त्ताओं ने वेदध्वनि करनी आरम्भ कर दी जिसे सुन उस राक्षस नगरी में वैदिक कर्मों की महानता अनुभव करता हुआ हनुमान् अपने कर्म में लग गया।

इधर सूर्योदय को निकट जानकर बन्दी तथा भाट लोगों ने नाना विधि स्तुतियों से रावण को जगाया। रावण ने सुखशैय्या से उठकर प्रथम तो आवश्यक कर्म किया और फिर अपने सम्बन्धियों सहित अपना नित्य कर्म समाप्त किया।

नित्य कर्म करने के पीछे विवेकहीन रावण, सीता को कुमार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए अशोक वाटिका में गया।

तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा।
रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम्।।

हर्षजानि च सो श्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्र च राघवम्।।१७।३१

और वहाँ शोक एवं पति विरह से दुःखी एवं मलिन भूषण तथा वस्त्र धारण किये और कई दिनों से पूरा आहार न करने के कारण अति कृश हुई सीता को देखकर, बड़े अभिमान भरे परन्तु वास्तव में दीन शब्दों में बोला–

हे सर्वांग सुन्दरी तथा जगत् मनहारिणी सीते ! मेरी इच्छा है कि तुम मेरी स्त्री बनकर मेरी कामना पूर्ण करो और किसी प्रकार का भय संकोच मन में न रखो क्योंकि यहाँ कोई मनुष्य या राक्षस नहीं आ सकता। और–

स्वधर्मो रक्षसां भीरु! सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा।।२०।५
एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्षामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम्।।२०।६

हे सीते ! यद्यपि परस्त्रीगमन, परदाराहरण अथवा बलात्कार राक्षसों का स्वधर्म है, तथापि मैं तुम्हारी इच्छा बिना, तुम्हारे शरीर को स्पर्श भी न करूँगा चाहे मेरे मन और तन को कामदेव कितना ही पीड़ित क्यों न करे।

अतः देवी सीते ! तू विश्वास कर कि मैं तेरे प्रतिकूल कोई कर्म नहीं करूँगा। अब तू एक वेणी धारण करना, भूमि पर सोना, सदा राम का ध्यान करना, मलिन वस्त्र पहनना, कई–कई दिन तक अन्न आदि में रुचि न रखना– ये सब आचरण त्याग दे, क्योंकि मेरे वश में होकर तेरे लिए यह योग्य नहीं है। तू स्त्री–रत्न है और मेरे घर में सर्व ऐश्वर्य हैं। तू उन्हें भोग अर्थात् उत्तम वस्त्र, सुन्दर शैया, रुचिकर षड्रस भोज्यों का सेवन कर–

भुङ्क्ष्व भोगान् यथा कामं पिब भीरु! रमस्व च।
यथेष्ट च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च।।२०।२३

सुन्दरी! यह तेरा सर्वोतम यौवन ही व्यतीत हो रहा है। नदियों के प्रभाव की भाँति गया हुआ यह फिर लौटकर कभी नहीं आयेगा। भामिनी! तेरे रूप को देखकर मैं ही स्तुति नहीं कर रहा, किन्तु संसार में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं, जो तुझे देखकर यह कामना न करे। प्रतीत होता है कि जगत्कर्त्ता परमात्मा ने तुझे रचकर संसार की रचना का काम बन्द कर दिया है। इसलिए तेरे समान रूप वाली दूसरी कोई स्त्री नहीं देखी जाती है।

हे सीते! मेरा मन तेरे प्रत्येक अंग में आसक्त हो रहा है, इसलिये राम को त्याग कर मेरी 'भार्या' बन। नहीं–नहीं किन्तु मेरी अनेक रानियों की महारानी बन। चन्द्रवदनि! संसार के सारे रत्न जो मैं राजों महाराजों को विजय कर लाया हूं, तुझे देता हूं और यह सारा राज्य भी तेरे अर्पण करता हूं। मेरी स्त्री बनकर नाना भोगों को भोगती हुई मेरे सुख को भी सिद्ध कर–

लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि मे।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते।।२०।१७

सीता का पुण्यमय उत्तर

रावण के इन वचनों को सुनकर दुःखी हुई पतिव्रता, पतिप्राणा जानकी अपने आगे तृण का अन्तर करके बोली, हे रावण ! तू मेरी प्रार्थना करने के योग्य नहीं। जिस प्रकार पापी जन को मुक्ति दुर्लभ है, इसी प्रकार मेरे लिये तेरी यह प्रार्थना भी निर्मूल है। मुझ पतिव्रता से यह निन्दित कर्म कभी नहीं होगा। विशेष कर इसलिए भी कि मैं ब्रह्मवादी जनक के महाकुल में पैदा हुई हूँ, सर्वमान्य सूर्यकुल में ब्याही हुई हूँ।

थोड़ी देर चिन्तन कर रावण की ओर पीठ कर फिर सीता बोली–

नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव।।२१।६
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधु व्रतंचर।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर।।२१।७
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।।२१।८
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्।
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।।२१।६
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता।
वचोमिथ्या प्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः।।२१।१०
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे।

'हे रावण ! मैं कदापि तेरी भार्या होने के योग्य नहीं क्योंकि मैं महापुरुष राम की सती पत्नी हूँ।

हे साधु ! तुझे भी उचित है कि स्त्री धर्म और पतिधर्म को विचार कर मेरी व किसी स्त्री की इच्छा न कर, क्योंकि जैसे तू अपनी स्त्री की रक्षा करता है, वैसे ही अन्य पुरुष भी अपनी धर्मपत्नियों की रक्षा करना उचित समझते हैं।

हे राक्षस ! तू अपने समान सबको समझ और अपनी ही स्त्रियों में रमण कर, अन्यथा स्मरण रख, कि अपनी स्त्री में सन्तुष्ट न रहने वाले, धिक्कारने योग्य बुद्धि से युक्त, चंचल इन्द्रियाँ और कामी पुरुषों का परस्त्रियाँ शीघ्र तिरस्कार कर देती हैं।

हे रावण ! प्रतीत होता है कि तेरी राजधानी में कोई सत्य (धर्म) वक्ता नहीं है। यदि है तो तू उसके उपदेशानुसार चलता नहीं, इसलिए तेरी बुद्धि उलटी होकर आचार–हीन हो रही है। यदि तुझे

किसी ने उपदेश दिया है और तू उसको न सुनकर ऐसा करता है, तो तेरा यह आचरण राक्षसों के नाश के लिये है।

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च।।२१।११
तथैव त्वां समासाद्य लंका रत्नौघसंकुला।
अपराधात्तवैकस्य नचिराद्विनशिष्यति।।२१।१२
स्वकृतै र्हन्यमानस्य रावणा दीर्घदर्शिनः।।२१।१३

'रावण ! यदि तुझे बढ़े हुए अपने राज्य और ऐश्वर्य का अभिमान हो, याद रख कि जैसे बड़े-२ उन्नत नगर और राज्य भी अन्यायी तथा अकृतात्मा (इन्द्रियलोलुप) राजा के दुराचरण के कारण नष्ट हो जाते हैं वैसे ही तुझे प्राप्त होकर रत्नों के अम्बारों से भरी हुई यह लंका भी तेरे अन्याय कर्म रूपी अपराध से शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी। तू दीर्घदर्शी नहीं है, इसलिए तू अपने ही कर्मों से मारा जायेगा।'

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा।।२१।१५
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्।।२१।१६
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः।।२१।१७

'हे राक्षस! जो तू मुझे स्त्री धर्म से पतित करना चाहता है तो स्मरण रख कि मैं ऐश्वर्य और धन से प्रलोभित नहीं हो सकती और न राघव के बिना दूसरे की अर्धांगिनीं ही बन सकती हूँ। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य को नहीं त्याग सकती, उसी प्रकार सीता राम को नहीं त्याग सकती। अरे रावण! तू ही कह कि मैं लोकनायक राम की सर्व सत्कृत भुजा का आश्रय लेकर अब किस प्रकार दूसरे पुरुष की भुजा का आश्रय लूँ?

मैं तो उसी प्रकार उस पृथ्वीनाथ राम की भार्या होने के योग्य हूँ जैसे आत्मवेत्ता पूर्ण ब्रह्मचारी के योग्य सद्विद्या होती है।'

इसलिए हे रावण ! तेरे लिए यही शुभ है कि तू मुझे राम के पास पहुंचा दे, जैसा कि वियुक्त सती स्त्री को भर्ता के पास पहुंचा देना ही योग्य है। यदि अपना सुख तथा लंका की रक्षा चाहता है तो राम के साथ मित्रता उत्पन्न कर। सर्व धर्मों के ज्ञानवान् राम की शरणागत वत्सलता सब स्थानों में प्रसिद्ध है। इसलिये तू जाकर शरणागत-वत्सल राम को प्रसन्न कर और नम्रता से मुझे उनको अर्पण कर, इसी में तेरा कल्याण है। अन्यथा तू अवश्य विपदाओं को प्राप्त होगा। हे रावण ! यह सम्भव है कि छूटा हुआ वज्र आघात करने में विलम्ब करे और मृत्यु का बाण अपने लक्ष्य को देर में वेधे, पर सक्रुद्ध हुए लोकनाथ राघव (राम) तेरे जैसे अन्यायी को नष्ट किये बिना कभी नहीं छोड़ेंगे।'

'रावण ! जो तू अपने बल का अभिमान करता है, तो देखना कि जब राम का महास्वन वाला धनुष शब्द करेगा, तब तू जले मुखवाले सर्प की भाँति अंधा होकर गिरेगा। हे रावण ! तेरी वीरता इसी से प्रतीत होती है कि रण–भूमि में राम–लक्ष्मण द्वारा तेरे भाइयों के मारे जाने पर तूने कायर की भाँति पर–स्त्री हरण रूपी दुष्ट कर्म किया। अरे रावण ! क्या यह वीरों का कर्म है कि उन दोनों नर सिंहों के वन में जाने पर शून्य आश्रम देखकर तू उन (राम) की स्त्री को हर लाया ?

न हि गन्धमुपाघ्राय राम लक्ष्मणयोस्त्वया।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुनरा शार्दूलयोरिव।।२१।३१

हे अधम ! जो तुझे अहंकार है तो स्मरण रख कि तू राम–लक्ष्मण की गन्ध पाते ही उनके सामने उसी प्रकार नहीं ठहर सकेगा, जैसे कि सिंह की गन्ध पाते ही कुत्ता नहीं ठहर सकता।'

सीता के इस सत्योपदेश को सुन कर मन्दमति रावण सीता से फिर क्रोध से बोला–'ज्यों–२ पुरुष स्त्रियों को शान्त करता है त्यों–त्यों स्त्रियाँ उसे अपने वशीभूत समझती हैं। ज्यों–२ वह प्रिय बोलता है, त्यों–२ वे उसका तिरस्कार करती हैं।'

'सीते ! शोक है कि तेरे लिए मेरा प्रेम, मार्ग में बढ़ते हुए घोड़ों को सारथी की भाँति मेरे क्रोध को रोकता है। कामदेव की लीला बड़ी विचित्र है कि जिसमें क्रोध होना चाहिए, वहाँ स्नेह उत्पन्न करता है। इसलिए सीते ! मैं तेरा हनन नहीं कर सकता, अन्यथा तू सर्वथा वध के योग्य है क्योंकि जैसे कटु तथा कठोर वचन तू कह रही है, उनमें से एक–एक वचन वध–दण्ड के योग्य है। फिर भी सीते! तुझ पर दया करता हुआ, मैं कहता हूँ कि तू मेरा कहना मान जा और यदि कुछ विचारना है तो शीघ्र विचार ले, क्योंकि–

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे यो वधिस्ते मयाकृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि।।२२।८
द्वाभ्यामूर्ध्वतु मासाभ्यां भर्त्तारं मामनिच्छताम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः।।२२।६

अब केवल दो महीने मेरी ठहराई हुई अवधि में से रह गये हैं। इसके अनन्तर तुम्हें मेरी स्त्री बनना पड़ेगा या मेरी आज्ञानुसार अवधि समाप्त होते ही राक्षसों के प्रातः भोजन के लिये सूद (जल्लाद) तुझे खण्ड–खण्ड कर देंगे।'

रावण के इस प्रकार के भय दिलाने वाले शब्दों को सुनकर वहाँ स्थित देव–गन्धर्व कन्याओं ने नेत्रादि के इगितों (इशारों) से सीता को आश्वस्त किया।

उनके आश्वासन से आश्वस्त तथा सती बल से प्रदीप्त सीता फिर अपने और रावण के हित के लिए वचन कहने लगीं–

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः।
निवारयति यो न त्वां कर्मणो स्माद्विगर्हितात्।।२२।१३

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः।।२२।१४

यथादृप्तश्च मातंगं शशश्च सहितौ वने।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच! शशवत्स्मृतः।।२२।१६

स त्वमिक्ष्वाकुनार्थं वै क्षिपन्निह न लज्जसे।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि।।२२।१७

इमे ते नयने क्रूरे विकृत कृष्णपिंगले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः।।२२।१८

तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषां दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति।।२२।१६

असन्देशात्तु रामस्य तपश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा।।२२।२०

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्रसंशयः।।२२।२१

राक्षसाधम ! प्रतीत होता है कि इस देश में तेरा कल्याण चाहने वाला कोई भी पुरुष नहीं, जो तुझे इस निन्दित कर्म से रोके अन्यथा मुझ धर्मात्मा राम की पत्नी को तेरे सिवाय त्रिलोकी में कौन जन होगा, जो मन से भी पाप के लिए प्रेरित करे। रावण! भला तेरी और राम की तुलना ही क्या है ? तेरी और राम की तो शश और गज की सी समानता है और इसमें गज राम और तू शश है। नीच ! इक्ष्वाकुनाथ राम की निन्दा करते हुए तुझे तब तक लज्जा नहीं आयेगी, जब तक तू उनके सम्मुख नहीं जाता। अनार्य ! मुझे पाप दृष्टि से देखते हुए तेरे दोनों क्रूर नेत्र भूमि पर क्यों नहीं गिर जाते तथा धर्मात्मा राम की पत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू को कुवाच्य कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं कट जाती ?

राक्षस ! मैं राम के सन्देश न मिलने तथा तप के पूर्ण करने के विचार से भस्म करने के योग्य होती हुई भी तुझ को भस्म नहीं करती, और यदि तू कहे कि यदि ऐसा ही बल था, तो मुझसे हरी क्यों गई ? सो दुष्ट ! निश्चय रख कि मैं किसी से हरी नहीं जा सकती। प्रतीत होता है कि तेरे नाश के लिए ही परमात्मा ने यह सारी दुर्घटना कराई है।

सीता के इन वचनों को सुन रावण क्रोध से अन्धा होकर सीता को झिड़की व भय दिखाता हुआ बोला– अय अनीति से अर्थ–हीन पुरुष के पीछे चलने वाली मूर्खे! आज मैं तेरा उसी प्रकार नाश करूँगा, जैसे कि सूर्य सन्ध्या अर्थात् अन्धकार का नाश करता है।

यह कहकर रावण क्रूर पापात्मा राक्षसियों को सीता के सताने का आदेश करने लगा। इतने में 'धन्यमालिनी' नामक राक्षसी रावण से प्रेम करती हुई बोली–महाराज! आप मुझसे रमण करें, इस

लावण्यहीन कृपण जाति की स्त्री से क्या? विशेष कर उस दशा में जबकि यह आपकी कामना ही नहीं करती। नाथ! कामशास्त्र के अनुसार भी तो कामना न करने वाली स्त्री से प्रेम करने वाले पुरुष का शरीर उत्पात युक्त (रोगी) हो जाता है–

अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते।।२२।४२

इस राक्षसी के वचन के पश्चात् दूसरी राक्षसियों को सीता को सताने का आदेश देकर रावण उस स्थान से चला गया। तदनन्तर एकजटा, हरिजटा, विकटा, दुर्मुखी आदि राक्षसियाँ राम की निन्दा तथा रावण की स्तुति करती हुई बोलीं–हे सीते! क्या तू राज्य से भ्रष्ट, वन में असहाय राम को छोड़कर भुवनेश्वर रावण महाराज के अन्तःपुर में रहना नहीं चाहती जिसके भय से भयभीत हुआ सूर्य तपता नहीं और वायु बहती नहीं? क्या तू स्वर्गीय जीवन के भोगों को छोड़कर अपनी मृत्यु चाहती है ? हे अधर्मे! जिसने नाग, गन्धर्व, दानव आदि सब जीत लिये वही रावण तेरे पास आता है तथा सर्वैश्वर्य तेरे अर्पण करता है, फिर भी क्या तू उसकी भार्या होना नहीं चाहती ?

राक्षसियों के इन वचनों को सुनकर दुःख भरे हृदय से अपने अश्रुओं को पोंछ कर सीता बोली–

यदिदं लोकविद्विष्ट मुदाहरत संगताः।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिष प्रतितिष्ठति।।२४।७
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः।।२४।८
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्त्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्य सुवर्चला।।२४।६

दुष्टाओ! तुम सब मिलकर जो यह लोकनिन्दित वचन कह रही हो वह (कर्तव्यनिष्ठ होने से) पाप की भाँति मेरे मन में नहीं ठहर सकते क्योंकि मनुष्य पत्नी कभी भी राक्षस की भार्या होने के योग्य नहीं। निःसन्देह तुम मुझे खा जाओ किन्तु मैं तुम्हारा पापमय वचन कभी न मानूंगी।

मेरा भर्त्ता राम चाहे दीन है या राज्यहीन, पर मेरे लिये वह गुरु है। मैं सदा उसकी सेवा में उसी भाँति रहूँगी, जैसे सूर्य के साथ सुवर्चला रहती है। जिस प्रकार महाभागा शची इन्द्रदेव की, अरुन्धती वशिष्ठ की, रोहिणी चन्द्रमा की, लोपामुद्रा अगस्त्य की, सुकन्या च्यवन की, सावित्री सत्यवान् की, श्रीमती कपिल की, मदयन्ती सौदास की, केशिनी सगर की और भीम पुत्री दमयन्ती नल की सेवा करती रही है, उसी प्रकार मैं राम के व्रत के पीछे व्रतशीला रहूंगी।

सीता के इन भावों को सुनकर फिर राक्षसियाँ नाना विधि के कठोर शब्दों से झिड़कने लगीं। इस समय हनुमान् भी एक शिंशप के वृक्ष पर बैठा हुआ, यह सारा दृश्य देख रहा था। तब इनमें से एक विनता नाम की राक्षसी बोली–सीते! तेरा पति–स्नेह पर्याप्त देख लिया है। अब तू इससे उपराम हो क्योंकि अति सब जगह ही विपदा का कारण होती है। अब तू कृपण राम को छोड़कर दानशील, सर्व प्रियवादी रावण को भर्त्ता के रूप में सेवन कर। तुझे गतायु राम से क्या प्रयोजन ?

सीते! यदि तू मेरा कहना न मानेगी तो हम सब तुझको खा लेंगी। इसके बाद दूसरी विकटा नामकी राक्षसी बोली– हे दुर्बुद्धि सीते! तेरे बहुत से कठोर वचन सुन लिये। अब तू शीघ्र समुद्र पार से लाने वाले रावण को अपना भर्त्ता बना क्योंकि यहाँ अब तेरी कोई रक्षा नहीं कर सकता। व्यर्थ शोक या रोने को छोड़। रावण के अन्तःपुर में तेरे वश में सहस्त्रों स्त्रियाँ रहेंगी। यदि मेरा कथन न मानेगी, तो मैं तेरा हृदय निकाल कर खा जाऊँगी। इसके बाद चण्डोदरी, प्रघसा, शूर्पणखा, अजामुखा आदि राक्षसियों ने भी सीता को इसी प्रकार धमकाया। शूर्पणखा ने तो यहाँ तक कहा कि– शीघ्र सुरा लाओ ताकि उसे पीकर मनुष्यों का मांस खाकर हम नृत्य करें।

इन क्रूर स्वभावा राक्षसियों के क्रूर वचनों को सुनकर दुःखी हुई सीता रोने लगी और डरती हुई, गद्‌गद् वाणी से अपने पतिव्रत भाव को पूर्ववत् प्रकट करने लगी कि 'मनुष्यपत्नी राक्षस की भार्या होने योग्य नहीं, इसलिए चाहे मुझे भक्षण कर लो, पर मैं तुम्हारा वचन कभी न मानूँगी।

राक्षसियों के मध्य में इस प्रकार पीड़ित हुई सीता कहीं भी सुख न पाकर दुःखाश्रुओं से अपने मुख को आर्द्र करती हुई वहाँ से उठकर अशोक वृक्ष की छाया में आकर बैठ गई और मोहवश विलाप करने लगी–'हा राम! हा लक्ष्मण! हा माता कौशल्ये! हा देवि सुमित्रे! मैं इस समय अति संकट में हूं और जीवन से उपराम होकर मरना चाहती हूं। पर शोक है कि मृत्यु भी इस समय मेरी कामना पूर्ण नहीं करती। इससे निश्चय होता है कि विद्वानों की कही हुई यह लोकोक्ति सत्य ही है कि 'असमय में मृत्यु भी दुर्लभ होती है।' आज मैं राम से वियुक्त होने के कारण राक्षसियों से मर्दित की जाती हूं। अब मेरे लिए राम के वियोग में जीना वैसा ही कठिन है जैसा कि तीक्ष्ण विष पीकर जीने की आशा करना।

कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम्।
तेनेदं प्राप्यते घोरं महा-दुःखं सुदारुणम्।।२५।१८
जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो ना साद्यते मया।।२५।१६
धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत्परित्युक्तमात्मच्छन्देन जीवितम्।।२५।२०

मैंने कोई पूर्व जन्म में महापाप किया है जिसके फल से ही इस दारुण और महादुख को प्राप्त हो रही हूँ। वर्तमान महाशोक से ग्रस्त मैं अपना जीवन त्याग देना चाहती हूँ, परन्तु राक्षसियों के वश में होने के कारण न मुझे मरण मिलता है, न राम। धिक्कार है मनुष्य जीवन को और जिस पर भी पराधीन जीवन को, कि जिसमें कोई अपनी इच्छानुसार प्राण भी त्याग नहीं कर सकता।

इस प्रकार विलाप करती हुई कुछ देर व्याकुल रहकर सीता फिर बोली–

नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्।।२६।५

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते।।२६।६
धिङ् मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पाप जीविका।।२६।७
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।२६।८
प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम्।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति।।२६।९
छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्।।२६।१०
ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शंके मद्भाग्यसंक्षयात्।।२६।११

राक्षसियों के वश में रहने की अपेक्षा मुझे मृत्यु के वश में रहना सुखकारी है, इसलिए राक्षसियों के गृह में मुझे जीवन, अर्थ, पदार्थ तथा भूषणों से कोई प्रयोजन नहीं। मेरा हृदय भी पत्थर का बना प्रतीत होता है, जो इतने दुःखों से दलित हुआ भी नष्ट नहीं होता किन्तु अजर अमर हो रहा है।

धिक्कार है मुझ अनार्य वा असती को, जो पति से वियुक्त होकर मुहूर्त भर भी पापी जीवन को रखती हुई जी रही हूँ।

दुष्ट रावण को तो मैं पाँव से भी नहीं छुऊँगी, प्रेमपूर्वक उसकी भार्या बनना तो दूर की बात है।

हत्यारा रावण मेरे प्रत्याख्यान को नहीं जानता और न ही अपने आपको व अपने कुल को जानता है, जो दुष्ट भाव से मेरी प्रार्थना करता है। छेदन, भेदन, प्रभेदन की हुई, अग्नि में तपाई हुई, भी मैं रावण को सेवन न करूँगी। राक्षसियो ! तुम्हारे प्रलाप से क्या ?

जगत् प्रसिद्ध, पूर्ण विद्वान, कृतज्ञ, दयालु, स्त्री–व्रत धारी राम मुझ पर दया नहीं दिखा रहे, अतः प्रतीत होता है कि मेरे भाग्य से ही वे निर्दय बन गये हैं।

राम के बल तथा प्रेम में सीता की अनन्य निष्ठा

दुष्टाओ! तुम नहीं जानतीं कि अकेले राम ने युद्ध–भूमि में चौदह सहस्र राक्षसों को पराजित किया है। यह मैं मानती हूँ कि लंका समुद्र के मध्य में होने के कारण शत्रुओं से सुरक्षित है परन्तु यह सत्य है कि राम के बाणों की गति को भी कोई नहीं रोक सकता। जो तुम कहो कि–'यदि राम ऐसा है तो तुम्हें क्यों नहीं ले जाता' तो इसका कारण यही है कि राम को मेरे यहाँ होने का सन्देश नहीं मिला। यदि राम को यह पता होता तो वह मेरा यहाँ रहना कभी भी न सह सकते। रावण से हरने का

समाचार राम को बतलाये भी कौन ? महात्मा जटायु ही तो बताने वाला था, वृद्ध होने के कारण रावण से युद्ध में मारा गया। मैं सच कहती हूं कि यदि राम को मेरे यहाँ होने का सन्देश मिल जाय, तो वे आज इस लोक को अपने शस्त्र–अस्त्रों से राक्षसहीन कर देंगे।

निर्दहेच्च पुरीं लंकां निर्दहेच्च महोदधिम्।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत्।।२६।११

लंकापुरी और समुद्र को भस्म कर दुष्ट रावण के यश तथा नाम का तत्काल नाश कर देंगे।

जिस प्रकार आज मैं रोती हूं उसी प्रकार रावण और राक्षसों के नाश हो जाने पर राक्षसियाँ घर–घर रोयेंगी। यह सारे राजभवन राम की कोपाग्नि से भस्म होकर शान्त हुई चिता से युक्त श्मशान के बराबर हो जायेंगे।

हाँ, यदि राम को मेरी सुध न मिली तो समय पूरा होने पर ये धर्म–हीन राक्षस घोर उत्पात करेंगे। तब मैं भी राम को न देखती हुई, मृत्यु का आश्रय लूँगी, परन्तु किसी प्रकार भी दुष्ट राक्षस की नीच इच्छा पूर्ण न होने दूँगी। राम–लक्ष्मण मुझे जीती ही नहीं जानते होंगे। यदि वह मुझे जीती जानते तो मेरी खोज के लिए वह समस्त पृथ्वी को मथ डालते या मुझे मरी हुई समझकर मेरे शोक से राम उसी समय देह त्याग कर भूलोक छोड़ देवलोक में चले गये होते। धर्मात्मा बुद्धिमान ब्रह्म आत्मा(ब्रह्मनिष्ठ) राजर्षि राम को स्त्री से कोई प्रयोजन नहीं रहा, इसलिए यह मेरी सुध नहीं लेते।

परमात्मा के अर्थ टीकाकारों ने भी ब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्त पूर्ण वैरागी के किये हैं। देखो वाल्मीकि रामायण सु० कां० सर्ग २६ श्लोक ४० की टीका। -सम्पादक

दृश्यमान् में ही प्रीति होती है। अदृश्य में सुहृदयता नहीं रहती। किंवा मुझमें कोई अवगुण होंगे, जिनसे उदास होकर राम ने खोज नहीं की, मेरे पुण्य कर्म नष्ट हो चुके होंगे, जिनके कारण मैं राम से वियुक्त हो गई। अस्तु कुछ भी हो, पवित्रता के पुञ्ज शूरवीर, शत्रुनाशक राम से वियुक्त होकर इस दशा में मैं जीने से मरना अच्छा समझती हूँ।

राक्षसियो! मनुष्य के सुख–दुःखों को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि धन्य हैं महामुनि जिन्होंने सत्य स्वरूप परमात्मा की उपासना से आत्मा और इन्द्रियों को वशीभूत कर प्रिय अप्रिय व राग–द्वेष ही त्याग दिया है क्योंकि प्रिय अप्रिय के संयोग से महादुःख होता है। जैसा कि इस समय मुझे हो रहा है।

त्रिजटा का सीता सहाय

सीता के इन वचनों को सुनकर राक्षसियाँ बहुत क्रुद्ध हुईं। इनमें से कई रावण को बताने गईं, कई सीता को भय देती हुई बोलीं कि अनार्य दुष्ट विनिश्चये! आज हम अवश्य तेरे माँस का भक्षण करेंगी। तू इसी योग्य है। इन दुष्ट अन्याय युक्त विचारों को सुन 'त्रिजटा' नाम की बूढ़ी राक्षसी बोली– अनार्याओ! अपने आपको खाओ। महात्मा जनक की पुत्री और महाराजा दशरथ की पुत्र–वधू सती

सीता को मत खाओ। इसके हृदय को दुखाने में तुम्हारा और तुम्हारे राजा रावण का नाश तथा इसके भर्ता का अभ्युदय दिखाई देता है। मैं कई दिन के विचार के पीछे तुमको बताती हूँ कि शीघ्र ही लंका की दशा उलट-पलट होने वाली है। यदि तुम्हारे कर्म ऐसे ही रहे, तो स्मरण रखो कि यह सारी राज्य सामग्री राम के हाथ होगी और राक्षसों का जगत् में चिह्न मात्र भी न मिलेगा।

त्रिजटा के इस अद्‌भुत कथन से राक्षसियाँ तो जैसे जड़वत् हो गईं और सीता अमर जल मिलने से उत्थित वनलता की भाँति जीवन प्रगट करती हुई त्रिजटा से बोली-यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी-

ततं सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः।।२७।४७

हनुमान् और सीता का संवाद

इस समय हनुमान् विस्मय के साथ सीता, रावण, अन्य राक्षसियों तथा त्रिजटा की सारी बातचीत को सुन रहा था। उसने विचारा कि यदि मैं इस अदृष्ट दुःख से दुःखित देवी को बिना आश्वासन दिये चला गया, तो मुझ पर दोष लगेगा। दूसरा मेरे चले जाने पर अपना कोई रक्षक व सहायक न पाकर यह यशस्विनी प्राणों को त्याग देगी। अतः जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रानन राम आश्वासन देने योग्य हैं, वैसे ही यह जानकी है। परन्तु क्या किया जाय ? राक्षसियों के सम्मुख आश्वासन देना असम्भव है। फिर शीघ्र रात्रि व्यतीत होने वाली है, यह भी निश्चित नहीं कि कल को सीता रहे या न रहे। यदि मैं सीता का पूर्ण सन्देश लिए बिना चला गया, तब एक तो राम के क्रोध से बचना कठिन है, दूसरे मेरे महाराजा सुग्रीव का सारा प्रयत्न भी व्यर्थ चला जायेगा।

अतः जिस भाँति भी हो सके, मैं सीता को आश्वासन दूं, परन्तु क्या करूँ? एक और भारी विघ्न यह है कि-यदि मानुषी भाषा संस्कृत द्विजातियों की भाँति बोलूँ तो सीता मुझे रावण मानकर भयभीत हो जायेगी और यदि वानरी भाषा बोलूँ तो यह समझेगी ही नहीं-

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।३०।८

प्रतीत होता है कि रावण की निजी भाषा उस समय संस्कृत थी, जिसे वह सीता के सम्मुख प्रायः बोलता था और सीता की भाषा भी संस्कृत थी। साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट है कि हनुमान् कई भाषाओं के पंडित थे।

अस्तु! मैं सीता को मानुषी भाषा में ही सान्त्वना दूँ। यद्यपि इसमें यह आपत्ति है कि पहले सीता वाणी को सुनकर डरेगी, रोएगी, फिर राक्षसियाँ हल्ला करेंगी। सम्भव है कि इससे राक्षसों से युद्ध ही आरम्भ हो जाय यद्यपि मैं सहस्रों राक्षसों को मार सकता हूं, फिर भी युद्ध में जय संशयास्पद होती है। परन्तु क्या करूँ ? यदि इन भयों से भयभीत होकर सीता को बिना आश्वासन दिये चला जाऊँ तो

सीता प्राण त्याग देगी। मेरे लिए यह भी महापाप है। इन विचारों के पश्चात् हनुमान् ने निश्चय किया कि–

न च विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम।
लंघनं न समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेद्।।३०।३६
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत् च।
इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम्।।३०।४०

जिस प्रकार मेरा कार्य नष्ट न हो, न मुझे व्याकुलता हो, समुद्र पार होना भी सफल हो, सीता मेरे वचन को सुन भी ले और वह डरे भी नहीं ऐसा करूँ।'

इस भाँति तर्कणा करने के पश्चात् हनुमान ने निश्चय किया कि मैं इक्ष्वाकुओं में श्रेष्ठ राम का गुणानुवाद गान करूँ, जिससे कदाचित् सीता मुझ पर श्रद्धा कर ले, अपना कुशल समाचार बता दे। यह निश्चय कर हनुमान् ने राम के जन्म से लेकर वनवास, सीता हरण, सुग्रीव–मैत्री तथा उसकी खोज के लिए समुद्र पार लंका व अशोक वाटिका में अपना आना कह दिया।

यह सुनकर सीता शिंशप वृक्ष पर बैठे हनुमान् को देखकर विस्मित हुई। कुछ काल तक विलाप में हा राम! हा लक्ष्मण! कहकर सोचने लगी कि क्या यह स्वप्न है ?

सीता को इस दशा में देखकर हनुमान् वृक्ष से नीचे उतरा और सीता को प्रणाम कर बड़ी मीठी वाणी से उनका कुल गोत्रादि पूछने लगा। सीता ने अपना कुल, विवाह, वनवास, रावण द्वारा हर लाना, एक वर्ष की अवधि देकर अन्त में भार्या बनने अन्यथा मार डालने की रावण की आज्ञा सुना कर यह भी सुना दिया कि अब दो मास मेरे जीवन के और बाकी हैं। इसके उपरान्त मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी–

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्षामि जीवितम्।।३३।३१

यह सब सुनकर उत्तम अवसर जानकर हनुमान् ने नम्र शब्दों में उससे कहा–

अहं रामस्य संदेशाद् देवि! दूतस्तवागतः।
वैदेहि ! कुशली रामस्त्वां कौशलमब्रवीत्।।३४।२
स त्वां दाशरथी रामो देवि! कौशलमब्रवीत्।।३४।३
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्ते नुचरः प्रियः।
कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा ते भिवादनम्।।३४।४

'देवि! मैं राम का दूत हूँ और उनकी आज्ञा से ही यहाँ आया हूँ। वैदेहि ! राम तुमको कुशल कहते हैं। सीते! जो ब्रह्मास्त्र और वेद–वेदांग को भली–भाँति जानते हैं वह वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ महाराज दशरथ के पुत्र तुमको कुशल कहते हैं और तुम्हारे पति के प्यारे अनुचर महातेजस्वी लक्ष्मण तुम्हारे शोक से संतप्त तुमको शिर नवाकर अभिवादन करते हैं।

हनुमान् से राम–लक्ष्मण की कुशलता सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई तथा कहने लगी कि यह आनन्ददायिनी गाथा विस्तार से कहो। इससे मुझे बहुत आनन्द आता है।

सीता के कहने पर जब हनुमान् आगे बढ़कर बात करने लगा, तब सीता को रावण का भ्रम हो गया, अर्थात् नित्य के छलों से दुखी हुई सीता ने समझा कि यह राम–दूत नहीं, किन्तु रावण ही भेष बदल कर मेरी परीक्षा कर रहा है। इस भ्रम में सीता ने हनुमान् को रावण समझकर बहुत धिक्कारा तथा पुराने छल वर्णन किये। परन्तु ज्यों ही उसका भ्रम कुछ हटा, तब उसने कहा– यदि तुम सचमुच राम के दूत हो, तो तुम राम के गुणों को विस्तार से कहो। सीता का पूर्ण भ्रम निवारण करने के लिए हनुमान् ने फिर राम के गुण विस्तार से कहे तथा अपने लंका में आने का वृत्तान्त बताकर साथ में यह भी प्रार्थना की कि देवि! मैं तुम्हारे दर्शन के लिये आया हूँ। मैं वह नहीं जो तुम समझ रही हो।

हनुमान् के मुख से राम का यशोगान

इस बार के वृत्तान्त को सुनने पर भी सीता ने कहा–वानर राज! फिर कहो कि राम के क्या गुण और कर्म हैं तथा उनके रूपादि कैसे हैं। तुमने राम को कहाँ देखा तथा वानरों का राघव के साथ समागम कैसे हुआ ? उत्तर में हनुमान् ने कहा–

तेजसा दित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः।।३५।६
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः।।३५।१०
रामो भामिनि! लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्त्ता कारयिता च सः।।३५।११
अर्चिष्मानर्चितो त्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम्।।३५।१२
राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणनामुपासकः।
ज्ञानवाञ्शीलसम्पन्नो विनीतश्चपरंतप।।३५।१३
यजुर्वेद विनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः।
धनुर्वेद च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः।।३५।१४

'सीते! राम का मुख चन्द्रमा के समान, नेत्र कमलवत्, तेज सूर्य सम और क्षमा पृथिवी के तुल्य है। वह बुद्धि से बृहस्पति, यश से देवराज इन्द्र की उपमा रखते हैं। वह जीवलोक के रक्षक, अपने बन्धुओं की रक्षा करने वाले, परम तपस्वी होकर अपने वृत्त (आचार) और धर्म के रक्षक हैं। भामिनि! राम चारों वर्णों की मर्यादा के बनाने तथा रक्षण करने वाले हैं। राम सबसे पूजित होकर भी ब्रह्मचर्य धारण करने के हेतु सदा प्रकाशमान् रहते हैं।

राम साधुओ के उपकार को मानने वाले, सत्कर्मों के प्रचार को जानने वाले, राजनीति में विनीत, ब्राह्मणो के उपासक और ज्ञान तथा शील से सम्पन्न हैं। यजुर्वेद में निपुण, वेदज्ञ पुरुषों से पूजित, धनुर्वेद तथा अन्यान्य वेदांगो मे निपुण हैं।"

सत्यधर्मरतः श्रीमान्संग्रहानुग्रहे रतः।
देशकाल विभागज्ञ सर्वलोकप्रियंवदः।।३५।२१
भ्राता चास्य वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्च तथाविधः।।३५।२२

"सारांश यह कि– राम सत्य धर्म मे रत, लक्ष्मीवान्, संग्रह और अनुग्रह में प्रवीण, देशकाल के जानने वाले, सर्व लोगों से मीठा तथा हितकारी वचन बोलने वाले हैं। उनके दूसरे भाई लक्ष्मण भी महाप्रभा वाले, अनुराग रूप तथा अन्य गुणों मे राम के ही समान हैं।

वे दोनो भाई तुमको ढूंढते हुए वानर–राज सुग्रीव को, जो कि बड़े भाई बाली से अपमानपूर्वक गृह से निकाले हुए थे, ऋष्यमूक पर्वत पर मिले। वहाँ दोनों की परस्पर परम प्रीति हो गई। सुग्रीव महाराज ने तुम्हारे ढूँढने की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए मुझे यहाँ भेजा है।"

देवि! राम तुम्हारे दर्शन के लिए संतप्त हो रहे हैं–

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम्।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः।।३५।४६

तुम्हारे वियोग में महात्मा राम को तम, निद्रा, शोक, चिन्ता इस भाँति जलाते हैं जैसे अग्नियाँ अग्निभवन को जलाती है।"

देवि! शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण, वीर्यमान् तुम्हारे पति की आराधना में शिष्यवत् लगे हुए हैं। केवल मैं सुग्रीव की आज्ञा से फिरता–२ तुम्हारे दर्शनों के लिए यहाँ आया हू। इस शुभ सम्वाद से, तुम्हारे दर्शन रूपी सन्देश से अनेकों रोग–ग्रस्त वानरों के शोक को दूर करूँगा। मेरा लंका में आना व्यर्थ नहीं गया, क्योंकि तुम्हारे दर्शनरूपी यश की प्राप्ति मुझे ही हुई है। सीते! तुम्हारे भी शोक का अन्त अब निकट आया हुआ है, क्योंकि अब रघुकुलतिलक राम शीघ्र ही रावण को उसके पुत्र–पौत्र, सम्बन्धियों सहित नाश करके तुमको प्राप्त करेंगे, यहाँ से तुमको वह अपने साथ ले जावेंगे।

यह सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुई और उसने हनुमान् का गुणानुवाद कर उसके विषय में अपना विश्वास प्रगट किया।

सीता को राम की अंगूठी देना

सीता को यद्यपि हनुमान् के विषय में राम के दूत होने का अब सन्देह नहीं रहा था, इस विश्वास को दृढ करने के लिए हनुमान् ने राम की अँगूठी सीता को अर्पण कर दी, जिसे पाकर सीता को इतना आनन्द हुआ जैसे कि उन्हें राम मिल गये हों। उस समय सीता का मुख इतना कांतियुक्त प्रतीत होता

था, मानों चन्द्रमा ग्रहण से मुक्त हुआ हो। अंगूठी पाकर प्रसन्न हुई सीता ने हनुमान् की प्रशंसा करते हुए कहा–

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपटं त्वयैकेन प्रधर्षितम्।।३६।७
शतयोजन विस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः।।३६।८
न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः।।३६।६
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ! मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना।।३६।१०
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम्।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः।।३६।११

"हनुमान्! तुम बड़े शूरवीर, सामर्थवान् और बुद्धिमान् हो जो तुमने अकेले ने ही इन राक्षसों के स्थान को तिरस्कृत कर दिया है। धन्य है तुम्हारे पुरुषार्थ को, जिसने बड़े–२ भयंकर जल–जन्तुओं से युक्त समुद्र को तुच्छ जानकर पार कर लिया। इसलिए मैं तुम्हें साधारण वानर नहीं समझती। निश्चय ही तुमको रावण से भय व त्रास नहीं है। अतः हे वानर श्रेष्ठ! तुम मुझसे वार्तालाप आदि करने के योग्य हो, क्योंकि आत्मवेत्ता ने तुमको भेजा है। राम अपरीक्षित पुरुष और विशेषकर पराक्रमहीन पुरुष को मेरे पास कभी नहीं भेज सकते।"

कुशल प्रश्न- पूरा विश्वास हो जाने पर सीता ने हनुमान् से पूछा– हनुमान! कहीं मेरे कारण राम अधिक पीड़ित तो नहीं रहते, क्या मेरे विमोचन के लिए भी कोई यत्न करते हैं ? क्या उन्हें मित्र प्राप्त होते रहते हैं। उन्हें मित्रों से प्रीति भी है अथवा कहीं मेरे अलग हो जाने से वे स्नेह–हीन तो नहीं हो गये ? क्या तुम्हें आशा है कि मुझे राघव इस पराधीनता–पाश से छुड़ायेंगे ? क्या सुख भोग के अधिकारी और दुखों के अयोग्य राम दुःख पड़ने से खिन्न मन तो नहीं हो गये ? क्या अयोध्या से माता कौशल्या, सुमित्रा और भरत का कुशल भी आया है ? क्या भरत मेरे उद्धार के लिए अपनी ध्वजा–पताका सहित भीम अक्षौहिणी सेना को भेजेंगे ? क्या मेरे लिए वानरराज सुग्रीव सेना सहित युद्ध में आयेंगे ? क्या सुमित्रानन्दन एवं शस्त्र–अस्त्र विद्या में निपुण प्रसिद्ध योद्धा वीर लक्ष्मण अपने वाणों से राक्षसों का बेधन करेंगे ? क्या मैं शीघ्र ही राम के रौद्र अस्त्रों से मरे हुए रावण सहित राक्षसों को देखूंगी।

प्रश्नों का उत्तर- सीता के इन करुणापूर्ण कोमल प्रश्नों को सुनकर हनुमान् ने उत्तर में निवेदन किया–

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमल लोचनः।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः।।३६।३३

'देवि! राम तुम्हारे यहाँ रहने को नहीं जानते, इसलिए वे तुमको नहीं ले गये। जब मैं जाकर सब समाचार दूँगा, तब बहुत थोड़े काल में राम यहाँ भारी सेना सहित आकर लंका को राक्षस रहित कर देंगे। इस काम में यदि देवगण भी विघ्न करेंगे तो उनका भी वध कर देंगे, क्योंकि तुम्हारे हरे जाने से राम को बहुत कष्ट हुआ है। उन्होंने तुम्हारे पीछे खान-पान, सुख-भोग, शरीर-संस्कार तक त्याग दिया है।'

अनिद्रः सततं रामः सुप्तो पि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते।।३६।४५

'देवि! नरश्रेष्ठ राम को रात को निद्रा नहीं आती। जो कभी सोये भी तो सीते! सीते!! कहते हुए जाग पड़ते हैं।'

सीता का सन्देश

राम की दुःखित अवस्था तथा अपनी मुक्ति की कथा सुनकर सीता बोली, कपिवर! तुमने विष युक्त अमृत भाषण किया है जो राम की व्याकुलता सुनाई। अब न जाने कब राम राक्षसों को मार, लंका को जीतकर मुझे दुःखों से छुड़ा अपने आपको शान्त करेंगे।

अब तुम शीघ्र जाकर राम को समाचार दो, ताकि ऐसा न हो, कि यह वर्ष पूरा हो जाये और रावण मुझे मार दे-

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम।।३७।८
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनम्प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम्।।३७।६
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गं ते संख्ये मृत्युः कालवशं गतम्।।३७।१०
ज्येष्ठा कन्या 'कला' नाम विभीषणसुता कपे।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम्।।३७।११
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुंगवः।
धृतिमाञ्छीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः।।३७।१२
रामात्क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रव्यचोदयत्।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम्।।३७।१३

अब वर्ष में से यह दशवां महीना है। केवल दो महीने शेष हैं। उसे मेरे राम को अर्पण कर देने की बात अपने भाई विभीषण के समझाने पर भी अच्छी नहीं लगती। इससे प्रतीत होता है कि युद्ध-भूमि में काल वश हुए रावण को मृत्यु ढूंढ़ रही है। यह बात मुझसे विभीषण की बड़ी कन्या 'कला' ने कही है जो कि उसकी माता द्वारा मेरे निकट भेजी गई थी।

इसी प्रकार रावण का एक शुभचिन्तक "अविन्ध्य" नाम का राक्षस जो बड़ा बुद्धिमान, धैर्यवान्, शीलवान् है, रावण को समझा रहा है कि सीता को आदर सहित राम के पास पहुंचा दो, अन्यथा राम के कोप से हम सबका नाश हो जायेगा परन्तु दुष्टात्मा रावण किसी का भी कहा हित वचन नहीं सुनता।

सीता का नीति नैपुण्य

सीता के भाव को जानकर हनुमान् ने फिर कहा–देवि! शीघ्र ही राम तुम्हें इस दुःख से छुड़ायेंगे, यदि तुम चाहो, तो मैं आज ही तुम्हें यहाँ से ले जा सकता हूं। यदि तुम्हें राक्षसों का भय हो, तो मैं युद्ध में सबको पराजित कर, तुम्हें सुरक्षित रूप से लंका पार ले जाऊँगा।' हनुमान् के यह वचन सुनकर सीता बोली–'वानर पुंगव! यह सच है,कि तुम मुझे ले जा सकते हो, राक्षसों को भी पराजित कर सकते हो, परन्तु तुम जानते हो, कि राक्षस सब शस्त्रधारी और अपने स्थान में हैं। ऐसी दशा में चाहे कोई कितना बड़ा योद्धा हो, आपत्ति में पड़ सकता है। यदि तुम पर कोई विपत्ति न भी आवे तो भी सम्भव है कि युद्ध से वे मुझे दूर ले जायें, तथा ले जाकर मार दें। युद्ध में जय–पराजय सदा सन्देहात्मक होती है। कदाचित् तुम्हें जय न मिली तो तुम्हारा आना ही व्यर्थ हो जायेगा। फिर यह भी है कि यदि तुम ही मुझे ले जाओगे, तो इससे राम के यश में भी त्रुटि आयेगी। तुम्हारे युद्ध में लगे रहने के कारण यदि राक्षस मुझको हर कर किसी ऐसे स्थान में छुपा दें, जहाँ कि तुम्हें और अन्य कपियों को पता न लग सके। दूसरे पतिव्रत भाव की दृष्टि से मैं राम से भिन्न दूसरे पुरुष को स्पर्श भी नहीं करना चाहती जो कहो कि तुमने रावण के अंग को स्पर्श किया तो इसका कारण यह था कि उस समय मैं साधनहीन और विवश थी। उस दशा में धर्म मर्यादायें पूरी होनी सबके लिए कठिन होती हैं।

हनुमान् का उत्तर

सीता के युक्ति–युक्त वाक्य सुनकर हनुमान् बोले– 'देवि! तुमने सच कहा है कि तुम मेरे साथ समुद्र नहीं तैर सकतीं, क्योंकि साध्वी स्त्रियों के शील का यही प्रमाण है। दूसरे समुद्र तैरना सुगम भी नहीं। दूसरा कारण जो तुमने कहा कि अति संकट में भी राम के बिना मैं दूसरे पुरुष को स्पर्श करना नहीं चाहती सो यह भाव भी महात्मा राम की धर्मपत्नी सीता में ही हो सकते हैं। देवि! मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई स्त्री यह नहीं कह सकती। सीते! सचमुच इन भावों को सुनकर राम तुम पर बहुत प्रसन्न होंगे। मैंने भी जो कुछ कहा है– वह केवल प्रिय के लिए कहा है– अर्थात् लंका के दुष्प्रवेश और समुद्र को दुस्तर जानकर भी केवल श्रीराम की भक्ति और तुम्हें ले जाने की सामर्थ्य देखकर कहा है–

लंकायाः दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम्।।३८।८

यदि आप मेरे साथ जाना नहीं चाहतीं, तो मुझे अपना कोई स्मृतिचिह्न दें जिससे राम यह जान सकें कि मैं सीता की सुध लेकर आया हूँ।

सीता का सन्देश एवं मणिदान

हनुमान् के वाक्य सुनकर सीता ने परिचय के लिए वनवास की एक घटना सुनाई, जो राम के सामने हुई थी, और साथ ही सन्देश रूप से कहा कि राम से कहना–'हे नाथ! दया बड़ा धर्म है कि इस समय मुझ पर भारी विपद् पड़ने पर भी समर्थ होकर शक्ति रखते हुए, आपकी ओर से दया प्रकाशित नहीं होती, आप जैसे शस्त्र–अस्त्रधारियों को नाथ बनाकर भी मैं अनाथवत् दुःख में हूं। हे वानर श्रेष्ठ! महाबाहु, मनस्वी वृद्धोपसेवी और राम के साथ वन में आने से सुमित्रा के यश को बढ़ाने वाले लक्ष्मण से भी कुशल प्रश्न के पीछे यह वचन कहना कि जिससे मेरा बन्धन शीघ्र कट जाय। साथ ही राम से बारम्बार यह कह देना कि मैं पापकर्मा रावण के वश में पड़ी, अब केवल एक महीना तक जीवित रहूंगी, बाद में नहीं।

इसके बाद शिर में धारण करने वाला रत्न 'चूड़ामणि' निकाल कर स्मृतिचिह्न के रूप में देते हुए सीता ने कहा– हनुमान्! राम इसे देखकर तीन सम्बन्धियों को स्मरण करेंगे मुझे, मेरी माता और अपने पिता दशरथ को।

टीकाकार लिखते हैं कि विवाह के समय राजा जनक ने यह मणि सीता की माता (धरणि) से लेकर महाराज दशरथ को दी थी, और महाराज दशरथ ने सीता को। - संपादक

राम महिमा

चूड़ामणि ले तथा सीता को प्रणाम कर, जब हनुमान् चलने लगे तब फिर सीता ने कहा– हनुमान! राम–लक्ष्मण सुग्रीव के मन्त्रिमण्डल तथा वृद्ध पुरुषों को धर्मानुसार कुशल समाचार कहने के अनन्तर वह काम (प्रयत्न) करना, जिससे कि राम मुझे दुःख सागर से तारें और मुझ जीती हुई को ही अपने आश्रय में लेकर सम्मानित करें।

उत्तर में हनुमान् ने बड़ी नम्रता से कहा–

न हि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा।
यस्तस्य वमतो बाणान्स्थातुमुत्सहते ग्रतः।।३६।१५
अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम्।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः।।३६।१६
स हि सागर पर्यर्यन्तां महीं साधितुमर्हति।
त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि।।३६।१७

देवि! वीर राम शीघ्र ही शत्रुओं को मारकर तुम्हारे शोक को हरेंगे। मैं नहीं देखता कि युद्ध में उठे हुए, राम के बाण के आगे कौन मनुष्य, देव तथा असुर है, जो ठहर सके ? राम तो युद्ध के समय विशेष कर तुम्हारे लिए सूर्य, तीक्ष्ण, धूप, घोर वृष्टि और सूर्यपुत्र यम का भी संहार कर सकते हैं। हे जनक नन्दिनी! राम समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को विजय करने के योग्य हैं। यह विजय तुम्हारे तप के कारण होगी।

हनुमान् के मुख से इस प्रकार राम की महिमा को सुनकर सीता अपने आपको गौरवयुक्त मानकर प्रसन्न हुई और हनुमान् से कहने लगी– वीर! यदि उचित जानें तो एक दिन यहाँ और ठहर कर विश्राम करें, क्योंकि तुम्हारे समीप रहने से मुझ मन्दभागिनी का शोक कुछ काल के लिए तो नष्ट हो जायेगा अन्यथा तुम्हारे पुनः यहाँ आने तक मेरे प्राणों में ही सन्देह है। तुम्हारे चले जाने का शोक मुझ दुःखिया को और भी दुःखी करेगा। वीर! इस दुःख के अतिरिक्त मुझे एक और सन्देह है और वह यह कि राम, सुग्रीव तथा अन्य वानर इस दुस्तीर्ण समुद्र के पार आयेंगे कैसे ? इसके पार करने की तीन पुरुषों में शक्ति है। प्रथम गरुड़, द्वितीय तुम, तृतीय मारुत में, सो वीर! बतलाओ कि इस बहुजन साध्य कार्य में किस प्रकार सिद्धि होगी–

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः।।३६।२८
बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वपुरं यायात्तस्य सदृशं भवेत्।।३६।२६

'यद्यपि तुम अकेले ही इस कार्य के करने में समर्थ हो, परन्तु यदि सब सेनाओं के सहित राम यहाँ आकर युद्ध में विजय पाकर मुझे अयोध्या को ले जायँ तब ही उनके गुणों और कीर्ति के योग्य कार्य होगा, सो जैसे राम की मर्यादा के योग्य कार्य हो वैसे ही तुम करो।'

सीता के इन जाति व कुलाभिमान पूरित शब्दों को सुनकर हनुमान् बोले–देवि! यदि ऐसा है तो शीघ्र ही वानरराज सत्य व्रतधारी, महाराज सुग्रीव सेना सहित तुम्हारे लेने के लिये और राक्षसवंश के नाश के लिए यहाँ आयेंगे।

महाराज सुग्रीव की आज्ञा में ऐसे वीर विक्रान्त योद्धा स्थित हैं, जिनकी गति न नीचे भूतल में, न ऊपर (आकाश) में रुक सकती हैं। वे योद्धा ऐसे हैं जिन्होंने–

असकृतैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः।।३६।३७
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसन्निधौ।।३६।३८
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः।।३६।३६

—सागर व पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी का वायु मार्ग में चलने वाले ● विमानादि द्वारा कई बार भ्रमण किया है। उनमें मुझसे अधिक बलवीर्य रखने और मेरे तुल्य भी अनेक हैं। उनमें मुझसे न्यून तो कोई है ही नहीं। सो अब मैं न्यून बल वाला यहाँ आ गया हूं, तो वे अधिक बली क्यों न आ सकेंगे ? पहले काम के लिए छोटे ही भेजे जाते हैं बड़े नहीं।

● **जो लोग रामायण के समय विमान विद्या का अभाव मानते हैं, इन शब्दों की ओर ध्यान दें।** **-सम्पादक**

'देवि! अब तुम शीघ्र वानर और राक्षसों का युद्ध तथा राम के हाथ से मन्त्री बन्धु और पुत्र—पौत्र सहित रावण का नाश देखोगी। अतः रुदन मत करो, शोक को त्याग दो। अब तुम्हें कृतात्मा तथा पर बलहर्ता राम और धनुषधारी लक्ष्मण के लंका में ही दर्शन होंगे। सीते! शोक क्यों करती हो, क्या राम से अधिक कोई भूमण्डल में है? वे दोनों भाई अग्नि के समान तेजस्वी तथा वायु के समान सर्वत्र जाने वाले हैं।'

हनुमान् के आशा भरे शब्दों को सुनकर सीता में इस प्रकार जीवन—आनन्द आ गया जैसे सूखी हुई खेती में वर्षा होने से आ जाता है। इसी आनन्द में सीता ने अपना सन्देश दिया और हनुमान् का स्तुतियुक्त शब्दों से धन्यवाद किया।

वाटिका-विध्वंस

सीता से विदा होते हुए हनुमान् ने उचित समझा कि वीरों को शत्रु दल से चुपचाप जाना शोभा नहीं देता, अतः कुछ परिचय देना चाहिए। इस विचार से उन्होंने रावण की प्रिय अशोक वाटिका को उजाड़ना आरम्भ कर दिया जिसे देख कर राक्षसियों ने पहले तो सीता से पूछा कि यह कौन है, यहाँ कैसे आया है, और तेरे साथ क्या बातचीत करता था ? उत्तर में सीता ने कुछ न बताया वरन् यह कह दिया कि मैं राक्षसों की माया को नहीं जानती। साँप के पाँव को साँप ही जान सकता है।

रावण का कोप और हनुमान् का साहस

तब राक्षसियों ने रावण को हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका के विध्वंस की सूचना दी। वाटिका का विध्वंस सुनकर क्रोध से लाल—लाल नेत्र करके रावण ने बड़े—बड़े वीर योद्धाओं को हनुमान् के पकड़ने के लिये आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही राक्षस शस्त्र—अस्त्रों से सज्जित होकर हनुमान् के पास जाकर उनको धमकाने लगे।

राक्षसों के इस व्यवहार को देखकर तेजस्वी हनुमान् वीरता के शब्दों का उच्चारणकर 'अतिबली राम, महाबली लक्ष्मण तथा राम मित्र महाराज सुग्रीव की जय' ऐसा कहने लगे—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।४२।३३
दासो हं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।४२।३४

न रावणसहस्त्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्त्रशः।।४२।३५
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्।।४२।३६

"राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव की लंका में जय हो!" इन शब्दों को सुनकर और भी क्रोधित हुए राक्षसों ने जब इनका नाम–धाम पूछा तो हनुमान् ने कहा कि–

"मैं उच्च कर्मा कौसलेन्द्र (राम) का दास व शत्रु सेना का हन्ता पवन पुत्र हनुमान् हूँ। सहस्त्रों रावण भी अस्त्र–शस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध में मुझे नही जीत सकते। लंकापुरी को तहस–नहस कर माता सीता को प्रणाम करके अब सब राक्षसों के देखते–देखते अपनी कार्य–सिद्धि करके मै जाऊंगा।"

यह सुनकर रावण की आज्ञा से अनेकों राक्षसों ने हनुमान् को अपशब्द कहे, जिनका योग्य उत्तर हनुमान् ने उसी समय दे दिया। तब फिर राक्षस हनुमान् की वीर कथा को सुनाने के लिए रावण के पास गये और विशेष उपाय से हनुमान् के पकड़ने का प्रबन्ध करने लगे।

राक्षसों से हनुमान् का युद्ध

अब राक्षसों को अपने बल का परिचय देने के लिए हनुमान् ने वीरकृत्य आरम्भ कर दिये जिसे सुनकर रावण की आज्ञा से युद्ध में दुर्जय महाबली जम्बुमाली नाम का राक्षस धनुष धारण कर स्वर युक्त रथ में हनुमान् को पकड़ने की इच्छा से आया।

हनुमान् ने भी उसे देखकर वीरता का शब्द किया और झट युद्ध आरम्भ हो गया। महाबली हनुमान् ने उसके सारे शस्त्र–अस्त्रों को छिन्न–भिन्नकर एक प्रहार से ही उसे ऐसा मारा कि वह तत्क्षण गिर पड़ा और मर गया। जम्बुमाली के वध को सुनकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ तथा उसने अपने मन्त्री के वीर और अस्त्र विद्या में निपुण अनेक पुत्र युद्ध में भेजे। थोड़ी देर तक उन्होंने वाणों की ऐसी बौछार की जैसे कि वर्षा काल के मेघ वृष्टि करते हैं। परन्तु ज्यों ही हनुमान् ने उनके प्रहारों से अपने आपको बचाकर उन पर प्रहार करने आरम्भ किये, वे झट पृथ्वी पर गिरने लगे। यहाँ तक कि दिन अस्त होने से पूर्व ही वे सब प्राण त्याग गये।

मन्त्री पुत्रों का वध सुनकर रावण को बड़ी चिन्ता हुई, अतः उसने बड़े–बड़े विद्वान व युद्ध विद्या–विशारदों की सभा बुलवाई तथा उसमें सबके सामने विरुपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस तथा भासकर्ण आदि सेना नायकों को सम्बोधन कर कहा–

"वीरों! जाओ उस कपि को बाँधो, जिसने इतने उग्र कर्म किये हैं। परन्तु इसमें नीति शास्त्र से देशकाल का विचार कर लेना योग्य है, क्योंकि मैं इसे साधारण वानर नहीं मानता। इसे वानर समझ मेरा मन निश्चिन्त नहीं होता। मैंने कई बार वानर जाति के बड़े–बड़े बलधारी पुरुष देखे हैं, अर्थात् बाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील और अन्याय द्विविद (दो वेदों के जानने वाला) आदि देखे परन्तु उनमें कभी इस जैसी न भीम गति, न तेज, न पराक्रम, न बुद्धि, न बल, न उत्साह और न ही रूप लावण्य देखा। इसलिए कपि वेश में इसे बड़ी सत्ता वाला तथा महाशक्तिधारी पुरुष समझना चाहिएअतएव इसके पकड़ने के निमित्त कोई बड़ा यत्न करो।

कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरा सुरमानवाः।
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे।।
तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे।
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला।।४६।१६

यद्यपि सुर, असुर तथा मनुष्य आप लोगों के आगे ठहर नहीं सकते, तो भी जय के अभिलाषी नीतिमान् पुरुषों को अपनी रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि युद्ध में सिद्धि (जय) चञ्चल होती है।

स्वामी की आज्ञा पाकर अनेकों योधाओं सहित विरु पाक्ष आदि पाँच सेनानायक हनुमान को पकड़ने के लिए गये और जाते ही हनुमान पर प्रहार करने लग गये तब महायोधा वीरनायक वेदविद् हनुमान ने पहले अपनी रक्षा का उपाय किया अर्थात् उनके प्रहारों को सहा, परन्तु ज्यों ही वे अधिक क्रूरता करने लगे तब थोड़ी देर में बारी–बारी से इनकी सेना सहित पाँचों नायकों को मार दिया और स्वयं इनकी सहायता को आने वाले राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत हो गये।

हनुमान् का पकड़ना

इन पाँचों सेनापतियों के मारे जाने पर रावण ने "कुमार अक्ष" को कुछ योधा देकर भेजा और जब वह भी मारा गया तो बड़ा दुःखी व विस्मित होकर रावण ने इन्द्रजीत (मेघनाद) को बुलाकर आज्ञा दी, कि वीर! तू सब लोगों में अनुपम योधा और भुजबल में प्रसिद्ध है तथा तप और विद्या के प्रभाव से देशकाल को भी जानता है। जा, जाकर हनुमान को पकड़ ला क्योंकि उसने अनेकों किंकर मार दिये हैं तथा जम्बुमाली, अमार्त्यापुत्र पञ्चसेनानी और बहुत से दुसरे योधा नाश किये हैं और अब कुमार अक्ष को भी मार डाला है देख तू यह विचार कभी मत करना, कि जिसने इतने बड़े–बड़े योद्धा मार दिये उस पर मेरा क्या वश चलेगा, क्योंकि उनमें वह बल न था जो तुझमें है, इसलिये जा, शीघ्र उसे पकड़कर ले आ।

व खल्वियं मतिश्रेष्ठ! यत्वां संप्रेषयाम्यहम्।
इयञ्च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मिता।।४८।१३
नानाशास्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यमरिंदम।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे।।४८।१४

"प्रिय पुत्र! इस महा संकट में तुझे भेजने की इच्छा नहीं थी, पर राजपुत्र! क्या करूँ राजधर्म तथा क्षत्रिय धर्म की नीति ही यह है।"

"हे शत्रुदल दमन कर्ता! नाना शास्त्रों में निपुणता और जय की उत्कट कामना, यह दो बातें योद्धाओं को सहायता देती हैं।"

राजा की आज्ञा पाकर रथ में बैठ, शस्त्र–अस्त्रों से युक्त मेघनाद हनुमान् के साथ युद्ध करने गया। कुछ काल तक मेघनाद तथा हनुमान् का बड़ा तुमुल युद्ध हुआ, परन्तु जब हनुमान् ने अपना युद्ध–कौशल तेजी से दिखाना आरम्भ किया तब मेघनाद को निश्चय हो गया कि यह वीर मुझसे मारा नहीं जा सकता। अतः हो सके तो इसे बाँध लेना चाहिए।

अवध्यो यमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित्।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित्।।४८।३७
तेन बद्धस्ततो स्त्रेण राक्षसेन स वानरः।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले।।४८।३८
ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम्।
राक्षसेन्द्रेण सम्वादस्तस्माद् गृह्णातु मां परे।।४८।४४

यह निश्चय कर मेघनाद ने दूर से ही एक अस्त्र फेंक कर हनुमान् को बाँध दिया। बन्धन पड़ते ही हनुमान् एक बार तो निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा पर ज्योंही उसको चेतना हुई और उसने जाना कि राक्षसों ने इसलिए निग्रह अस्त्र डाला है कि वे मुझे पकड़ कर राक्षसेन्द्र रावण के पास ले जाएँ तो उसने विचारा कि इसमें भी मुझे लाभ ही होगा, क्योंकि अब मैं इस बहाने रावण की राजसभा में जाकर रावण से सम्वाद तो कर सकूँगा जिससे मुझे उसकी रीति नीति का स्पष्ट पता लग जावेगा।

रावण सभा में हनुमान्

तदनन्तर हनुमान् को कड़े बन्धन से बाँधकर राक्षस उसे ले चले और जब रावण के सामने गये तो बन्धन खोल दिये, परन्तु बन्धन की कठोरता तथा राक्षसों की क्रूरता के कारण हनुमान् को देखकर कई राक्षस कहने लगे, यह कौन है, कहाँ से आया है, क्यों आया है तथा यह किसके आश्रय से निर्भय हो फिर रहा है ?

सभा में विकराल राक्षसों से इतस्ततः खींचे जाते हुए हनुमान् को रावण ने तथा राजतेज से युक्त रावण को हनुमान् ने देखा। रावण के दिव्य तथा बहुरत्न जटित राज सिंहासन को तथा राज–तन्त्र तत्व जानने वाले निकुम्भ प्रभृति मन्त्रियों से युक्त धैर्य और तेज से प्रकाशित रावण को देखकर हनुमान् मन में विचारने लगा–

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता।।४६।१७
यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता।।४६।१८

"अहा! राक्षसेन्द्र का कैसा अद्भुत रूप, कैसा धैर्य, कैसा सत्व, कैसी द्युति और सर्व लक्षण युक्तता है। यदि इसका अधर्म (पाप) बलवान् न हो, तो अवश्य यह राक्षसेन्द्र इन्द्र सहित सुरलोक का भी राजा होकर उसकी रक्षा करने वाला हो सकता है।"

इधर रावण भी हनुमान् के दिव्य तथा अति तेजस्वी रूप को देखकर कई प्रकार के विकल्पों में पड़ गया।

इस प्रकार शंकायुक्त चित्त वाले रावण ने अपने मन्त्री प्रहस्त से कहा, पूछो कि यह दुरात्मा कहाँ से आया है और यहाँ आने का क्या कारण है ? वाटिका के उजाड़ने तथा राक्षसों के तिरस्कार में इसका क्या आशय है ? मेरी दुष्प्रवेश्य लंका पुरी में आने और किंकरों से युद्ध करने में क्या प्रयोजन है ?

रावण की आज्ञा से प्रहस्त बोला कि—

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे।।५०।७
यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम्।
तत्वमाख्याहि मा ते भूदय वानर! मोक्ष्यसे।।५०।८
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च।
चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम्।।५०।९
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकांक्षिणा।
न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रन्तु वानरम्।।५०।१०
तत्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभ तव जीवितम्।।५०।११

"हे वानर! विश्वास रख कि तुझे किसी प्रकार का भय न होगा। सच कह कि क्या तुझे रावण की पुरी में इन्द्र ने भेजा है अथवा तू कुबेर, यम, वरुण का दूत है, जो लंका में आया या तुझे जय की कामना वाले विष्णु ने भेजा है ? सच सच कह, तब तुझे छोड़ दिया जायेगा। यदि तूने झूठ बोला, तो तेरा जीवन ही दुर्लभ है। किसलिये तेरा यहाँ आना हुआ, सो बता ?

प्रतीत होता है कि इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा विष्णु उस समय के देव राष्ट्र के महाप्रतापी राजा थे। - सम्पादक

मन्त्री के वचन सुनकर हनुमान् बोले, "न मैं इन्द्र,,यम, वरुण का दूत हूँ न कुबेर से मेरी मैत्री है। न मैं विष्णु का भेजा हुआ हूँ, मेरी जाति वानर ही है। मैं राक्षसेन्द्र के दर्शन के लिए आया हूं, क्योंकि मेरे लिये यह दुर्लभ था। उपवन विनाश भी मैंने राक्षसराज से मिलने के निमित्त ही किया है। वहाँ युद्ध की इच्छा से बड़े—बड़े बलाभिमानी राक्षस पहुंच गये तब अपनी रक्षा के लिये मैंने युद्ध किया—

रक्षणार्थं तु देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।।५०।१५

'मैं महातेजस्वी श्रीराम का दूत हूँ। अब आओ मेरा पथ्य रूपी वचन श्रवण करो। राक्षसेन्द्र! मैं सुग्रीव के सन्देश से तेरे पास आया हूँ, तेरा भ्राता वानर राज सुग्रीव तुझे कुशल समाचार देता है। अब तू अपने महात्मा भाई सुग्रीव का धर्मार्थ युक्त, लोक परलोक में सुख देने वाला सन्देश सुन—

"अयोध्या में बड़ी सेना वाले, समृद्धिशाली, इन्द्रसम तथा पिता के समान प्रजा का पालन करने वाले राजा दशरथ के अति प्रिय महाबाहु ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम पिता की आज्ञा से दण्डक वन में आये हैं। उनके साथ भ्रातृभक्त छोटा भाई लक्ष्मण तथा राम की पतिव्रता पत्नी विदेह राज महात्मा जनक की पुत्री सीता भी आई थी।"

"वन में राम की स्त्री सीता लोप हो गई, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। सीता को ढूँढ़ते हुए वह दोनों राजपुत्र ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने सीता के ढूँढ़ने की प्रतिज्ञा की है तथा राम ने सुग्रीव से उसका राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की थी सो राम ने एक ही बाण से बाली को मार सुग्रीव

को राज्य दिला दिया है। तुम जानते ही हो, कि बाली कैसा बली था किन्तु उसे राम ने एक बाण से ही मार दिया।'

'सत्य प्रतिज्ञ सुग्रीव सीता के ढूँढ़ने में व्याकुल हैं। इन्होंने बड़े–२ वानर, जिनकी भूमि और आकाश में समान गति है ढूँढ़ने के लिए भेजे हैं। उनमें से मैं मारुत का औरस पुत्र हनुमान् शत योजन विस्तीर्ण समुद्र को पार कर आपके दर्शन के लिये यहाँ हूँ। और–

भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा।।५१।१६
तद्वान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः।
परदारान्महाप्राज्ञ तीपरोद्धुं त्वमर्हसि।५१।१७
न हि धर्म विरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः।।५१।१८
कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामाकोपानुवर्तिनाम्।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि।।५१।१६
न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात्।।५१।२०
तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च।
मन्यस्व नर शार्दूल जानकी प्रतिदीयताम्।।५१।२१

–यहाँ फिरते हुए मैंने आपके गृह में सीता देखी है। आप धर्म–अर्थ को जानने वाले तप से तेजस्वी और बुद्धिमान् हैं। आपको परदारा रोकनी उचित नहीं हैं, क्योंकि आप सरीखे बुद्धिमान् लोग धर्म विरुद्ध और बहुविधि अनर्थों को उत्पन्न करने वाले मूलघाती कर्मों में प्रवृत नहीं होते। यदि आपको अपने शूरवीरों का अभिमान हो, तो निश्चय रखें कि राम कोप से प्रेरित होकर लक्ष्मण वीर के छोड़े तीरों के सामने कोई नहीं ठहर सकता। हे राजन्! तीनों लोकों में कोई ऐसा शक्तिमान् नहीं है जो राघव (राम) का अपराध करके सुख भोगे इसलिए तुम सदा सुख देने वाला, धर्मानुसार अर्थ बढ़ाने वाला मेरा वाक्य मानो और सीता को राम के अर्पण कर दो।

रावण को उपदेश

इस प्रकार राम कथा सुनाकर हनुमान् फिर रावण को उपदेश करने लगे, 'हे नर शार्दूल! यदि तुम यह कहते हो कि सीता यहाँ नहीं है तो निश्चय रखिये मैंने सीता माँ देख ली है, जो कि मेरे लिये दुर्लभ कर्म था। यदि तुम सीता राम के अर्पण न करोगे तो समझ लेना कि सीता को राम ले जायेंगे। विश्वास रखो कि सीता किसी को उसी प्रकार नहीं पच सकती, जैसे विषयुक्त अन्न। तुम सीता को घर में रखते हुए भी उसके फल को नहीं जानते। स्मरण रखो कि तुम्हारे लिए वह पंचमुखी सर्पिणी ही है।'

'महाराज! आपने जो तप धर्मानुष्ठान से ऐश्वर्य वा दीर्घ जीवन प्राप्त किया है सो इस पर–स्त्री हरण रूपी अधर्म से नष्ट करना उचित नहीं है। जो आपका यह विचार हो कि पूर्व सञ्चित धर्म से यह किञ्चित् अधर्म नष्ट हो जायेगा सो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यह साधारण दुष्ट कर्म नहीं प्रत्युत् महा अधर्म है और इसका फल कभी टल नहीं सकता।'

प्राप्तं धर्म फलं तावद्भवता नात्र संशयः।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे।।५१।२६

राक्षसेन्द्र! जिस प्रकार तूने पूर्व कृत तप और धर्म का फल पाया है, उसी प्रकार अब शीघ्र ही इस अधर्म का फल पायेगा।

जनस्थानवधं बुद्ध्वा बालिनश्च बधन्तथा।
राम सुग्रीव सख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः।।५१।३०
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगण संनिधौ।
उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता।।५१।३२
अपकुर्वन हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः।
न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः।।५१।३३
यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलंकाविनाशिनीम्।।५१।३४
तदलं कालपाशेन सीता विग्रहरूपिणा।
स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम्।।५१।३५
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोप प्रदीपिताम्।
दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम्।।५१।३६
यो रामं प्रतियुद्ध्येत विष्णुस्तुल्यपराक्रमम्।
सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्।।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्।।५१।४२

'राजन्! यदि तुझे पाप से भय नहीं, तो नीति शास्त्र के अनुसार ही राक्षसों का वध, बाली का मरण, राम और महाराज सुग्रीव की मैत्री को देखकर, अपना हित चिंतन कर। क्योंकि आर्यपुत्र राम ने वानर और ऋक्ष गणों के सामने प्रतिज्ञा की है कि जिन दुष्टों ने सीता हरण किया है उनका मैं नाश करूँगा। तुम्हें विदित रहे कि राम का अहित करके इन्द्र भी सुख नहीं पा सकता, फिर तुम जैसे साधारण पुरुषों की तो कथा ही क्या है ? रावण! सच तो यह है कि जिसे तुम सीता समझते हो, वह तुम्हारे लिए कालरात्रि है, जो सारी लंका को नष्ट कर देगी। अतः तुम सीता रूपी कालपाश में फँसकर स्वयं अपना हनन मत करो, किन्तु अपनी रक्षा का विचार करो और सीता के तेज से दग्ध, राम के कोप से प्रदीप्त होकर बड़े–२ राजमहलों युक्त लंका को भस्म हुई समझ कर सीता को प्रसन्नता से राम को लौटा दो। उन्हें लंका में रखकर अपने मित्र, नीतिनिपुण मंत्री, सजातीय बन्धु भाई, पुत्र, हितू वर्ग, भोग ऐश्वर्य, स्त्रीगण और लंका को व्यर्थ में नष्ट मत करो। यह मेरा कहना सत्य ही मानो। यदि तेरा विचार राम से युद्ध करने का हो, तो मैं तुझे कहे देता हूं कि राम को जीतना तो कहाँ वरन् महा पराक्रमी, विष्णु समान बली राम के सामने तेरा जीवित रहना भी कठिन है।'

हनुमान के वध की आज्ञा : विभीषण की उचित सम्मति

इस प्रकार महावीर के सत्य और निर्भीक वचनों से क्रुद्ध होकर रावण ने उसके वध करने की आज्ञा दी जिसे सुन कर महात्मा विभीषण ने इस आज्ञा के विरुद्ध राक्षसेन्द्र से कहा कि–

राजन् धर्म विरुद्धञ्च लोक वृत्तेश्च गर्हितम्।
तव चासदृशं वीर! कपेरस्य प्रमापणम्।।५२।६
धर्मश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः।
परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित्।।५२।७
गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशो पि विचक्षणाः।
ततः शास्त्रविपश्चित्वं श्रम एव हि केवलम्।।५२।८
तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न! राक्षसेन्द्र दुरासद।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डी विधीयताम्।।५२।६

'राजन्! दूत रूप में आपके राज्य में आये उस कपि का वध करना, धर्म के विरुद्ध, लोकों में निन्दनीय तथा आपके अयोग्य कर्म है। आप धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राज्य–कर्म–विशारद, परमार्थ वेत्ता और पर अपर के जानने वाले हैं।यदि आप जैसे विद्वान ही क्रोध के वश में आ जायें तब तो शास्त्रों के तत्वों को जानना एक श्रम ही हो जायेगा। इसलिए हे शत्रुघ्न ! कृपया रोष को त्यागिये और योग्य अयोग्य का विचार कर 'दूत दण्ड' दीजिये।

विभीषण के वचन को सुन क्रोधान्ध रावण बोला–

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।
तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम्।।५२।११

हे शत्रुसूदन! पापियों को मारने में कोई दोष नहीं, इसलिए मैं इस वानर का वध करूँगा।

रावण और विभीषण का शास्त्रीय सम्वाद

अब फिर क्रोधान्ध रावण के शास्त्र–विरुद्ध वचन को सुनकर धर्मज्ञ विभीषण शास्त्राधार से बोले– 'महाराज! इस कपि के मारने में किसी प्रकार का लाभ नहीं दिखाई देता। यही दण्ड आप उनमें प्रयोग करो जिन्होंने इसको भेजा है।'

साधुर्वा यदि वा साधुः परैरेष समर्पितः।
ब्रुवन्परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति।।५२।२१

'यह साधु है वा असाधु किन्तु दूसरों ने इसे भेजा है। उनके लिये बोलता हुआ, यह पराधीन है, इसलिए यह वध के योग्य नहीं है। इस दूत को मार देने पर फिर कोई अन्य व्यक्ति दूत कर्म नहीं करेगा। इसलिए भी इसका वध अयुक्त है क्योंकि ऐसा करने में नीति भंग होती है।'

महात्मा विभीषण के शास्त्रविहित वचनों से विवश होकर रावण बोला—भ्राता! तूने ठीक कहा है कि दूतों का वध करना निन्दा के योग्य कर्म है। इसलिए वध के अतिरिक्त कोई उचित दूत दण्ड नियत करो।

लांगूल दाह और लंका दाह

विभीषण के सुझाने पर बहुत विचार के अनन्तर रावण ने आज्ञा दी कि—

कपीनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु।।५३।२३

'वानर लोगों का बहुत प्यारा और पवित्र भूषण 'लांगूल' होता है सो इसको यहीं दग्ध कर दो, जिससे हीन हुआ यह अपना बहुत अपमान समझेगा, स्वदेश जाने पर इसके बन्धु मित्र या जाति के लोग भी इसे लज्जित करेंगे।'

रावण की आज्ञा पाकर दूतों ने हनुमान के '**लांगूल**' को उतार आग लगा दी, उसे सभा से बाहर निकाल कर सारे नगर में इस दण्ड की घोषणा कर दी, जिससे अनेकों धर्मात्मा पुरुषों और सीता को कष्ट हुआ। हनुमान् इस दण्ड से बहुत दुःखी हुए और इसका उत्तर उन्होंने यह विचारा कि जिस प्रकार लंकापति ने मेरा उत्तम भूषण नष्ट किया है, उसी प्रकार मैं लंका के भूषण अशोक वाटिका को नष्ट करूँगा, जो इस नगरी का विशेष अलंकार रूपी गर्भ स्थान है। इस विचार के अनुसार अवसर पाकर उन्होंने लंका को आग लगा दी। जब वह जलकर भस्म होने लगी तब क्रोध का आवेग कम होने पर हनुमान् के मन में कुत्सा (आत्म—निन्दा) उत्पन्न हो गई, जिससे खिन्न होकर वे सोचने लगे, कि मैंने यह अच्छा नहीं किया।

'लांगूल' वास्तव में वानर जाति का एक जातीय भूषण था, जिसका पराये हाथ से बिगड़ जाना, वे जाति मात्र का अपमान समझते थे, जैसा कि आजकल भी अंग्रेज लोग टोपी का, सिख पगड़ी या केशों का, पठान कुरान का, आर्य (हिन्दू) यज्ञोपवीत का, राजपूत खण्डे का समझते हैं। इसी विचार से रावण ने यह दण्ड विचार किया, क्योंकि इसे वह महा-दण्ड मानता था। लांगूल नामक पुच्छ के होने से जिन्होंने हनुमान् को पशु बना लिया, उन्होंने लांगूल को पूंछ बना लिया, परन्तु यदि वास्तव में लांगूल पुच्छ या किसी अंग विशेष का नाम होता तो रावण वा० रा० सुन्दर काण्ड सर्ग ४३ श्लोक ३ में 'इष्टं भवति भूषणम्' न कहकर 'अंगं भवतिह्युत्तमम्' कहता। एक जैनी पण्डित ने हमें बताया था कि दशरथ जातक में 'लांगूल' कर-कंकण का नाम है। सम्भावना भी यही है कि वह कंकण वीरता का पदक होता हो।

-सम्पादक

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा।।५५।३
क्रुद्धः पापं न कः कुर्यात्क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्।।५५।४

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्।।५५।५
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।५५।६
धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम्।
अचिंतयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम्।।५५।७
यदि दग्धा त्वियं सर्वा नूनमार्यापि जानकी।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता।।५५।८

'धन्य है वे महात्मा लोग जो उत्पन्न हुए क्रोध को वैसे ही बुद्धि से रोक लेते हैं, जैसे कि जल से प्रज्वलित अग्नि शान्त हो जाती है।'

'यदि क्रोध को न रोका जाय तो क्रोध वश पुरुष क्या पाप नहीं करता? क्रोध से वशीभूत होकर गुरुओं को भी मार देता है और न करने योग्य कर्म भी कर डालता है और न बोलने योग्य वचन बोल देता है। जो पैदा होते क्रोध को साँप की कंचुकीवत् परे फेंक देते हैं, वास्तव में वही पुरुष धन्य है। मुझको धिक्कार है कि जिसने क्रोधवश अग्नि लगाते समय सीता का भी ध्यान नहीं किया क्योंकि सीता को उस अग्नि से हानि पहुंची तो मेरा सारा यत्न ही व्यर्थ हो जायेगा, मैं सदा के लिए स्वामी की दृष्टि में अविचारी ठहरूँगा।'

इस सन्ताप के पीछे वह सीता की सुध के लिए फिर सीता की कुटी में गये और सीता को प्रसन्न देखकर अपने स्थान को लौटने की आज्ञा मांगी। इस पर सीता ने कहा, तात! "यदि तुम उचित समझो तो एक दिन और निवास करो। इससे मुझ अल्पभाग्या का कुछ काल तो अच्छी तरह व्यतीत होगा। मैं जानती हूं कि तुम्हारे चले जाने पर मुझे भारी कष्ट होगा तथा दुबारा तुम्हारे यहाँ आने में मेरे प्राणों की स्थिति भी सन्देह में होगी।"

"वीर! मुझे एक सन्देह है, अतएव उसकी भी निवृत्ति कीजिए। मुझे सन्देह है कि वानर समूह तथा लक्ष्मण इस दुष्कर समुद्र को किस प्रकार तरेंगे ?"

उत्तर में हनुमान् ने कहा, "देवि! वानरराज सुग्रीव तरनविधि में बड़े निपुण हैं। उनके प्रताप से हम सब लोग बड़े दल–बल से राम लक्ष्मण सहित यहाँ आयेंगे और रावण को तिरस्कृत कर राम तुमको अपने साथ ले जावेंगे। केवल कुछ दिनों की देरी है। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो।"

हनुमान् का लौटना

लंका में इस प्रकार कृतकार्य हो तथा सीता को पूरी सान्त्वना देकर हनुमान् फिर उसी मार्ग से अपने देश को लौटे और मार्ग में तैरते–२ सागर के मध्य में सुनाभ (मैनाक) पर्वत पर आ टिके और वहाँ उन्होंने पूर्ववत् जलपानादि किया और विश्राम लेकर आगे चले–

आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम्।
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान्।।५७।१३

मैनाक से चलकर ज्योंही समुद्र के दूसरे पार पहुंच कर हनुमान् ने हर्ष का शब्द किया, त्योंही जाम्बवान्, अंगद आदि सब वानरों ने जान लिया कि सब तरह से कृतकार्य होकर हनुमान् आ रहे हैं क्योंकि बिना कार्य सिद्ध किये लौटने पर ऐसा हर्षसूचक शब्द नहीं हुआ करता।

समुद्र पार कर जब हनुमान् महेन्द्र पर्वत पर पहुंचे, जहाँ कि सब साथी बैठे हुए थे तो सबको बड़ा हर्ष हुआ। आपस में सत्कार–सम्मान के पीछे सब सीता के समाचार पूछने लगे। तिस पर हनुमान् ने बड़े आनन्ददायक शब्दों में कहा–"हाँ, मैं देवी सीता को देख आया हूँ। सीता अशोक वाटिका में अनेक घोर राक्षसियों से रक्षित हैं तथा राम वियोग से पृथिवी पर सोती हैं। कभी–२ किञ्चित् आहार करती हैं। शृंगार त्याग कर एक वेणी मात्र धारण किये और अति कृश शरीर हो रही हैं।"

सीता का समाचार सुन सब लोग अनेक ढंग से प्रसन्नता प्रकट करते हुए हनुमान् की बड़ाई करने लगे। अंगद ने भरी सभा में हनुमान् से कहा, 'कपिवर! सत्व तथा वीर्य में तुम्हारे समान कोई नहीं जो तुम समुद्र पार जाकर कार्य कर यहाँ आये हो। वास्तव में तुम हम लोगों के जीवन के दाता हो। तुम्हारे पुरुषार्थ से हम सब सिद्धार्थ हो राम से मिलेंगे। धन्य है तुम्हारी स्वामिभक्ति और धन्य है तुम्हारा वीर्य एवं धैर्य । बधाई हो तुम्हें, तुमने यशस्विनी राम–पत्नी का दर्शन किया है, क्योंकि अब राम सीता वियोग के दुःख को त्याग देंगे। हे हनुमान्! हम समुद्र–लंघन, लंका–दर्शन और सीता तथा रावण के दर्शन का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं सो तुम सुनाओ।"

अंगद के बैठने पर जाम्बवान् ने पूछा, "महा कपे! किस प्रकार तुमने लंका देखी? उसमें क्रूर कर्मा रावण का वृत कैसा है ? सीता तुमने कैसे ढूँढ़ी, वह तुम्हारे साथ कैसा भाषण करती थीं ? वहाँ जाकर हमको क्या–२ करना उचित होगा और वहाँ किसकी ध्यान से रक्षा करनी होगी, ये सब तुम स्पष्ट रूप से कहो ?"

अंगद और जाम्बवान की आज्ञा से यात्रा वृत्तान्त सुनाते हुए हनुमान् बोले–'मान्यवर! जब मैं महेन्द्राचल से समुद्र में प्रविष्ट होकर तैरने लगा तो मेरा भविष्य अनिश्चित था। पर जब मैं मैनाक पर्वत पर एक सुन्दर आश्रम के निकट विश्राम की इच्छा करने लगा तो पर्वत की कन्दरा से एक बड़े तेजस्वी वृद्ध पुरुष ने आकर मेरा कुल, गोत्र, नाम, काम पूछा। मैंने उसे अपना कुल गोत्र तथा समुद्र तैर कर लंका जाने का कारण बताया और उसके परिचय के लिए नाम गोत्रादि पूछा तो उसने बड़े प्रेम और मीठी वाणी से कहा–

पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः।।५८।१३
मैनाकमति विख्यातं निवसतं महोदधौ।।५८।१४
वज्रेण भगवान्पक्षौ चिच्छेदैषां सहस्त्रशः।
अहन्तु मोचितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना।।५८।१६

पुत्र! मैं तुम्हारा पितृव्य (चाचा) हूँ क्योंकि तुम्हारे पिता मातरिश्वा से मेरी गूढ़ मैत्री थी। तुम्हारे पिता ने एक युद्ध में मेरी सहायता कर मुझे जीवन दान दिया था। समुद्र में इस छोटे से परन्तु अति मनोहर पर्वत पर मेरा निवास तब से ही है। नाम मेरा **'मैनाक'** ● है।

- **हनुमान् के इस कथन से यह सिद्ध है कि ''मैनाक'' एक प्रतिष्ठत मनुष्य था, जड़ पर्वत नहीं, क्योंकि जड़ में उपरोक्त घटना असम्भव है। हां यह हो सकता है कि उसके निवास से उस पर्वत का नाम भी मैनाक पड़ गया हो , जैसे लंका एक स्त्री थी और लंकापुरी उसी के नाम से प्रसिद्ध है। मैनाक पर्वत का पहला नाम 'सुनाभ' ही होगा जैसाकि सु० का० सं० ५७ श्लोक सं०१३ में वाल्मीकिजी ने लिखा है।**

इसके पीछे सुरसा समागमादि का समुद्रीय वृतान्त सुनाकर हनुमान् ने कहा कि–

अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम्।
प्रविष्टो हमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः। ।५८ ।४७
तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसप्रभा। ।५८ ।४८
अट्ठाहासं विमुञ्चती नारी काप्यास्थित पुरः। ।५८ ।४६
अहं लंकापुरी! निर्जिता विक्रमेण ते।
यस्मात्तस्माद्विजेतासि सर्वरक्षांस्याशेषतः। ।५८ ।५१

मैं सूर्य के अस्त होने पर राक्षसों की पुरी लंका में अविज्ञात ही प्रविष्ट हो गया। पुरी में प्रवेश करते ही मुझे कृष्ण रंग के बड़े आकार वाली, अट्टहास करती हुई हिंसक भावयुक्त एक स्त्री मिली और जब उसको मैंने अपने शौर्य का परिचय दिया तब वह बोली कि मैं लंका हूँ और इस लंकापुरी की रक्षिका हूं। हे वीर! तुम्हारे विक्रम से मैं पराजित हुई हूं। अतः तुम सारे राक्षसों के जीतने वाले होगे अर्थात् सबको जीतोगे।

फिर लंका में घूमना, बड़ी कठिनता से सीता का पता लगाना, रावण की क्रूरता, राक्षसियों का दुर्व्यवहार, सीता की दृढ़ता एवं रामभक्ति, विभीषण पुत्री कला तथा त्रिजटा का सद्व्यवहार, अपना रामदूतत्व प्रकट करना, राम की मुद्रा देना, सीता से राम के लिए मणि लेना, अशोकवाटिका का नाश, राक्षसों द्वारा बांधे जाने पर रावण के सम्मुख जाना, रावण की ओर से वध–दण्ड, विभीषण द्वारा वध–निषेध, लाँगूल दहन, अशोक वाटिका का दाह, सीता का अपूर्वशील सुनाकर रावण से जीतने का उद्योग करने के लिए हनुमान् ने उन सबको बड़े प्रभावशाली शब्दों में प्रेरणा दी।

हनुमान् का सब वृत्तान्त सुनकर एक मन हुए सब लोग नगर की ओर चले और नगर के निकट राजकीय मधुवन में विश्राम कर उचित समय में राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के पास पहुंचे। वहाँ पहुंच और प्रणामादि कर युवराज अंगद की उपस्थिति में हनुमान् सीता दर्शन के वृत्तान्त श्रीराम को कहने लगे– 'हे राम! सीता रावण के अन्तःपुर में राक्षसियों के मध्य में जीवित जागृत है तथा आपके चरणों में उनका अटूट अनुराग है।' यह सुन राम बहुत ही प्रसन्न होकर बोले, 'हे हनुमान्! सीता का वृत्तान्त किंचित् विस्तार से कहिए तथा सीता ने यदि कोई सन्देश दिया हो तो वह भी बताइये।'

राम के वचन को सुनकर सीता की दी हुई मणि को देकर प्रसन्न मन हनुमान् जी बड़ी नम्रता से कहने लगे, ''महाराज! मैं विस्तारयुक्त समुद्र को पार कर सीता को ढूँढ़ता हुआ समुद्र के दक्षिण तीर

पर महानगरी लंका में गया, जहाँ का राजा रावण है। वहाँ मैंने सीता देवी का दर्शन किया। वह राक्षसियों से बार–२ झिड़की जाकर भी आपमें सब प्रकार के मनोरथ रखती हैं। आपके विरह से उनकी दशा दीन, शरीर कृश, वस्त्र मलीन, क्लांत, वेणी एक जटावत् हो रही है तथा रावण के दुर्व्यवहार से दुःखमना प्राण त्यागने को उद्यत है।''

''बड़ी कठिनता से मैंने सीता को अपने विषय में विश्वास दिलाया और आपकी सुग्रीव महाराज से मित्रता आदि का वृत्तान्त सुनाया जिसे सुनकर सीता बड़ी प्रसन्न हुई और अपने दुःख की अवधि तथा आपके सेना सहित समुद्र पार आने के विषय में पूछने लगीं जिस पर मैंने सब उपाय बताकर सीता को सन्तोष एवं शांति रखने के लिए प्रार्थना की।''

चलते समय मुझे सीता ने यह चूड़ामणि दी थी। उनके जीने का एक मास शेष है। मणि को पाकर श्रीराम, लक्ष्मण सहित बहुत प्रसन्न होकर कहने लगे, ''यदि सीता का जीवन एक मास और रह गया है, तो बहुत थोड़ा समय शेष है। अब हम जबकि सीता के निवास स्थान का पता और मार्ग सुन चुके हैं, तब यहाँ क्षणभर नहीं रह सकते, इसलिए हमें भी वहाँ ले चलो और जो कुछ सीता ने तुमसे कहा है, वह सब सुनाओ।''

राम के उत्तर में हनुमान् ने कहा, ''महाराज! चलते समय मुझे सीता ने अपने दुःख को सुनाकर उससे मुक्त होने के उपायों का वर्णन करते हुए यह कहा कि किस प्रकार वानर और राम लक्ष्मण इतने समुद्र को उलांघकर यहाँ आयेंगे तथा मेरी राक्षसों के हाथ से मुक्ति होगी कि नहीं? इस पर जब मैंने कहा कि राक्षस भवन से तुम्हारी मुक्ति मैं अभी करा देता हूं, तब सीता ने बड़े धैर्य और अभिमान से कहा कि 'यह तो ठीक है कि तुम मुझे सकुशल ले जा सकते हो, परन्तु इसमें मेरे महाबली पति रामचन्द्र की मानहानि है। उनके लिए यही उचित है कि वह दल–बल सहित यहाँ आवें और रावण आदि को मारकर मुझे ले जावें, दूसरे मैं पतिव्रता स्त्री हूँ और अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी पर–पुरुष की देह को जीवन–सुख के लिए तो क्या स्वर्गलाभ के लिए भी स्पर्श नहीं कर सकती।' इस पर मैंने कहा, ''अच्छा देवि! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो शीघ्र ही श्रीराम दल बल सहित यहाँ आकर और राक्षसों को जीत कर तुमको सम्मानपूर्वक साथ ले जायेंगे और अति शीघ्र अयोध्या में तुम्हारे साथ राजतिलक धारण कर प्रजा का पालन करेंगे।''

।। सुन्दरकाण्ड समाप्त।।

युद्ध काण्ड

राम का कृतज्ञ भाव

हनुमान् से यह वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न हुए राम बोले– "हनुमान्! तुमने यह बड़ा भारी काम किया है जो दूसरे पुरुष के चिन्तन में भी नहीं आ सकता था। तुम्हारे बिना इतने विस्तार वाले समुद्र को तैरना ही कठिन था। उसी प्रकार राक्षसों से सुरक्षित लंका में प्रवेश तथा वहाँ से अपना कार्य सिद्ध करके, कुशलपूर्वक लौटना तुम्हारा ही काम है।

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्ता कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् सदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्।।१।।

'महावीर! वास्तव में तुमने एक आदर्श सेवक की भाँति सुग्रीव की आज्ञानुसार यह कार्य कर अपने को ● 'पुरुषोत्तम' बनाया है। इतने बड़े संकट–स्थान में पहुंचकर तुमने अपने आपको कृत्कार्य कर सुग्रीव को भी प्रसन्न कर लिया। महात्मन्! तुम्हारे इस कार्य से मैं, रघुवंश और महाबली लक्ष्मण सब ही उपकृत हुए हैं। तुम्हारे इस उपकार के बदले में मैं अकिञ्चन इस समय तुम्हें और कुछ तो नहीं दे सकता, हाँ आलिंगन रूप से तुम्हारे प्रति प्रेम प्रकाशित करता हूं। इसको ही तुम सर्वस्व जानना। यह कहकर राम व्याकुल चित्त से चिन्तन करने लग गये।

● यहाँ श्रीराम द्वारा हनुमान् के लिए 'पुरुषोत्तम' शब्द का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

सुग्रीव द्वारा राम को प्रोत्साहन

राम को इस प्रकार शोकग्रस्त देखकर सुग्रीव बोले–

सन्तापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघवः।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः।।२।३
मतिमाञ्शास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघवः।
त्यजेमां प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषिणीम्।।२।४
समुद्रं लंघयित्वा तु महानक्रसमाकुलम्।
लंकामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम्।।२।५

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति।।२।६

'हे राम साधारण पुरुषों की भाँति तुम यह क्या कर रहे हो? अब सन्ताप का कौन स्थान है, जबकि शत्रु के नगर और उसमें पहुंचने का मार्ग जान लिया है? आप बुद्धिमान्, शास्त्रवेत्ता, विचारशील और पण्डित हैं, अतएव इस प्राकृत बुद्धि को त्याग दें। निश्चय रखो कि हम सब समुद्र पार कर लंका पर आक्रमण करेंगे तथा आपके शत्रु रावण और राक्षसों को नष्ट करेंगे। यदि उत्साह ही छोड़ दिया तो सब व्यर्थ हो जायेगा और अनेक विपदायें आ घेरेंगी।

जिस प्रकार पापकर्मा रावण को मारकर सीता को लंका से लायें, वैसा यत्न करो। हे राघव! जिस प्रकार हम समुद्र पर पुल बाँध सकें और लंका में चले जायें ऐसा यत्न करो और प्रत्येक प्रकार के शोक को छोड़ दो क्योंकि शीघ्र ही मेरी समस्त वानर सेना सागर को तैरकर राक्षसों का नाश करेगी और हम सीता के दर्शन करेंगे। अधिक क्या कहूं, सब लक्षण ऐसे प्रतीत होते हैं कि इस कार्य में निश्चय ही आपकी विजय होगी। आपको केवल धैर्य धारण कर उत्साह रखना चाहिए।'

सुग्रीव द्वारा राम को प्रोत्साहन का यह प्रेरक प्रसंग 'अवतारवाद' की विनाशकारी मान्यता को कितनी प्रबलता से खण्डित कर रहा है, पाठक विचारें। - सम्पादक

लंका की सुदृढ़ता

सुग्रीव के युक्ति और परमार्थ युक्त वचन को स्वीकार करते हुए, राम लंका की दृढ़ता जानने के लिए हनुमान् से बोले–'वानर वीर ! यद्यपि तुम समुद्र पर पुल बाँधने, नौकादि से लाँघने, अथवा पार होने के लिए उपाय सुझाने में भी पूर्ण समर्थ हो तथापि तुम पहले लंका की दृढ़ता के सम्बन्ध में बताओ जिससे कि उसका बलाबल जाना जाय। तुम बताओ कि दुर्गम लंका के दुर्ग (किले) कितने हैं ? सेना कितनी है ? दुर्ग में जाने के द्वार कैसे हैं ? लंका के राक्षसों के घर कैसे हैं ? जैसे देखा है, वह सब वैसे ही कहो क्योंकि तुम इसमें निपुण हो।'

राम के वचन सुनकर हनुमान् बोले– "राजन् ! सुनो मैं वहाँ का वृत्तान्त सुनाता हूँ। लंका राक्षसों के बल से सुरक्षित एवं दृढ़ है तथा रावण के प्रताप से प्रभावित हो राक्षस उसके प्रति अतीव स्नेह रखते हैं। लंका में सेना का विभाग तथा वाहनों के चलाने की रीति बहुत उत्तम है।"

हृष्टप्रमुदिता लंका मत्तद्विपसमाकुला।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणनिषेविता।।३।१०
दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च।
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च।।३।११
तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च।
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते।।३।१२
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्नयो रक्षसां गणैः।।३।१३

सौवर्णस्तु महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षण।
मणिविद्रुमवैदूर्य मुक्ताविरचितान्तरः।।३।१४

"प्रभो ! लंकापुरी हर्ष और आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण है। वह विशाल पुरी मतवाले हाथियों से व्याप्त तथा असंख्य रथों से भरी हुई है। राक्षसों के समुदाय सदा उसमें निवास करते हैं। लंका के बड़े-२ चार द्वार हैं जिनके कपाट बड़े दृढ़ हैं। चारों ओर से गोलाबारी करने वाले अस्त्र महा परिधों से सुरक्षित हैं। उन द्वारों पर वाण एवं पत्थरों की वर्षा करने वाले प्रबल यन्त्र रखे हैं जो दूर से आती हुई, शत्रु सेना को वहाँ ही रोक देते हैं। द्वारों के अन्दर बड़े-२ तेज लोहे के तीक्ष्ण शस्त्र तथा सैकड़ों शतघ्नियें (तोपें) वहाँ के वीर पुरुषों की रची हुई रखी रहती हैं। उस पुरी के चारों ओर सोने का बना हुआ परकोटा है जिसको तोड़ना बहुत ही कठिन है। उसमें मणि, मूंगे, नीलम और मोतियों का काम किया गया है।

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः।।३।१५
द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपंक्तिभिः।।३।१६
त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः।।३।१७
एकस्त्वकम्प्यो बलवान् संक्रमः सुमहादृढ़ः।
काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः।।३।१८
लंका पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा।
नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमञ्च चतुर्विधम्।।३।२०
परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च।
शोभयन्ति पुरीं लंकां रावणस्य दुरात्मन!।।३।२३

'परकोटे के चारों ओर बड़े शीतल जल तथा ग्राह व मीन आदि जल-जन्तुओं से भरी हुई अगाध खाई है और खाई के ऊपर चारों द्वारों में जाने के लिये कला और कमानी लगे, हुए संक्रम (खुलने व मिलने वाले पुल) हैं। जब शत्रु दल जाता है तब वे अन्दर को खींच लिये जाते हैं, उन यन्त्रों से सेना खाई में ही फेंक दी जाती है।

उनमें एक अकम्प्य नाम का दृढ़ संक्रम (पुल) है जो सुवर्ण के नाना स्तम्भों से शोभायमान है और उसके आगे लंका एक पर्वत शिखर पर है जहाँ पर फिर खाई, दुर्ग, शतघ्नी और नाना प्रकार के यन्त्र लगे हुए हैं।

लंका की वैज्ञानिक प्रगति का आभास इस वर्णन में मिलता है।

राम के विचार

हनुमान् से लंका का वृत्तान्त सुनकर राम ने कहा, सुग्रीव ! हम अवश्य लंका को जीतेंगे। अब शीघ्र ही चढ़ाई कर देनी चाहिए। यह सुनकर सुग्रीव और लक्ष्मण ने भी जब चढ़ाई कर देना ही निश्चित कर लिया, तो राम फिर बोले कि–'इस चढ़ाई में मार्ग देखने के लिये सबसे आगे अनेकों वीरों सहित नील जायें।

अग्रे यातुर्बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम्।
वृत्तः शतसहस्त्रेण वानराणां तरस्विनाम्।।४।६
फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय।।४।१०
गजश्च गिरिसंकाशो गवयश्च महाबलः।
गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इबर्षभः।।४।१५
अंगदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चांतकोपमः।
सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा।।४।१६
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः।
ऋक्षराजो महाबाहुः कुक्षि रक्षन्तु ते त्रयः।।४।२०

यह सुन सुग्रीव ने कहा कि नील! तुम सेना को ऐसे मार्ग से ले जाओ जहाँ फल, जल, सघन छाया और कन्द मूल बहुत हों, तथा जहाँ राक्षस लोग विघ्न न डाल सकें तथा गज, गवय और गवाक्ष उनके पीछे अपनी–२ सेना लेकर चलें। लक्ष्मण वीर अंगद के साथ जायें। जाम्बवान्, वेगदर्शी, सुषेण तथा महाबाहु ऋक्षराज पार्श्वों से रक्षा करें।

राम का वचन सुनकर सुग्रीव महाराज ने वानरों को यथा क्रम चलने की आज्ञा दी जिसे पाकर सम विषम भूमि, वन पर्वत में होते हुए सह्य और मलय पर्वत पर विचरण करते हुए सब वानर महेन्द्राचल पर पहुंच गये और वहाँ से चलकर ठीक समुद्र के किनारे जा ठहरे वहाँ पहुंच कर राम ने कहा–

अतः परमतीरो यं सागरः सरितां पतिः।
न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः।।४।६८
तदिहैव निवेशो स्तु मन्त्रः प्रस्तूयतोमिह।
यथेदं वानर बलं परं पारमवाप्नुयात्।।४।६६

'सुग्रीव ! हम बड़े विस्तार वाले सागर के तट पर आ गये हैं परन्तु इसको विशेष उपाय के बिना हम तर नहीं सकते, अतः मिलकर कोई विचार करना चाहिए कि वानर सेना किस तरह समुद्र पार हो और आज्ञा दी जावे कि कोई कहीं न जाय।

यह कहकर रामचन्द्र सीता के दुःखों को स्मरण कर विलाप करने लगे, जिसे देखकर लक्ष्मण ने नाना प्रकार से आश्वासन दिया। इसके पश्चात् सूर्यास्त हो जाने पर सब संध्या उपासना करने लग

गये–

दिनक्षयान्मंदवपुर्भास्करो स्तमुपागमत्।।५।२२
आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपासत।।५।२३

रावण की नीति एवं विचार

इधर तो यह दशा हुई, अब उधर लंका में हनुमान् के वचनों को स्मरण करता हुआ रावण मंत्रि–मण्डल को बुलाकर बोला– 'हे मन्त्रियो! बताओ अब क्या करना चाहिए ? जिससे लंका की रक्षा हो ? विचार के आधीन ही विजय होती है, अतएव आप लोग उपाय सोचें।'

'नीति शास्त्र के अनुसार वह पुरुष उत्तम है जो मंत्रियों, बान्धवों और मित्रों से विचार कर कार्य आरम्भ करता है और देव को भी ध्यान में रखता है। जो अकेले विचार करता है, अकेला धर्म करता है और अकेला काम करता है, वह पुरुष मध्यम है।

'और जो गुण दोष का विचार न करके, देव का निरादर कर अभिमान से काम करना चाहता है, वह नर अधम है। जैसे ये तीन प्रकार के पुरुष हैं, वैसे ही मन्त्र (विचार) भी तीन प्रकार के हैं–

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम्।।६।१२
बह्वीरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः।
पुनः यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः।।६।१३
अन्योन्य मतिमास्थाय यत्र संप्रति भाष्यते।
न चैकमत्ये श्रेयो स्ति मन्त्रः सो धम उच्यते।।६।१४
तस्मात्सुमंत्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तमेतत्कृत्यं मतं मम।।६।१५

'जहाँ एक मत होकर शास्त्र की दृष्टि से मन्त्री लोग निर्णय करें, वह मन्त्र उत्तम है। जिसमें बहुत तर्क व मतभेद के पीछे अन्त में सब मंत्रियों का एक मत हो जाय, वह मन्त्र मध्यम है। भिन्न मति रखकर जिसमें अन्त तक भिन्न मत ही रहे, वह मन्त्र अधम है।'

आप बुद्धिमान् हैं अतएव विचार कर कोई उपाय बताइये। क्योंकि राम सेना सहित आ रहे हैं, और समुद्र को शीघ्र ही सुखपूर्वक तर लेंगे, अतएव आप अवश्य अपना और अपने राज्य का हित चिन्तन करें।'

रावण के विचार को सुनकर राक्षस कहने लगे, 'महाराज ! आप क्यों खेद करते हैं ? आपके सामने राम और उनके सहायकों की शक्ति ही क्या है ? जबकि आपने भोगवती में जाकर पन्नग जीत लिए, कैलास में जाकर यक्षराज कुबेर को वश में कर उसका पुष्पक विमान हर लाये, महाबली दानवेन्द्र मय ने आपको मित्र बनाने के लिए अपनी दुहिता आप से व्याह दी और नाग कुल भूषण वासुकि, तक्षक, शंख, जटी आदि वश में कर लिये, अतः आप सुख–पूर्वक बैठिये। वानरों के श्रम से क्या हानि व भय

हो सकता है ? हाँ, यदि आवश्यकता पड़ी, तो अपने पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) को आज्ञा दे देना कि जब तक वह राम की सारी सेना को नष्ट न कर दे तब तक न हटे। आप साधारण पुरुषों की भाँति उत्पन्न हुई विपत्ति की चिन्ता को हृदय में स्थान न दें और अपने मन में यह निश्चय कर लें कि राघव को आपको ही मारना है।'

इसी प्रकार नीलार्बुद (प्रहस्त) दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, कौम्भकर्णि, निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्धर्ष, रश्मिकेतु, इन्द्रशत्रु, विरूपाक्ष आदि योद्धाओं ने एक–२ करके अपने–२ शस्त्र–अस्त्रों को साफ करके कहा, राक्षसेन्द्र ! यह बड़े अपमान और दुःख की बात है कि वानर व मनुष्य आप और आपकी प्रजा का अपमान करें, आप आज्ञा करें तो हम आज ही पृथ्वी को एक–२ वानर से शून्य कर सकते हैं और–

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
कृपणं च हनूमन्तं लंका येन प्रधर्षिता:।।६।६

आज ही राम को लक्ष्मण व सुग्रीव सहित वध कर सकते हैं। हम कृपण हनुमान् के भी प्राण हरेंगे, जिसने कि लंका का अपमान किया है।

विभीषण की सम्मति

अज्ञानी राक्षस जब इस प्रकार कह चुके तब दीर्घदर्शी नीति–निपुण विभीषण बोला–

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च।
विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः।।६।६
अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषु बले स्थितम्।
जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ।।६।१०
किञ्च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनि।।६।१३
खरो यद्यतिवृत्तस्तु रामेण हतो रणे।
अवश्यं प्राणिनां प्राणाः रक्षितव्याः यथाबलम्।।६।१४
एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत्।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृते नु किम्।।६।१५
न तु क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना।
वैरं निरर्थकं कर्तुर्दीयतामस्य मैथिली।।६।१६
यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम्।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली।।६।१७
विनश्येद्धि पुरी लंका शूरा सर्वे च राक्षसाः।
रामस्य दयिता पत्नी न स्वयं यदि दीयते।।६।१६

प्रसादये त्वां बन्धु त्वात्कुरुष्व वचनं मम।
हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली।।६।२०

'महाराज ! जो कार्य साम, दाम, भेद से सिद्ध न हो वहाँ दण्ड का प्रयोग उचित होता है तथा प्रमादियों, अभियोगियों और अनाचारियों में विक्रम फल लाता है, पर जो प्रमाद रहित, जय की इच्छा वाला, महाबली और पूर्ण दमी राम है, उसको आप जीतने की इच्छा रखते हैं ? फिर उस हनुमान् के बल वीर्य को कौन जान सकता है जिस हनुमान् ने घोर समुद्र को पार कर लंका में इतना उग्र कर्म किया है।

उस राम ने आपका क्या अपराध किया है जिसकी भार्या को आप निर्जन स्थान से चुरा लाये हैं। यदि अतिवृत्त खर को राम ने युद्ध में मारा तो क्या अपराध किया क्योंकि हर एक प्राणी का यथाशक्ति अपने प्राणों की रक्षा करना तो कर्तव्य ही है। यदि खर–वध के कारण आपने सीता को हरा है और उसी सीता–हरण से अब लंका पर विपत्ति आने वाली है तो वह त्याग देनी चाहिए, क्योंकि कलह की जड़ को घर में रखना अच्छा नहीं होता।

'बल वाले और उस पर भी धर्मात्मा पुरुष से व्यर्थ वैर करना अच्छा नहीं, अतः जब तक वह लंका को अपने बल से नष्ट–भ्रष्ट करें, उससे पूर्व ही आप उनकी सीता दे दें। यह निश्चय रखें कि यदि सीता न दोगे तो अवश्य लंका और सब राक्षस नष्ट हो जायेंगे। मैं आपको बड़ा भाई जानकर यह हित के वचन कह रहा हूँ। यदि किसी और नाते से नहीं तो बन्धु भाव से ही आप मेरी बात को मानें और सीता राम के अर्पण कर दें। मैं आपसे सत्य और हितकारी वचन कह रहा हूँ।'

"राजन ! देखो जब से सीता को तुम लंका में लाये हो तब से ही बड़े–२ उपद्रव दिखाई पड़ते हैं। अतः इन उपद्रवों की मूल सीता को लौटा देना ही हितकर है। महाराज ! यह मेरा कथन आपको लोभ मोह से संयुक्त भी प्रतीत हो तो भी आप विचारें, क्योंकि मैंने अपना कर्तव्य जानकर जो कुछ देखा व सुना है वह कह दिया है।"

रावण का सभा में विचार

विभीषण के शब्दों से अपमानित तथा सीता के प्रेम से मोहित पापी रावण, बड़ी चिन्ता से युक्त होकर सोचने लगा। देर तक सोचने के पश्चात् उसने एक भारी सभा बुलवाई जिसमें सब विभागों के विद्वान् इकट्ठे हुए। सभा में सबसे पहले मन्त्री, प्रजा के प्रतिनिधियों ने महाराज रावण को प्रणामादि किया। सबका यथा योग्य उत्तर देकर रावण ने कहा– "मंत्रिगण तथा वीर पुरुषो ! मैं काम आदि से हतबुद्धि व श्रांत मन हो रहा हूँ। आप इस समय विचारकर बतावें कि क्या इस महासागर को राम लक्ष्मण पार कर सकेंगे तथा क्योंकर एक कपि ने इतना कोलाहल कर दिया ? यद्यपि कर्म गति बड़ी गहरी है, तो भी आप अपनी बुद्धि से बतावें, जिससे मुझे सीता भी राम को न देनी पड़े और मेरी जय भी रहे। मुझे निश्चय है कि समुद्र को तैरना जगत् में हमारे अतिरिक्त किसी और की शक्ति का काम नहीं है।"

कुम्भकर्ण का क्रोध

रावण की बातचीत को सुनकर कुम्भकर्ण बोला–

सर्वमेतन्महाराज ! कृतमप्रतिमं तव।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः।।१२।२९
न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन।
न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः।।१२।३०
अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवीष्यप्रयतेष्विव।।१२।३१
यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ।।१२।३२

महाराज ! अब आपका यह सब कुछ कहना–सुनना व्यर्थ एवं अयुक्त है। हाँ, यदि हमसे ही इसका उपाय पूछना था तो पर–स्त्री (सीता) हरने से पहले पूछना था। रावण! न्याय से जो राजा राज्य कार्य करता है, उसे पीछे से पछताना नहीं पडता। उपाय शून्य और बिना विचार के किये हुए कर्म तो कुपात्र में दिये दान के फल भाँति सदा उलटे ही फल उत्पन्न किया करते हैं।'

"राजन् ! जो मनुष्य पहले करने योग्य कामों को पीछे और पीछे करने योग्य कामों को पहले करता है, वह नीति शास्त्र के तत्व को किञ्चित् भी नहीं जानता और उस चपल के छिद्र को शीघ्र ही दूसरे जान लेते हैं।"

'राजन् ! यद्यपि तूने बड़ा नीति विरुद्ध काम किया है तथापि प्रजा धर्म एवं भ्रातृभाव को स्मरण कर मैं तेरे शत्रुओं से युद्ध करूँगा।'

रावण को सन्तोष

कुम्भकर्ण के नीति भरे शब्दों से रावण को संतप्त देखकर उसकी शान्ति के लिए बड़े बल वाला महापार्श्व बोला– 'भगवन् ! आप निश्चिन्त होकर भोगादि भोगें। हम सब रामादि को नष्ट कर देंगे।' महापार्श्व के वचन को सुनकर रावण अपने मन में किञ्चित् प्रसन्न हुआ।

विभीषण का स्वदेश त्याग

इस प्रकार अपना–२ मत प्रकाश करने पर रावण के भ्राता विभीषण ने फिर अपना वही हितकर वचन रावण से कहा कि 'राजन् ! यदि आप अपना तथा अपने देश और जाति का हित चाहते हों, तो सीता को राम के अर्पण कर दो, और उनसे क्षमा माँगो।'

रावण के सिर पर काल मँडरा रहा था, इसलिए उसने हित की बात कहने पर भी विभीषण से कठोर वाणी में कहा–

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना।।१६।२
जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा।।१६।३
प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस।
ज्ञातयो प्यवमन्यते शूरं परिभवन्ति च।।१६।४
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशाः भयावहाः।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः।।१६।७
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च न।।१६।८

"भाई ! भले ही मनुष्य शत्रु के साथ रहे, विषैले सांप के साथ भी रहे, परन्तु शत्रुओं की संगति में रहने वाले मित्र के संग कभी न बसे। राक्षस ! मैं सजातियों के स्वभाव को जानता हूं। सारे जगत् में इनका यही स्वभाव है कि ये अपने भाइयों के दुःख में प्रसन्न होते हैं।"

'जाति के पुरुष अपनी जाति के प्रधान, राजा, वैद्य, धर्मात्मा और शूरवीर का भी अपमान ही किया करते हैं। मनुष्यों की तो क्या ये बातें पशुओं में भी सुनी जाती हैं। एक बार पदम वन में हस्तियों को पकड़ने के लिये कुछ राजपुरुष गये पर उन्होंने देखा कि हस्ती कुछ भी न डरे। यह देख राजपुरुषों ने आश्चर्य से एक वनवासी से पूछा कि यह हस्ती निर्भय क्यों हैं ? वनवासी ने कहा कि 'ये अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक हमारी जाति का इनके साथ कोई नहीं मिलता तब तक हमें कोई पकड़ नहीं सकता।' इसलिए इतना भय पुरुष को शस्त्र–अस्त्र या अग्नि आदि से नहीं जितना कि स्वार्थ–वश शत्रु के साथ मिले हुए जाति के पुरुषों से होता है क्योंकि ये शत्रु को नाश का उपाय बताकर बन्धुओं को नष्ट करा देते हैं। इसलिये सब भयों से बड़ा भय जाति पुरुषों से ही है।

इस प्रकार उलाहने तथा सीधे वाक्यों में विभीषण की निन्दा करता हुआ रावण बोला–

योन्यस्त्वेवं विधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसन।।१६।१६

'हे कुलकलंक ! धिक्कार है तुझे। जो तू ऐसे विचार रखता है। हे राक्षस ! स्मरण रख कि यदि कोई दूसरा इन वाक्यों को कहता तो वह इसी समय निर्जीव कर दिया जाता।'

ऐसे कड़े शब्दों से सभा में अपमानित हुआ न्यायवादी विभीषण, गदा हाथ में लेकर अपने चारों सहकारी राक्षसों के साथ खड़ा होकर बड़े वीर भाव से अपने बड़े भाई रावण से कहने लगा–

स त्वं भ्रान्तो सि मे राजन् ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः।।१६।१६
सुनीतिं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः।।१६।२०

सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।१६।२१
बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः।
न नश्यन्तमुपेक्षे प्रदीप्तं शरणं यथा।।१६।२२
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीञ्चेमां सराक्षसाम्।
स्वस्ति ते स्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना।।१६।२५

'राजन् ! तुम इस समय भ्रांत चित्त हो, इसलिए जो चाहो सो कहो। तुम मेरे बड़े भाई तथा मान और स्थान में पिता के समान हो। पर मैं तेरा 'कुलकलंक' शब्द सहन नहीं कर सकता। परन्तु तेरा क्या वश है ? कोई भी अकृतात्मा पुरुष काल–वश हुआ नीतियुक्त वाक्य हितकारी के मुख से भी नहीं सुनता। राजन् ! स्मरण रख, संसार में सदा मीठी–२ बातें करने वाले पुरुष बहुतेरे हैं, पर जो कड़वा पर हितकर वचन कहें व सुनें ऐसे पुरुष दुर्लभ हैं।'

'राजन् ! मैंने जो कुछ तुम्हारा हित समझा कह दिया, अब मैं तुझे कालाग्नि में पड़कर भस्म होते देखना नहीं चाहता। अब मैं तेरे राज्य से बाहर जाता हूँ। तू मेरे बिना रहकर अपनी लंका की रक्षा कर।'

विभीषण राम की शरण में

रावण की भरी सभा में अपना अभिप्राय कहकर विभीषण अपने सहकारी चारों राक्षसों सहित विमान में बैठकर राम के क्षेत्र में पहुंच गया।

विभीषण अभी विमान को उतार ही रहा था कि इतने में सुग्रीव ने वानरों से कहा– 'देखो भाई! हमारे नाश के लिए राक्षस आता है।' यह सुन तत्क्षण हनुमान आदि वीरों ने कहा 'महाराज ! तब इसके वध करने की शीघ्र आज्ञा दीजिये।' अभी यह विचार हो ही रहा था कि झट विमान को नीचे उतार बड़ी सभ्यता तथा नम्रता से विभीषण ने महाराज सुग्रीव से कहा–'महाशय ! मैं रावण नाम के राक्षस राजा का छोटा भाई हूँ, जिस रावण ने जनस्थान में जटायु को मार कर सीता को हरा था और जिसने अब तक सीता को राक्षसियों के मध्य में विवश करके बन्दी कर रखा है। मैंने उसे बार–२ समझाया कि तुम सीता राम को लौटा दो, परन्तु उसने मेरी एक न मानी। उल्टा मुझे धिक्कारा। इसलिये–

सो हं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दाराश्च राघवं शरणं गतः।।१७।१६
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्।।१७।१७

रावण से तिरस्कृत हुआ आज मैं पुत्र, स्त्री आदि को त्याग कर राघव की शरण में आया हूँ। आप मेरी सूचना महात्मा राघव (राम) के पास पहुँचा दें।'

राम का सौजन्य एवं नीतिमत्ता

विभीषण का सन्देश राम तक पहुँचाते हुए सुग्रीव ने कहा– 'निश्चय ही यह शत्रु भाव से हमारे यहाँ आया है और अवसर पाकर अपना काम करेगा। क्योंकि राक्षसराज का गुप्तचर होकर अपनी रक्षार्थ चार राक्षसों को लेकर आया है। यह रावण का भाई है, इसलिये इसका शीघ्र ही वध कर देना चाहिए। क्योंकि शत्रु का बल जितनी शीघ्रता से नाश किया जाय उतना ही अच्छा है।'

यह सुन राम ने सब सभासदों से कहा– आप लोगों ने वानरराज का युक्तियुक्त भाषण सुना है। अतः आप इस विषय में अपना–२ मत प्रकाश करें।

राम की बुद्धिमत्ता की बड़ाई करते हुए जाम्बवान्, अंगद, शरभ और मयन्द आदि ने सुग्रीव की पुष्टि में कहा– 'राघव ! बैरी का भाई तथा राक्षस होने और वह भी अदेश काल में मिलने के कारण विचारने के योग्य है। ऐसे भयानक समय में थोड़ी भी भूल से भी भारी हानि हो सकती है। आप नीति शास्त्र के पण्डित हैं अतः विचार कर इसको स्थान और मानादि दें। इसके पश्चात् संस्कार सम्पन्न हनुमान् बोले– 'राघवेन्द्र ! मैं आपके सामने कहने के तो योग्य नहीं, परन्तु मन्त्री वर्ग की कही एक दो बातों के विषय में सब कुछ कहना चाहता हूँ। वह यह कि एक बार ही किसी परदल से आये हुए पुरुष के विरुद्ध कोई दोषारोपण करना उचित नहीं है जो बातें इसके विषय में कही जाती हैं, उनका कोई स्थान ही नहीं है। सबसे बड़ी शंका कि विभीषण का राम की शरण में आने का यह कोई देश और काल नहीं, वह ठीक नहीं है क्योंकि एक दुःखी पुरुष के लिये देश–काल का कोई विचार नहीं होता।

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमञ्च तथा त्वयि।
युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः।।१७।५८
अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन् पृच्छ्यतामिति।।१७।५६
अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै।
अंतरेण स्वरैभिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम्।।१७।६१
न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः।।१७।६२
उद्योगं तव संप्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
बालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्।।१७।६६
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्व मिहागतः।।१७।६७

'रावण की सीताहरण रूपी दुरात्मता और आपके बाली वध आदि विक्रम को देखकर यह आपकी शरण में आया है, अतएव यह उसकी बुद्धि का उत्तम प्रमाण है।'

'यदि आपको विशेष जानना हो, तो आप अनजाने पुरुषों से उसका भेद लें क्योंकि बातचीत से भाव प्रकट हो जाते हैं। चाहे कोई कितना ही विद्वान् हो पर उसकी शक्ति से बाहर है कि बुद्धिमान् के सामने अपने भावों तथा अपने अन्दर के विचारों को प्रकट न होने दे और बातचीत करता रहे।

श्रीमान् ! इसके बोलते हुए इसकी वाणी से किञ्चित् भी दुष्टता प्रतीत नहीं होती और इसका मुख प्रसन्न है इसलिए मुझे तो इस पर कोई सन्देह नहीं है। इसके आचार, व्यवहार सरल व स्पष्ट हैं। इसलिए मेरा भी यही मत है कि आपके उद्योग, रावण के पापाचार, बालि का वध, सुग्रीव का अभिषेक आदि सुनकर राज्य प्राप्ति के विचार से यह आपकी शरण में आया है।'

हनुमान् की सम्मति सुनकर प्रसन्न हुए राम बोले–'मुझे भी कुछ कहना है। आप लोग कृपा कर सुनें, वह यह है कि–

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्मिन् स्यात्सतामेताद्विर्गिहतम्।।१८।३

'मित्र भाव से आये हुए को मैं कभी नहीं त्याग सकता। यद्यपि इसमें नैतिक दोष हों, पर सत्पुरुषों के लिए बड़ी निन्दा का स्थान है कि वे शरण आये मित्र को ग्रहण न करें।'

राम का यह भाव देखकर सुग्रीव बोला–'सभ्यगण ! यह राक्षस दुष्ट हो वा सज्जन, इसमें विवाद नहीं। पर यह विचार अवश्य करना चाहिए, जो पुरुष अपने भाई को ऐसी संकट की अवस्था में छोड़ता है उसके लिए और कौन है जो समय पर त्यागा नहीं जा सकता।'

सुग्रीव का वचन सुनकर राम मन्दहास पूर्वक लक्ष्मण से कहने लगे– 'भ्राता ! सुग्रीव की चतुरता और विद्यानैपुण्य को तो देखो। क्या कोई पुरुष शास्त्रों को पढ़े और वृद्धों की सेवा किये बिना कभी ऐसा कह सकता है ?'

'यद्यपि सुग्रीव का कथन बलवान् है तो भी विभीषण को ग्रहण कर ही लेना चाहिए। जो इस पर भ्राता के त्याग का आक्षेप किया जाता है वह भी ठीक नहीं क्योंकि सारे भाई भरत व आप जैसे सुहृद नहीं होते।'

राम के भ्रातृ-प्रेम का यह कैसा मर्मस्पर्शी प्रसंग है।

'यदि मान भी लें कि यह राक्षस दुष्ट–भाव से आया है तो भी इसको आश्रय देने में क्या दोष है ? यदि हानि का भय करें तो यह तो क्या सारे पिशाच, राक्षस, दानव भी आ जायें तो भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

''शरणागत की पालना के लिए शास्त्रों में उपदेश है। सुना गया है कि कण्व ऋषि के पुत्र महर्षि कण्डू ने एक कथा में कहा है कि हाथ जोड़कर शत्रु भी शरण की याचना करे तो उसकी भी रक्षा ही करनी चाहिए। अगर कोई भय से, मोह से या काम से उसकी रक्षा नहीं करता तो वह लोगों में निन्दा के योग्य और पापाचारी है।

इसलिए शरणागतों की रक्षा न करने में बड़ा दोष है। एक तो यह यश और बलवीर्य के नष्ट करने वाला है, दूसरे स्वर्ग सुख को भी बिगाड़ने वाला है–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।१८।३३
आनयैनं हरिश्रेष्ठ ! दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव ! यदि वा रावणः स्वयम्।।१८।३४

अतः हे सुग्रीव ! ऋषि उपदेश के अनुसार जो कोई एक बार मेरे निकट आकर यह कहेगा कि मैं तेरा हूँ, तो मैं उसको सब प्रकार से अभय ही दूँगा, क्योंकि यह मेरा व्रत है। लाओ, इसे अभय दान दें। मेरी ओर से मेरे निकट वह रक्षा के योग्य ही है फिर चाहे वह विभीषण हो अथवा रावण ही क्यों न हो ?

राम की दृढ़ता और पवित्रता को देखकर सुग्रीव प्रसन्नचित्त होकर बोले– 'धर्मज्ञ! लोकनाथ शिखामणे! इसमें क्या आश्चर्य है जब कि आप आर्ष मार्ग पर चल रहे हो। रघुनाथ! अब इसके विषय में मेरी भी आत्मा शुद्ध हो गई है, अतः अब आप शीघ्र ही इसे मैत्री भाव में लेवें।'

विभीषण से राम की प्रतिज्ञा

राम के अभयदान देने पर विभीषण अपने चारों साथियों के साथ राम के चरणों में बैठकर कहने लगा, 'मैं रावण का छोटा भाई हूँ। उससे अपमान पाकर वहाँ ही स्त्री–पुत्रादि को छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख आप ही के आधीन है।'

विभीषण के वचनों को प्रेम से सुनकर राम बड़ी मीठी वाणी से उसे सन्तोष देकर पूछने लगे– 'विभीषण! तुम राक्षसों का बलाबल यथार्थ रूप में मुझे कहो।'

यह सुनकर विभीषण बोले–'राक्षसों में सबसे बली अवध्य तो मेरा भाई रावण ही है। उससे उतर कर उसका छोटा और मेरा बड़ा भाई इन्द्र सम बलवान् कुम्भकर्ण है। इसी प्रकार से राक्षसों का सेनापति प्रहस्त है, जिसने कैलाश युद्ध में मणिभद्र को जीता था। रावण का पुत्र इन्द्रजित् भी बड़ा बली है। महोदर, मापार्श्व, अकम्पन आदि अनेकों राक्षस योद्धा हैं।'

राक्षसों का बल सुन और अपने बल का विचार कर राम ने कहा–यदि यही है तो निश्चय रखो कि मैं इन सबको मृत्युलोक में पहुचाऊँगा अथवा पराजित करूँगा और–

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छ्रणोतु मे।।१६।१६
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबांधवम्।
अयोध्यां न प्रवक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे।।१६।२१

रावण तथा उसके बेटे और प्रहस्तादि को मारकर तुझे राजा बनाऊँगा और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि पुत्र–पौत्र तथा सम्बन्धियों सहित रावण को मारे बिना मैं कभी अयोध्या में प्रवेश न करूँगा।

राम का बल और प्रेम देखकर विभीषण ने भी प्रतिज्ञा की कि 'राम! राक्षसों के वध और लंका के जीतने में मैं भी यावज्जीवन आपकी सहायता करूँगा और रावण की सेना के भेद भी कहूँगा।' यह सुन प्रसन्न होकर राम ने विभीषण को मित्र रूप से आलिंगन करते हुए लक्ष्मण से कहा–'भाई! शीघ्र समुद्र से जल लाकर विभीषण को राक्षसों के राजा पद पर मेरी प्रसन्नता अनुसार अभिषेक कर दो।' तब राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण ने झटपट वानरों की सभा में विभीषण का राक्षस राज्य के लिए अभिषेक कर दिया।

इस प्रसंग में राम की राजनीति दर्शनीय है।

विभीषण को राजतिलक देने के बाद सब लोग एक स्थान में बैठकर विचार करने लगे कि हम किस प्रकार इस अगाध समुद्र को तरें। अपनी सम्मति देते हुए विभीषण ने कहा–

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे स्मिन् वरुणालये।
लंका नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।।१६।३६

'महाराज! चाहे कुछ कहो, परन्तु जब तक समुद्र पर पुल नहीं बांधा जायेगा तब तक लंका को प्राप्त करना असंभव है।'

राक्षस दूत पर राम की दया

इधर वानरों की महासभा हो रही थी, उधर राक्षसों ने इधर का भेद लेने के लिए शुक नाम के राक्षस को भेजा, ज्यों ही शुक समुद्र लाँघकर इस पार आया, त्यों ही वानर दूतों ने उसे पहचान कर दुखित व लज्जित करना चाहा, परन्तु जब उसने अपने आपको राक्षस दूत कहकर अपने लिए दया की प्रार्थना की, तब बिना किसी संकोच व भय के राम ने उसको छोड़ने की आज्ञा दे दी।

समुद्र पर पुल बांधना

बहुत देर तक विचार के अनन्तर जब पुल बाँधने का उपाय न मिला, तब विभीषण से कहा गया, "महाशय! तुम ही बताओ कि अब किस प्रकार क्या किया जाय ?" तब विभीषण ने कहा–'इस तट पर सागर नाम का एक वृद्ध पुरुष है। उसे पूछने पर बहुत कुछ पता लगेगा। विभीषण के कथन पर जब + सागर से पूछा गया तब पहले तो उसने कुछ न बताया परन्तु ज्यों ही राम ने उसे शस्त्र–भय दिखाया तो झटपट उसने ● गाध बताते हुए कहा कि पुल बाँधने की विधि को सबसे उत्तम नल जानता है और यह विधि इसने विश्वकर्मा से सीखी है। इतना कह सागर चला गया। फिर राम ने जब नल से पूछा तो उसने स्वीकार करते हुए कहा– 'हाँ मैं सेतु बाँधने की विधि जानता हूँ। आप आज्ञा दें कि आज से ही वानर लोग मेरी सहायता करें। मैं शीघ्र ही पुल तैयार कर दूँगा।'

+ प्रतीत होता है कि सागर नामक यह वही पुरुष था जिसने हनुमान् का लंका जाते समय सत्कार किया था और जिसका कि प्रसिद्ध नाम मैनाक है। शायद इसने लंकापति के भय से पहले पुल बाँधने के सम्बन्ध में परिचय बताने में संकोच किया हो।

● 'गाध' के अर्थ पौराणिक लोग तो यह लेते हैं कि सागर ने अपने अपरिमित जल-तल को घटाकर परिमाण वाला क्षुद्र कर लिया। परन्तु ऐसा होना असम्भव है क्योंकि सागर में न ज्ञान है न अपने को इच्छापूर्वक न्यूनाधिक करने की शक्ति है। यहाँ युक्त यह प्रतीत होता है कि उस सागर में रहने के कारण सागर पुरुष अर्थात् मैनाक नामक मनुष्य ने 'गाध' अर्थात् समुद्र का वह मार्ग जहाँ जल कम और पर्वत राशि अधिक हो बता दिया और पुल बाँधने में कुशल नल का नाम भी बतला दिया। - सम्पादक

नल की प्रार्थना पर, वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से सब वानर वीर कर्मक्षेत्र में आकर पुल बाँधने की सामग्री एकत्र करने लगे।

थोड़े ही काल में वानर वन से सहस्त्रों वृक्षों को लेकर समुद्र में फेंकने लगे और साल, अश्वकर्ण, धव, वास, कडू, अर्जुन, ताल, तिनिश, विल्व, सप्तपर्ण, कर्शीकार, अशोक, आम्र, आदिकों को मूल सहित उखाड़–२ कर पुल बाँधने के उपयोग में लाने लगे।

बस्ति प्रमाण आकार के पर्वतों को यन्त्रों से काट कर उपयुक्त स्थानों पर लगाने लगे। बडे–बडे पर्वतखण्डों समुद्र में फेंकने से बडा जलक्षोभ होता था जिससे लंका निवासियों तक धमक पहुंचती थी।

सारांश यह कि कर्मचारी वानरों की अपूर्व सहायता से नीति–निपुण नल ने बडे–२ पर्वतों, काष्ठों व तृणों से पाँच ही दिन में समुद्र पर एक बड़ा भारी दर्शनीय पुल बाँधकर तैयार कर दिया। **(नल का यह वैज्ञानिक कौशल दृष्टव्य है।)**

अयं सौम्य ! नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः।।२२।४५
एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः।।२२।४६
औरसस्तस्य पुत्रो हं सदृशो विश्वकर्मणाः।
न चाप्यहमनुक्तो वः प्रब्रूयामात्मनो गुणान्।।२२।५२
समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये।
तस्मादद्यैव बध्नंतु सेतुं वानरपुगंवाः।।२२।५३
ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वशैश्च वानराः।
कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि ।।२२।५६
बिल्वकैः सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितः।
चूतैश्चाशोक वृक्षैश्च सागरं समपूरयन्।।२२।५७
तालान्दाडिमगुलमांश्च नारिकेलविभीतकान्।
करीरान्बकुलान्निम्बान्स माजह रितस्ततः।।२२।५६
हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य ● यंत्रैः परिवहन्ति च।।२०।६०
समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतंतः समंततः।
● सूत्राण्यन्ये प्रगृहन्ति ह्यायतं शतयोजनम्।।२२।६२
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः।।२२।६३
● दण्डानन्ये प्रगृह्णंति विचिन्वंति तथापरे।।२२।६४

● वाल्मीकि के यन्त्र, सूत्र, दण्ड आदि के वर्णन से प्रतीत होता है कि यह पुल शिल्पविद्या में महानिपुण नल ने बनाया है और इसलिए इसका नाम 'नलसेतु' है। शेष प्रसिद्धियाँ कल्पना मात्र हैं क्योंकि इसमें किसी प्रकार की अघटित घटना नहीं है।
गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी नल आदि से ही सेतु बांधना लिखा है। राम-राम लिखकर छोड़ने से पत्थर तैरते रहे, यह कहीं नहीं लिखा। -सम्पादक

मेघाभैः पर्वताभैश्च तृणैः काष्ठैर्बबंधिरे।
पुष्पिताग्रैश्च तरुभिः सेतु बध्नंति वानराः।।२२।६५
स वानरवरः श्रीमान्विश्वकर्मात्मजो बली।
बबंध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा।।२२।७३
स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये।
शुशुभे सुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे।।२२।७४
दशयोजन विस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
ददृशुर्देवगंधर्वाः नलसेतुं सुदुष्करम्।।२२।७६

पुल तैयार होने पर सब समुद्र पार होने लगे। सबसे पहले गदा हाथ में लेकर विभीषण पार उतरा और उसके पीछे सुग्रीव, राम, लक्ष्मण, अंगदादि सम्पूर्ण वानर दल पार हो गया।

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनो नलसेतुना।
तीरे निविविशे राज्ञो बहुमूल फलोदके।।२२।८७

इस प्रकार नल द्वारा तैयार किये गये पुल से पार होकर वानर सेना समुद्र के परले तट पर जा ठहरी जहाँ कि बहुत जल, फल कन्द मूल थे।

किंचित् विश्राम कर राम ने युद्धोपयोगी बातें व दुर्ग रचना बताकर प्रत्येक वीर नायक को अपना–२ काम बता दिया।

लंकापति के विचार

इस प्रकार जब राम सेना सहित समुद्र के उस पार जा पहुँचे, तब आश्चर्य युक्त रावण ने भरी सभा में इसका उपाय पूछा।

उस समय राम द्वारा छोड़े हुए शुक नामक उस प्रधान पुरुष ने कहा–'महाराज, अच्छा यह है कि आप सीता को राम के अर्पण कर दो।' रावण ने शुक की बात पर किञ्चित् ध्यान न देकर कहा कि– 'शुक! तुम और सारण दोनों राम की सेना में जाओ और जाकर देखो कि उनका क्या बल है? उनका सेनापति कौन है तथा उन्होंने कैसा, किस प्रकार महासागर पर पुल बाँधा है ? रावण की आज्ञा पाकर दोनों मन्त्री वानरों के रूप में वानर सेना में जा पहुंचे, परन्तु वहाँ जाते ही पकड़े जाकर वानर योद्धाओं से पिटे और राम के सम्मुख ले जाये गये। राम के यह पूछने पर कि आप यहाँ कैसे आये, इन्होंने कहा कि हम आपके बल और कर्म को देखने आये थे। राम ने हंसकर कहा कि आपने देख लिया अथवा आवश्यक हो तो महाराज सुग्रीव कुछ और दिखायें।

शुक और सारण ज्यों–त्यों राम से जीवन दान लेकर रावण के पास पहुंचे और कहा कि "महाराज! आप सीता दे दें और युद्ध न करें।" इस पर मन्दमति रावण फिर भी यही कहने लगा कि "मैं सीता को कभी न दूँगा, चाहे मेरा सर्वनाश क्यों न हो जाय।"

राम की सेना का वर्णन

रावण के बार–२ पूछने पर सारण नाम का मन्त्री (दूत) बोला– 'महाराज! राम की सेना प्रसिद्ध वानर राज सुग्रीव के अधीन काम कर रही है और सेना के एक दल को वीर्यवान् नील लेकर क्रोध से लंका की ओर आ रहे हैं और उनके पीछे महाराज सुग्रीव से राज्यासन पर अभिषिक्त बाली पुत्र वीर अंगद के साथ पुल बाँधने वाला प्रसिद्ध गुणी व बली नल है। इसी प्रकार सेना दल को अलग–अलग सजाकर लंका विजय के लिए **१. सुरोचन २. कुमुद ३. चण्ड ४. रम्भ ५. शरभ ६. पनस ७. विनत ८. कथन ६. गवय १०. ऋक्षपति धूम्र ११. जाम्बवान् १२. रोमश १३. सनादन १४. केसरी १५. गज १६. गवाक्ष १७. मैंद १८. द्विविद** और केसरी का बड़ा पुत्र हनुमान् जिसने सबसे पहले लंका का सारा भेद और सीता का समाचार जाना था, अपने प्राणों को राम के अर्थ त्यागने की इच्छा से आ रहे हैं।'

इनके पीछे वेदवेत्ता धर्मवीर राम और युद्ध नीति तथा धर्म के तत्व को जानने वाले महाबली राम के दक्षिण बाहु भ्रातृ–भक्त लक्ष्मण अपने पूरे बल से विभीषण और सुग्रीव के साथ तुमसे युद्ध करने को आ रहे हैं।'' दूत के मुख से राम की सेना का वृत्तान्त सुनकर रावण ने एक बार फिर अपने विश्वस्त दूतों को राम की सेना में आहार, व्यवहार तथा बलाबल को देखने के निमित्त भेजा, पर जब उन्होंने भी वहाँ से दीनतापूर्वक अपना जीवन बचाकर पहले की भाँति ही राम की सेना का वृत्तान्त सुनाया, तब वास्तव में रावण को भारी चिंता हुई।

रावण की चिन्ता और छल-कपट

राम की सेना और उसके प्रबन्ध को सुनकर कभी न डरने वाला रावण बड़ा भयभीत हुआ और उसने अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए एक कपट रचा कि सीता को धोखे से अपने अधीन करने के लिए उसने नकली राम का शिर बनवाकर उसके सामने रखकर कहा– 'सीते! देख जिस राम के भरोसे तू अभिमान करती थी उसी का युद्ध में कटा हुआ यह शिर है। अब तू अपनी हठ को त्याग कर मेरी रानी बन और किसी सहायक की आशा न कर, क्योंकि इस युद्ध में राम के संगी–साथी भी मार दिये गये हैं।' सीता राम का कटा शिर देखकर और राक्षसों की माया को न जानकर पतिव्रता बाला की तरह विलाप करने लगी और बड़ी दुःखित हुई। इस माया से मोह वश हुई सीता को देखकर 'सरमा नाम की राक्षसी बोली–'देवि सीते! मत दुःखी हो। यह सब राक्षसों का झूठा जाल है, अन्यथा राम को जीतना किसकी शक्ति में है ? जो राम इतनी दूर से समुद्र पार आ गये हैं, उन्हें पराजित करना साक्षात् तो क्या स्वप्न में भी सम्भव नहीं है ? सच तो यह है कि राम के बल को सुनकर रावण अपनी रक्षा की चिन्ता में राक्षसों से विचार कर रहा है।''

इतने में 'सरमा' ने राम सेना के वीर शब्द को सुना और सीता से कहा कि ''सीते! देख श्रीराम शीघ्र ही राक्षसों का नाश कर तेरे शोकाश्रुओं को मिटायेंगे।''

'सरमा' के वचनों से सीता के मन को बड़ी शान्ति और सान्त्वना मिली, जिस पर सीता ने सरमा से राम का वृत्तान्त विस्तार से कहने की प्रार्थना की।

रावण की माता का उपदेश

इधर सरमा सीता को शान्ति और धैर्य दे रही थी, उधर राम की शक्ति, धर्म–परायणता तथा राक्षसों का अधर्म, कपट, छल आदि देखकर रावण की माता रावण को समझाने लगी– 'पुत्र! देख धर्म की सदा जय होती है। तुमने सीता हरणादि अनेक अधर्म किये हैं। अब इनका फल मिलने वाला है। इससे उचित यही है कि तुम सीता को राम के अर्पण कर उनसे क्षमा मांग लो अन्यथा तुम्हारे लिये और तुम्हारी जाति के लिए अच्छा न होगा।'

माल्यवान् का उपदेश– रावण की माता के उपदेश के पश्चात् राम का बल देखकर राक्षसों के हित के लिए रावण के नाना माल्यवान् ने कहा– 'महाराज! हमारे लिए यह युद्ध का समय नहीं है, इसलिये आप सीता को राम के अर्पण कर संधि कर लें। यदि युद्ध ही करोगे तो निश्चय जानो कि हमारा नाश होगा क्योंकि धर्म इस समय राम की ओर है, राक्षसों की ओर नहीं और जहाँ धर्म हो वहाँ जय निश्चित् होती है। आपने विषय–वश होकर धर्म का नाश किया है।' मदान्ध रावण माल्यवान् के इस हितकर वचन से रुष्ट होकर उसको बुरे–बुरे वचन कहने लगा, जिससे आगे के लिये किसी को भी अच्छी सलाह देने का साहस न हुआ।

लंका की रक्षा– माल्यवान् आदि के चुप हो जाने पर रावण ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर अपनी रक्षा का यह उपाय किया कि लंका के चारों द्वारों पर चार वीर खड़े कर दिये।

पूर्व में प्रहस्त, दक्षिण में महापार्श्व, महोदर, पश्चिम में मेघनाद, उत्तर दिशा में शुक तथा सारण और मध्यस्थ स्थान पर कई राक्षसों के साथ विरूपाक्ष को नियत कर दिया। इसी प्रकार आप उत्तर में मुख्य द्वार पर खड़ा हो गया।

लंका पर चढ़ाई

रावण के वृत्तान्त को सुनकर राम बहुत सोच विचार के बाद लंका की ओर कुछ बढ़े और सुबेल के चित्रसानु नामक पर्वत के शिखर पर रात को निवास किया। यहाँ से उठकर सुग्रीव राक्षसों के दल में जाने लगे, जिसे देखकर राम बोले– 'महाराज सुग्रीव! यह साहस अच्छा नहीं। कदाचित् कोई दुष्ट अकेला देखकर तुम पर आक्रमण कर दे तो सारा यत्न ही व्यर्थ हो जायेगा क्योंकि मैं तुम्हारे बिना सीता का क्या करूँगा और तुम्हारे बिना रावण को जीतकर क्या करूँगा ? इसलिए जो कुछ भी करो, विचार कर करो।'

यहाँ श्रीराम का अद्भुत राजनीतिक कौशल दृष्टव्य है।

इस प्रकार सुग्रीव को बैठाकर और विभीषण आदि से विचार कर नीति अनुकूल श्रीराम ने रावण के समझाने के लिए अंगद को भेजा। अंगद ने रावण की सभा में जाकर कहा– 'राक्षसराज! मैं राम का दूत और बालीपुत्र अंगद तुझे संदेश देने आया हूँ। सन्देश यह है कि राम अपनी सेना सहित समुद्र को पार कर लंका के द्वार पर आ गये हैं। वे शीघ्रता से तेरा नाश कर राज्य विभीषण को दे देंगे। यदि

तू अपना परिवार सहित कल्याण चाहता है तो सत्कारपूर्वक सीता को राम के अर्पण कर दे, अन्यथा वे युद्ध के लिए तैयार हैं।'

यह सुन दुष्ट रावण ने अंगद को पकड़ने की आज्ञा दे दी। जब बहुत से राक्षसों ने मिलकर उसको पकड़ लिया तब अवसर पाकर अपने बल का परिचय देते हुए उसने अपने आपको छुड़ाकर अपनी सेना के पड़ाव का मार्ग लिया और थोड़ी देर में वह राम की शरण में पहुँच गया।

अंगद के आने पर राम ने युद्धशास्त्र के अनुसार लंकाविजय के लिए अपनी सेना को प्रसिद्ध–२ सेनानायकों के साथ बाँटकर भिन्न–भिन्न स्थानों तथा चारों द्वारों पर आक्रमण कर दिया। पूर्व द्वार पर प्रसभ और पनस की सहायता से कुमुद, दक्षिण में तारा के पिता नीति–निपुण सुषेण, और लंका के उत्तरी द्वार पर भारी सेना और लक्ष्मण तथा सुग्रीव सहित राम बैठ गये और राम की रक्षा के लिए हाथ में गदा लेकर अन्य कई वीरों के साथ विभीषण फिरने लग गये।

युद्ध का आरम्भ

उधर रावण ने राम की सेना से लंका को चारों ओर से घिरा जानकर तथा युद्ध के बिना अपने लिए कोई उत्तम मार्ग न देख कर अपने वीरों को युद्ध करने के लिये आज्ञा दे दी। दोनों ओर से वीरों को आज्ञा मिल जाने के कारण वीरता के शब्दों से आकाश गूँज उठा और राक्षसों की राजधानी में 'जय हो महाराज सुग्रीव की, जय हो वानरराज की' ये उत्साहपूर्ण वाक्य सुनकर राक्षसों के हृदय छिन्न–भिन्न होकर उत्साहहीन हो गये।

इस संग्राम में अंगद का मेघनाद, प्रजंघ का सम्पाति, हनुमान् का जम्बुमाली, विभीषण का शत्रुघ्न, तपन का गज, निकुम्भ का महातेजस्वी नील, प्रघस का सुग्रीव, विरूपाक्ष का लक्ष्मण, अग्निकेतु आदि का राम, व्रजमुष्टि का मयन्द, द्विविद का अशनिप्रभ, विद्युन्माली का धर्मपुत्र सुषेण के साथ द्वन्द युद्ध हुआ और युद्ध होते–२ सूर्य अस्त हो गया।

राम लक्ष्मण की मूर्छा

दूसरे दिन युद्ध करते–२ इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण के ऐसा वाण मारा कि दोनों भाई घोर मूर्छा में हो गये। राक्षसों ने उनके विषय में कहा कि राम–लक्ष्मण दोनों मारे गये हैं। उसी समय रावण ने सीता को विमान पर बैठाकर दिखाया कि यह देखो! तुम्हारे राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर पड़े हैं, तब सीता उनको मरा समझकर बड़ा विलाप करने लगी। सीता को व्याकुल देखकर त्रिजटा नामक राक्षसी कहने लगी–

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटा ब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि! भर्ता यं तव जीवति।।४८।२२
अनृतं नोक्त पूर्वं मे न च वक्ष्यामि मैथिलि।
चारित्र सुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम।।४८।२६

त्यज शोकं च दुःख च मोहं च जनकात्मजे।
राम लक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यजीवितुम्।।४८।३३

'देवि! विषाद मत करो, तुम्हारा पति जीता है क्योंकि उनके शरीर और मुख से मृत पुरुषों के चिन्ह नहीं दीखते। मैं कभी झूँठ नहीं बोलती, कारण कि तुम अपने उत्तम चरित्र और शील स्वभाव से मेरे अन्दर प्रविष्ट हो चुकी हो। इसलिए तुम शोक, दुःख और मोह को छोड़ दो। तुम्हारा पति और देवर राक्षसों से मर नहीं सकते। अब तुम अशोक वाटिका में चलो।' इस प्रकार आश्वासित सीता अशोक वाटिका में चली गई।

इससे प्रतीत होता है कि राक्षसों में कई एक स्त्री-पुरुष बड़े धर्मात्मा थे जिसके कारण वे राजा के विरोधी का भी सज्जनवत् मान तथा सहायता करते थे, जैसाकि त्रिजटा, सरमा, माल्यवान् और विभीषण आदि के वर्ताव बताते हैं।

राम का विलाप

इधर सब वानर सुग्रीव सहित इनकी मूर्छा का उपाय सोच ही रहे थे कि अकस्मात् राम की मूर्छा खुल गई। जब इन्होंने रुधिर से लिप्तांग मूर्छित पड़े लक्ष्मण को देखा तो विलाप करने लग गये कि यदि लक्ष्मण वीर इस दशा में रहे, तो मैं सीता को प्राप्त करके क्या करूँगा? सीता सी स्त्री तो मैं और भी पा सकता हूं, परन्तु लक्ष्मण समान सच्चा सहकारी भ्राता कहाँ पाऊँगा? यदि लक्ष्मण वीर न उठे तो मैं अवश्य इस वानर समूह के सामने ही प्राण त्याग दूँगा।

भाई लक्ष्मण के बिना मैं माता कौशल्या, कैकेयी, तथा पुत्र दर्शन की लालसा रखती हुई सुमित्रा को क्या कहूँगा और भाई भरत, शत्रुघ्न को क्या उत्तर दूँगा ? यदि मैंने कहकर भी विभीषण का राज्याभिषेक न किया, तो निश्चय ही वह मुझे मिथ्यावादी समझ कर धिक्कारेंगे।

मित्रवर विभीषण! आपने मेरे बहुत से कार्य किये हैं। अब आप इस कार्य को भी मित्र कार्य समझ कर कीजिये।

राम–लक्ष्मण की इस दशा को देखकर विभीषण सेना का शासन किसी और को सौंपकर झट वहाँ पहुंचे, जहाँ राम–लक्ष्मण पड़े थे।

विभीषण का विलाप : संजीवनी की खोज

विभीषण तो इधर आ गये, उधर सुग्रीव सेना को ढीला सा देखकर अंगद से बोले, वीर! यह शिथिलता अकारण नहीं है। इसमें कोई बड़ा कारण है, जो वानर इधर–उधर दौड़ रहे हैं। इतने में विभीषण का इशारा पाकर सुग्रीव आदि भी राम के पास आ गये और क्या देखते हैं कि विभीषण

राम–लक्ष्मण के नेत्र आदि को शीतल जल से पोंछ रहे हैं, तथा विलाप कर रहे हैं कि देखो जिनके बल पर मैंने प्रतिष्ठा की कामना की थी वही आज मृत्यु–शैया पर पड़े हैं। अतः आज मैं जीता हुआ भी मृतकों के समान हूँ तथा मेरा राज्य प्राप्ति का मनोरथ भी नष्ट हो गया है और आज रावण की सब कामनायें भी पूरी हो गई हैं।

विभीषण को इस दशा में देखकर शान्ति व आश्वासन देते हुए महाराज सुग्रीव बोले– 'हे धर्म के जानने वाले! निःसन्देह तुम लंका के राज्य को प्राप्त करोगे और रावण पुत्रादि के साथ अपनी कामना पूर्ण न कर सकेगा, क्योंकि राम–लक्ष्मण मोह त्याग कर रावण को परिवार तथा सेना सहित वध करेंगे।'

सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह।।५०।२३
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ।।५०।२४
अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सह बांधवम्।
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम्।।५०।२५
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ।।५०।२८
तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम्।
जवेन वानराः शीघ्रं सम्पातिपनसादयः।।५०।२६
हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम्।।५०।३०
चंद्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे।।५०।३१
अयं वायुसुतो राजन् ! हनुमांस्तत्र गच्छतु।।५०।३२

विभीषण को आश्वासन देकर सुग्रीव सुषेण से बोले–'महाशय! इन दोनों मूर्छित भाइयों को उठाकर शीघ्र ही किष्किन्धा ले जाओ। मैं जल्दी से परिवार सहित रावण को मार जानकी सहित आता हूँ। तुम इनको सचेत करने के लिए विद्वानों से निर्मित्त संजीवनी और विशल्या औषधि लाकर विचार तथा युक्ति से चिकित्सा करो। वह औषधि सागर में मिलेगी जहाँ कि चन्द्र और द्रोण नामक पर्वत हैं। वह औषधि देवासुर युद्ध में भी बृहस्पति आचार्य ने सेवन कराई थी।

इस औषधि को लेने के लिए सम्पाति और पनस आदि वानर भेजो तथा वायुसुत हनुमान् को भी भेजो, क्योंकि वानर लोग इन औषधियों को अच्छी प्रकार जानते हैं।''

गरुड़ का आना तथा लक्ष्मण की चेतना

इतने में विनतासुत गरुड़ वहाँ आये और उन्होंने राम–लक्ष्मण को उठाकर कुछ औषधि देकर सावधान किया, जिससे उनका तेज, वीर्य एवं बल पूर्व से भी अधिक हो गया।

स्वस्थ होकर राम ने कहा– महाशय! आपकी कृपा से हम दोनों भाई रावण पुत्र द्वारा डाली हुई विपद से पार हो गये हैं।

आज मेरा चित्त वैसा ही प्रसन्न हुआ जैसा कि पिता दशरथ या पितामह अज के दर्शन से होता था।

राम की पितृ-भक्ति और कृतज्ञता, दोनों सद्गुणों दोनों की गहराई इन शब्दों में देखिये।
- सम्पादक

कहिये, आप रूप सम्पन्न, दिव्यमाला, सुन्दर वस्त्र तथा भूषण धारण किये कौन हैं।

गरुड़ ने कहा– काकुत्स्थ! मैं आपका हितैषी हूँ। मेरा नाम गरुड़ है और मैं आपकी सहायतार्थ यहाँ आया हूँ।

आपका राक्षसों से युद्ध है। राक्षस बड़े कुटिल तथा मायावी होते हैं। आप उनसे सदा सावधान रहना।

ऐसा कहकर वह अपने स्थान को चले गये राम–लक्ष्मण के पूर्ववत् स्वस्थ होने से सारी सेना में आनन्द फैल गया–

ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चंद्रसमप्रभे।।५०।३८
तावुत्थाप्य महातेजा गरुड़ो वासवोपमौ।
उभौ च सस्वजे ह्रष्टो रामश्चैनमुवाच हि।।५०।४१
भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत्।
उपायेन व्यतिक्रांतौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ।।५०।४२
यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम्।
तथा भवन्तमासाद्य ह्रदयं मे प्रसीदति।।५०।४३
को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्त्रगनुलेपनः।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः।।५०।४४
तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः।।५०।४५
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणी बहिश्चरः।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयो साहायकारणात्।।५०।४६

राक्षसों में शोक और रावण का क्रोध

राम और लक्ष्मण की स्वस्थता से ज्यों ही वानर सेना में हर्ष का प्रकाश हुआ त्यों ही राक्षस दल में शोक छा गया और राक्षसपति रावण ने क्रुद्ध होकर अपनी सेना के बड़े–बड़े वीर योद्धा राम आदि का वध करने के लिए भेजे जिनमें धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त आदि बड़े–२ प्रसिद्ध योद्धा थे।

यद्यपि इन्हें रावण ने बहुतेरा उत्साह और धैर्य दिया परन्तु वे सब वीर अंगद, महाबली नील, पवनकुमार हनुमान् आदि के हाथों से अपने–अपने क्षेत्रों में मारे गये।

प्रहस्त आदि का वानरों द्वारा वध सुन रावण बड़े क्रोध से बोला– 'आज मैं अवश्य अपने शत्रुओं के नाश और अपनी जय के लिए जाऊँगा और राम–लक्ष्मण सहित वानर सेना को अपने वाणों से नष्ट करूँगा।' ऐसा कहकर रावण युद्ध–भूमि में गया और वहाँ जाकर अनेक विध अपशब्द बोलने लगा।

रावण को देखकर राम विभीषण से बोले– 'आज का दिन शुभ है जो पापात्मा रावण मेरी दृष्टि में पड़ा है। आज मैं सीता–हरण से उत्पन्न हुए अपने क्रोध को इस पर निकालूँगा।' ऐसा कहकर राम धनुष बाण लेकर आगे बढ़ने लगे। यह देखकर लक्ष्मण राम से प्रार्थना करने लगे कि 'हे आर्य! यद्यपि आप अकेले ही इस दुरात्मा के वध के लिए समर्थ हैं, तथापि यदि आज्ञा दें, तो मैं इसका मान मर्दन करूँ।' लक्ष्मण का भाव सुनकर राम बोले–

रावणो हि महावीर्यो रणे द्भुद् पराक्रमः।
त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः।।५६।४६
तस्य छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।
चक्षुषा धनुषा त्मानं गोपायस्व समाहितः।।५६।५०

'वीर! तुम अन्य क्षेत्रों के युद्ध में कौशल प्राप्त करो। रावण बड़े वीर्य वाला तथा युद्ध विद्या में अद्भुत पराक्रम रखता है, इसका क्रोध बड़ों–बड़ों से भी दुःसह है।''

'तुम इसके छिद्रों (प्रहार स्थानों) को देखो और अपने भी निर्बल स्थानों को जाँचो। विचार दृष्टि और शस्त्रादि से अपनी रक्षा करो।' यह सुनकर लक्ष्मण ने राम की बुद्धिमत्ता के लिए उनको प्रणाम किया।

कुम्भकर्ण-रावण सम्वाद

रावण अभी राम की ओर आ ही रहा था, कि उसे मार्ग में हनुमान् आदि ने घेर लिया और युद्ध करने के लिए ललकारा। इनसे थोड़ी देर तक युद्ध करने और राम की महिमा सुनने से इसे बड़ा भय हुआ जिससे डर कर रावण लंकापुरी चला गया और वहाँ जाकर अपनी पूर्व अवस्था के किये कर्मों के फल को देखकर मन ही मन में पश्चात्ताप तथा विचार करने लगा। कुछ विचार के बाद उसने विचारा कि यदि कुम्भकर्ण मेरी सहायता करे तो मेरा शोक नष्ट हो सकता है। यह विचार कर उसने यूपाक्ष

नामक मन्त्री को कुम्भकर्ण को बुलाने के लिए भेजा। कुम्भकर्ण ने आकर पूछा– 'राजन्! किसलिए मुझे बुलाया है ? क्या तुमको किसी का भय है ?'

रावण बोला–'भाई ! आप जानते ही हैं कि दशरथ के बेटे राम–लक्ष्मण वानर लोगों की सहायता से समुद्र पर पुल बांधकर तथा सहस्त्रों योद्धाओं सहित लंका में आये हैं और राक्षसों का नाश कर रहे हैं। अतः भ्रातृ–स्नेह से मैं पहली बार आपसे कहता हूँ, कि आप राम का शीघ्र नाश करें, आपके समान इनमें कोई बली नहीं है।' रावण का रोना सुनकर कुम्भकर्ण बोला–

दृष्टो दोषो हि यो स्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये।
हितेष्वनभियुक्तेन सो यमासादितस्त्वया।।६३।२
शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः।।६३।३
प्रथमं वै महाराज! कृत्यमेतदचिंतितम्।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः।।६३।४
यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः।
पूर्वचोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ।।६३।५
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत्।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव।।६३।६
यथागमं च यो राजा समयं च चिकीर्षति।
बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति।।६३।८
त्रिषुचैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम्।।६३।१०
काले धर्मार्थ कामान्यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह।
निषेवेतात्मवांल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात्।।६३।१२
हितानुबन्धमालोक्य कुर्यात्कार्यमिहात्मनः।
राजा सहार्थतत्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः।।६३।१३

"देखा! वही हुआ न जो हमने विचारा था, परन्तु तुमने अनिष्ट न छोड़ा। स्मरण रख, अब तुझे शीघ्र ही इस पाप कर्म का फल मिलेगा जिससे तुझे नरकपात (घोर कष्ट) होगा।"

'महाराज! पहले आपने यह नहीं विचारा और न बल के अभिमान से इसके फल की ओर ध्यान ही दिया। जो पूर्व करने योग्य को पीछे पर छोड़ता है और पीछे करने योग्य को पहले कर लेता है वह पुरुष नीति–अनीति को नहीं जानता।'

'देशकाल का विचार न करके जो उलटे कार्य किये जाते हैं वह कुपात्र में दिये दान की भाँति दुष्फल होते हैं। जो राजा शास्त्र की आज्ञा से देश काल के अनुसार मन्त्रियों द्वारा विचार कर कार्य

करता है उसके हितैषी बहुत होते हैं। ● जो धर्म, अर्थ और काम को विचार कर इनका पालन नहीं करता उस राजा की जीवन व्यर्थ है।''

'जो मन्त्रियों से विचार कर धर्मपूर्वक कार्य करता है वह आत्मवेत्ता कभी व्यसन को प्राप्त नहीं होता।

इसी भाँति जो राजा बुद्धिमान तत्वज्ञ मन्त्रियों के साथ विचार कर कार्य करता है वह उत्तम राजा है।'

'जो शास्त्रों के तत्व को न जानकर केवल पशु–बुद्धि से या बहुत बोलने से मन्त्रिमण्डल में आ गये हैं तथा जो शास्त्रशून्य हैं, उन पुरुषों का कभी मान नहीं करना चाहिए, वरन् उन्हें विचार करके उनके अधिकार से अलग कर देना चाहिए।'

'नीति शून्य मन्त्री गण उलटे विचारों से अपने स्वामी को नष्ट कर देते हैं। यद्यपि ऐसे मन्त्रियों को मूर्ख राजा अपना मित्र समझता है परन्तु व्यवहार में यह शत्रु सिद्ध होते हैं।' 'जो शत्रु का अपमान कर अपनी आत्मा की रक्षा नहीं करता वह अनर्थों को प्राप्त होता है और नियत स्थानों से गिर जाता है। तुमको मेरे छोटे भाई विभीषण तथा मन्दोदरी ने हितकर वाक्य कहे, वह तुमने नहीं माने, अतः अब आप जो चाहें करें।'

- **यहाँ पात्रापात्र का विचार करके दान देने की बात द्रष्टव्य है।**

कुम्भकर्ण की उपरोक्त नीति और विद्या को सुनकर यह कहना अप्रासंगिक है कि वह ६मास सोता था, विषयी और लम्पट था। हाँ प्रतीत होता है कि उसने रावण की ओर से उदासीनता का अवलम्बन किया था, क्योंकि वह सीताहरण को अच्छा नहीं समझता था। रावण की ओर से यह उदासीनता ही वह निद्रा थी जिसका भंग रावण ने कराया। जैसा कि इनकी बातचीत से सिद्ध है। - सम्पादक

कुम्भकर्ण के इन वचनों को सुनकर रावण बड़े क्रोध से बोला–'क्या तू मुझे माननीय गुरुओं की भाँति शिक्षा देना चाहता है ? इन व्यर्थ बातों से क्या ? जो कुछ तुम चाहते हो वह करो। भ्रम से मोह से, अथवा बल वीर्य से जो हुआ सो हुआ अब उसकी कथा व्यर्थ है।'

'इस समय तो जो युक्त है, वह विचारो और मेरी अनीति से उपजे दुःख को अपने विक्रम से दूर करो, क्योंकि वही सुहृद् व सम्बन्धी है जो विपत्ति में सहायता करे।'

यह सुनकर कुम्भकर्ण बोला–'राक्षसराज ! आप संताप न करें। इस समय स्नेही तथा बन्धु का जो कर्तव्य है, उसका मैं पालन करूँगा और आज सब लोग मेरे हाथों से नष्ट होते हुए वानरों को देखेंगे।'

कुम्भकर्ण का युद्ध एवं मरण

इस प्रकार रावण को उत्साह देकर कुम्भकर्ण, द्विजिह्व, संह्लादी, वितर्दन आदि कई सहायकों को साथ लेकर राम के वध के लिए लंका से निकला। सबसे प्रथम उसका सामना कई योद्धा वानरों ने

किया। इस संग्राम में कई बार वानर पीछे हटे तो कई बार राक्षस। अन्ततः वानरों को उलांघ कर वह वानर मुख्य हनुमान् तक पहुंचा। वहाँ भी कुछ देर बल परिचय होने के पीछे वह बड़े मद से रघुकुल तिलक राम के सामने जा डटा।

राम को देखकर कुम्भकर्ण नाना प्रकार की हँसी करने लगा और कुछ देर के बाद बड़े अभिमान से बोला–

कुम्भकर्णो महातेजो राघवं वाक्यमब्रवीत्।
नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च।।६५।१४६
न बाली न च मारीच कुम्भकर्ण समागतः।।६५।१४७
पश्य मे मुग्दरं भीमं सर्व कालायसं महत्।।६५।१४८

"राम! देखो विचार कर मेरे सामने शस्त्र उठाना। क्योंकि मैं विराध नहीं हूँ और न ही मुझे कबन्ध या खर समझना। मैं बाली तथा मारीच भी नहीं हूँ अपितु कुम्भकर्ण हूँ। मेरे भयानक मुग्दर को तो देखो, जिससे मैंने देव तथा दानवों को जीता है।"

इस प्रकार मूढ़ राक्षस बड़–२ कर ही रहा था कि राम ने ललकार कर ऐसे वाण मारे कि वह झट भूमि पर गिर पड़ा और गिरते ही जब राम का दूसरा वाण उसकी ग्रीवा में आकर लगा तो तत्क्षण उसका शिर कटकर देह से अलग हो गया।

कुम्भकर्ण के गिरते और मरते ही सारे राक्षस दल में कोलाहल मच गया और बड़ी घबराहट से दूत रावण को यह समाचार देने दौड़े। रावण ने कुम्भकर्ण का मरण सुन बड़ा विलाप किया, परन्तु मन्त्रिमण्डल के सुझाने पर नीति शास्त्र से बाधित होकर वह फिर युद्ध में लग गया।

राक्षस वीरों का नाश

कुम्भकर्ण की मृत्यु सुनकर रावण के पुत्र शिविर, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व आदि अपनी–अपनी सेना, शस्त्र साधनों को लेकर राम को जीतने तथा मारने के लिए निकले, परन्तु ज्यों ही महाबली हनुमान् तथा सेनापति नील से उनका संग्राम हुआ, त्यों ही उन्होंने अपने सारे दल–बल के साथ न केवल रण–क्षेत्र ही छोड़ दिया बल्कि सबने एक दूसरे से पूर्व अपने प्राण भी छोड़ दिये।

इन्द्रजित् का घोर कर्म

इनका वध सुनकर रावण का बड़ा प्रसिद्ध योद्धा तथा पुत्र इन्द्रजित् वानर वीरों के नाश के लिए आगे निकला और निकलते ही उसने वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। जब वानरों ने भी प्रहार करने आरम्भ किये तब उन्हें रोकते हुए उसने ऐसे अस्त्र–शस्त्र छोड़े, जिससे अनेकों वानर और लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देख चिन्तातुर होकर वानर उनकी मूर्छा दूर करने का उपाय सोचने लगे। अपनी–२ बारी से सम्मति देते हुए विभीषण ने कहा–

विशल्यौ कुरु चाप्येतौ साहितौ राम लक्ष्मणौ। ।७४।२८
हिमवंतं नगश्रेष्ठं हनुमन्! गन्तुमर्हसि। ।७४।२६
सर्वौषधियुतं वीर! द्रक्ष्यस्यौषधिपर्वतम्। ।७४।३१
मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि।
सुवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधीम्। ।७४।३३
ताः सर्वा हनुमन्! गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।
आश्वास्य हरीन्प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज। ।७४।३४

ऋषभ हिमवान् पर्वत पर बहुत सी उपयोगी औषधियाँ हैं, उनमें से + मृत संजीवनी+विशल्यकरणी+सुवर्णकरणी और सन्धानी औषधि है। इन सबको वीर हनुमान् जानते हैं और शीघ्र ला भी सकते हैं। अतः इनसे ही उनको लाने की प्रार्थना करनी चाहिए, उन औषधियों से वानरों की मूर्छा शस्त्र–विष और अस्थि–भंग आदि दूर करना चाहिए। विभीषण का वचन सुनकर जाम्बवान् आदि वृद्धों ने हनुमान् को औषधि लाने के लिए कहा।

- **मृत संजीवनी- मूर्छितों को सचेत करने वाली।**
  विशल्यकरणी-शस्त्र-अस्त्र आदि के विष को निकालने वाली।
  सुवर्णकरणी-रोगी पुरुषों की देह को सुवर्ण समान उज्ज्वल करने वाली।
  सन्धानी- कटे हुए अंग, हड्डी अथवा शिर-धड़ को जोड़ देने वाली औषधि।
  नोट- लोक में यह कथा निराधार ही प्रसिद्ध है कि हनुमान् अयोध्या के मार्ग से पर्वत सहित बूटी लेकर आये तब भरत ने वाण मारा और राम के विषय में वार्ता की।

- सम्पादक

जाम्बवान् आदि की आज्ञा मानकर विद्वान हनुमान् विमान द्वारा उस पर्वत पर गये और वहाँ से वे औषधियाँ लेकर शीघ्र ही वानर सेना में आ गये जिसे देख सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। हनुमान् ने सबको यथा योग्य प्रणाम किया और उनसे आशीर्वादादि प्राप्त किया। तदनन्तर यह औषधियाँ राम–लक्ष्मण और अन्य वानरों को सुंघाई तथा लगाई गईं तो झटपट राम–लक्ष्मण व अन्य सब वानर वीर सचेत और नीरोग हो गये अनेकों वानर तो तभी युद्ध के लिए भी तैयार हो गये–

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम्।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरि प्रवीराः। ।७४।७३
सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ताः निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः। ।७४।७४

विशल्यौ च महात्मानौ तावुभौ राम लक्ष्मणौ।
असंभ्रान्तौ जगृतुस्ते उभे धनुषी वरे। ।७५।२४

ततो विस्फारयामास रामश्च धनुरुत्तमम्।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः।।७५।३५

इसके पश्चात् फिर राक्षस और वानरों का घोर युद्ध आरम्भ हो गया। अंगद कम्पन से तथा सुग्रीव कुम्भ से लड़ने लगे। इसी प्रकार अन्य वीरों के भी द्वन्द्व युद्ध होने लगे।

इन्द्रजित की राक्षसी माया

इस युद्ध में भी जब राक्षसों के बड़े–२ योद्धा मारे गये, तब रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने शत्रु दल को निरुत्साहित करने के लिये राक्षसी माया रची। एक माया की सीता बनाकर वह रणभूमि में ले आया और वानर वीर हनुमान् के सामने उसका वध करने लगा। उसका तात्पर्य यह था कि हनुमान् व राम आदि सब पीछे हट जायें कि अब सब युद्ध व्यर्थ है, क्योंकि जिसके लिए युद्ध था वह सीता ही नष्ट हो गई। हुआ भी ऐसा ही। जब वह सीता को केशों से पकड़ कर रणक्षेत्र में लेकर आया तब हनुमान बोले– 'हे अनार्य दुर्वृत! धिक्कार है तुझको जो निरपराध, विपद्ग्रस्त, गृह, राज्य तथा पतिहस्त से वियुक्त सीता देवी को निर्दय होकर मारना चाहता है। अरे नीच! क्या तुझे इस घृणा के योग्य कर्म से घृणा नहीं होती। पापी! स्मरण रख कि यदि तू इस कर्म से न हटेगा तो शीघ्र ही तेरा नाश होगा।

धिक् त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुप्त पापपराक्रम।।८१।१६
अनार्यस्येदृशं कर्मघृणास्ते नास्ति निर्घण।
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली।।८१।२०
किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय।
सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथंचन।।८१।२१

परन्तु यह सब कुछ न सुनते हुए राक्षस ने यह कहा कि "हनुमान्! सुग्रीव, राम और तुम जिसके लिए आये हो, उस सीता का आज तुम्हारे सामने वध करता हूँ।" यह कहकर उसने तीक्ष्ण खड्ग से यज्ञोपवीत मार्ग अर्थात् हृदय के स्थान से माया की बनी सीता को काट डाला जिसे देख व सुनकर राक्षस दल में हर्ष नाद और वानर दल में शोक छा गया।

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः।
तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः।।८१।२६
तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम्।।८१।२६
यज्ञोपीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनीम्।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रिय दर्शना।।८१।३०

सीता का वध देखकर यद्यपि हनुमान् आदि का उत्साह नष्ट हो गया था, परन्तु राक्षसों का उद्यम मिटाने के लिए उन्होंने बड़ी वीरता से युद्ध आरम्भ कर दिया, जिसे सुनकर राम ने जाम्बवान् से कहा– 'सौम्य! शीघ्र जाकर हनुमान् आदि की सहायता करो, क्योंकि युद्ध में राक्षसों का घोर शब्द बढ़ा हुआ दिखाई देता है।'

राम की व्याकुलता और विभीषण की सान्त्वना

थोड़ी देर के पश्चात् राम को हनुमान् से यह सूचना मिली कि इन्द्रजित् ने मेरे सामने सीता का वध किया है। यह सुनकर राम बड़े दुःखी हुए और नाना प्रकार से अपने कर्मों तथा दिनों की निन्दा करने लगे।

पहले तो लक्ष्मण ने राम को आश्वासन दिया, जब उनको सन्तोष न हुआ तब राक्षसी माया को जानकर विभीषण ने कहा– 'मनुजेन्द्र! दुःखित अवस्था में हनुमान् ने जो आपको सूचना दी है वह ठीक नहीं है क्योंकि दुष्ट रावण के अभिप्राय को मैं अच्छी तरह जानता हूँ, विशेष कर सीता के सम्बन्ध में। वह तो कभी भी सीता को देने व छोड़ने के लिए तैयार नहीं होगा। यह तो वानरों को ठगने के लिए रावण के पुत्र ने माया की सीता बनाकर वध की है।'

यदि आपको सन्देह है तो मैं उस स्थान पर ले जाकर आपकी सन्देह–निवृत्ति करा सकता हूँ जहाँ यह माया रची गई है।' विभीषण के बलपूर्वक इस कथन से राम को बड़ी शांति मिली और उन्हें सन्तोष हो गया।

इन्द्रजित् और विभीषण की बातचीत

राम के सन्तुष्ट होने पर विभीषणादि ने कहा– 'राम! आप आज्ञा करें कि इन्द्रजीत् को मारा जाय। इस पर राम ने लक्ष्मण को सेना सहित चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी, जिसे पाकर विभीषण की सहायतार्थ लक्ष्मण वहाँ पहुंचे। विभीषण को देखकर इन्द्रजित् ने बड़े क्रोध से अपने चाचा से कहा–

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः।।८७।१३
नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वंवेत्सि महदन्तरम्।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः।।८७।१४
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणो पि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः।।८७।१५
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात्तैरेव हन्यते।।८७।१६

"राक्षस! तुमने इस कुल में जन्म लेकर और पलकर मेरे पिता का भाई होते हुए भी मुझसे क्यों द्रोह किया है ? क्या तुम्हें जाति–प्रेम, सुहृदता, भ्रातृ–स्नेह तथा कुल धर्म प्रेरणा नहीं करता ? हे कुबुद्धे! तू साधु पुरुषों से निन्दनीय है जो अपने कुल को छोड़कर दूसरों की भृत्यता को प्राप्त हुआ।"

"मूर्ख! तू बुद्धि की शिथिलता से इस अन्तर को नहीं जानता जो अपने बांधवों में बसने और नीचों के आश्रय में है। 'परपुरुष' यदि गुणवान् हो और 'अपना' गुणहीन हो तो भी अपना अच्छा है क्योंकि अन्त को अपना–२ और पराया–पराया ही होता है। जो अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष में मिलता है, वह अपने पक्ष के क्षय होने पर दूसरे पक्ष वालों से मारा जाता है।"

इन्द्रजीत का वचन सुनकर विभीषण बोला, राक्षसेन्द्रसुत! तू अपनी क्रूरता को त्याग कर जो बात है सो सुन–

धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा।।८७।२१
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शनम्।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा।।८७।२२
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदामति शंका च त्रयो दोषा क्षयावहाः।।८७।२३

"यद्यपि मैं राक्षसकुल में पैदा हुआ हूँ , परन्तु मुझमें राक्षसी भाव नहीं है इसलिए मैं अधर्मी भाई के साथ नहीं रहा और न ही किसी को अधर्मियों के साथ रहना चाहिए। धर्म से पतित, पापी पुरुष को त्यागकर मनुष्य इसी प्रकार सुखी होता है जैसा कि सर्प को हाथ से त्यागकर होता है। परधन को हरने वाले, पर–स्त्री–लम्पट तथा दुष्ट–पुरुष को उसी प्रकार त्याग देना चाहिए, जैसे जलते हुए घर को, क्योंकि पराये धन का हरना, परस्त्री की इच्छा, मित्रों पर अति शंका यह तीनों दोष मनुष्य का नाश करने वाले हैं।

इस प्रकार की बातचीत के बाद इन्द्रजित् का लक्ष्मण से युद्ध आरम्भ हो गया। बहुत देर तक तो इन्द्रजित् वीरता, से लड़ता रहा, परन्तु अन्त में लक्ष्मण के तीरों के सामने अपने को चिरस्थायी न रख सका और अन्त में रावण का यह मान्य पुत्र लक्ष्मण के हाथों से रणभूमि में मारा गया। उसका मरना शीघ्र ही विभीषण ने राम को आकर सुनाया जिसे सुनकर राम बड़े प्रसन्न होकर लक्ष्मण की बड़ाई करते हुए बोले–"सचमुच आज रावण का दक्षिण बाहु कट गया है और लक्ष्मण के होते हुए अब सीता प्राप्त करना हमें कोई कठिन नहीं है।" इसके बाद जब लक्ष्मण युद्ध जीतकर राम के पास आये तब राम ने उन्हें आलिंगन करते हुए उनके शरीर में शस्त्रों के अनेकों घाव देखकर राज्य चिकित्सक सुषेण से कहा–महाशय जिस प्रकार महाप्राज्ञ लक्ष्मण घाव रहित तथा स्वस्थ हो जायें वैसे इनकी चिकित्सा करो–

स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत्।।६१।२०

विशल्यो यं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथां त्वं समुपाचर।।६१।२१

रावण का सीता वध करने का संकल्प

अभिमानी रावण को जब उसके मन्त्रियों ने उसके पुत्र का मृत्यु समाचार दिया, तब वह बड़ा चिन्ताग्रस्त होकर पहले तो अपने पुत्र के गुणानुवाद गाने लगा, पश्चात् इस सारे नाश का कारण सीता को समझकर उसके वध करने का संकल्प किया और खड्ग लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ सती सीता बैठी थी–

समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हंतुं व्यवस्यतः।।६२।३४
संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली।।६२।४०

इतने में उसके क्रूर रूप और क्रूर कर्म करने के संकल्प को देखकर उसका बड़ा नीति–निपुण और पवित्र आचारवान् सुपार्श्व नाम का मंत्री उसको हटाने के लिए वहाँ गया और जाकर बोला–

वेद विद्याव्रत स्नातः स्वकर्म निरतस्तथा।
स्त्रिय कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर।।६२।६४
शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम्।।६२।६७

'राक्षसेश्वर! आप वीर पुरुष, वेद विद्या के धनी, व्रत स्नातक होकर भी स्त्री–वध करने का क्यों विचार रखते हैं ?' आप शूरवीर, रथी, खड्गी और बुद्धिमान होकर भी फिर क्यों नहीं दशरथ के पुत्र राम को मारकर सीता प्राप्ति की इच्छा करते।'

राम का युद्ध कौशल

सुपार्श्व के समझाने पर रावण सीता वध का संकल्प छोड़ कर युद्धार्थ विचार करने लगा और मन्त्रियों की सलाह से उसने राम से घोर संग्राम आरम्भ कर दिया। राम की अद्‌भुत् शस्त्र विद्या तथा युद्ध कौशल से जिसने थोड़े समय में ही शस्त्रों–अस्त्रों से राक्षसों की सेना को छिन्न–भिन्न कर दिया। चारों ओर से यह शब्द आने लगा कि मुझे राम मार गया, मुझे राम काट गया। यह हाथी और घुड़सवार राम के मारे हुए पड़े हैं। यह पैदल सेना भी राम से आहत है। इस पर आश्चर्य यह है कि राम सबको देखते थे किन्तु राम को कोई भी न देखता था।

यह तो हुई युद्ध–भूमि व योद्धाओं की दशा। उधर राक्षसियों में यह वाणी उठने लगी कि मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरा भर्त्ता इस युद्ध में शूरवीर राम ने मार दिया। वास्तव में राम को कोई जीत नहीं

सकता—

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम्।
बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम्।।६३।२२
एष हन्ति गजनीकमेष हन्ति महारथान्।
एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन्वाजिभिः सहः।।६३।२४
मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्त्ता रणे हतः।
इत्येष श्रूयते शब्दो राक्षसानां कुले कुले।।६४।२२

राम का भ्रातृ स्नेह

राम जब इस प्रकार राक्षसों का नाश कर रहे थे कि अवसर पाकर रावण ने लक्ष्मण के ऐसी बर्छी मारी कि जिससे मूर्छित होकर वह गिर पड़े। लक्ष्मण के गिरने का समाचार पाकर राम झट वहाँ पहुंचे और उन्हें उठाकर सुषेण के पास चिकित्सा के लिए ले आये और बोले— 'सुषेण! रावण के प्रहार से गिरे हुए यह लक्ष्मण पड़े हैं। मुझे इनको इस दशा में देखकर बड़ा कष्ट होता है। इनके बिना मुझे जय, राज्य तथा सीता का प्राप्त करना सब व्यर्थ है, आप शीघ्र इनको स्वस्थ कीजिये।''

'भाई लक्ष्मण के बिना मैं माता कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा को क्या कहूंगा, माता सुमित्रा का उलाहना कैसे सहन कर सकूँगा ? किस प्रकार मैं भाई भरत और शत्रुघ्न से कहूंगा कि मैं लक्ष्मण के साथ गया था और अब अकेला आ गया हूँ। मेरा यहाँ मरना अच्छा है किन्तु भाइयों की निन्दा अच्छी नहीं। सुषेण! न मालूम मैंने किस पूर्व जन्म में क्या दुष्कर्म किया है जिसके फलस्वरूप मेरा धार्मिक भ्राता मेरे सामने ही मर रहा है।''

किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि।
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः।।१०१।१६

राम के कथन के बाद सुषेण ने संजीवनी सुंघा कर और विशल्यकरणी से घावों को अच्छा कर शीघ्र ही लक्ष्मण को युद्ध करने के योग्य कर दिया, जिसे देखकर राम बड़े प्रसन्न हुए और फिर युद्ध करने लगे।

रावण का वध और दाह संस्कार

जब राम और रावण का युद्ध होते हुए कुछ देर हो गई तब मातली ने राम को सुझाया कि आप इसके हृदय में ब्रह्मास्त्र का प्रहार कीजिये क्योंकि इससे ही इसका मरण होगा। मातली के सुझाने पर राम ने रावण पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। अस्त्र के लगते ही रावण के हाथ से पहले तो शस्त्र गिर पड़े और

पीछे वह स्वयं भी प्राण त्यागता हुआ भूमि पर जड़वत् गिर पड़ा। रावण के गिरते ही राक्षसों के दल में शोक तथा निराशा छा गई और देवताओं, ऋषियों तथा मुनियों में हर्षनाद होने लगा और रावण के नाशकर्त्ता राम पर चारों ओर से जयध्वनि और पुष्पवृष्टि होने लगी। बहुत से लोग उसी समय सुग्रीव, अंगद तथा विभीषण की कामना पूरी हुई मानने लगे।

रावण की मृत्यु को सुनकर भाई के स्नेह को स्मरण कर दुःखित हुआ विभीषण विलाप करता हुआ कहने लगा, आज नीति का सेतु, धर्म का विग्रह, शास्त्र जानने वालों का गुरु भूमण्डल को त्याग गया। आज सूर्य, पृथ्वी पर और चन्द्रमा अन्धकार में पतित हुआ चाहता है।

विभीषण का विलाप सुनकर उसे सान्त्वना देते हुए राम बोले– 'मित्र! यह रावण शोक करने के योग्य नहीं है क्योंकि यह असमर्थ (दीन होकर, नहीं मरा, किन्तु बड़े उत्साह और विक्रम से लड़ता हुआ मेरे शस्त्र बल से यह मरा है।'

'युद्ध में विजय निश्चित नहीं होती। युद्ध में या तो शत्रु के हाथों से मरना होता है या शत्रु मारा जाता है। पुराने ऋषियों की यह मर्यादा चली आती है कि जो क्षत्रिय युद्ध में वीरों की भाँति मरे वह शोक के योग्य नहीं। अब इसका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार करो, क्योंकि वैर तो वीतों से होते हैं। अब यह मेरे लिए भी वैसा ही है जैसा तुम्हारे लिये।

नैकान्त विजयो युद्धे भूतपर्वः कदाचन।
परै र्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे।।१०६।१७
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्यः इति निश्चयः।।१०६।१८
मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्यसंस्कारो ममाप्येष यथा तव।।१०६।१९

रावण की मृत्यु सुनकर अन्तःपुर की रानियाँ उसकी मृत देह के पास विलाप करने लगीं। कोई उसके दोनों पाँवों को पकड़ कर, कोई गले से लिपटकर, कोई दोनों भुजाओं को उठाकर, कोई उसके मुख को देखकर रोने लगी। कोई उसका सिर गोद में रखकर उसके मुख को देखती हुई नेत्र–जलों से मुख कमल को आर्द्र कर देती थी।

अन्त में सब बोलीं–'नाथ! यदि तुम सीता को राम के अर्पण कर देते तो यह विपद हम पर न आती और हम सब विधवा न होतीं। राक्षसराज! तुमने सीता को रोकने से राक्षसों, हमें और अपनी आत्मा–तीनों को नीचे गिरा दिया है।

मन्दोदरी बोली–'प्रभो! बुद्धि रखते हुए भी आपने सीता के कारण मानो मृत्यु को दूर से अपने लिए बुलाया है। अब तुम्हारे मरण से मैं भी सब प्रकार के भोगों से शून्य (हीन) हो रही हूँ।

इसलिए धिक्कार है राजाओं की चंचल मति को। राजन्! आप तो बड़े प्रकाश और तेज वाले थे। अब पुष्प माला पहनने वाला आपका सुन्दर मुख क्यों नहीं शोभा देता ?'

"स्वामिन्! अब आप मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? प्राणनाथ! मुझ दुखियारी को भी अपने साथ ले चलो। मैं आपके बिना यहाँ जीती नहीं रह सकती।"

नहि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुष।
स्त्री स्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते।।१११।७४
सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्विनाशेन दुखिताम्।।१११।७५
सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया।
भ्रातृणां चैव कात्स्र्न्येन हितमुक्तं दशानन।।१११।७६
हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम्।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत्त्वया।।१११।७७
मारीच कुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा।
न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम्।।१११।७८

'वीर! तुम शोक के योग्य नहीं, क्योंकि तुम वीरों की भाँति ही युद्ध में मरे हो, मैं केवल स्त्री स्वभाव से अपने दुःखों को रोती हूँ। तुम तो शुभ–अशुभ कर्मों के अनुसार योग्य गति को गये हो। हाँ तुमने हितकारी मित्रों और भाइयों के हितकर वचन न सुने।'

'युक्ति और अर्थ वाला जो विभीषण का शुभ व नम्र वचन था, वह भी तुमने न माना। मारीच, कुम्भकर्ण मेरे पिता, माता तथा मेरा हितकर वाक्य भी न सुना। उसी का आज यह फल मिल रहा है।'

इतने में राम विभीषण से बोले– 'भाई! अपने भाई का संस्कार करो और स्त्रियों को शान्ति कारी उपदेश दो।'

संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम्।१११।८२

तब विभीषण बोला– 'राम! मैं इस परस्त्री लम्पट का संस्कार न करूँगा क्योंकि दुराचार के कारण मेरा भाई होने पर भी यह मेरा शत्रु है। यदि मैंने इसका संस्कार कर दिया तो लोग मेरी निंदा करेंगे।'

विभीषण का वचन सुनकर राम ने कहा–'यद्यपि रावण अधर्मी था, पर तो भी यह प्रसिद्ध पुरुष तथा बली था। इसका संस्कार तुम अवश्य करो, क्योंकि वैर भाव तो सदा जीवितों से होता है। अब यह मर गया और हमारा काम (प्रयोजन) पूरा हो गया है। अब कोई राग–द्वेष की बात न करो। तुम इसके संस्कार से अपयश के स्थान में यश के पात्र बनोगे।'

चितां चन्दन काष्ठैश्च पद्मकोशीर चन्दनैः।
ब्राह्म यासंवर्तयामसूरांकवास्तरणावृताम्।।१११।११३
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम्।

वेदिं च दक्षिणा प्राचीं यथास्थानं च पावकम्।।१११।११४
पृषदाज्येन सम्पूर्ण स्रुवं स्कंधे प्रचिक्षिपुः।।१११।१९५

राम के आदेश के अनुसार विभीषण ने लंका में जाकर रावण के अन्त्येष्टि संस्कार के लिए सुन्दर सुगन्धित चन्दनादि काष्ठ, अगर आदि औषधि, घृत, अग्नि और अग्निहोत्र कराने वाले याजक ब्राह्मण और रावण के शव को सुन्दर राजाओं के योग्य शिविका (पालकी) में बड़े ठाठबाट से रख, वेदि स्थान में पहुंचाया और वहाँ दक्षिण पूर्व दिशा में विधि के अनुसार रावण के शरीर का अन्तिम संस्कार किया जिसे कि सर्वोत्तम 'पितृमेध' कहा जाता है।

यज्ञ के बाद वस्त्र सहित स्नान कर और स्त्रियों को सान्त्वना देकर सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

विभीषण को तिलक और सीता से भेंट

रावण के अंतिम संस्कार के बाद राम विमान में बैठकर अपनी सेना के स्थान पर आये। वहाँ आपकी सबने प्रशंसा की। अब राम ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा-'वीर! शीघ्र विभीषण को लंका के राजपद पर अभिषिक्त करो, क्योंकि यह मेरी बड़ी कामना है, कि मैं अपने स्नेही तथा प्रथम उपकार करने वाले को शीघ्र ही राजपदवी पर देखूँ। राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण ने लंका में जाकर सब सामग्री एकत्र कर मन्त्रियों और प्रजा के मुख्य-मुख्य पुरुषों की सम्मति से अभिषेक विधि से स्नान कराकर विभीषण को राजपद पर आसीन किया। सारे राष्ट्र में रावण के शासनाधिकार के स्थान में महाराज विभीषण के शासन की घोषणा कर विभीषण की आज्ञा से आप राम के पास आ गये। अब तक राम लंका में लंकापति के होते हुए भी उसका शासन अपने ऊपर न मानते थे, पर धन्य है आर्यों का नियम पालन व मर्यादा जिसके अन्तर्गत राम अब स्वयं अपने हाथ से एक पुरुष को राज्याधिकार देकर उसकी आज्ञा बिना अपना अति-प्रिय किन्तु अतिक्षुद्र कर्म सीता मिलाप भी नहीं करना चाहते। इसलिए उन्होंने हनुमान् को बुलाकर आज्ञा दी-"सौम्य! अब और सब काम तो हो गया है, परन्तु जिसके लिए यह सब कुछ हुआ है अब उस सीता की भी सुधि लेनी चाहिए। अतः-

अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
प्रविश्य नगरीं लंकां कुशलं ब्रूहि मैथिलीम्।।११२।२४
वैदेह्यै मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ! रावणं च हतं रणे।।११२।२५

महाराज विभीषण की आज्ञा लेकर लंका में जाओ और जानकी को मेरा कुशल समाचार दो, जानकी का मुझे दो। सीता से यह सुखदायक समाचार भी कह देना कि रावण युद्ध में मारा गया है।"

राम की आज्ञा पाकर हनुमान् लंका में गये, वहाँ से महाराज विभीषण की आज्ञा से सीता के पास जाकर बोले—

विभीषण सहायेन रामेण हरिभिः सह।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान्।।११३।८
प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभा जये।
तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महान्रामेण संयुगे।।११३।६
लब्धो यं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा।
रावणश्च हतः शत्रुर्लंका चैव वशीकृता।।११३।१०

"वैदेही ! राम सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ कुशलपूर्वक हैं। अब वह शत्रुओं को मार कर कृत्कार्य हुए हैं।"

"देवि! विभीषण, सुग्रीवादि वानरों और लक्ष्मण की सहायता से उन्होंने रावण को भी मार लिया है। धर्मज्ञे! यह भारी विजय राम को तुम्हारे ही प्रभाव से प्राप्त हुई है, इसलिए निश्चिन्त होकर पूर्ववत् आनन्दित हो, क्योंकि रावण मारा गया और लंका अपने वश में हो गई।"

हनुमान् के मुख से इस परमानन्द देने वाले वचन को श्रवण कर सीता आनन्द से कुछ काल तक तो निर्वाक् हो गई, फिर बोली—हनुमान्! अति प्रिय वचन के सुनाने के बदले में मैं तुमको क्या देकर तुमसे अनृणी हो सकती हूँ , यह मैं नहीं समझती। यदि सुवर्ण, धन, बहुविधि रत्न व त्रिलोक का राज्य भी मैं तुम्हें इसके बदले में दे सकूँ तो थोड़ा है।

हनुमान् ने कहा—"मातः! तुम जैसी पतिव्रताओं से ऐसे ही पतिप्रेम की आशा हो सकती है।"

इस पर सीता ने फिर हनुमान् के धर्म, विद्या, बुद्धि और गुणों की प्रशंसा की, तब प्रसन्न होकर हनुमान् बोले—

'देवि! मैंने सुना है यह राक्षसियाँ तुम्हें बहुत दुःख देती रही हैं। यदि आज्ञा दो तो मैं इन्हें मार दूँ।'

इस बात पर सीता बहुत देर तक विचारती रहीं और फिर बोली—'वीर! राजा की आज्ञा से बलात् किसी काम पर लगाई हुई दासियों पर क्या कोप करना, क्योंकि यह पराधीन थीं जो तुम मेरे दुःख का विचार करते हो सो—

भाग्य वैषम्यदोषेण पुरस्ताद् दुष्कृतेन च।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।।११३।४०

यह तो मेरे भाग्य के उलटा होने के कारण ही है, किसी पूर्व जन्म के दुष्ट कर्म का फल भोगना आवश्यक है।'

सीता के इस कथन को सुनकर हनुमान् ने कहा—'क्यों न आपके ऐसे भाव हों। अब आपकी ओर से मैं राम को क्या संदेश दूँ ?'

तब सीता ने कहा—मैं केवल भक्तवत्सल अपने पति को देखना चाहती हूँ। सीता के सन्देश को लेकर हनुमान् राम के समीप आये और सीता का सन्देश सुनाया। इस पर राम ने विभीषण को वस्त्र–आभूषणों से अलंकृत कर सीता को लाने के लिए कहा।

सीता से कुशल–क्षेम पूछने के अनन्तर राम ने अपने और सुग्रीव, विभीषण, हनुमानादि मित्रों के बल पौरुष तथा विजय का वर्णन किया।

ज्यों ही राम ने सीता का आदर करना आरम्भ किया त्यों ही कई पुरुषों ने राम के विरुद्ध बातें बनाना आरम्भ कर दिया और उनकी यह खबर बहुत बुरे रूप में राम के पास भी पहुँच गई।

शुद्धि संस्कार एवं प्रजा-मान

सीता के सम्बन्ध में निन्दनीय समाचार सुनकर राम का चित्त दो प्रकार का हो गया। कभी राम सीता का सतीपन और प्रेम देखकर अपने पास रखना चाहते और कभी प्रजा में यह बात फैलती देख, (कि देखो राम का मन जो राक्षस के घर से लौटी हुई सीता को अलग नहीं कर सकता) सीता को अलग कर देना चाहते।

अन्ततः राम ने यह विचार कर कि यदि मैंने सीता को अपने मन से घर में रख लिया तो इसका अयोध्या की प्रजा के आचार पर अच्छा प्रभाव न पड़ेगा, यह उचित समझा कि सीता को सर्व साधारण में परीक्षित कर फिर ग्रहण करना चाहिए। ऐसा विचार कर राम ने सीता से कह दिया कि "सीते! मैंने और सब कष्ट सहे पर यह निंदा रूपी कर्म मैं नहीं सह सकता, रावण के वश में रहने से तुम्हारे चरित्र में संशय हो गया है इसलिये तुम मुझ से अलग रहो।"

यह सुन सीता बड़ी दुःखी होकर बोली–"स्वामिन्! जैसा आप कह रहे हैं, मैं वैसे चरित्र वाली नहीं हूं। आपके इन वचनों से स्त्री जाति मात्र की निन्दा होती है। अतः आप इन विचारों को त्याग दें और जैसे चाहें परीक्षा कर लें। हाँ, यदि विवशता से मेरा अंग स्पर्श किसी से हो गया हो, तो मेरे आधीन नहीं किन्तु इच्छापूर्वक मैंने किसी को नहीं छुआ। मेरे आधीन मेरा मन है और वह सदा आप में रहता है। अंग पराधीन रहे हैं या असमर्थ, मैं कुछ नहीं कह सकती। महाराज! यदि इतने लम्बे काल तक आपके साथ रहने पर भी आपको मेरे गुण–दोषों का ज्ञान न हुआ हो तो ठीक है कि आपके इस अज्ञान से आज मैं मारी जाऊँ। यदि ऐसा ही करना था तो जब हनुमान को मुझे देखने के लिए आपने लंका में भेजा था तब ही मुझे क्यों न यह कह दिया। अब भी आप स्मरण रखें कि यदि आपने मुझे त्याग दिया, तो मैं अपने जीवन को त्याग दूँगी, क्योंकि आपके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।

यदहं गात्र संस्पर्श गतास्मि विवशा प्रभो।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति।।११६।८
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी।।११६।६
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया।।११६।१२

सीता की बातचीत सुनकर जब राम ने परीक्षार्थ सीता को शुद्धिसभा ● में प्रविष्ट कराया, तब ● सभापति विभावसु (पावक) ने राम से कहा–

अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः।
एषा ते राम ! वैदेही पापमस्यां न विद्यते।।११८।५
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यें न त्वामत्यचरच्छुभा।।११८।६
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली।
नाचिंतयत तद्रक्षस्त्वद्‌गतेनांतरात्मना।।११८।६
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते।।११८।१०

'राम सीता मन, वाणी, नेत्र और बुद्धि से तुम में भक्ति रखती रही है। बली रावण से बलात् रोकी हुई भी यह सती है। नाना विधि लाभ दिखाने पर भी यह देवी तुम में मन रखकर, रावण का निरादर करती रही है। अतः आप पाप रहित और शुद्ध भावों वाली सीता को ग्रहण करो तथा इसमें किसी प्राकर की चिन्ता न करो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ।

- **कई स्थानों पर पाया जाता है और प्रसिद्ध है कि सीता ने अग्निकुण्ड या चिता में कूदकर अपनी शुद्धि का परिचय दिया, परन्तु यह सब कल्पना नई होने के साथ असम्भव भी है, क्योंकि अग्नि सिवाय जलाने के और कोई कर्म नहीं करती और चेतन को पवित्र करने के लिए न तो भौतिक अग्नि का कहीं वर्णन ही है और न भौतिक अग्नि आदि जड़ पदार्थ किसी प्रकार की साक्षी व आज्ञा दे सकता है।**
- **वास्तव में बात यह है कि सभापति का नाम पावक होने के कारण 'धरणि' की भाँति सन्देह में पड़ कर लोगों ने अग्नि में कूदना बना लिया, क्योंकि 'पावक' नाम धातुओं के मल दूर करने के कारण अग्नि का दूसरा नाम भी है। राम सीता को शुद्ध कराना चाहते थे जैसे उन्होंने युद्ध कां०११८।१४ में कहा है-'यदि सीता को बिना शुद्ध कराये ले लेता, तो लोग मुझे कहते कि राम अबोध और कामी है।' इसी सभा के सभासदों का आदर करते हुए राम बोले-मैं आप लोगों का हितकर वचन अवश्य करूँगा, क्योंकि आप सब ही स्नेही हैं, इत्यादि।।११८।२१** **- सम्पादक**

सभापति के वचन को मानकर राम ने सीता को पत्नी रूप से स्वीकार करते हुए कहा–'मैंने सीता का कभी त्याग न करूँगा, आप सब लोगों के हितकारी वचन को स्वीकार करता हूँ।'

यदि मैं आप लोगों के सामने सीता को शुद्ध न करता तो मुझे लोग बालक तथा कामी कहते।

बालिशोवत् कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि।।११८।१४
अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम्।
स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम्।।११८।२१

राम का सौहार्द : सहयोगियों का मान

सीता को ग्रहण कर, राम उस रात्रि वहाँ ही रहे। दूसरे दिन विभीषण ने आकर बहुत कुछ पूजा सम्मान ग्रहण करने को कहा, तब राम बोले–"मैं आपकी ओर से बहुत प्रसन्न हूँ। आप सुग्रीव आदि का योग्य सत्कार करें।"

फिर विभीषण ने आकर कुछ दिन और निवास करने को कहा– जिसका उत्तर देते हुए राम ने कहा, 'मित्र मुझे शीघ्र पीछे लौटना है। क्योंकि एक तो मुझे भरत से मिलना है जो मेरे राज्य को त्याग कर बैठे हैं और जो मुझे चित्रकूट में लेने आये थे, परन्तु मैंने उनका कहना नहीं माना था। मुझे महाराज गुह और अपने प्रजा जनों से भी मिलना है। इसलिए आप मुझे शीघ्र ही आज्ञा दें, किसी प्रकार का ख्याल न करें।

पूजितो स्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च।।१२१।१७

राम का वचन सुनकर विभीषण पुष्पक विमान को लाकर बोले,–"महाराज! यह शीघ्र गति वाला विमान है। आप आज्ञा करें कि हम क्या करें ?तब राम बोले 'विभीषण! तुमने हमारी और वनवासियों की सहायता से लंका जीती है, अब तुम इन सब वनवासियों की सब प्रकार से पूजा व प्रतिष्ठा करना और इनका कभी अपमान न करना क्योंकि त्यागी, दानी, आश्रयदाता, दयालु और जितेन्द्रिय राजा को सब सहायक रूप से प्राप्त होते हैं। सेना को प्रसन्न न करने वाले, सब गुणों से हीन, वृथा युद्ध में सेना को मारने वाले राजा को दुखी हुई सेना त्याग देती है।'

त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम्।
सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सम्बोधयामि ते।।१२२।८
हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे।
सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर।।१२२।६

राम की इस शिक्षा को सुनकर विभीषण ने सबका उचित आदर किया। इसके पश्चात् विमान पर सीता और लक्ष्मण सहित बैठकर राम बोले,–"महाशय! आप लोगों पर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। अब तुम

सब वानर या राक्षस यथेच्छित स्थान पर जाओ। और सुग्रीव! आपने मित्रता व धर्मभाव से मेरा बड़ा हित किया है। अब आप किष्किन्धा नगरी को पधारिये और प्रिय विभीषण! तुम मेरे दिये लंका के स्वराज्य में बसो। अब तुम्हें कोई भी भय नहीं दे सकता। अब मैं अयोध्या को जाता हूँ, और आप लोगों को वहाँ पधारने के लिए निमन्त्रण देता हूँ। राम को जाते देखकर सबने कहा—

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्र कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम।।१२२।२०

"राजन्! हम सब अयोध्या को जाना चाहते हैं। हम शीघ्र ही आपको जन्म देने वाली माता कौशल्या को प्रणाम कर तथा आपका राज्याभिषेक देखकर अपने-अपने स्थान को लौट आयेंगे।"

सुग्रीवादि के वचन सुनकर राम बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे, महानुभाव! यदि ऐसा है, तो बहुत ही अच्छा है। मेरे लिए तो यह अति आनन्द का अवसर होगा, जो आप लोगों के साथ मैं अयोध्या नगरी का आनन्द उपभोग करूँगा।"

राम की यात्रा और सीता को परिचय

विभीषण, सुग्रीव आदि के साथ राम वहाँ से विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या की ओर चल पड़े और आकाश में जाते-जाते सीता को यात्रा के मुख्य-२ स्थान और घटनाएँ बताने लगे।

सबसे पहले राम ने कहा, "सीते ! देखो यह लंका नगरी है। इसका विश्वकर्मा ने कैसी दृढ़ता से निर्माण किया है। यह राक्षस और वानरों की युद्ध-भूमि है। यहाँ बड़े-बड़े वीरों को वीर गति प्राप्त हुई है। यह देखो समुद्र का वह ● तीर्थ (घाट) है, जहाँ हम लोगों ने पार होकर पहली रात बिताई थी। यह वह नलसेतु है, जो मैंने तुम्हारे लिए क्षोभरहित समुद्र पर बाँधा था। वह समुद्र के मध्य मैनाक पर्वत दिखाई पड़ता है, जहाँ हनुमान् ने पहली बार विश्राम किया था। यह देखो समुद्र का दूसरा तीर्थ (तट व घाट) है, जहाँ हमें राक्षसराज विभीषण मिला था। यह सुन्दर मुख वाले महाराजा सुग्रीव की रम्य पुरी किष्किन्धा दृष्टि पड़ती है, जहाँ मैंने बाली को मारा था।

● तीर्थ शब्द का अर्थ टीकाकार उतार 'घाट' करते हैं। - सम्पादक

किष्किन्धा को देखकर सीता ने कहा—"महाराज! मैं चाहती हूं कि सुग्रीवादि की स्त्रियों सहित अयोध्या को देखूं।" यह सुनकर राम ने सीता से तथा स्तु कहा और सुग्रीव से कहा— 'मित्र! सब इष्ट मित्रों को स्त्रियों सहित अयोध्या पधारने की आज्ञा दो।'

सुग्रीव यह सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने किष्किन्धा में विमान उतार लिए।

सबसे पहले सुग्रीव ने राजमहल में जाकर तारा से कहा—प्रिये! राम सब वानरों को स्त्रियों सहित अयोध्या जाने को कहते हैं जो तुम सबको तैयार कर अयोध्या चलो, ताकि हम सब अयोध्या तथा राम की माताओं को देख आवें। सुग्रीव की आज्ञा पाकर तारा ने स्त्री मंडल को तैयार किया।

थोड़ी देर ठहरने के बाद राम आदि सब विमानों पर बैठकर अयोध्या की ओर चल पड़े।

ऋष्यमूक पर्वत के पास जाकर राम फिर सीता से बोले– 'वैदेही! यह वह पर्वत है जहाँ मैंने सुग्रीव से मैत्री और बाली के मारने का विचार किया था। आगे यह पम्पासर है, जहाँ पर मैंने तुम्हारे लिए बहुत विलाप किया। यहाँ ही मुझे धर्मचारिणी शबरी (भीलनी) मिली थी आगे चलकर यहाँ मैंने कबन्ध का बध किया। यह तेजस्वी जटायु का निवासस्थान है यहाँ ही उसे रावण ने मारा था। यह वह स्थान है जहाँ हम लोगों की कुटी बनी थी, राक्षसराज तुम्हें छल से हरकर ले गया था। यह गोदावरी का मनोहर तट है। ये अगस्त्य और शरभंग आदि महात्माओं के आश्रम हैं। यहाँ मैंने विराध को मारा था। यह चित्रकूट आश्रम है, जहाँ पर कैकेयी पुत्र भरत मुझे प्रसन्न करने के लिए आये थे। यह यमुना, यह भरद्वाज का आश्रम और यह गंगा बहती है। इसी के किनारे पर वह शृंगवेरपुर है, यहाँ पर मेरा मित्र गुह बसता है। वह मेरे पिता की राजधानी अयोध्या फिर आ गई है। सीता परमात्मा का धन्यवाद करो। इस मार्ग–परिचय को पाकर सीता बड़ी प्रसन्न हुई और उसने परमात्मा का धन्यवाद किया।

भरद्वाज के आश्रम में राम ने महामुनि भरद्वाज से पूछा–'मुने! क्या आपने सुना है कि अयोध्या में सुभिक्ष तथा नीरोगता तो है ? क्या भरत युक्तिपूर्वक व्यवहार करता है? तथा मेरी मातायें जीती तो हैं ?'

भरद्वाज ने प्रसन्न मुख से कहा–'राम अयोध्या में सब कुशल है और भरत तो ऐसा संयमी है कि वह आपके वियोग में चौदह वर्ष से जटा धारण कर, संसारातीत होकर केवल आपकी आज्ञा पालन के रूप में राज्य की कार्य प्रणाली का संचालन कर रहा है। राम! मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूं क्योंकि मैं तुम्हारे सब कार्यों को जो तुमने संसार के हित के लिए किये हैं, अपने तपोबल वा शिष्य–मण्डल के द्वारा जानता रहा हूं। इसलिए आज तुम यहाँ मेरा अतिथि–सत्कार ग्रहण करो और कल अयोध्या चले जाना।

अयोध्या में हनुमान् को भेजना

राम ने ऋषि की आज्ञा को शिर नवाकर स्वीकार किया। भरद्वाज के आश्रम से दूसरे दिन राम चले और अयोध्या को देख बड़े प्रसन्न हुए और हनुमान् को बुलाकर कहा–"वीर! जाकर देखो राजधानी में कुशल तो है ? मार्ग में शृंगवेरपुर में जाते हुए निषादपति महाराज गुह को मेरा कुशल समाचार देना क्योंकि वह मेरी कुशलता सुनकर बहुत प्रसन्न होगा। वह मेरा मित्र है। वह तुम्हें अयोध्या का मार्ग बताकर भरत के समाचार भी कहेगा।

फिर अयोध्या में जाकर तुम भरत से मेरा, लक्ष्मण, सीता का कुशल समाचार देना, सीता–हरण, राक्षस, युद्ध आदि सब कुछ कहना और तुम्हारे कहते हुए, जो रूप चेष्टा भरत की हो, वह मुझे बताना।"

पुनः राम का सन्देश लेकर हनुमान् पहले महाराज गुह के पास आये, उसे सन्देश दिया, जिसे सुन वह बड़ा प्रसन्न हुआ। स्वागत के लिये बड़ी धूमधाम से प्रजा वर्ग को साथ लेकर तैयार हो गया।

वहाँ से भरत के पास गये। जाकर देखा कि भरत मुनियों की भाँति जटा बल्कल धारण कर, फल–मूल खाते हुए, व्रत पूर्ण कर रहे हैं। राज्याधिकार पाने पर भी बड़े चिन्तायुक्त प्रतीत होते हैं।

भरत के पास जाकर हनुमान् ने कहा–'राजन्! जिस दण्डकारण्यवासी बन्धु की चिन्ता में आप हैं, वह राम कुशलपूर्वक हैं और आपका कुशल पूछते हैं। आप दुःखदायक शोक का त्याग करें। अब राम आपको शीघ्र ही मिलेंगे।' सीता हरण, रावण मरण आदि भी हनुमान् ने भरत से सब कुछ कह दिया, जिसे सुनकर भरत अति प्रसन्न हुए और हनुमान् का विलक्षण प्रेम से सत्कार करने लगे।

कुछ विश्राम के बाद हनुमान् राम की चौदह वर्ष की कथा विस्तार से भरत को सुनाने लगे।

राम का स्वागत

हनुमान् से यह परमानन्ददायक समाचार सुन भरत ने शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि भाई राम के स्वागत के लिए पूर्ण तैयारी करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यज तक को स्वागत के लिए आज्ञा दो। सब प्रकार के बाजे और शस्त्र–अस्त्र वालों को एवं स्त्री मण्डल को आज्ञा दो कि पंक्ति बाँध कर राम का सम्मान करें।

भरत का वचन सुनकर शत्रुघ्न ने कर्मचारियों और मन्त्रियों को आज्ञा दी कि शीघ्र नगर के सब स्थानों को सजाओ और मार्गों को साफ कर, शीतल स्निग्ध जल से सिञ्चन करो। हाथी, घोड़े, रथ सेना और पदाति सेना को भी यथास्थान खड़ा करो। बहुत सी बहुमूल्य पुष्प मालायें भी लाकर एकत्र करो।

शत्रुघ्न की रुचि के अनुसार सब सामग्री शीघ्र तैयार हो गई। सामग्री के तैयार होने पर उपवासादि से कृश, चीर–वल्कलधारी भरत चमर आदि को हाथ में ले, माताओं, बन्धुओं, ब्राह्मणों तथा मन्त्रियों को साथ लेकर राम के दर्शनों के लिए अयोध्या से बाहर गये। उस समय कोसों तक रामभक्त आर्य राम की कीर्ति को गा रहे थे।

भरत मिलाप

राम को आते देखकर भरत आदि अपनी–अपनी सवारियों से उतर खड़े हुए, ज्यों ही राम का विमान आया, तो सबने दूर से नमस्कार किया। जब राम विमान से उतरे तब दूसरी बार फिर अभिवादन किया। राम ने स्नेह से भरत का आलिंगन किया। फिर भरत ने जानकी और लक्ष्मण को अभिवादन किया।

फिर भरत ने सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद, गयन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्द–मादन, शरभ व पनस को आलिंगन किया और इसके पश्चात् सुग्रीव से कहा–''वानर राज! तुम हमारे पांचवे भाई हो। तुमने हमारे साथ बड़ा उपकार किया है।'' फिर विभीषण से कहा–'महाशय साधुवाद! क्योंकि आपकी सहायता से ही यह दुष्कर कर्म सिद्ध हुआ है।'

इसी प्रकार शत्रुघ्न ने राम–लक्ष्मण सीता को प्रणाम किया। भाइयों से भेंट के पश्चात् राम ने माता कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा का चरण वन्दन किया।

फिर सारी प्रजा ने राम का स्वागत किया और जयध्वनि की सबने अपनी-अपनी पुष्पांजलि राम के अर्पण की, जिन्हें राम ने बड़े स्नेह से स्वीकार किया। फिर वहाँ ही भरत ने हाथ जोड़कर राम से कहा-

अब्रवीत तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।
एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया।।१२७।५५
अद्य जन्म कृतार्थ मे संवृत्तश्च मनोरथः।
यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्या पुनरागतम्।।१२७।५६
अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम्।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया।।१२७।५७

'राजन्! यह आपका राज्य है जिसे मैं धरोहर समझ कर चलाता रहा हूँ। अब आप इसे सँभालिये। आज मेरा जन्म कृतार्थ और मनोरथ पूर्ण हुआ है जो आपको अयोध्या में फिर देखता हूँ। आप अपने कोष, कोष्ठागार,गृह, बल (सेना) आदि को देखलो, आपके प्रताप से मैंने दस गुणा कर दिया।'

भरत और अयोध्यावासियों के मिलाप के बाद राम भरत के आश्रम में चले गये। वहाँ आकर भरत ने कहा- राम! आप राज्य-भार को उठायें। मैं आपके सामने इसको उठाने के योग्य नहीं, मुझमें और आपमें इतना अन्तर है जितना हंस तथा काक,अश्व और गर्दभ में है। हे मनुजेन्द्र! यदि आप हम लोगों की रक्षा न करोगे, तो इस सारे राष्ट्र रूपी वृक्ष को बड़ी मूल, शाखा, स्कन्ध और बहुपुष्प होने पर भी फलहीन देखोगे।

श्रीराम का राजतिलक

इस प्रकार भरत और प्रजा के आग्रह पर राम ने राज्यभार उठाना स्वीकार कर लिया। तब सारे राष्ट्र में आनन्द उल्लास के बाजे बजने लग गये। थोड़े ही दिनों में राज्याभिषेक के लिए एक दिन निश्चित कर दिया गया।

भरताश्रम में भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण को स्नान कराकर, शत्रुघ्न ने राम की जटा उतारकर यथोचित् अलंकार धारण कराये। दूसरी ओर माता कौशल्या ने सब वानर स्त्रियों का स्नानालंकार कराया।

भरत आश्रम से स्नानादि कर, राम बड़ी धूमधाम से अयोध्या में आये, राम का राज्याभिषेक होना सुनकर सब अवधवासियों ने अपने-२ स्थानों को बड़ी उत्तमता से सजाया और निश्चित दिन से पूर्व ही सारी अयोध्या सौभाग्यवती स्त्री के सदृश अलंकृत हो गई।

जब राम रथ पर आरूढ़ हो बाजार से निकले तो सारी प्रजा ने उनके दर्शन किये तथा पुष्पादि से पूजन किया।

निश्चित दिन सब सामग्री एकत्र कर, ठीक समय पर रत्नों के आसन पर राम को बैठाया गया। फिर वसिष्ठ, विजय, जावालि, कश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेव आदि ऋषियों ने सबकी सम्मति से उनका राज्याभिषेक कर दिया।

प्रजा का सम्मान- राम के राजा होने पर सब ओर राष्ट्र में प्रसन्नता फैल गई। श्रीराम ने केवल प्रजा का उपहार ग्रहण किया वरन् उसको पारितोषक देकर भी सम्मानित किया। इसी प्रकार दयालु राम ने वस्त्र–भूषणों से विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान, हनुमान् आदि की पूजा की।

फिर राम के राज्याभिषेक और स्वभाव से प्रसन्न हुए सब वानर किष्किन्धापुरी को चले गये। विभीषण महाराज भी राक्षसों के साथ अपने कुल धन रूप राज्य को पाकर लंका में गये व नियमपूर्वक राजधर्म का पालन करने में लग गये। इधर सबको विदा कर, महात्मा राघव शासन करने लगे। राम ने अपने शासनकाल में अनेक पौण्डरीक, अश्वमेध और अन्यान्य यज्ञ अपने राष्ट्र हित के लिए किये। इसी प्रकार इनके पुत्र, भ्राता आदिकों ने भी राम के साथ यज्ञादि किये।

राम राज्य में प्रजा की दशा

राम के शासनकाल में राष्ट्र भर में न विधवाओं का विलाप, न सर्प का भय, न किसी प्रकार का रोग था। सारे देश में कोई चोर या अनर्थकारी न था। वृद्धों के होते बालक न मरते थे। सारा देश सुखी, धर्मपरायण तथा एक–दूसरे से प्रेम करने वाला था। लोग बड़ी आयु वाले, नीरोग, शोकरहित थे। वृक्ष उस समय के सदा फल–फूल देने वाले, मेघ कालवर्षी और वायु सुखदायक थे। सब लोग अपने–अपने कर्मों में संलग्न और मन से प्रसन्न थे। सब लोग नाना गुणयुक्त और सत्यभाषी थे।

रामायण का माहात्म्य

जो लोग धर्म, यश, आयु, राजाओं को जय देने वाली महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण को सुनेंगे तथा आचरण में लायेंगे वह सब प्रकार के पापों से छूटकर पुण्य के भागी बनेंगे। स्त्रियाँ इसकी शिक्षा ग्रहण कर राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न जैसे पुत्रों की मातायें बनेंगी। राजा जय को प्राप्त होंगे, सर्वसाधारण दीर्घायु को प्राप्त होते हुए सब प्रकार के दुखों से छूटकर सुख का जीवन लाभ करेंगे और धनार्थी धन लाभ करेंगे।

।। युद्धकाण्ड समाप्त।।

।। ओ३म्।।

शुद्ध रामायण

(रामायणः एक सरल अध्ययन)

राष्ट्र पुरुष एवं रामायण के
विविध पात्रों का सचित्र
शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त
शंका - समीक्षा,
रहस्य-निरूपण

प्रस्तावना

आज की मूल समस्या: मानव-निर्माण

आज राष्ट्र की मुख्य समस्या 'मानव' है और मानव की सबसे बड़ी समस्या स्वयं मानव है। दूसरे शब्दों में मानव की समस्या उसके व्यक्तित्व की समस्या है। बाह्य परिस्थिति में आज जो संघर्ष दिखाई देता है, वह भी मानव के आभ्यन्तरिक अपूर्ण एवं छिन्न–भिन्न व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्ब है। मानवीय व्यक्ति के इस अचिन्तनीय ह्रास का मूल कारण है– जीवन के प्रति मानव का एकान्त भौतिकवादी दृष्टिकोण। पर उससे भौतिक समस्यायें भी बढ़ी हैं, घटी नहीं।

मानव जीवन आज निन्तात अभावग्रस्त है। बुभुक्षित मानवता आज दुहरी भूख से तड़फड़ा रही है, एक शरीर की ओर दूसरी आत्मा की।

भौतिक अभावों से पीड़ित मानव की दयनीय दशा पर अनेक कवियों के व्यथित अन्तस् के स्वर मुखरित हो उठे हैं। किसी कवि की लेखनी ने इन क्षुधार्त मानवों का शब्द–चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''वह पेट इनकी पीठ से मिलकर हुआ क्या एक है।
मानो निकलने को परस्पर हड्डियों में टेक है।।
निकले हुए हैं दाँत बाहर नेत्र भीतर हैं धँसे।
किन शुष्क आँतों में न जाने प्राण उनके हैं फँसे।।''

– मैथिलीशरण गुप्त

तो कहीं किसी भावुक कवि का कोमल हृदय मानव की दुर्दशा देखकर तिलमिला उठा है और उसकी वाणी वर्तमान समाज के प्रति विद्रोह की चिनगारियाँ बिखेरने लगी है–

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को।
मने में आया क्यों न लगादूं आग आज इस दुनियाँ भर को।।

- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

किन्तु आधुनिक मानव का दूसरा रूप भी है। यह न रोटी का भूखा है, न कपड़ों से नंगा। भौतिक ऐश्वर्यों से सम्पन्न एवं बाह्य सौन्दर्य से विभूषित यह मूर्ति 'सभ्य मानव' की संज्ञा पाती है। किन्तु कवि के नेत्र मानव के बाह्य रूप–रंग में ही उलझे नहीं रह जाते, उसकी सूक्ष्म एवं अन्तर–भेदिनी दृष्टि उसके अन्तर में भी झाँकती है और वहाँ की रिक्तता और कलुषता देख कर उसके उद्‌गार इस प्रकार निकलने लगते हैं–

'यह मनुज जो ज्ञान का आगार,
यह मनुज जो सृष्टि का शृंगार।
नाम सुन बोलो नहीं सोचो विचार कृत्य,
यह मनुज संहार सेवी वासना का भृत्य।
छद्‌म इसकी कल्पना,पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य, मनुष्यता का घोरतम अपमान।

आध्यात्मिकता से पराङ्‌मुख आधुनिक मानव अपने वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति और ऐन्द्रिक वासनाओं की तृप्ति के लिए अबाध भोग–लिप्सा में आ फँसा है। यही कारण है कि मनुष्य, मनुष्य के रक्त का प्यासा बना है। कवि की वाणी में–

देख मुझे होता विस्मय है।
पशु से पशु कब इतना डरते, खग से खग हैं कब भय करते।
किन्तु आज मानव को मानव से ही देखो कितना भय है ?

– प्रकाशचन्द्र 'प्रकाश'

'बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच।
यह वचन से देवता पर कर्म से पशु नीच।'

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

इस प्रकार आज सर्वत्र जो भय, असन्तोष अशान्ति, अविश्वास और संघर्ष व्याप्त है उसका मूल कारण व्यक्तित्व के विकास का अभाव है। व्यक्ति समाज में रहता है, अतः उसके विकास में समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। वर्तमान समाज रचना के दो मूल आधार हैं– सरकार और पूंजी। और व्यक्ति के विकास के सबसे बड़े रोड़े भी ये दो हैं। सत्ता और सम्पत्ति के दो पाटों के बीच बेचारा मानव आज पिस रहा है। पद और पैसे की दौड़ में मानवीय जीवन मूल्यों की नितान्त अवहेलना हो रही है। इस प्रतियोगिता में हारने वाले तो दुःखी हैं ही, जीतने वाले भी बेचैन हैं। अपनी स्थिति को स्थायित्व प्रदान करने की चिन्ता में ये जीवन के सात्विक आनन्द की अनुभूति से अपेक्षाकृत अधिक वंचित हैं।

मानव–मात्र में अतिरिक्त शांति लाये बिना उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास सम्भव नहीं है और उस शांति के लिये अपेक्षा है सामाजिक न्याय और समता की। कवि के शब्दों में–

"शांति नहीं तब तक, जब तक सुख-भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।"

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

एक अन्य कवि के शब्दों में–

यदि है अभीष्ट सुख शांति सौम्य! दुःख भी बाँटो सुख भी बाँटो।

तो समता, युग की माँग है। पर आज के अर्थ प्रधान युग में साम्य का तात्पर्य विशेषकर आर्थिक साम्य से ही लगाया जाता है। आर्थिक साम्य की स्थापना के लिये अभी तक प्रधानतः कत्ल और कानून के प्रयोग हुए हैं। किन्तु मानव की आन्तरिक वृत्तियों में सामंजस्य स्थापित किये बिना सिर्फ भौतिक साम्य के प्रयासों से समस्या का सामयिक उपचार भले ही कुछ हो सके उसका स्थायी समाधान नहीं हो सकता। सच्चे आर्थिक साम्य के किसी भी आन्दोलन के पीछे आध्यात्मिक चेतना नितान्त आवश्यक होती है। इस तथ्य को समझ लेने के बाद भौमिक समस्या का भी समाधान आध्यात्मिक आधार पर ही करना होगा। इस दृष्टि से समस्या मूलतः नैतिक या सांस्कृतिक है, आर्थिक या राजनैतिक नहीं।

'राजनीति का प्रश्न नहीं है आज जगत् के सम्मुख ।
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता, मानव -जीवन के दुख।।
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या, जग के निकट उपस्थित।
खंड मनुजता को युग-युग की होना है नव निर्मित।।

– सुमित्रानन्दन पंत

आज मानवता संस्कार चाहती है। उसमें जो नाना प्रकार के विकार एकत्र हो गये हैं, उन सबको झाड़कर हमें परिशुद्ध मानव के दर्शन करने हैं। इसके लिए हमें हृदय में माता का सा वात्सल्य, बहन की सी ममता और सहोदर भाई का सा स्नेह लेकर सबके हृदय में प्रेम संचार करना होगा।

कवि के शब्दों में–

मृत मानवता जिन्दगी है तुमसे,
दो बूँद स्नेह की उसके प्राणों में डालो,
आदम को जो स्वर्ग हो रहा मरघट,
जाओ ममता का एक दिया उसमें बालो।।

– नीरज

प्रत्येक मानव के भीतर जो सुषुप्त प्रेम भावनायें हैं, इन्हें स्पर्श करके उसकी हृदय तन्त्री झंकृत करने की आज बड़ी आवश्यकता है। यदि हम ऐसा कर सके तो इस शुष्क मरुभूमि के अन्तर से ऐसा

अमृत रस प्रवाहित होगा जिससे कि मानवता के कल–कल करते शत–सहस्र झरने फूट निकलेंगे और तब कवि की यह भावना साकार हो उठेगी–

ऐसा मधुमय देश बनायें।

काम न जहाँ कुटिलता छल का, हो प्राबल्य न द्वेषानल का।
हो न सबल शोषक निर्बल का, हरे न स्वत्व किसी का कोई।।
बाँट सभी मिल खायें।। ऐसा मधुमय० ('प्रकाश')

क्या यह असम्भव है, स्वप्नमात्र है ? नहीं। तब यह स्वर्णयुग कैसे आये ? नैतिक धरातल पर सांस्कृतिक चेतना के विकास द्वारा ही यह स्वर्णयुग लाना सम्भव है। इसके लिये खण्डित नहीं अखण्डित, देशीय नहीं सार्वभौम मानव संस्कृति का निर्माण करना होगा, वैश्व सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना करनी होगी।

सांस्कृतिक साम्राज्य

यह आजकल के गर्हित साम्राज्यवाद से बिल्कुल भिन्न है। इसमें उपनिवेश कायम करने, कच्चे माल की खपत के लिये बाजार तैयार करने और एक जगह गड्ढे खोदकर दूसरी जगह टीले खड़े करने जैसी पापवृत्ति के लिए कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न– तब सांस्कृतिक साम्राज्य से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर– एक ऐसा वातावरण जिसमें मनुष्य बाहर के दबाव से नहीं, किसी शासन और कानून से नहीं, अपनी आत्मा के डंडे से, अपनी आत्म–पुकार से अपने को पाप से बचाता है। वह स्वयं द्वारा शासित होता है। उसका मूल मन्त्र होता है–

"यदि निज आत्मा के निकट निरपराध हैं आप।
तो फिर कोई विश्व में लगा न सकता पाप।।"

ऐसा मनुष्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु०' के अनुसार सभी प्राणियों में अपनी आत्मा के समान भाव रख सभी के साथ स्वात्मवत् व्यवहार करता है। फिर भला यह संसार स्वर्गधाम क्यों नहीं बनेगा ?

सच्ची आस्तिकता

प्रश्न- पर ऐसे वातावरण का निर्माण कैसे हो ?

उत्तर- सच्ची आस्तिकता ही इसका आधार है।

प्रश्न- तो क्या झूठी आस्तिकता भी होती है ?

उत्तर- हाँ, एक ईश्वर के स्थान पर अनेकों ईश्वरों की कल्पना कर, उनके नामों पर अनेकों मत, मजहब, तिलक छापे, बाहरी पूजा–पाठ झूठी आस्तिकता है। इसमें मनुष्य–२ के बीच भेद की दीवारें खड़ी होती हैं। मन की पवित्रता और आत्मा की उच्चता के लिये यहाँ कोई अवकाश नहीं। ईश्वर को एक संसारी राजा की तरह रिश्वतें देकर, खुशामदें करके गुनाहों को माफ कराने का सिलसिला यहाँ चलता है। विश्व–संस्कृति के निर्माण में ऐसी झूठी आस्तिकता सबसे बड़ी बाधा है।

प्रश्न- फिर सच्ची आस्तिकता क्या है ?

उत्तर- ईश्वर है, वह सर्वव्यापक और न्यायकारी है, ऐसा मानकर कर्त्तव्य–बुद्धि से उसकी आज्ञा का पालन ही सच्ची आस्तिकता है। ईश्वर हर मनुष्य को उसके कर्मानुसार अपनी न्याय–व्यवस्था से शुभाशुभ फल अवश्य देता है, उसमें किसी प्रकार की भी शिथिलता सम्भव नहीं है। इस सिद्धान्त में पक्का विश्वास करके सदा विहित कर्मों को करना और निषिद्ध कर्मों से बचना सच्ची आस्तिकता है। आस्तिकता का प्राण है सदाचार और सदाचार की कुँजी है–कर्त्तव्य पालन। कर्त्तव्य पालन का ही दूसरा नाम है– धर्म।

प्रश्न- हम तो समझते हैं कि सच्ची आस्तिकता या धर्म का अर्थ है– भौतिक उन्नति, वैज्ञानिक प्रगति, विविध ज्ञान–विज्ञान के विकास और राष्ट्र एवं समाज की सेवा आदि सब काम–धाम से छुट्टी लेकर दिन रात ईश्वर का भजन (नाम जाप) करना ही है, जैसा कि एक भक्त ने अपनी विनय में कहा है–

अब प्रभु कृपा करहु इहि भांती।
सब तजि भजन करौं दिन राती।।

उत्तर- नहीं, नहीं। सर्वथा नहीं। ऐसा आलसी और निकम्मा व्यक्ति हरगिज ईश्वर–भक्त नहीं हो सकता। वह तो आस्तिकता का कलंक है। हम अधिक से अधिक धन कमायें, ऐश्वर्य उपार्जित करें, वैज्ञानिक प्रगति करें, ज्ञान–विज्ञान की उपलब्धि करें पर इस सबका अकेले ही उपभोग न करें, मिल बाँट कर खायें। 'भुञ्जीथाः'–अर्थात् उपभोग करें किन्तु 'तेन त्यक्तेन' उसके द्वारा (भगवान् की प्रजा के द्वारा) छोड़े हुए को अर्थात् दूसरों को खिलाकर खायें। इसी का नाम 'यज्ञ भावना' है। 'यज्ञ शेष' को हम खायें । हममें से प्रत्येक एक दूसरे के लिये जिये। हमारा व्यापार, व्यवसाय या कोई भी गतिविधि समाज का अहित करने वाली न हो। हर मनुष्य की योग्यता, क्षमता स्वभाव और अवस्था के अनुसार कर्त्तव्यों का वर्गीकरण है। इस प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों से भागना नहीं, वरन् उन्हें जमकर पूरा करना ही सच्ची आस्तिकता है।

कर्त्तव्य -विवेचन

प्रश्न- कर्त्तव्य का यह विचार हमें कहाँ मिलेगा ?

उत्तर- स्वयं भगवान् की कल्याणी वाणी वेद से, वेदानुसार स्मृतियों से और वैदिक मर्यादाओं का पालन एवं स्थापन करने वाले महापुरुषों के चरित्रों से।

प्रश्न- कर्त्तव्य कितने प्रकार के हो सकते हैं।

उत्तर- यों तो कर्त्तव्यों के अनेकों भेद हो सकते हैं पर मोटे रूप में (१) अपने प्रति कर्त्तव्य (२) परिवार के प्रति कर्त्तव्य (३) समाज या राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य (४) अखिल विश्व के प्राणिमात्र के प्रति कर्त्तव्य (५) ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य–ये पाँच क्षेत्र हो सकते हैं। इनमें ईश्वर के प्रति कोई अलग से कर्त्तव्य नही करना होता और यदि ईश्वर चिन्तन आदि को इसके अन्तर्गत माना भी जावे तो यह भी ईश्वर की अपेक्षा से नहीं किन्तु अपनी ही अपेक्षा से है। वस्तुतः अन्य चार प्रकार के कर्त्तव्यों को कर्तव्यबुद्धि से, अभिमान त्यागकर और उनके पालन को ईश्वर की आज्ञा का पालन मानकर करना ही ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य पालन है। इस तरह चार प्रकार के मुख्य कर्तव्य रह जाते हैं जिन्हें हम व्यक्ति धर्म, परिवार धर्म, समाज या राष्ट्र–धर्म और विश्व धर्म का नाम भी दे सकते हैं। इन चारों धर्मों का एक नाम है–वर्णाश्रम धर्म।

वर्णाश्रम धर्मः वैदिक धर्म

प्रश्न- वर्णाश्रम धर्म क्या है ?

उत्तर- वर्णाश्रम धर्म, धर्म का समग्र रूप है और संसार के हर युग की सभी समस्याओं का प्रभु निर्दिष्टपूर्ण समाधान है। आश्रम–व्यवस्था के अनुसार मनुष्य की आयु का मध्यमान १०० वर्ष मानकर उसे चार भागों में बाँटा गया है। पहले २५ वर्षों में ब्रह्मचर्याश्रम में वह मुख्यतया व्यक्ति–धर्म का, द्वितीय २५ वर्षों में गृहस्थाश्रम में मुख्यतया परिवार–धर्म का, तृतीय २५ वर्षों में वानप्रस्थाश्रम में मुख्यतया राष्ट्रधर्म का और चतुर्थ २५ वर्षों में संन्यासाश्रम में मुख्यतया विश्वधर्म का पालन करने का विधान है। सभी मनुष्यों की रुचि, योग्यता, कार्यक्षमता और स्वभाव एक जैसे नहीं होते। यों तो इसके भी सूक्ष्मता से अनेकों भेद हो सकते हैं पर मोटे तौर पर इसकी भी चार कक्षायें हैं–(१) बुद्धि जीवी–जिनमें कवि, लेखक, उपदेशक, अध्यापक, वैज्ञानिक, चिकित्सक तथा ज्ञान–विज्ञान की विविध शाखाओं के अध्येता आते हैं। (२) सैनिक (३) व्यापारी, कृषक, पशु पालक (४) श्रमिक–मजदूर। यो हर मनुष्य के जीवन में कुछ अंशों में अन्य विशेषतायें भी होती हैं पर इनमें से कोई एक मुख्य रूप से होती है। वही उसका वर्ग है। राष्ट्र–जीवन के तीन महाशत्रु हैं– (१) अज्ञान (२) अन्याय (३) अभाव। बुद्धिजीवी अज्ञान को दूर करता है, सैनिक अन्याय को और व्यापारी अभाव रूपी शत्रु से संघर्ष करता है। श्रमिक इन तीनों का ही अनेक रूपों में सहायक बनता है।

हर देश और हर काल में स्वभावतः यह वर्गीकरण होता है। पर जब इनके साथ समाज-सेवा का व्रत या यज्ञोपवीत (व्रत सूत्र) धारण के साथ यज्ञ-भावना को जोड़ दिया जाता है तो यही वर्गीकरण 'वर्ण-व्यवस्था' का रूप ले लेता है। वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक रुचि, स्वभाव योग्यता और क्षमता या गुण कर्म स्वभाव के अनुसार समाज की सेवा का कोई एक व्रत लेकर समाज (यज्ञ) के अर्पित हो जाता है। (१) ब्राह्मण का धर्म है कि वह भूखा रहकर भी राष्ट्र के अज्ञान को मिटायेगा (२) क्षत्रिय का व्रत है कि अन्याय के शमन के लिये, फिर वह कहीं भी हो, उसकी तलवार जागती रहेगी (३) वैश्य की जीवन-साधना है कि वह राष्ट्र के अभाव से मोर्चा लेगा। ब्राह्मण का ज्ञान, क्षत्रिय का बल और वैश्य की उपार्जन शक्ति सिर्फ उसके लिये नहीं, वह राष्ट्र के एक-एक प्राणी के कष्टमोचन के लिये अर्पित है। यह समर्पण बाहरी दबाव से नहीं, आत्मप्रेरणा से प्रेरित है। इसमें स्त्री-पुरुष का भेद नहीं, छुटाई-बड़ाई का विचार नहीं। समाज की ओर से इनके बदले जो पुरस्कार मिलता है, उसका भी बँटवारा है।

सत्य ब्राह्मण को, यश क्षत्रिय को और श्री (धन) वैश्य को मिलते हैं। वे इनकी रक्षा के लिये ही जीते हैं। ब्राह्मण सत्य की, क्षत्रिय यश की और वैश्य श्री की रक्षा करता है। यह है सच्चा वैदिक समाजवाद।

एक वर्णस्थ के चार आश्रम होने से सम्पूर्ण राष्ट्र के निवासियों के १६ प्रकार के धर्म या कर्त्तव्य हो जाते हैं। इस तरह समाज का एक-एक व्यक्ति कर्त्तव्य (धर्म) के बन्धन में जब बंधता है तभी मानवता का मोक्ष-द्वार खुलता है। यह वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक धर्म है।

तो हमने देखा कि संसार की मुख्य समस्या है- मानव निर्माण। मानव-निर्माण के लिए अपेक्षित विश्व-संस्कृति का मूल है आत्मिक जीवन या आस्तिकता, आस्तिकता का प्राण है सदाचार, सदाचार का मूल है कर्तव्य-पालन और कर्तव्य पालन का आधार है- वर्णाश्रम धर्म या वैदिक धर्म।

राम: आर्य संस्कृति के महान् स्तम्भ

रामायण : सांस्कृतिक आदर्शों की पुण्य गाथा

जब तक संसार में वैदिक धर्म का डंका बजता रहा, सारा संसार तब तक एक चक्रवर्ती सांस्कृतिक साम्राज्य की छत्रछाया में सुख-चैन की वंशी बजाता रहा। मानव स्वभाव की विचित्रता से जब कभी कहीं वर्णाश्रम धर्म को लोप करने का उपक्रम किया गया, इस सांस्कृतिक (आत्मिक) साम्राज्य को छिन्न-विच्छिन्न करने का दुस्साहस किया गया, ब्राह्मणों ने अपने शास्त्र-बल से और क्षत्रियों ने अपने शस्त्र-बल से उस अनार्ष शक्ति का दमन किया और पुनः वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना कर, दानवता का मुख मर्दन कर मानवता को अभय-दान दिया। रामायण की कथा या राम -रावण युद्ध की यही पृष्ठभूमि है।

पूर्व वैदिक काल में जिसे आज प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है, इस प्रकार की सांस्कृतिक दिग्विजयों के और भी अनेकों पुण्य प्रयास हुए थे पर या तो वे अलौकिकता और चमत्मकारवाद के अन्तराल में चादर ताने सोये पड़े हैं या फिर किन्हीं काव्यगत अलंकारों की धरती पर बनी हुई धार्मिक रूढ़िवाद की वेदी पर उनकी हत्या कर दी गई। वे अपनी ऐतिहासिकता खो बैठे है। अतः श्रीराम की पुण्य गाथा ही ऐसे सभी प्रयत्नों में सबसे अधिक प्रकाशमान है।

नौ लाख वर्ष से निरन्तर प्रवाहमान भगवान् श्रीराम की पावन यशोगाथा हमारी राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक निष्ठा की प्रेरणा का केन्द्र रही है। खेद इतना ही है कि महाभारत काल के पश्चात् ५ हजार वर्ष के पतन और एक हजार वर्ष की पराधीनता ने इस प्रोज्ज्वल तस्वीर को भी धूमिल कर दिया है। अवतारवाद, चमत्कारवाद तथा अलंकारों और अत्युक्तियों की ढेरों मिट्टी के नीचे महामानव राम की सही तस्वीर दबा दी गई है। परिणाम यह है कि हमारे अन्य आदर्शों की तरह रामचरित को भी अनैतिहासिक या कोरी कवि कल्पना कहकर हमसे छीना जा रहा है। इन परतों को हटाकर राष्ट्रपुरुष राम की सही तस्वीर को देखें और निराशा की इन अंधेरी घड़ियों में आशा का ज्योतिदीप जलायें।

हम भूलें नहीं कि राम–कथा जहाँ व्यापक रूप से मानवता की कीर्ति–ध्वजा है, वहीं यह आर्य राष्ट्र (भारत) के राष्ट्रीय गौरव का प्रतिमान भी है। राम का गौरव हमारी दृष्टि में न तो हमारा पारस्परिक अभिवादन है और न यह राम के पाँचभौतिक शरीर की जय का द्योतक है। 'जय राम' का अर्थ है उस राष्ट्र की जय, उन आदर्शों की जय, उस मानव संस्कृति और सांस्कृतिक साम्राज्य की जय, उस वैदिक वर्णाश्रम धर्म की जय जिसके प्रतिनिधि बनकर राम लंका के तट पर उतरे थे।

राम–रावण युद्ध दो संस्कृतियों का युद्ध है–दाशरथि संस्कृति एवं दशमुखी संस्कृति। दाशरथि संस्कृति का अर्थ है वह संस्कृति जिसमें दशों इन्द्रियों को रथ बनाकर उन पर सवारी की जाती है। यह संस्कृति अन्तर्मुखी है। इसमें संयम, तप, त्याग है और यह दूसरों के लिए जीवन जीने का पाठ पढ़ाती है। दाशरथि (दशरथ पुत्र) राम इसके प्रतिनिधि हैं। दशमुखी संस्कृति में, इसके विरुद्ध दशों इन्द्रियों को मुख बनाकर भोगों को भोगने की बात है। यह भोगप्रधान है और सिर्फ अपने लिए ही जीना सिखाती है। दशमुख (रावण) इसका प्रतिनिधि है। दशमुखी संस्कृति प्रत्यक्षवादी और प्रच्छन्न भौतिकवादी है, वह एक बार फलती–फूलती दीखती है। इस प्रकार बड़े–२ विचारशील भी भ्रमित हो इसके जाल में आ फँसते हैं, पर समय आता है जब वह समूल नष्ट हो जाती है।

आज दुःख और दुर्भाग्य यह है कि एक ओर तो रामभक्ति को पेटपूर्ति और दुकानदारी का साधन बनाकर उनकी सुरक्षा के लिए चमत्कारों की पच्चीकारी से युक्त और अविवेक के अँधेरे से आच्छन्न अन्धश्रद्धा के कोट खड़े किये गये हैं (जो अब समय पाकर स्वयं ही ध्वस्त हो रहे हैं), तो दूसरी ओर नई पीढ़ी के युवक बुद्धिवाद के झंझावात में बहते हुए इन प्रकाशहीन ध्वस्त खण्डहरों से अतृप्त और सर्वथा निराश होकर तथा चमत्कारवाद को एक मनोरंजन मात्र समझ कर अपने आदर्शों की तलाश में यूरोप और अमेरिका की ओर देखने लगे हैं।

इस प्रकार स्थिति यह है कि आज राम की बातें करने वाले तो राष्ट्र को भूले हैं और राष्ट्र की बातें करने वाले राम को। आवश्यकता है कि धर्म संस्कृति और अध्यात्म के नाम पर खड़े पाखण्ड को तथा उनका सहारा लेकर बढ़े आ रहे विदेशी सभ्यता के गढ़ों को सर्वथा धराशायी किया जावे और राम के सांस्कृतिक आदर्शों पर प्रतिष्ठित राष्ट्रवाद का शंखनाद गुंजाया जावे। उसी दिन 'जयराम' कहना सार्थक होगा। सांस्कृतिक मर्यादाओं के संस्थापक, वर्णाश्रम धर्म के पुनरुद्धारक, क्षात्रधर्म की तेजोमयी मूर्ति, राष्ट्रपुरुष, महामानव राम का पवित्र चरित्र ही आज की घड़ी में राष्ट्र–निर्माण एवं मानव निर्माण के अभियान का पुण्य पाथेय है।

हम याद रखें कि विवेकयुक्त श्रद्धा और श्रद्धायुक्त बुद्धिवाद ही मानवता का कल्याण तीर्थ है। आयें, हम इसी भाव–भूमिका पर खड़े होकर रामायण–इस महान् ग्रन्थ के सम्बन्ध में कुछ विचार करें।

रामायण सम्बन्धी इस विवेचन को विचार क्रम की दृष्टि से हम पाँच खण्डों में प्रस्तुत करना चाहते हैं। (१) **उपक्रमणिका**– इसके अन्तर्गत रामायण महिमा, वाल्मीकि रामायण गौरवम्, वाल्मीकि रामायण में प्रक्षिप्तांश, महर्षि वाल्मीकि,वाल्मीकि रामायण का रचना काल, तथा रामायण की पृष्ठ–भूमि आदि पर विचार होगा। (२) **पात्र-परिचय**– इसके अन्तर्गत रामायण काल के चार मानव वंश तथा रामादि सभी प्रमुख पात्रों का परिचय एवं उनसे मिलने वाली शिक्षा पर विचार होगा। (३) **विचार दोहन (समीक्षा-प्रकरण)**– इसके अन्तर्गत अवतारवाद मीमांसा, वाल्मीकि रामायण में श्रीराम, अवतारवाद या सर्वनाश, चमत्कारवाद, अलकांरवाद, सीता जन्म, अहल्या उद्धार, वानर पदार्थ विवेचन, राक्षस पदार्थ विवेचन, रावण के दश सिर, जटायु, शबरी के बेर, रामचरित मानस कसौटी पर, शंका–समीक्षा आदि विषय होंगे। (४) **रामायण काल**–इस खण्ड के अन्तर्गत रामायण कालीन धार्मिक सिद्धांत, सामाजिक व्यवस्था, शासन–व्यवस्था, वैज्ञानिक प्रगति तथा अन्य विषय होंगे। (५) **उपंसहार**– इसके अन्तर्गत पतित पावन–पावन दयानन्द, आर्य– समाज और श्रीराम, पौराणिक मित्रों से विनम्र अपील, आर्य बन्धुओं से हार्दिक निवेदन, तपोभूमि–परिवार' से दो शब्द, सूक्ति संग्रह आदि होंगे।

इस प्रकार विश्वास है कि परमेश कृपा से रामायण का यह सरल अध्ययन अपने ढंग का प्रथम अनूठा प्रयास सिद्ध होगा। यदि हमारा यह लघु प्रयास प्यारे भारत राष्ट्र को शक्ति देने और माँ मानवता के अश्रु–प्रक्षालन में कुछ भी सहायक सिद्ध हुआ तो हम अपने को कृतकृत्य अनुभव करेंगे। ●●●

(१)

उपक्रमणिका

●

रामायण-महिमा

प्रश्न- रामायण का महत्व और उसका क्या रहस्य है ?

उत्तर- रामायण कहने को एक आर्य महाराजा का जीवन– चरित्र है, परन्तु वास्तव में यह संसार के मलों को नाश करने वाली अग्नि, अन्धकार में प्रकाश, स्त्रियों का धर्म, पुरुषों का पौरुष, ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज, क्षत्रियों का क्षात्रधर्म, वैश्यों का धन और शूद्रों का सेवा धर्म है।

हम जानते हैं कि गृहस्थाश्रम अन्य सभी आश्रमों का आधार है और रामायण गृहस्थ में प्रवेश करने वाले नर–नारियों का सुख–दीपक है। इसकी ज्योति को हाथ में लेकर पुरुष यदि जीवन मार्ग देख–देखकर चले तो हो नहीं सकता कि किसी समय वह जीवन–युद्ध में पराजय प्राप्त करे। कई लोग इसे एक प्रकार का रसायन कहते हैं जिसके विधिवत् सेवन से न केवल पुरुष मृत्यु व बुढ़ापे से बच जाता है बल्कि मरा हुआ और निराश निष्प्राण भी जीवित और जागृत हो सकता है। यदि जातियाँ इसे सेवन करें तो वह कभी भी अपने अन्त को नहीं देख सकतीं। राष्ट्र–जीवन का यह प्रेरणास्त्रोत है।

संसार का इतिहास पढ़ने वाले कहते हैं कि वेदों का प्रचार हट जाने पर आर्य (हिन्दु) जाति को यदि किसी रसायन ने जीवित रखा है तो वह रामायण है।

आर्य वंश के धर्म–कर्म और संस्कृति का वह प्रबल प्रवाह, जिसने एक दिन जगत् के बड़े–बड़े सन्मार्ग–विरोधी भूधरों का दर्प–दलन कर उन्हें रज में परिणत कर दिया था और इस परम पवित्र आर्य जाति का वह विश्व–व्यापक प्रकाश जिसने एक समय जगत् में अन्धकार का नाम तक न छोड़ा था–अब कहाँ है ? इस गूढ़ एवं मर्मस्पर्शी प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि 'वह सब भगवान् महाकाल के महापेट में समा गया।'

जो अपनी व्यापकता के कारण प्रसिद्ध था, अब उस प्रवाह का प्रकाश भारतवर्ष में आज कहाँ है ? वृहत्तर भारत, चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य–इन शब्दों का नाम ही अवशिष्ट रह गया है। कालचक्र

में बल, विद्या, तेज, प्रताप आदि सब चकनाचूर हो चुका है पर इस अवस्था में भी उनका कुछ–कुछ चिन्ह या नाम जो बना हुआ है, यही डूबते हुए भारतवर्ष का सहारा और यही वृद्ध भारत के हाथ की लकड़ी है।

जहाँ महा–महा महीधर लुढ़क जाते थे और अगाध अतल–स्पर्शी जल था, वहाँ अब पत्थरों में दबी हुई एक छोटी–सी किन्तु सुशीतल वारिधारा बह रही है, जिससे भारत के विदग्ध जनों के दग्ध हृदय का यथा कथंचित् संताप दूर हो रहा है। जहाँ महाप्रकाश से दिग्दिगंत उद्भासित हो रहे थे, वहाँ एक अन्धकार से घिरा हुआ स्नेह–शून्य प्रदीप टिमटिमा रहा है जिससे कहीं–कहीं भू–भाग प्रकाशित हो रहा है। वह है–राम–चरित। 'राम–चरित्र' ही अब केवल हमारे संतप्त हृदय की शांति का आधार है और राम–नाम ही हमारे अन्धे घर का दीपक है।

यह सत्य है कि जो प्रवाह यहाँ तक क्षीण हो गया है कि पर्वतों को उलट देने की जगह स्वयं ही प्रतिदिन पाषाणों से दब रहा है और लोग इस बात को भूलते जा रहे हैं कि कभी यहाँ भी एक प्रबल नद प्रवाहित हो रहा था, तो उसकी आशा परित्याग कर देनी चाहिये। जो प्रदीप स्नेह से परिपूर्ण नहीं है तथा जिसकी रक्षा का कोई उपाय नहीं है और प्रतिकूल वायु चल रही है, वह कब तक सुरक्षित रहेगा? (परमात्मा न करे) वायु के एक ही झोंके में उसका निर्वाण हो सकता है।

किन्तु हमारा वक्तव्य यह है कि यदि वह प्रवाह गंगा की निर्मल धारा की तरह बढ़ने लगे, तो किसी की क्या सामर्थ्य है कि वह उसे रोक सके ? क्योंकि वह प्रवाह कृत्रिम प्रवाह नहीं है, भगवती वसुन्धरा के हृदय का प्रवाह है, जिसे हम स्वाभाविक प्रवाह भी कह सकते हैं।

आर्ष संस्कृति के जिस दीपक को हम निर्वाणप्राय देखते हैं, निःसन्देह उसकी शोचनीय दशा है और उससे अन्धकार–निवृत्ति की आशा करना दुराशा मात्र है, परन्तु यदि हमारी उसमें ममता हो और वह फिर सत्यता के स्नेह से भर दिया जाय तो स्मरण रहे कि यह दीप वही प्रदीप है, जिसने कभी विश्वभर को आलोकित किया था।

कभी हम लोग भी सुख से दिन बिता रहे थे, कभी हम भी भूमण्डल पर विद्वान और वीर शब्द से पुकारे जाते थे, कभी हमारी कीर्ति भी दिग्दिगंत व्यापिनी थी, कभी हमारे जय जयकार से भी आकाश गूँजता था और कभी बड़े–बड़े सम्राट् हमारे कृपा–कटाक्ष की भी प्रत्याशा करते थे–इस बात का स्मरण करना भी अब हमारे लिए दुस्साहस हो रहा है। हम लोगों में भी एक दिन स्वदेशभक्त उत्पन्न होते थे, हममें सौभ्रातृ और सौहार्द का अभाव न था, गुरुभक्ति और पितृभक्ति हमारा नित्य कर्म था, शिष्टता पालन और दुष्टदमन ही हमारा कर्तव्य था, अधिक क्या कहें– कभी हम भी ऐसे थे कि जगत् का लोभ हमें अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा सकता था।

महाराज दशरथ का पुत्र स्नेह, श्रीरामचन्द्र जी की पितृ–भक्ति, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की भ्रातृ–भक्ति, भरतजी का स्वार्थत्याग, वशिष्ठ जी का प्रताप, विश्वामित्र का आदर्श, ऋष्यश्रृंग का तप, जानकी जी का पतिव्रत, हनुमान्‌जी की सेवा, विभीषण की शरणागति और रघुनाथजी का कठोर–कर्त्तव्य किसको स्मरण नहीं है ? जो अपने रामचन्द्र को जानता है, वह अयोध्या, मिथिला को कब भूला हुआ है। वह राक्षसों के अत्याचार, ऋषियों के तपोबल और क्षत्रियों के धनुर्वाण के फल को अच्छी तरह जानता है।

बस इसी शिक्षा को लक्ष्य कर हमारे समाज में 'राम–नाम' का आदर बढ़ा। यह एक अकाट्य सचाई है कि ऐसा पावन और शिक्षाप्रद चरित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

आठ सौ वर्ष तक हिन्दुओं के सिर पर कृपाण चलती रही पर 'रामचन्द्र जी की जय' तब भी बन्द न हुई। सुनते हैं कि औरंगजेब ने असहिष्णुता के कारण एक बार कहा था कि हिन्दुओ! अब तुम्हारे राजा रामचन्द्र नहीं हैं, हम हैं। इसलिए रामचन्द्र की जय बोलना राजद्रोह करना है। औरंगजेब का कहना किसी ने न सुना। उसने रामभक्त हिन्दुओं का रक्तपात किया सही, पर 'रामचन्द्र की जय' को न बन्द कर सका। कहाँ है वह अभिमानी ? लोग अब राम की कीर्ति के विश्व ब्रह्माण्ड को देखें और उस औरंगजेब की मृण्मय समाधि (कबर) को देखें और फिर कहें कि राजा कौन है ?

रामायण की महिमा में अन्तर्साक्ष्य

पुण्य प्रवृत्ति करने वाला

(१)'पवित्रं पुण्यं' (बा० १।६८)– यह रामायण पवित्र है और पुण्यकारक है। अर्थात् इसके पठन से अथवा श्रवण से अन्तःकरण पवित्र होता है और उत्तम शुभ कार्य करने की ओर पाठकों की प्रवृत्ति होती है, तथा–

पापघ्नं यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।(बा०१।६८)
यः शृणोति सदा लोक नरः पापात् प्रमुच्यते।(यु०१२८।१०६)

यह रामायण पापमय विचारों को दूर करने वाली है। इस रामचरित्र का जो पाठ करेगा, तदवत् आचरण करेगा, वह सब पापों से मुक्त होगा। जो इस रामायण को सुनता है तथा तदवत् आचरण करता है, उसके पाप नाश होंगे। इस रामायण के पठन से मनुष्य की पाप प्रवृत्ति दूर होती है, अतः रामायण के मनोयोग पूर्वक पढ़ने या सुनने वाले मनुष्य के द्वारा पाप कर्म नहीं हो सकते। अर्थात् आत्मशुद्धि करने के इच्छुक रामायण का पाठ अवश्य नियमपूर्वक करें।

(२) यह निरोगिता बढ़ाता है– 'आरोग्यकरं (यु० १२८।१२२) यह रामायण पढ़ने से आरोग्य प्राप्त होता है। पाप प्रवृत्ति दूर हुई, शुभ प्रवृत्ति बढ़ गई, तो स्वयं आरोग्य प्राप्त होता है। अतः यहाँ कहा है कि रामायण पठन से आरोग्य मिलता है।

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति।
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः।।-यु० १०८।१२०
आयुष्यं। -यु० १२८।१०५,१२२

आरोग्य प्राप्त होने से दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना स्वाभाविक है। उत्तम श्रेष्ठ प्रशस्त कर्म करने वाले श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र पाठ करने से अथवा श्रवण करने से तद्वत् आचरण करते हुए दीर्घ आयु मिल सकती है।

(३) शक्ति और बुद्धि बढ़ाता है– **'बुद्धिकर'** (यु० १२८.।१२२) बुद्धि का चातुर्य बढ़ाने वाला यह रामायण है। **'ओजस्करं'** (यु० १२८.।१२२) शारीरिक शक्ति की वृद्धि करने वाली यह रामायण है। इसी कारण **'यशस्यं'** (यु०१२८.।१०५,१२२) यश बढ़ाने वाला और यश बढ़ने से और बुद्धि तथा शक्ति बढ़ने से **'सुखमुत्तम'** (यु० १२८.१०५,१२१) उत्तम सुख देने वाला भी है। इस तरह–

प्राप्नोति सर्वा भुवि चार्थसिद्धम्। - यु० १२८.।१२१

पृथ्वी पर जो भाग्य प्राप्त होना सम्भव है, तथा जो अर्थ की सिद्धि मिलने वाली है, वह सब रामायण के पठन से प्राप्त है। इसी कारण **'ऋद्धिकामः श्रोतव्यं।'** (यु० १२८.।१२२) समृद्धि की इच्छा करने वालों को इस रामायण का श्रवण–पाठ करना उचित है। (पवित्र आचरण द्वारा ही यह सम्भव है।)

(४) कौटुम्बिक सुख देता है– **'सौभ्रातृकं'** (यु० १२८.।१२२) **'कुटुम्बवृद्धि'** (यु० १२८.।१२१) रामायण पठन से भाइयों में प्रेम बढ़ता है, कुटुम्ब में सुख बढ़ता है, कुटुम्ब में परस्पर प्रेमभाव बढ़ता है। **'स्त्रियश्च मुख्याः'** (यु० १२८.।१२१) उत्तम सुशील स्त्रियाँ होती हैं। परिवार की स्त्रियों द्वारा इस रामायण का पठन अथवा श्रवण करने से वे स्त्रियाँ सुशील होती हैं और श्रेष्ठ सम्मान योग्य भी होती हैं, तथा–

पुत्रकामस्य पुत्रान् वै। (लभते) - यु०१२८.।१०६

पुत्रों की कामना करने वालों के उत्तम सत्पुत्रों की प्राप्ति होती है।

(५) स्त्रियों को लाभ– स्त्रियों को भी इस रामायण के पठन अथवा श्रवण से बड़ा लाभ होता है–

स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयरनुत्तमान्। यु० १२८.।११३

रजस्वला स्त्रियों को रामायण– श्रवण से सुपुत्र प्राप्ति रूप लाभ होता है। रजस्वला रहने की स्थिति में रामायण श्रवण करने से वीरत्व का सुपरिणाम मन पर होता है और उस कारण उसको जो गर्भ रहता है, वह रामचन्द्र जैसा उत्तम वीर होता है।

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः।। यु० १२८.।१०६

'रामचन्द्र के कारण जैसी कौशल्या, लक्ष्मण के कारण जैसी सुमित्रा, भरत से कैकेयी वैसी ही सब स्त्रियाँ उत्तम शूर, पराक्रमी, यशस्वी और दीर्घ जीवी पुत्रों से युक्त होंगी।

(६) सबका लाभ– जो सर्वसाधारण जनता रामायण श्रवण करेगी, उन सबके सब संकट पूर्ण रूप से दूर होंगे–

(यः शृणोति) श्रद्दधातो जितक्रोधी दुर्गाण्यतितरत्यसौ।

- यु० १२८।११०

क्रोध का त्याग करके श्रद्धापूर्वक जो रामायण का पाठ करेंगे अथवा श्रवण करेंगे, उनके सब संकट दूर होंगे। तथा–

प्रवासी स्वस्तिमान् भवेत्। -यु० १२८।११६

जो लोग प्रवास में होंगे, रामायण श्रवण से उनका सब प्रकार से कल्याण होगा।

(७) ब्राह्मण का हित– ब्राह्मण यदि रामायण पढ़ेगा तो वह उत्तम प्रकांड विद्वान होकर बड़ा वक्ता होगा, देखिये–

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्। बा०(१।१००)

(८) क्षत्रिय का हित–रामायण का पाठ करने से क्षत्रिय को भी विजय की प्राप्ति होती है।

स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।(बा० १।११०)
मही विजयते राजा शत्रुश्चाप्यधितिष्ठति। यु० १२८।१०६
राज्ञां च विजयावहम्। (यु० १२८।१०७)

रामायण के पठन से अथवा श्रवण से क्षत्रिय में क्षात्र धर्म के प्रति निष्ठा जागने से उसको विजय प्राप्त होती है, युद्ध में वह यशस्वी होता है और क्षत्रिय के सब शत्रु नष्ट होते हैं। अर्थात् क्षत्रिय विजयी होता है।

(९) वैश्य का हित– वैश्य रामायण पठन से धनधान्य सम्पन्न बनता है।

वणिग्जनः पुण्यफलत्वमीयात्। (बा० १।१००)
धनकामो धनानि च। यु० १२८।१०८)
धनधान्यवृद्धिं। यु० १०८।१०१)

वाणिज्य व्यवहार करने वाले यदि रामायण का पाठ करेंगे, तो उनको अपने कार्य व्यवहार में बहुत बड़ा लाभ प्राप्त होगा। सब प्रकार से धन धान्य की समृद्धि होगी।

यह केवल वैश्यों को ही लाभ है, ऐसा नहीं। उक्त वाक्यों का आशय यह है कि जो धन की इच्छा करता है, उसे धन मिलता है। यह लाभ तो सबके लिए समान है।

(१०) शूद्र का हित–शूद्र यदि रामायण का श्रवण अथवा पठन करेगा, तो उसको स्वकर्त्तव्य पालन से सब प्रकार का महत्व प्राप्त होगा–

जनश्च शूद्रो पि महत्वमीयात्। (१।१००)

(११) रामायण के प्रकाशक का हित– जो लेखक रामायण की प्रतिलिपि करके इस ग्रन्थ का प्रचार करेगा, वह स्वर्ग का सुख प्राप्त करेगा।

ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे।। -यु० १२८।।१२३

इस सम्बन्ध में यदि आज के व्यवहारानुकूल कहना हो तो हम ऐसा कह सकते हैं, कि जो लोग रामायण का मुद्रण और प्रकाशन करेंगे, उनको स्वर्ग सुख प्राप्त होगा। रामायण के अनुवादक, मुद्रक, प्रकाशक आदि सब सुख के भागी होंगे।

इस तरह रामायण के आदिकवि श्री वाल्मीकि ऋषि ने रामायण के लेखन, पठन, श्रवण और मनन के फल लिखे हैं। रामायण से जनता पर इस प्रकार का परिणाम होगा, ऐसी अपेक्षा श्री वाल्मीकि ऋषि करते थे। आज भी अपने राष्ट्र में इसी शुभ परिणाम की इच्छा हम सब करते हैं। पर यह सब तभी सम्भव है जब हम रामायण के पात्रों से प्रेरणा लेकर तद्वत् स्वयं के चरित्र का निर्माण करें।

वाल्मीकि रामायण गौरवम्

आर्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्य में वाल्मीकि–रामायण का स्थान बहुत ऊँचा है। सृष्टि को उत्पन्न हुए दो अरब से कुछ कम वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस काल में लाखों ही ग्रन्थ बने और लुप्त हो गये, केवल वेदों को ही हमारे पूर्वजों ने ईश्वर की अपूर्व देन समझकर सुरक्षित रखा है। उन करोड़ों वर्षों का विस्तृत इतिहास हमको प्राप्त नहीं है, और हो भी कैसे सकता था। इस परिवर्तनशील संसार में हर एक परिवर्तनशील घटना का उल्लेख सुरक्षित रखा नहीं जा सकता तथापि आर्य जाति प्राचीन होते हुए भी नवीन है। इसकी घटनायें स्वरूप से न सही प्रवाह से तो अनादि और अनन्त हैं। वेदरूपी धर्म का मूल समय–समय पर अनेक शाखाओं और फूल–पत्तों के रूप में आविष्कृत होता रहता है। यह शाखायें समय पाकर हरी–भरी होतीं और फिर मुरझा जाती हैं। परन्तु मूल के स्थायी होने के कारण नये पत्ते जो निकलते हैं वह पुराने झड़े हुए पत्तों के समान नहीं होते। इसी प्रकार अनेक मन्वन्तरों में बदलने वाली आर्य–जीवन की परम्परा पतझड़ के पश्चात् भी फिर हरी–भरी आकृति में विद्यमान हो जाती है।

वाल्मीकि रामायण उसी वैदिक परम्परा का नमूना है। किसी जाति के इतिहास में रामायण से पुराने मानवी जीवन का अद्भुत चित्रण नहीं मिलता। पाश्चात्य देशों में यूनानी महाकवि होमर की अद्भुत ख्याति है परन्तु होमर को आदर्श जीवन का चित्रण करने में इसलिए कठिनाई पड़ी कि उस जाति की उत्तम पृष्ठभूमि न थी। कुछ विद्वानों का तो विचार है कि होमर ने वाल्मीकि रामायण का ही अनुकरण किया है और ट्रॉय की विजय लंका–विजय का ही एक यूनानी एडीशन है। फिर भी यदि होमर के पात्रों का वाल्मीकि के पात्रों से संतुलन किया जाय तो आकाश पाताल का भेद दृष्टिगत होता है। यदि हैलन और सीता के चरित्रों को मिलाया जाय तो कौन कह सकता है कि सीता की विकृत आकृति भी हैलन से कहीं बढ़कर नहीं है ? इसी प्रकार वाल्मीकि जी के अन्य पात्रों को लीजिए। उनमें एक वास्तविकता है जो होमर के पात्रों में नहीं पाई जाती।

रामायण एक ऐतिहासिक काव्य है, परन्तु उसमें काव्य के अतिरिक्त आचार–शास्त्र का भी समावेश उत्तमता से पाया जाता है। अन्य देशों में भी और जातियों के मध्यकालीन महाकवियों ने अपनी जाति के उत्थान के लिए काल्पनिक पात्रों की स्थापना करके उनके आदर्श जीवन का चित्रण किया है जैसे अंग्रेजों के महाकवि स्पेंसर ने 'फैरी क्वीन' नामक काव्य रचा और फारसी के महाकवि फिरदौसी ने 'शाहनामा' लिखा, परन्तु इनके पात्र काल्पनिक थे। वाल्मीकि को यह कल्पना करनी नहीं पड़ी, क्योंकि उनके सामने रघुवंश का इतिहास उपस्थित था। आर्य जीवन के चित्रण के लिए वास्तविक चरित्र ही पर्याप्त थे। उन्हें केवल काव्य का रूप देना था और यह श्रेय वाल्मीकि जी को प्राप्त हो गया। किसकी बड़ाई की जाय, वाल्मीकि की या राम की। हम तो दोनों के ही ऋणी हैं। श्रद्धेय पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का एक उर्दू का पद्य है जो उक्त भावना को प्रकट करता है–

राम की लिखकर कथा, तुमको बका हासिल हुई।
राम को भी तूने बख्शी, जिन्दगी ऐ जाविदाँ।।

वाल्मीकि जी को पौराणिक ग्रन्थकारों ने "आदिकवि" का पद प्रदान किया है। उनके साथ कथा गढ़कर उनको अनुष्टुप् छन्द का आविष्कारक कहा जाता है, यह बात तो मानने योग्य नहीं है। क्योंकि आदि–काव्य वेद में अनेक मन्त्र इसी अनुष्टुप् छन्द में विद्यमान हैं, मनुस्मृति भी इसी छन्द में है। परन्तु इस वर्तमान मन्वन्तर में वाल्मीकि जी अवश्य ही प्रमुख कवि थे, उन्होंने अपने काव्य–कौशल से छन्द को भी प्रसिद्ध कर दिया। संस्कृत के सभी आधुनिक महाकवियों ने नतमस्तक होकर वाल्मीकि को अपना गुरु स्वीकार किया है और वह इसी सत्कार के पात्र हैं।

कालिदास ने ठीक ही लिखा है–

अथवा कृतवाग्द्वारे संशे स्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रेस्वेवास्ति मे गतिः।।

वाल्मीकि रामायण एक महान् ग्रन्थ है, इस उद्यान से अनेक कवियों ने अपना घर सजाने के लिए पुष्प चुने। परन्तु उद्यान तो उद्यान ही है। जो रस वाल्मीकि जी की कविता में है, वह अन्यत्र पाया नहीं जाता है। वाल्मीकि की स्वाभाविक रचना के समक्ष अन्य कवियों के काव्य वाग् विजृम्भण मात्र प्रतीत होते हैं। वाल्मीकि का अनुकरण कठिन है।

वाल्मीकि रामायण बड़ा स्फूर्ति देने वाला राष्ट्रीय महाकाव्य एवं ऋषि प्रणीत अद्भुत ग्रन्थ है। प्राचीन काल के तपस्वी ऋषियों के अन्तःकरणों में कौन–सी राष्ट्रीय आकाक्षाँयें कार्य करती थीं, उनका ज्ञान इस ग्रन्थ के अभ्यास से हो सकता है। इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्र के समय का इतिहास है। यह इतिहास है इसमें सन्देह नहीं है, पर वह है काव्य के रूप में। शुद्ध इतिहास और काव्य रूप इतिहास में भेद है, इस भेद को लक्ष्य में रखकर यदि इस ग्रन्थ का मननपूर्वक वाचन किया जाय, तो कवि के अन्तःकरण के भाव पाठकों के मन में प्रकट हो सकते हैं। इस दृष्टि से पाठक इस ग्रन्थ का पारायण करें, ऐसी पाठकों से प्रार्थना यहाँ की जाय तो वह अयोग्य नहीं होगी।

विदेशी विद्वानों की सम्मति

मि० ग्रेफ्ट साहिब वाल्मीकि रामायण के विषय में लिखते है–'जगत् में छन्दों की पुस्तकें तो बहुत हैं पर आचार को छन्दों के रूप में कोई कवि ऐसी दृढ़ता, मनोहरता एवं रसिकता से नहीं बांध सका। इस प्रभावशाली ढंग में धर्म की संज्ञा देना एक रामायण का ही काम है। केवल यही एक कविता है जो हमारे दिलों में बड़ी उत्तमता से सचाई के प्रति अनुराग पैदा कर देती है। हम रामायण को पढ़कर कुछ के कुछ बन जाते हैं। हम में ऊँचे–२ ख्याल भर जाते हैं और वह गुण जो मनुष्य की उत्कृष्टता के भूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

नई स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारत के निवासियों में रामचरित्र को जानने की नई उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई है। हम रामराज्य की प्रशंसा सुनते हैं, उसी राज्य को पुनः स्थापित करने को हमारा जी चाहता है। हमारे देश की बागडोर हमारे हाथ में है। हम राम–राज्य लाना चाहते हैं। वह राम–राज्य क्या था और उसे हम पुनः कैसे ला सकते हैं, इसका पता केवल वाल्मीकि रामायण से ही लग सकता है और वह भी उसके विशुद्धीकृत संस्करण से।

वाल्मीकि रामायण में प्रक्षिप्तांश

प्रश्न- वाल्मीकि रामायण के विशुद्धीकृत संस्करण की जो बात कही गई तो क्या इसमें कुछ अशुद्ध, अप्रामाणिक और त्याज्य भी है ?

उत्तर- देश के दुर्भाग्य एवं जाति के आलस्य और अविद्या अन्धकार तथा स्वार्थ के बढ़ जाने से प्रायः लोगों ने आर्यजाति के साहित्य और इतिहास को जिस निर्दयता से दूषित किया है वह किसी से छुपा नहीं। बहुत से लोगों का विचार है और वह बहुत दूर तक सत्य है कि आर्य जाति का कोई भी पुरुष रचित ग्रन्थ जैन तथा यवन राज्य के समय में वाममार्गी तथा अन्य धूर्तों के हाथों में शुद्ध नहीं रहा सिवाय अपौरुषेय ज्ञान (वेद) के, क्योंकि उसकी रचना अलौकिक एवं संख्यावद्ध होने के कारण वह इनकी तुच्छ बुद्धि व सामर्थ्य से विकृत होना असम्भव था। इसी चक्र में वा० रामायण भी सैकड़ों वर्षों तक घूमती रही और इसके न केवल बड़े–बड़े काण्ड वा सर्ग ही अन्य लोगों की रचना से दूषित हैं किन्तु बहुत से श्लोकों और पादों तथा पदों को भी अन्य पदों से बदल दिया गया है। इस विषय में सम्पूर्ण रामायणों के संस्कर्ता और टीकाकर्ता सहमत हैं।

वेदों के अतिरिक्त सभी वैदिक ग्रन्थ परतः प्रमाण की कोटि में हैं। उनमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त है अर्थात् दूसरों का मिलाया हुआ है, उसको त्याग देना चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थ, गृह्य–सूत्र, स्मृतियाँ आदि सभी दूषित हो चुके हैं और उनको तदवत् अक्षरशः मान लेने से बड़ा अनर्थ होता है। यह बात कुछ अनोखी तो है नहीं अत्यन्त स्वाभाविक है। प्रातःकाल एक पात्र में शुद्ध दूध दुहकर रख दीजिए और उसको ढकिए नहीं, दो घण्टे के भीतर ही उसमें कुछ न कुछ पड़ जायेगा। ढक कर रखने से भी शाम तक सड़न पैदा हो जायगी। इसलिए छानने की आवश्यकता होती है। ऋग्वेद में स्पष्ट है कि –"सक्तुमिव तितउना" फिर वाल्मीकि रामायण में तो कुछ नहीं बहुत कुछ मिलावट है।

प्रश्न- पर इसका ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर- थोडा भी हिम्मत करके विचार और विवेक की भट्टी पर चढ़ाते ही मिलावट का वह मैल तैर कर ऊपर आ जाता है। इस सम्बन्ध में मुख्य कसौटी है–वेद।

''इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मतम्''

– वा० रा० १।१।६८

महर्षि वाल्मीकि के इस वचन के अनुसार सम्पूर्ण रामायण वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल होनी चाहिये। उसमें वैदिक मर्यादा के अनुकूल ही भगवान् राम के चरित्र का चित्रण होना आवश्यक है। हम ऐसा सोच भी नहीं सकते हैं कि आरम्भ में ही 'वेदैश्च सम्मतम्' की प्रतिज्ञा करके ऋषि वाल्मीकि अवैदिक (वेद विरुद्ध), सृष्टिक्रम विरुद्ध, बुद्धि–शून्य और पापप्रेरक प्रसगों को अपनी अमर कृति में स्थान देंगे। किन्तु वर्तमान रामायण में वैदिक सिद्धान्तों और मर्यादा के विपरीत बहुत कुछ है। इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में जो कुछ भी अवैदिक तत्व है वह सब बाद में की गयी मिलावट है जैसे राम को जहाँ–तहाँ ईश्वरावतार सिद्ध करना, कई प्रसंगों में चमत्कारों का वर्णन, वनवास काल में ऋषियों के आश्रमों में निर्दयता और उच्छ्रङ्खलतापूर्वक हरिण आदि को मारना, पकाना खाना आदि।

विरोधाभास –अर्थात् किसी भी विषय में मूल स्थापनाओं (मान्यताओं) में विरोध स्पष्ट ही इस बात का द्योतक है कि उस ग्रन्थ की रचना में एक से अधिक का हाथ है, अर्थात् उसमें मिलावट है। उदाहरण के लिए 'वाल्मीकि–नारद संवाद' में बहुत ही स्पष्ट रूप में एक आदर्श मानव के चरित्र चित्रण के रूप में आदिकवि अपनी कलम को उठाते हैं और अन्यत्र भी सर्वत्र ही वाल्मीकि के राम एक 'मानव' हैं। उसमें मानव सुलभ दुर्बलतायें भी काफी उभार के साथ दीख पड़ती हैं पर कहीं–२ अति मानव या ईश्वरावतार का भी पुट बहुत साफ है। कहना न होगा कि यह ईश्वर राम वाल्मीकि का राम नहीं, किन्हीं और हाथों की करामात है। इसी प्रकार और भी अनेकों स्थल हैं जिनमें मूल स्थापनाओं को बहुत ही चतुराई से खण्डित करने का दुष्प्रयास किया गया है, वह सब प्रक्षिप्त मिलावट है। पुनरुक्ति दोष भी मिलावट को सिद्ध करता है।

श्री श्याम जी पाराशर अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखते हैं– ''वाल्मीकि रामायण को ही मैं राम का जीवन सम्बन्धी सबसे बड़ा प्रमाण (अधिकार) मानता हूँ परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि वाल्मीकि रामायण का जो वर्तमान रूप है वह सब ऋषि वाल्मीकि का लिखा हुआ नहीं। इस ग्रन्थ में पचासों कवियों की कवितायें हैं। इस ग्रन्थ में हमारे अपने जमाने तक निरन्तर वृद्धि होती रही है।''

भारतवर्ष में अनेक मत–मतान्तरों के प्रचार से प्रभावित उनके अनुयायियों द्वारा (मुद्रणालय युग से पहले जब हस्तलिखित प्रणाली का युग था) समय–समय पर श्लोक बनाकर मिलाये गये। यही कारण है कि प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक एक दूसरे के साथ नहीं मिलतीं।

वाल्मीकि रामायण की श्लोक संख्या के सम्बन्ध में वैदिक मिशनरी स्व० श्री मेहता जैमिनी (स्वा० ज्ञानानन्द जी) ने लिखा है कि 'वाल्मीकि रामायण में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हो गये हैं, अतः वर्तमान समय में वाल्मीकि रामायण में ८८८८श्लोक हैं, परन्तु वाल्मीकि ६६८० अपने रचित वर्णन करता है। श्री

मेहता जैमिनी ने अपने लेख की पुष्टि में यह नहीं लिखा कि ये अंक उन्होंने कहाँ से उद्धृत किये हैं। वर्तमान प्रचलित रामायण में तो ८८८८ नहीं २४ सहस्त्र श्लोक हैं और उसमें उक्त लेख भी नहीं मिलता। बहुत सम्भव है कि जो हस्त–प्रति श्री मेहता जी के देखने में आई हो, वह अब अप्राप्य हो और प्रक्षेपकों ने उक्त अंश को निकाल दिया हो। जो भी हो, यह निश्चित है कि वर्तमान वाल्मीकि रामायण का एक बड़ा भाग प्रक्षिप्त है। इसमें पुनरुक्ति दोष भी कई लेखकों की कृति सिद्ध करता है।

आदि वाल्मीकि रामायण में कितने काण्ड थे, इस विषय में भी सब विद्वान एकमत नहीं हैं। खोज करने वाले कुछ विद्वानों का कहना है कि बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड का ही भाग है। इस प्रकार प्राचीन समय में वाल्मीकि रामायण में पांच काण्ड ही थे। वर्तमान में बम्बई, मद्रास आदि स्थानों से प्रकाशित रामायणों में छः काण्ड हैं, जबकि कथावाचक भक्तों को आठ काण्ड ही रुचिकर हैं। अधिकांश विद्वान वाल्मीकि रामायण में छः काण्ड ही मानते हैं।

वास्तव में वाल्मीकि मुनि ने रामायण युद्ध काण्ड तक ही लिखी थी, यह बात वाल्मीकि रामायण के अन्तर्साक्ष्य से भी सुस्पष्ट है।

युद्ध काण्ड के अन्त में रामचन्द्र के राज्याभिषेक का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है–

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा।।

– यु० १२८।६१

"अपने शत्रु को मारकर यशस्वी रामचन्द्र जी सम्पूर्ण राज्य पर शासन करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। इसके अनन्तर ही वाल्मीकि ने रामचन्द्र जी के राज्य के सम्बन्ध में लिखना प्रारम्भ कर दिया और लिखते हुए अन्त में कहा–

आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः।।

अर्थात् रामचन्द्रजी के शासनकाल में समस्त प्रजा धर्म में तत्पर रहती थी, कोई झूठ नहीं बोलता था और सब श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त थे।" इसके एकदम बाद ही रामायण के संम्बन्ध में लिख दिया गया है। वे लिखते हैं कि–

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।।

"धर्म, यश, आयु तथा राजाओं को विजय देने वाला यह आर्ष आदिकाव्य वाल्मीकि ने बनाया है।" रामायण के सम्बन्ध में लिखते हुए आगे लिखा है कि–

भविष्यन्ति सदानन्दाः पुत्रपौत्रसमन्विताः।
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुष्य विन्दति।।

अर्थात् "इस रामायण को सुनने वाले सदा सानन्द, पुत्र–पौत्रों से युक्त और दीर्घ आयु वाले होते हैं।" अन्त में आप लिखते हैं–

ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः।
रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा।।

जो इस सम्पूर्ण रामायण को सदा पढ़ते और सुनते रहेंगे, उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा पुत्र लाभ होगा।

युद्ध काण्ड के अन्त में जिस प्रकार ग्रन्थ का उपसंहार किया गया है, उससे यह प्रतीत होता है कि रामायण यहीं पर समाप्त हो जाती है। अन्तिम श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि रामायण यहीं पर सम्पूर्ण हो गई। इसलिये वाल्मीकि रामायण में बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर और युद्ध –ये छः काण्ड ही मानने चाहिये, और उत्तर तथा लव–कुश काण्ड बाद में प्रक्षिप्त किये हुए ही समझने चाहिए।

उत्तर काण्ड का प्रथम श्लोक है–

प्राप्तराजस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते।
आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम्।।

राक्षसों को मार कर जब श्री रामचन्द्र जी राजगद्दी पर बैठे, तब सब ऋषि–मुनि उनका अभिनन्दन करने के लिये वहाँ आये।

जब युद्धकांड में राजगद्दी के पश्चात् रामचन्द्र के राज्य का वर्णन हो चुका और रामायण की महिमा भी लिखी जा चुकी तब फिर से उनकी राजगद्दी का वर्णन क्यों?

उत्तर कांड के अन्त में भी रामायण की महिमा लिखी गई है और कहा है कि–

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादार्द्धं पदमेव वा।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा।।
एवमेतत् पुरान्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रव्याहरेत विस्त्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम्।।

अर्थात् "भक्ति के साथ इस रामायण के एक श्लोक का चौथाई भाग या एक पद भी जो सुनता है वह ब्रह्मलोक में जाता है और ब्रह्मा द्वारा पूजित होता है। इस प्रकार लोग श्रीरामचन्द्र जी के इस इतिहास को प्रेम के साथ पढ़ें और सुनें जिससे सबका कल्याण हो, विष्णु भगवान् की महिमा बढ़े।

जब युद्ध कांड के अन्त में ग्रन्थ को समाप्त करते हुए वाल्मीकि मुनि ने रामायण की महिमा लिख दी, तब फिर दूसरी बार रामायण की महिमा लिखने का क्या अर्थ ? इस प्रकार उत्तर काण्ड के प्रारम्भ और अन्त दोनों से यही प्रतीत होता है कि उत्तर कांड रामचन्द्र के कथित भक्तों का बाद में प्रक्षेप किया हुआ भाग है। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के ८९ वें श्लोक में "राम–सीतामनुप्राप्य राज्यं पुरवाप्तमान्" अर्थात् सीता को पाने के अनन्तर राज्य पुनः प्राप्त करने की बात कहकर रामराज्य की

विशेषताओं का उल्लेख करके रामायण की महिमा कही गई है। यह प्रथम सर्ग सम्पूर्ण रामकथा का सार या 'मूल रामायण' है। ठीक उक्त क्रम है जो छठे कांड में है जो रामकथा की समाप्ति का द्योतक है। इससे भी उत्तर कांड सर्वथा प्रक्षिप्त सिद्ध होता है।

उत्तर कांड के रामायण से पृथक् होने के सम्बन्ध में एक बात मुख्य है, वह यह कि प्रथम छः काण्डों में वाल्मीकि ने किसी स्थान पर भी रामचन्द्र को विष्णु भगवान् के नाम से नहीं लिखा। कौशल्या, सीता, लक्ष्मण, भरत या विभीषण, हनुमान् और सुग्रीव जिसने भी रामचन्द्र जी को सम्बोधन किया है, सबने मानवेन्द्र, राघव, नरपुंगव, राजेन्द्र, पुरुषर्षभ तथा आर्य आदि नामों से ही सम्बोधन किया। वाल्मीकि ने राम को मनुष्यों में श्रेष्ठ व उच्च–कोटि का तो अवश्य स्वीकार किया है, किन्तु विष्णु या भगवान् कभी स्वीकार नहीं किया, इसके विपरीत उत्तर–कांड में रामचन्द्र को स्थान–२ पर विष्णु नाम से लिखा गया है। इससे भी स्पष्ट है कि यह काण्ड श्रीराम के कथित भक्तों का बाद में प्रक्षिप्त किया हुआ है।

इतना ही नहीं, वर्तमान प्रक्षेप युक्त रामायण के निम्न श्लोक से तो वाल्मीकि रामायण में छः काण्ड ही हैं, इस मान्यता में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता–

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतापञ्चं षट् काण्डानि चोत्तमम्।।

अर्थ- इसमें महर्षि ने चौबीस हजार श्लोक, पाँच सौ सर्ग, छः काण्डों में उत्तम विधि से कहे हैं।

इस प्रकार उत्तरकांड और लवकुश कांड को निकाल देने पर मिलावट का एक बड़ा भाग और अधिक दोषपूर्ण भाग तो दूर हो जाता है। अन्य कांडों में जो मिलावट रह जाती है उसको पहचानने के लिए सबसे बड़ी कसौटी यह है कि रामायण एक इतिहास है, एक आदर्श मानव की सफल जीवनगाथा है, अतः इस ऐतिहासिकता को संदिग्ध बनाने वाले सभी प्रसंग स्वभावतः मतवाद की लहर में जोड़े गये अंश होने से सर्वथा त्याज्य हैं। हाँ, ऐसा करते हुए काव्यगत अलंकारों के सौकर्य और सौंदर्य को हम नहीं छेड़ें। उन्हें घटना मानने की भ्रांति का ही निराकरण अधिक समीचीन होगा। उदाहरण के लिए सागर पर सेतु निर्माण का प्रसंग है। राम के शरसंधान करते ही सागर हाथ जोड़ उपस्थित हुआ और प्रार्थना करने लगा। यह सब वस्तुतः अंलकारिक वर्णन है। दूर तक विस्तृत समुद्र को देखकर राम निराश मन सीता को प्राप्त न कर सकने के विचार से व्याकुल थे। लक्ष्मण के द्वारा पुरुषार्थ की महिमा सुनकर उनका सोया हुआ पुरुषार्थ संकल्प शक्ति के रूप में जाग उठा। राम का धनुष उठाना इसी संकल्प शक्ति का प्रतीक है। नेपोलियन के दृढ़ संकल्प के आगे 'आल्पस्' पर्वत झुक गया अर्थात् नेपोलियन की सेना ने उसे पार कर लिया। राम की दृढ़ संकल्प शक्ति (शर–संधान) देखकर समुद्र हाथ जोड़कर चरणों में उपस्थित हो गया, अर्थात् राम सेतु–निर्माण करने में सफल हुए। कैसा मनोरम काव्यमय वर्णन है। मानव महिमा की कैसी सुखद और प्रेरणाप्रद झाँकी है! हमें प्रक्षिप्तांश निकालने के आवेश में ऐसे काव्य–सौरभ से सुरक्षित प्रसंगों को भी निकाल नहीं देना है। सिर्फ इसके साथ जुडे चमत्कार के खोल को उतार फेंकना है। यह बताना है कि यह कोई घटना नहीं है, कवि का अलंकारिक वर्णन है।

इस प्रकार श्रद्धा और विवेक, हृदय और मस्तिष्क के समन्वय के धरातल पर इस महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ की समीक्षा, इसका शुद्धिकरण न केवल भारत वरन् विश्वभर के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है। प्रक्षिप्तांश के विष को निकाल देने पर रामायण का जो संशुद्धीकृत या मूल रूप रह जाता है, वह एक ऐसा दिव्य रसायन है जिसका सेवन कर कोई भी व्यक्ति, कोई भी परिवार अथवा कोई भी राष्ट्र अमरता लाभ कर सकता है। आइये, हम इसे प्रेम से पियें और सुख से जियें।

वाल्मीकि रामायण का रचना काल

इतिहास ग्रन्थों में रामायण का सर्वोच्च और सर्वप्रथम स्थान है। प्रामाणिक इतिहास में केवल रामायण और महाभारत की गणना है, इनमें भी रामायण प्रथम है। यह ग्रन्थ श्री रामचन्द्रजी के समय में ही बना था जैसा कि इसके आन्तरिक प्रमाणों से प्रकाशित होता है। मूल रामायण में १ से लेकर ६० श्लोकों तक तो भूतकाल लिखा गया है, और ६१ से ६७ तक भविष्यत् काल लिखा है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जब रामचन्द्र जी ने रावण को मार, विभीषण को लंका का राज्य दे, नन्दिग्राम में आकर जटा उतार, अयोध्या का राज्य पुनः प्राप्त कर लिया, उसके अनन्तर रामायण की रचना हुई। और तदनन्तर जो कृत्य किये उनका भविष्यत् काल में 'ऐसा करेंगे' इस प्रकार वर्णन है, जिससे उन कृत्यों के पूर्व रामायण की रचना की गई, ऐसा सिद्ध होता है। यथा–

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृत कृत्यस्तदा रामो विज्वरं प्रमुमोद ह।।१।८५
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान्।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पके सुहृदावृतः।।१।८६
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्य पराक्रमः।
भरतस्यान्तिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत्।।१।८७
पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीव सहितस्तदा।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा।।१।८८
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितो नघः।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान्।।१।८९

यहाँ तक सब भूतकाल द्योतक क्रियाओं का प्रयोग हुआ है, इसके अनन्तर भविष्यत् क्रियायें लिखी गई हैं। यथा–

लोके न पुत्र मरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवाः नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।।१।८९

अश्वमेध शतैरिष्ट्वा तथा बहु सुवर्णकैः।।६४
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्।
असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः।।६५
राज वंशांछतगुणान् स्थापयिष्यति राघवः।
चातुर्वर्ण्यञ्च लोके स्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति।।६६

अतः यह बात निर्विवादतया स्पष्ट है कि रामचन्द्र के राज्यप्राप्ति के अनन्तर और अश्वमेध–यज्ञ करने के पूर्व के समय में इस महाकाव्य की रचना हुई थी।

वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड के चतुर्थ सर्ग के प्रथम श्लोक से भी इसी विचार की पुष्टि होती है–

प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितम् कृत्स्नं विचित्र पदमर्थवत्।।

– वा० रा० बाल काण्ड ४।१

अर्थात् राम ने जब वन से लौटकर राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया, उसके बाद भगवान् वाल्मीकि मुनि ● ने उनके सम्पूर्ण चरित्र के आधार पर विचित्र पद और अर्थ से युक्त (काव्यगत विशेषताओं से परिपूर्ण) रामायण काव्य का निर्माण किया।

महर्षि वाल्मीकि

वाल्मीकि मुनि का जीवन वृत्तान्त विशद रूप में उपलब्ध नहीं है। उनके सम्बन्ध में दो एक घटनाएँ ही मिलती हैं जिनके आधार पर उनका परिचय दिया जाता है। वाल्मीकि कहाँ–२ रहे, इन्होंने क्या–क्या कार्य किये, शिक्षा–दीक्षा किस प्रकार हुई, आयु कितनी थी, इत्यादि सब कुछ अन्धकार में ही है।

वाल्मीकि मुनि का नाम पहले रत्नाकर था। कहते हैं कि जब यह बालक ही था तब प्रयाग के निकट किसी वन में निवास करने वाली एक भीलनी इसे चुरा कर ले गई। उस भीलनी के गृह में सन्तान नहीं थी। वह अपनी कुटिया में ले जाकर रत्नाकर का बड़े प्रेम से पालन करने लगी। वे भील बड़े क्रूरकर्मा थे, भूले–भटके यात्रियों को लूटना–मारना ही उनका काम था और इसी दुष्ट कर्म से वे अपनी आजीविका चलाते थे। रत्नाकर भी बड़ा होकर यही काम करने लगा। वह बड़ा बलवान्, पराक्रमी, धनुर्धारी और निर्दयी था। मनुष्यों के मारने–लूटने में इसको तनिक भी दया नहीं आती थी। यह दिन भर वन में जन्तुओं को मारने, शिकार खेलने, लूट–खसोट में ही मग्न रहता था।

● यहाँ महर्षि वाल्मीकि के लिए भी 'भगवान्' शब्द का प्रयोग दृष्टव्य है। स्पष्ट है कि भगवान्' शब्द सिर्फ ईश्वरवाची ही नहीं, महान् आत्माओं के लिए भी प्रायः इस शब्द का प्रयोग होता है। भगवान् राम-कृष्ण, भगवान् दयानन्द आदि प्रयोगों के पीछे भी यही आधार है।

बड़ा होने पर इसका विवाह एक भील–कन्या से हुआ था। उस स्त्री से कई पुत्र और पुत्रियाँ हुई। जैसे–२ परिवार बढ़ता गया तैसे–तैसे उसके पापकर्म भी बढ़ते गये। सारे कुटुम्ब के पालन–पोषण का भार उसके कन्धों पर था, इस कारण वह पहले से अधिक लूट–मार करने लगा, यहाँ तक कि अब वह एक–एक पैसे के लिए, फटे–पुराने वस्त्रों के लिए और लोटे–थाली के लिए भी पथिकों का वध कर देता था, उन पर तनिक भी दया नहीं करता था।

दैवयोग से एक दिन कुछ साधु उसी वन में आ निकले जहाँ वह यात्रियों को मारने के लिये घात लगाये बैठा था। उस समय वह भूख से व्याकुल हो रहा था, कई दिनों से उसे कोई शिकार न मिला था, घर में बाल–बच्चे भूख से तड़प रहे थे, साधुओं को देखते ही उसने धनुष को चढ़ाया और उनके निकट जाकर बोला– जो कुछ तुम्हारे पास है दे दो, नहीं तो सबके प्राण ले लूँगा।

रत्नाकर के ऐसा कहने पर साधु तनिक भी विचलित न हुए प्रत्युत् मुस्कराते हुए बोले, हे भाई! जो कुछ हमारे पास है वह तुम हमसे ले लो, परन्तु हमारी एक बात का उत्तर दो कि तुम यह क्रूर कर्म किसलिए करते हो ? तब रत्नाकर बोला– हे साधु लोगो! मेरे स्त्री है, पुत्र हैं, कन्याऐं हैं, उन्हीं के पेट के लिए यह नर–हत्या करता हूँ। आज कई दिनों में मुझे कोई शिकार मिला है, इसलिए जो तुम्हारे पास है दे दो। तब साधु बोला, हे भाई! भला यह तो बतला कि इस दुष्ट कर्म के फल को तू अकेला ही भोगेगा या तेरे कुटुम्बी भी साथ भोगेंगे ? यदि वे भी इस पाप के भागी हैं और इसके फल को भोगेंगे तो हमारे वस्त्र और लोटे ले लेना और यदि वह फल के भागी न बनें तो इस कर्म का त्याग कर देना।

यह सुनकर रत्नाकर ने हँस कर कहा– हे साधुओ! क्या मैं इतना मूर्ख हूँ जो तुम्हें छोड़ कर घर पूछने जाऊँ ? वाह! भागने की युक्ति तुमने अच्छी सोची है। छोड़ो इन बातों को, शीघ्र ही अपने वस्त्रादि मुझे दो और प्राण लेकर चले जाओ।

रत्नाकर के इस प्रकार कहने पर वह साधु बोले– हे भाई! हमारी भागने की इच्छा नहीं है। यदि तू हमारे ऊपर विश्वास नहीं करे तो वृक्षों के साथ हमें बाँध दो और फिर घर जाकर पूछो।

घर जाकर उसने पत्नी से पूछा कि क्या इस पाप कर्म का जो दण्ड मिलेगा उसे तू भी भोगेगी।

पति के मुख से यह वचन सुनकर स्त्री ने कहा कि भला एक के कर्म का फल दूसरा भी भोगता है ? तुम जो पाप करते हो उसका फल भी तुम ही भोगोगे, देखो मै कब से कहती हूँ कि तू हमारे लिए ऐसा कुकर्म मत कर। यदि तू इस काम को बुरा समझता है तो छोड़ दे और मेहनत–मजदूरी से हमारा और अपना पेट पाल। यह उत्तर सुनकर रत्नाकर को बहुत दुःख हुआ फिर यही प्रश्न बारी–२ से पुत्रों, कन्याओं और सबसे पूछता गया। सबने यही उत्तर दिया कि हम तेरे पापकर्म के दण्ड के भागी नहीं है, तू अकेला ही पापों का फल भुगतेगा। अब तो रत्नाकर की आँख खुल गई। उसका हृदय पश्चात्ताप के सागर में डूब गया और वह रोता हुआ घर से लौटा। वन में जाकर उसने साधुओं को खोल दिया और नेत्रों से जल बहाता हुआ उनके पाँवों पर गिर पड़ा। अब वह रत्नाकर पहला रत्नाकर न था। इसी एक घटना ने उसे कुछ का कुछ बना दिया। वह गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगा कि हे महात्माओ! अब मेरी रक्षा करो, मैं बहुत भूला हुआ था। अब मैं इस भवसागर से किस प्रकार पार उतरूँ ? आपने मुझसे यह कुकर्म छुड़वाये हैं, अब पापों से छूटने का उपाय बताओ। रत्नाकर की यह दशा देखकर

साधुओं ने उसे तपस्या करने और भगवान् का ध्यान लगाने का उपदेश दिया और इसके बाद साधु वहाँ से चले गये।

साधुओं का उपदेश मानकर रत्नाकर तमसा नदी के निकट वन में जाकर परमात्मा के ध्यान में बैठ गया। कई वर्ष पर्यन्त वह उसी स्थान पर समाधि लगाए बैठा रहा। उसकी अन्तरात्मा में प्रकाश हो गया और उसका हृदय ब्रह्मानन्द में मग्न होकर संसार को और अपने आपको भी भूल गया। इतने लम्बे समय में उसके चारों ओर मिट्टी का बड़ा घरोंदा लग गया, कीड़ो ने उसके अन्दर बाँबियाँ बना लीं। कई वर्षों के पश्चात् रत्नाकर बाँबी (अर्थात् वाल्मीकि) से बाहर निकला और इसी से उसका नाम वाल्मीकि प्रसिद्ध हो गया।

महर्षि वाल्मीकि अब आश्रम में रहकर भगवान् की भक्ति करने लगे। उनके हृदय में दया का स्रोत बहने लगा। एक दिन वह शिष्यों के साथ तमसा नदी में स्नान करने के लिए गये, वहाँ सारस पक्षियों का जोड़ा क्रीड़ा कर रहा था। महर्षि वाल्मीकि प्रकृति की सुन्दरता को, सारसों की क्रीड़ा को देखकर प्रसन्न हो रहे थे कि इतने में एक व्याध ने बाण से नर सारस को मार डाला। मादा सारस जो बड़े प्रेम से सारस के साथ खेल रही थी, अकस्मात् नर के मर जाने पर चीखती हुई उसके पास घूमने लगी। उस समय महामुनि वाल्मीकि के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उनके हृदय से निकला–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीं समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।

"हे निषाद! अनन्त काल तक तुझे सुख न मिले, क्योंकि तूने काम–मोहित सारस के जोड़े में से एक को मार डाला है।"

यह शाप देकर वह अपने आश्रम में आ गये। उन्होंने उस दुःख को भुलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह न भूला और बारम्बार वह उपरोक्त श्लोक को पढ़कर ठण्डी साँस लेने लगे। इतने में कोई ऋषि, उनके पास आये और बोले–हे महामुने! यह जो तुम बोल रहे हो, इसी प्रकार के श्लोकों में श्री रामचन्द्र का जीवन चरित्र बनाओ, इससे तुम्हारे मन का दुःख दूर हो जावेगा। महामुनि नारद तुम्हें रामचन्द्र का जीवन चरित्र बता देंगे। इस पर वाल्मीकि रामचरित के प्रणयन में प्रवृत्त हुए।

वाल्मीकि के जीवन से सम्बन्धित लूट-मार की कथा सत्य प्रतीत नहीं होती। (सम्पादक)

रामायण की पृष्ठभूमि

(श्रद्धेय पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के शब्दों में)

रामायण की कथा सूक्ष्म रीति से विचार करने पर यह बात स्वयं प्रकट होती है कि इस रामायण की कथा में– (१) देव जाति, (२) आर्य जाति (जिसको नर या मानव कहा गया है), (३) वानर जाति तथा (४) राक्षस जाति– इन चार मानव वंशों का वर्णन आया है, अर्थात् इनका राष्ट्रीय संघर्ष इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है।

राजा दशरथ के अश्वमेध में नेताओं की एक बड़ी सार्वभौमिक परिषद हुई थी। इस परिषद मे रावण के पाशवी शक्ति पर खड़े हुए साम्राज्य का नाश करने का प्रस्ताव सबकी सहमति से स्वीकृत किया गया था। इस परिषद् में किस जाति को इस रावण–वध के सम्बन्ध में किस कार्य को करना चाहिए, यह भी निश्चित हुआ था। इस परिषद् में (१) देववीर और (२) ऋषि प्रमुख कार्यकर्त्ता थे और (३) आर्य राजा, आर्य नेता पीछे–पीछे रहकर मूक अनुमोदन देने वाले थे। आर्य राजा सम्राट रावण से बहुत ही डरते थे, इसलिए इस अधिवेशन में ये शामिल नहीं हुए थे।

इस सार्वभौमिक परिषद् में वानर–राक्षस नहीं आये थे। इसका कारण यह था कि वानर राज बाली का राक्षसराज रावण के साथ अग्निसाक्षिक सख्य हुआ था, अर्थात् कोई परस्पर एक–दूसरे पर आक्रमण न करे, दूसरा शत्रु आक्रमण करने लगे, तो दोनों मिलकर उसका प्रतिकार करें, यह इस सन्धि का आशय था। अर्थात् वानर व राक्षस ये परस्पर मित्र राष्ट्र के लोग थे, इस कारण देव और आर्यों की रावण विरोधी परिषद् में वानर तथा राक्षसों का आना उक्त कारण से असम्भव था।

इस सार्वभौमिक परिषद् में यह निश्चित हुआ कि वानरराष्ट्र को राक्षसराष्ट्र से अलग करना और उसको आर्यराष्ट्र के उद्दिष्ट कार्य में सहभागी बनाना है। इसी उद्देश्य से इस परिषद में यह भी निश्चित हुआ कि वानर जाति के तरुण युवकों को विशेष रीति से तैयार किया जावे और यह कार्य ऋषि तथा देव मिलकर करें।

श्रीरामचन्द्रजी ने रावण के साथ मित्रता करने वाले बाली का वध किया और सुग्रीव के साथ मित्रता करके सब वानरों को आर्यों के रावण वध रूप कार्य में सहभागी बनाया। श्रीरामचन्द्रजी के इस कार्य का महत्व बड़ा भारी है। कई लोग बालिवध के कारण श्रीरामचन्द्रजी को दोष देते हैं, पर यदि बाली का वध न होता तो, वानर राक्षसों के साथ मिल जाते और आर्यों की सेना लंका पर हमला करने के लिए रामेश्वर तक पहुंच ही नहीं सकती थी, क्योंकि विन्ध्य और रामेश्वर के बीच में वानरों का राज्य था, अतः वानरों का पराभव होने के पूर्व आर्य सेना वहाँ पहुंच ही नहीं सकती थी और वानरों का राजा बाली तो इतना प्रबल था कि उस अकेले ने ही रावण को भी परास्त किया था। इसलिये आर्यों के रावण वध रूप महान् कार्य की सिद्धि के लिए बाली का वध करना एक अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य था, जो श्रीरामचन्द्रजी ने किया और अपना मार्ग सरल किया। बाली का वध होने के पूर्व–

(१) देवजाति+आर्यजाति और–

(२) वानरजाति+राक्षस जाति।

ऐसे दो परस्पर विरोधी संघ थे। श्रीरामचन्द्रजी ने बाली का वध करके और वानरजाति को अपने साथ संधि द्वारा जोड़ कर ऐसे संघ बनाये–

(१) (देव+आर्य) +वानर। (२) राक्षस।

इस तरह संगठन बनने के कारण रावण के साथ युद्ध करने के समय भारतीयों का अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी का बल बढ़ गया और लंकाद्वीपस्थ राक्षसों का बल घट गया। यह उस समय के इतिहास का छोटा सा भाग है, इसका विचार करने से पाठकों को पता लग सकता है कि उस समय

किन जातियों का कैसा पारस्परिक सम्बन्ध था और आर्यों की दिग्विजय के लिए बाली का वध करने की अत्यन्त आवश्यकता क्यों थी ? रामायण की कथा समझने के लिये इस संघर्ष का पता होने तथा इस पृष्ठभूमि को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है।

रामायण के वर्णन को पढने से यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है कि उस समय देववीर और आर्यवीर– ये दोनों रावण से बहुत ही डरते थे। श्रीरामचन्द्रजी के पूर्वकाल में हैहयदेशीय कीर्तवीर्य आदि राजाओं ने ब्राह्मणों के कई आश्रम लूटे और नष्ट किये थे। इन आश्रमों में विपुल धन था, उसकी प्राप्ति की इच्छा से ही इन क्षत्रियों ने उक्त आश्रम लूटे थे। इन आश्रमों में समस्त जाति के बालक बिना शुल्क पढाये जाते थे इसलिए आश्रमों को ध्वस्त करने के कारण समस्त जाति के लोग क्षत्रियों के विरुद्ध खडे हुए। इस समय परशुराम नामक ब्राह्मण युवक इन दुराचारी क्षत्रियों का विरोध करने वाला प्रबल नेता खडा हुआ और परशुराम के नेतृत्व में क्षत्रियों के वध करने का कार्य शुरू हुआ। इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया गया। अर्थात इक्कीस बार परशुराम ने क्षत्रियों पर हमले किये और जो सामने आये उनका वध किया। इन इक्कीस बार के युद्धों में मिलकर १२०० राजा और लाखों वीर मर चुके थे। इस तरह लडने वाले वीरों का संहार होने के कारण आर्यावर्त में रावण के साथ युद्ध करने के लिए समर्थ एक भी वीर नहीं रहा था। इसी कारण रावण जैसा परद्वीपस्थ राजा यहाँ आया, तो यहाँ के आर्य राजा उससे डरते थे, देववीर भी भयभीत होते थे। यहाँ तक आर्यजाति हतबल हुई थी कि ताड़का जैसी अकेली राक्षसी स्त्री भी भारतीयों को कष्ट देती हुई निर्भयता के साथ यहाँ रह सकती थी। इतना घोर अत्याचार होने पर एक भी देववीर अथवा आर्यवीर रावण का विरोध करने का कार्य करने का साहस नहीं करता था।

जब विश्वामित्र ऋषि अपने यज्ञ की रक्षा करने के लिये राजा दशरथ के पास राम–लक्ष्मण को माँगने के लिये आये थे, उस समय के दशरथ के भाषण में रावण का यह प्रचण्ड डर स्पष्ट दिखाई दिया था (वा० रा० बाल० २०।।२७)। उस कारण इस समय देववीर या आर्यवीर के द्वारा रावण का प्रतिकार होना सर्वथा असम्भव था। अयोध्या की सार्वभौमिक परिषद् में रावण का नाश करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ, पर इस परिषद में यज्ञ में उपस्थित होने पर भी न तो आर्यराजा आये थे और न आर्यनेता ही पधारे थे। इसका कारण उक्त डर ही था। अतः 'रावणवध' का कार्य करने के लिये नवयुवकों में से किसी को नये वीरत्व की शिक्षा देकर तैयार करने का बड़ा कार्य ऋषियों को ही अपने सिर पर लेना पड़ा था। इससे रावण का भय उस समय कितना था, इसकी कल्पना हो सकती है।

इस समय वानरराष्ट्र बड़ा बलशाली था। रावण को वानरराज बाली ने परास्त किया था, अतः रावण बाली से बहुत डरता था। इस कारण रावण ने बाली के साथ मित्रता या सन्धि की थी और वानरराष्ट्र को अपने पक्ष में खींच लिया था। इतना ही नहीं वानरराज बाली की सम्मति से अपनी राक्षस सेना के १४००० राक्षस वीर खर,दूषण और त्रिशरा के नेतृत्व में नासिक प्रान्त में जनस्थान में रख दिये थे। इसका हेतु केवल यही था कि आर्यावर्त के आर्यवीर और वानर राष्ट्र के वानरवीर कभी

आपस में सन्धि करके मिलने न पावें और सदा के लिए एक दूसरे से दूर ही रहें। यदि बलवान वानरवीर और राजनीतिज्ञ आर्यवीर मिल गये तो दोनों के मेल–मिलाप से राक्षसों के साम्राज्य का नाश होगा, इस बात को रावण अच्छी तरह जानता था। अतः उसने जनस्थान में अपनी सेना इस प्रकार रख दी थी, जो दोनों को वियुक्त रखती थी।

यज्ञ के मिष से देववीरों और आर्यवीरों के सम्मेलन आर्यावर्त में बारम्बार होते थे। पर नासिक प्रान्त में रखे गये राक्षस सैन्य का नाश करने, वानरों के साथ मित्रता करने और इस तरह अपना बल बढ़ाकर रावण पर चढ़ाई करने का कार्य श्रीरामचन्द्र के अलावा किसी ने भी किया नहीं था। रावण के भय से देववीर और आर्यवीर कांप रहे थे। इसलिए प्रारम्भ में श्रीरामचन्द्रजी की भी सहायता इनमें से किसी ने नहीं की। पर जब श्रीरमचन्द्रजी की निःसन्देह विजय होगी, ऐसा स्पष्ट दीखने लगा, तब इन्द्र ने उनकी सहायता करने का साहस दिखाया। उस समय की राजकीय अवस्था की ठीक–ठीक कल्पना होने से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। ऋषि लोग प्रारम्भ से ही रामचन्द्र की सहायता जहाँ तक बन सके, वहाँ तक प्रयत्न करके करते थे। इतना ही नहीं, राम जन्म के पूर्व काल से ही रावण वध रूप बड़ा राष्ट्र कार्य करने या करवाने का प्रयत्न उन्होंने चलाया था। ऋष्यशृंग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ, महर्षि विश्वामित्र का राम–लक्ष्मण को लेने आना, महामुनि वशिष्ठ की विशेष प्रेरणा से राम–लक्ष्मण का उनके साथ जाकर शस्त्र–अस्त्रादि का विशेष शिक्षण और राम का वन जाना तथा अगस्त्य ऋषि के विज्ञान केन्द्र से नवीनतम शस्त्र–अस्त्रादि प्राप्त करना उसी पूर्व नियोजित योजना के अंग हैं। ●

वानर जाति की नई पीढ़ी में आर्यजाति के प्रति आत्मीयता और राक्षसों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के विचार से ही अगस्त्य आदि ऋषियों ने दंडक वन में अपने अनेकों आश्रम और ज्ञान–विज्ञान केन्द्र भी स्थापित किये। 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' के रूप में इस वेदादेश के पालनार्थ आर्य राष्ट्र के जागरूक ऋषियों, देव राष्ट्र के देवों (विद्वानों) द्वारा राम–लक्ष्मण, हनुमान् आदि के रूप में क्षात्र धर्म के पुनर्जागरण का योजनाबद्ध पुण्य–प्रयास किया गया।

राम–रावण युद्ध वस्तुतः दो राष्ट्रों का युद्ध था। यह कहना और भी अधिक समीचीन होगा कि यह युद्ध दो संस्कृतियों का युद्ध था। रामायण, आर्य संस्कृति की द्विग्विजय और आसुरी सभ्यता के पराभव का ऐतिहासिक वृत्त है।

इस प्रकार देवों की योजनानुसार महामानव (आर्य) राम द्वारा वानर जाति के सहयोग से राक्षसों का पराभव करके वर्णाश्रम धर्मयुक्त सांस्कृतिक आर्य साम्राज्य की संस्थापना ही रामायण की पृष्ठभूमि है।

● देवों की इस योजना को ही चमत्कारवादियों तथा अवतारवादियों ने राम-जन्म की कथा तथा अन्य अनेकों काल्पनिक कथाओं के रूप में प्रकट किया है।

(२)

पात्र-परिचय

रामायण काल के चार मानव वंश

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि देव, आर्य (नर, मानव) वानर एवं राक्षस ये चार मानव वंश या जातियां उस समय भारत में थीं। यह धारा महाभारत काल तक भी किसी न किसी रूप में गई है। देव जाति और आर्य जाति के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन कई प्रंसगों में महाभारत में मिलता है।

इन चार मानव वंशों में श्रीराम, राजा दशरथ और वसिष्ठ ये लोग मानव हैं, यह तो सब जानते ही हैं। पर देव, वानर और राक्षस ये जातियाँ मानवों की नहीं हैं, ऐसा बहुतों का ख्याल है। श्रीराम आदि को भी कुछ लोग अतिमानव या लोकोत्तर समझते हैं। इस सभी के सम्बन्ध में गवेषणापूर्वक आवश्यक विचार करना है। पहले देव जाति के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

देवजाति

अति प्राचीन समय में 'देव' नामक एक मनुष्य वंश अत्यन्त विशेष वीरत्व तथा सभ्यता से युक्त था। देवों की सहायता करने के लिये जैसे राजा दशरथ स्वर्ग में गया था, वैसे कई अन्य आर्य राजा गये थे। बहुत से आर्य राजा तप करके देवों के राजा बनने के यत्न में थे और कइयों ने इन्द्र पद प्राप्त किया था। जब मिथिलापति जनक राजा की राजधानी को सीता के निमित्त आर्य राजाओं ने घेर लिया था, तब जनक राजा ने देवसेना को अपनी सहायतार्थ बुलाया और उस देवसेना ने आकर मिथिला के राजा की सहायता की और घेरने वाले आर्य राजाओं को भगा दिया था (वा० रा० बाल० ६६।१५–२६)।

पाँचों पाँडव देवों के साथ नियोग करने से उत्पन्न हुए थे, अर्थात् कुन्ती और माद्री के साथ देव वीरों का नियोग हुआ, जिससे पाण्डव उत्पन्न हुए थे। यदि देव वीर मनुष्य न होते, तो नियोग किस तरह हो सकता था ? देवों का राजा इन्द्र गौतम के वेष में आश्रम में आकर अहल्या के साथ व्यभिचार करता है, इत्यादि अनेक कथाऐं हैं जिनसे देव वीर मनुष्य थे, अर्थात् वंश से मानवी वंश के थे, यह बात सिद्ध हो जाती है। इस विषय के अनेक प्रमाण पुराणों में भी हैं, परन्तु उन सबको यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऊपर दिये दो चार उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

देवों के साथ सम्बन्ध रखने वाले 'किन्नर' भी मानव वंश ही थे। इस समय इस नाम का एक प्रदेश हिमालय में है, जिसे 'किन्नोर' अथवा 'किन्नौर' कहा जाता है। इसी तरह भगवान् श्रीशंकर की राजधानी कैलास थी। यह कैलास हिमालय में एक शिखर है। भूतान (भूटान) 'भूत' स्थान यह भूतजाति का देश है। इन लोगों को इस समय 'भूतिया' अथवा 'भूतीय' कहा जाता है। इसी तरह गन्धर्व और अप्सराओं का देश भी हिमालय ही है। अप्सराएँ तो मानवों के लिए उपभोग्य होने से इनके मानव होने में सन्देह ही नहीं है। इसी कारण मेनका नामक अप्सरा विश्वामित्र के पास आकर दस वर्ष रही थी और उनसे उत्पन्न हुई शकुन्तला दुष्यन्त के साथ ब्याही थी, जिससे भरत राजा का जन्म हुआ। भारत देश इसी राजा के नाम से प्रसिद्ध है।

अर्जुन अस्त्रप्राप्त्यर्थ देवलोक में इन्द्र के पास गया था, तथा कैलास में श्रीशंकरजी के पास भी गया था। उस समय देवलोक की उर्वशी नामक अप्सरा अर्जुन पर काम से मोहित हुई थी। मनुष्य देवलोक में और कैलास में जीते जी जा सकते थे। इससे सिद्ध होता है कि ये देव भी मानव–वंश के ही थे।

पठानों का देश जिसे आज कल पख्तूनिस्तान कहते हैं, गन्धर्व–लोक कहलाता था। गिलगित के प्रदेश उत्तर पश्चिमी कश्मीर में पिशाच रहते थे। सोमदेव ने अपना ग्रन्थ 'वृहत्कथा' यहीं की 'पैशाची' भाषा में लिखा है। गढ़वाल प्रदेश के निवासियों को यक्ष कहते थे। भूटान के निवासी भूत कहाते थे, जिनके राजा का नाम भूतनाथ शिव था। कुछ जातियाँ सर्प तथा गरुड़ के नाम से प्रसिद्ध थीं। यह वे लोग थे जो एक स्थान पर जम कर नहीं रहते थे–खानाबदोश, चलते–फिरते लोग। ये न तो सर्प (Snakes) ही थे और न ही गरुड़ उड़ने वाले पक्षी। महाभारत में ऐसा वर्णन आया है कि ऋषि जरत्कारु ने वासुकी सर्प की कन्या से विवाह किया। अर्जुन का सर्प–कन्या अलूपी से विवाह हुआ। सर्प जाति के किसी उत्साही नवयुवक ने ही भरे दरबार में परीक्षित की हत्या की थी। इसी प्रकार जिस समय भगवान् राम की सेना, मेघनाद द्वारा फैलाये नाग पाश में बँध चुकी थी, तब गरुड़ जाति के किसी गुणवान् पुरुष ने ही आकर सबके बन्धन खोले थे।

इस विषय में सैकड़ों अन्य प्रमाण दिये जा सकते हैं। पर इस समय जितने दिये हैं, उतने अपने कार्य की सिद्धता के लिए पर्याप्त हैं। देववीर उस समय बड़े सामर्थ्यशाली वीर थे। इस तरह देवों के मानव होने के विषय में इतना विचार पर्याप्त है।

नर, वानर, राक्षस

वाल्मीकि रामायण में देव जाति के अतिरिक्त मुख्य पदार्थ तीन हैं– (१) नर, (२) वानर, (३) राक्षस। इन्हीं तीनों पदार्थों के अन्तर्भूत अनेक उपपदार्थ या उपपात्र भी हैं। उदाहरणार्थ, 'नर' पदार्थ में प्रधान पात्र 'श्रीरामचन्द्र या 'राम' और सीताजी, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, मन्थरा, सुमित्रा, उर्मिला, वसिष्ठ इत्यादि अनेक उपपात्र हैं, जिनका अन्तर्भाव एक 'नर' पदार्थ में होता है। 'वानर' पदार्थ में प्रधान पात्र 'हनुमान' और बाली, सुग्रीव, तारा, अंगद और जाम्बवान् आदि उपपात्र हैं और 'राक्षस' पदार्थ में प्रधान पात्र 'रावण' तथा मन्दोदरी, कुम्भकर्ण, विभीषण, शूर्पणखा, मारीच, सुमाली इत्यादि उपपात्र हैं। इस प्रकार वाल्मीकि रामायणान्तर्गत प्रायः सब पात्रों का अन्तर्भाव 'नर' 'वानर' और 'राक्षस' इन्हीं तीन पदार्थों में हैं। इन तीन पदार्थों का निर्णय होने से उनके पारस्परिक व्यवहार तथा और भी कई संशयास्पद बातों का निराकरण सुगमता से हो सकेगा। अतएव 'नर', 'वानर' और 'राक्षस' ये पदार्थ क्या हैं, इसका विचार करते हुए प्रधान 'नर' पात्र 'श्री रामचन्द्र', प्रधान 'वानर' पात्र हनुमान् और 'प्रधान राक्षस' पात्र रावण पर हम आगे विचार करेंगे। नर पदार्थ के अन्तर्गत अन्य उपपात्रों की विशेषताओं पर भी संक्षेपतः विचार होगा।

।। ओ३म् ।।

आर्य-संस्कृति के आधार स्तम्भ लोकनायक

मूर्तिमान क्षात्र-धर्म, मर्यादा पुरुषोत्तम

भगवान् श्री रामचन्द्र

देव, पतितोद्धारक

ओ३म् उतदेवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषम् देवा देवा जीवयथा पुनः।।

– ऋ० १० ।१३७ ।१

हे (देवाः) लोकोपकारक महापुरुषो! (उत) और (देवाः) पतितोद्धारक विद्वानो! (अवहितम्) नीचे गिरे को (पुनः) फिर से (उन्नयथ–उत्नयथ) ऊपर ले जाओ, उठाओ, उन्नत करो। (उत और) (देवाः हे देवो!) (आगः+चक्रुषम्) बार बार अपराध करने वाले को (अपने दिव्य आचरण की प्रेरणा से, अपने समुज्ज्वल जीवन के प्रकाश से) (देवाः) हे दिव्य गुण सम्पन्न महात्माओ! (पुनः) फिर (जीवयथ) जिलाओ, जीवन दो।

पूर्व प्रवचन

रघुकुलतिलक, इक्ष्वाकु कुल–कमल–दिवाकर, सीतापति, दाशरथि राम ऐसे ही नर–रत्न थे, ऐसे ही पतितोद्धारक देव थे जिनके सदाचरण का समुज्ज्वल प्रकाश ९(नौ) लाख वर्ष की लम्बी प्राचीरों को चीर कर आज भी हमें वैदिक कर्त्तव्य पथ का निर्देशन करने में सहज समर्थ है। उनके पवित्र चरित्र की सरिता में स्नान करके निश्चय ही प्रत्येक मानव निर्मल चित्त होकर आर्ष कर्त्तव्यादर्श के पालन की स्वर्णिम प्रेरणा प्राप्त कर लक्ष्य–सिद्धि द्वारा धन्य जीवन हो सकता है। पर शोक ही नहीं महाशोक का विषय है कि भगवान् राम के सम्बन्ध में हमारी अशुद्ध धारणाओं और भ्रान्त दृष्टिकोणों ने इस अवर्ण्य लाभ से हमें सर्वथा वंचित कर रखा है।

तीन दृष्टियाँ

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के सम्बन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन भारतीय विद्वानों की सामान्यतया तीन प्रकार की विचार दृष्टियाँ हैं। उन पर यहाँ हम संक्षेप से विचार करेंगे।

(१) **प्रथम दृष्टिकोण**- इनमें से प्राचीन पद्धति के भारतीय वेदान्ती विद्वानों की दृष्टि से श्री रामचन्द्रजी तो सच्चिदानन्द परब्रह्म ही हैं, राक्षस षड् विकार हैं और वानर जाति चञ्चल मनोवृत्तियाँ हैं। ये विद्वान सीताजी को 'चित्तकला', हनुमान्जी को 'सदसद्विवेकिनी विचार शक्ति' रावण को 'अंहकार' लंका, को 'लिंगदेह' मानते हैं।

यहाँ हम स्पष्ट देख रहे हैं कि श्रीराम के पवित्र चरित्र से सम्बन्द्ध ऐतिहासिक सत्य का किस बुरी तरह से गला घोंट कर राम–रावण युद्ध को मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक मानकर एक आध्यात्मिक रूपक बना दिया गया है। यह दृष्टिकोण भौतिक जीवन या राष्ट्रीय जीवन के प्रति हमारी उपेक्षा और अति अध्यात्मवादी दृष्टि का परिचायक है। अपने उज्ज्वल अतीत से प्रेरणा और स्फूर्ति लेने के लाभ को खोकर तथा जीवन के कठोर सत्यों के प्रति उपेक्षा भाव रखने का नतीजा हजारों साल लम्बी गुलामी के रूप में हमें मिल चुका है।

(२) **दूसरा दृष्टिकोण**– सामान्य विद्वत्ता रखने वाले पण्डित, कथा–कीर्त्तनकार तथा सन्तमण्डली और धर्म को रोजगार बनाने वालों के द्वारा प्रचारित किया गया है जिनकी दृष्टि में श्री रामचन्द्र साक्षात् परब्रह्म और ईश्वरावतार हैं और सीता, लक्ष्मण आदि भी उन्हीं की शक्तियाँ हैं। इन्होंने महात्मा श्री राम के पवित्र चरित्र को अवतारवाद की काली चादर से ढकने के लिए अनेक मिथ्या कथा–प्रसंगों और चमत्कारों की सृष्टि कर डाली। देवों को अलक्ष्य पदार्थ के रूप में चित्रित किया गया तो राक्षसों को कराल दाँत वाले भयंकराकृति, सूप जैसे कान वाले, पर्वत गुहा जैसी नाक वाले, भयानक दरी के सदृश मुख वाले और बड़े–२ गवाक्षों के सदृश नेत्र वाले ही बना दिया। उनके मुख से उनकी जिह्वा सवा गज बाहर निकाल दी,दो–चार प्रेत उनके कन्धों पर लाद दिये तो दो–चार दाँतों तले भी रख दिये, उनके गले में मुण्ड मालायें पहना दीं तथा रक्त माँस से उन्हें लीप–पोतकर उनका स्वरूप वीभत्स ही बना दिया है और इन राक्षसों के मारने के लिए ही ईश्वर और उसकी शक्तियों का अवतार लेना बताया गया। इस प्रकार राक्षसों को मानवेतर विजातीय जीव ही निश्चित कर छोड़ा तथा वानरों को भी सामान्य पशु, लम्बी पूँछ वाले बन्दर ही बनाकर रख दिया। अगले पृष्ठों में हम विचार करेंगे कि आज भारतीय धर्म की गोद में पलने वाले अन्धविश्वास, मूढ़ता और बुद्धिशून्यता तथा अन्य अनेक पापों का मूल यह अवतारवाद मिथ्या कल्पना ही है।

(३) **तीसरा दृष्टिकोण**– अर्वाचीन पद्धति के यूरोपीय विद्वानों और उनसे प्रभावित भारतीय विद्वानों का है। इनकी दृष्टि में राम तथा रामकथा कवि–कल्पना मात्र हैं। जिस तरह कोई उपन्यास या कहानी लेखक अनेकों पात्रों की कल्पना कर लेता है, वस्तुतः उनका कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं होता, आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने भी उसी प्रकार अपनी प्रखर प्रतिभा से रामादि पात्रों की कल्पना की है। वास्तव में श्रीराम आदि ऐतिहासिक सत्ता नहीं रखते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे राम को हमसे छीन लेने का, जिसका अर्थ है हमारे सांस्कृतिक गौरव और शिखरासीन आर्यसभ्यता को मिटा देने का यह दुर्भाग्यपूर्ण दुष्प्रयास आज हो रहा है। पर थोड़ा भी विचार करने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि पाश्चात्य विद्वानों का इसमें कोई दोष नहीं है। वस्तुतः उनकी इस धारणा के लिए हमारे महाविद्वान नवीन वेदान्तशास्त्री ही कारणीभूत हैं।

जब यूरोपीय विद्वान वेद–शास्त्रादि के अध्ययन के विचार से हमारे पण्डितों के पास पहले–पहल आये तब इन यूरोपीय छात्रों को रामायण का यह अर्थ समझाया गया कि –'अहंकार' रूप रावण ने 'चित्तकला' रूप सीता का हरण किया, विवेक रूप हनुमान्‌जी ने उनका पता लगाया फिर परब्रह्मरूप श्रीराम ने लिंग देहरूप लंका पर चढ़ाई करके अहंकार रूप रावण का वध किया तथा अपनी चित्तकला रूप सीताजी को वापस लाकर उनके साथ स्वराज्य सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। यह राम–रावण युद्ध सर्वकाल में इसी प्रकार हो रहा है।

इस प्रकार शुद्ध इतिहास का यह वेदान्तपरक अर्थ उनके मस्तिष्क में ठूँसने का दुष्ट उद्योग हमारे वेदान्तनिपुण पण्डितों ने किया। दूसरे दृष्टिकोण के आधारभूत अवतारवाद, चमत्कारवाद और मतवाद के मायाजाल में भी श्रीराम की ऐतिहासिकता को इतना उलझाया गया कि उसका सर्वथा लोप ही हो गया। इस दृष्टिकोण के दुष्परिणामों पर हम विस्तार से आगे विचार करेंगे। इस प्रकार इस दृष्टिकोण से भी रामायण को काल्पनिक काव्य समझने के विचार को बहुत बड़ा बल मिला। परिणाम जो होना था, वही हुआ। यूरोपीय विद्वानों के मस्तिष्क में रामायण के विषय में विपरीत भावनायें इतनी दृढ़मूल हो गईं कि वे रामायण को 'काल्पनिक काव्य' और श्रीराम तथा रामायण के अन्य पात्रों को 'काल्पनिक व्यक्ति' मान बैठे और यही धारणा परम्परा से पाश्चात्यानुयायी हमारे अर्वाचीन भारतीय विद्वानों में भी रूढ़ हो गई।

जिन भारतीय विद्वानों ने अँग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विद्वानों की विचार–सरणि के माध्यम से अपने धर्म, संस्कृति और इतिहास को समझने का प्रयास किया उनके हृदयों में इस प्रकार की भ्रान्त धारणाओं का बद्धमूल हो जाना स्वाभाविक ही था। उदाहरण के लिए इस युग के महान् लोकनायक महात्मा गाँधी का नाम लिया जा सकता है, जिनकी दृष्टि में राम–रावण युद्ध प्रत्येक मनुष्य के अन्तःक्षेत्र में हर समय चलने वाले दैवी और आसुरी वृत्तियों के संघर्ष का काव्यगत वर्णन मात्र है।

उच्चकोटि की विद्वत्ता और आध्यात्मिक भाव–भूमि पर इस तरह के अध्यात्म रूपक किन्हीं अंशों में उपयोगी भी सिद्ध हो सकते हैं। उपनिषदों में ऐसे अध्यात्म रूपक मिलते हैं। केनोपनिषद् का 'उमा हेमवती सम्वाद' ऐसा ही अध्यात्म रूपक है। पर इसके लिए रामायण जैसे गौरवमय शुद्ध इतिहास के पात्रों को आधार बनाकर जो भयंकर भूल हो गई है और उसके जो व्यापक दुष्परिणाम हुए हैं, जो राष्ट्रीय एवं जातीय पतन हुआ है, उसकी पूरी–पूरी कल्पना भी आज नहीं की जा सकती। यूरोपीय छात्रों के मस्तिष्क में यह सब ठूँसना तो और भी भयंकर सिद्ध हुआ है क्योंकि ऐसा प्रयास 'अपात्रे विद्यादान' की कोटि में आता है। हमारे वेदान्ती पण्डितों ने धन–लोभ के वश होकर अनधिकारी और अपात्र लोगों को रामायण का परिचय उक्त अध्यात्म रूपक द्वारा कराने का जो पाप किया था, उसी का दुष्फल है 'राम ईजिप्शियन' था, युधिष्ठिर ईरानी था, कुश,लव, रावण की सन्तान थे, कौशल्या

और दशरथ सहोदर बहिन–भाई थे।'' इत्यादि अत्यन्त मिथ्या, अत्यन्त घृणापूर्ण और अत्यन्त अनर्गल लेख आज प्रसिद्ध हो रहे हैं। शोक! महाशोक!!!

तब राम कौन हैं ?

प्रश्न– क्या श्रीराम परब्रह्म परमेश्वर हैं ?

उत्तर– वेदान्ती पण्डित श्रीरामचन्द्रजी को 'परब्रह्म' मानते हैं और उनके 'परब्रह्मत्व' का समर्थन भी करते हैं। परन्तु यह परब्रह्म श्रीरामचन्द्र रामायण–काव्य के नायक नहीं हो सकते। क्योंकि परब्रह्म के जो लक्षण हैं, वे रामायण काव्य के नायक दशरथ–पुत्र सीतापति रामचन्द्रजी के विषय में घटनीय नहीं हो सकते। परब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, नित्यानन्दमय, सर्वात्मा इत्यादि लक्षणों से युक्त होता है। किन्तु रामायण काव्य के नायक रामचन्द्रजी इन लक्षणों से ठीक विपरीत ही दिखाई देते हैं। यथा–(१) यदि वे निर्गुण हैं, तो रामायण काव्य की रचना हो ही नहीं सकती। क्योंकि निर्गुण का गुण वर्णन अशक्य है, और रामायण तो एक गुणवर्णनात्मक काव्य है। (२) यदि वे निर्विकार हैं, तो उनकी रावण से शत्रुता तथा विभीषण से मित्रता होने का कोई कारण ही नहीं था। (३) यदि निराकार तथा निरवयव हैं, तो उनका अरण्यवास, धनुषवाण धारण करना तथा युद्ध–विक्रम करना संभवनीय ही नहीं था। (४) यदि सर्वज्ञ हैं तो सीताजी को कौन हरण कर ले गया और उसने उनको कहाँ रक्खा, इसका ज्ञान उन्हें आप ही समाधि द्वारा हो जाना चाहिये था जिससे हनुमान जी को उन्हें ढूँढ़ने के लिए समुद्र पार जाने का प्रयास करने की कोई आवश्यकता ही न होती। (५) यदि वे 'सर्वव्यापी' हैं तो वे अयोध्या में, दण्डकारण्य में, सभी जगह व्याप रहे थे और न कहीं से आये, न गये। अतः दशरथ को पुत्रशोक होने का कोई कारण ही न था। (६) यदि 'नित्यानन्दमय' हैं तो सीता वियोग से–और अन्यान्य प्रसंगों में भी– वे दुःख, शोक, मोह आदि में क्यों मग्न हुए ? (७) यदि 'सर्वात्मा' हैं तो वे रावण में, विभीषण में, दशरथ में, बाली–सुग्रीव में, कैकेयी–मन्थरा में, सर्वत्र आत्मरूप से भरे हुए थे ही! फिर सीताजी रावण के पास रहीं, अथवा श्रीरामचन्द्रजी के पास रहीं, एक ही बात थी। फिर उनकी मुक्ति के लिए इतनी वानर–सेना इकट्‌ठी करके समुद्र पर सेतु बाँधने की और युद्ध में कोट्‌यवधि राक्षसों का और वानरों का संहार करवाकर रावण वध करने की भी कौन सी आवश्यकता थी ? (८) यदि 'सर्वशक्तिमान्' हैं, तो उन्हें वानरराज सुग्रीव से क्यों सहायता लेनी पड़ी थी ? कहने का तात्पर्य यह है कि रामायणकाव्य के नायक श्रीरामजी 'परब्रह्म' नहीं थे और न उन्होंने स्वयं अपने को 'परब्रह्म' समझा ही था। रावणवध के पश्चात् सीताजी ने आत्मशुद्ध्यर्थ अग्निप्रवेश (शुद्धि–संस्कार) किया, तब श्रीरामचन्द्रजी उद्विग्न हो उठे थे। ब्रह्मदेव, महादेव, इन्द्र, वरुणादि लोकपालों ने उस प्रसंग पर श्रीरामचन्द्रजी को सान्त्वना देते हुए कहा–

''कथं देवगणंश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ?'

इस पर श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि–

''आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।''

– युद्धकाण्ड,सर्ग ११७।११

''मैं अपने आपको मनुष्य मानता हूँ।'' इस उत्तर से यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी स्वयं अपने को 'परब्रह्म' नहीं मानते थे। जब उन्हीं को यह ''परब्रह्मत्व' स्वीकार नहीं है, तो वह उन पर हठात् लादने से क्या लाभ ? इस प्रकार रामायण के नायक श्रीरामचन्द्रजी 'परब्रह्म' हो ही नहीं सकते।

प्रश्न- तब रामचन्द्रजी क्या पदार्थ हैं ?

उत्तर- इस प्रश्न का उत्तर यही है वह हम जैसे मनुष्य ही हैं।

प्रश्न- तब श्रीरामचन्द्रजी को ही क्यों इतना श्रेष्ठत्व दिया जाय ?

उत्तर- यह प्रश्न इस दिशा में स्वाभाविकतया उपस्थित होता है। उसका उत्तर यह है कि यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी स्थूल शरीर से हमारे सदृश हैं, तथापि योग्यता में वे हमारी अपेक्षा अनंतगुणित श्रेष्ठ हैं और इसी कारण से उनको श्रेष्ठत्व दिया गया है। निम्नलिखित विद्युद्दीप के दृष्टान्त द्वारा इसका विशेष स्पष्टीकरण किया जाता है।

बिजली के लट्टू– एक ही पदार्थ के काँच के बनते हैं और उनमें बिजली का जो चैतन्यांश होता है, वह भी एक ही होता है तथापि प्रत्येक लट्टू के चैतन्यांश के न्यूनाधिक प्रमाणानुसार उनकी कार्यक्षमता न्यून व अधिक होती है, फलतः उसकी योग्यता भी न्यून या अधिक मानी जाती है। यथा, एक केंडल पावर की बत्ती से ५ केंडलवाली बत्ती श्रेष्ठ, ५ केंडलवाली से १० केंडल पावर वाली श्रेष्ठ, १० केंडल पावर वाली से १०० केंडल पावर वाली और १०० केंडल पावर वाली से १००० केंडल पावर वाली बत्ती, इस तरह हर एक बत्ती क्रमशः श्रेष्ठ मानी जाती है। उसी प्रकार मनुष्य मात्र के शरीर यद्यपि समानाकृति होते हैं, उनके घटक–द्रव्य रक्त, मांस, अस्थि चर्म इत्यादि सब समान ही होते हैं। प्रत्येक शरीर में आत्मा का चैतन्यांश विद्यमान है, तथापि वह चैतन्यांश व्यक्तिमात्र के पूर्व सुकृतानुसार न्यून वा अधिक प्रमाण में होता है और उसी प्रमाण में उस व्यक्ति को श्रेष्ठत्व या कनिष्ठत्व मिलता है। १० केण्डल पावर की बत्ती के आगे ५ केण्डल पावर वाली बत्ती का उजाला फीका पड़ जाता है। १०० केण्डल पावर की बत्ती के आगे १० केंडल पावर की बत्ती का और १००० केंडल पावर की बत्ती के आगे १०० केंडल पावर की बत्ती का उजाला फीका पड़ जाता है। इसी न्याय से श्रेष्ठ मनुष्य के सम्मुख कनिष्ठ मनुष्य का प्रभाव फीका पड़ जाता है। राजा के सम्मुख सर्व साधारण लोग नम्र हो जाते हैं, अतः उसे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, इसका कारण यही है कि सर्वसाधारण लोगों की अपेक्षा राजा में तेजस् अंश का प्रमाण अधिक ही होता है। सम्राट को राजा से श्रेष्ठ मानते हैं और सार्वभौम राजा सम्राट से भी श्रेष्ठ होता है। फिर ऐसे शतावधि सार्वभौम राजाओं से भी अनंतगुणित श्रेष्ठत्व जिनमें पाया जाता है, उन श्रीरामचन्द्रजी को मर्यादा पुरुषोत्तम या श्रेष्ठतम मान लिया जाए, तो यह युक्तियुक्त ही होगा। स्पष्ट है कि मनुष्य यदि प्रयत्न करे, तो उसके लिए 'श्रीरामचन्द्र' होना असाध्य नहीं है।

आदर्श पुरुष राम

श्री वाल्मीकि ऋषि के द्वारा जो आदर्श पुरुष पाठकों के सामने रखा गया है और जैसे आदर्श पुरुष राष्ट्र में उत्पन्न करना उचित है, वह आदर्श पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। हमारे ऋषियों की दृष्टि में एक आदर्श पुरुष में क्या–क्या गुण होने चाहिए, इसकी परिकल्पना 'वाल्मीकि–नारद सम्वाद' में मिलती है। इसका संक्षिप्त विवेचन श्रद्धेय पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के शब्दों में निम्न प्रकार है–

आत्मिक गुण

१. आत्मवान् (१४) = आत्मिक बल से युक्त, (वशीकृतान्तकरणः) जिसने अपना अन्तःकरण अपने वश में किया है।

२. नियतात्मा (१।८) = (निगृहीतान्तःकरणः) जिसने अपना अन्तःकरण अपने अधीन किया है।

३. अदीनात्मा(१।११५) = (सहजासाधारणक्षात्रभावनेदीनस्वभावः अतिव्यसनपरम्परा–यामप्यक्षुभितान्तःकरणः) असाधारण क्षात्रतेज से दीनतारहित, अत्यन्त कष्टदायक प्रसंग उपस्थित होने पर भी जिसके अन्तःकरण में भीति उत्पन्न नहीं होती, चञ्चलता नहीं होती, अथवा क्षोभ नहीं होता।

सर्वसाधारण गुण

४. गुणवान् (१।२) = (प्रशस्त बहुगुणवान्) उत्तम श्रेष्ठ अनेक प्रशंसनीय गुणों से युक्त।

५. सर्वगुणापेतः (१।१७) = अनेक प्रशंसनीय गुणों से युक्त।

६. श्रेष्ठगुणैर्युक्तः (१२०) = अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त।

७. शुभलक्षणः (१।११) = (शुभानि लक्षणानि यस्य सः) अनेक शुभ गुणों से युक्त।

संयमी

८. वशी (१।८), वश्यः (१।१२) = वशी (जिताशेषबहिरिन्द्रियः, वश्यः पित्राचार्यदेवेषु विनीतः) सब बाह्य इन्द्रियों को अपने आधीन करने वाला, तथा पिता, आचार्य आदि देवताओं के सामने विनम्र भाव धारण करने वाला।

९. जितक्रोधः (१।४) = जिसने क्रोध को जीत लिया है।

१०. साधुः (१।१५) = (मृदु–मधुरस्वभावः) जिसका मीठा और मृदु स्वभाव है।

नीतिवान्

११. नीतिमान् (१।६) = (नीतिः कामन्दकादिप्रसिद्धराजनीतिस्तद्वान् तज्ज्ञाता) कामन्दकी आदि अनेक राजनीति में कहे राजनीति के सम्पूर्ण तत्वों का ज्ञाता, राजनीति में चतुर।

धर्मज्ञता

१२. धर्मज्ञः (१।२, १२) = (श्रौतस्मार्तसकलधर्मरहस्यज्ञः) श्रौतस्मार्त धर्म के सम्पूर्ण रहस्यों को यथावत् जानने वाला।

१३. कृतज्ञः (१।२) = (बह्वी अपि अपकृति उपेक्ष्य, एकामप्युपकृति बह्वी मन्यते स कृतज्ञः) अपकारों की ओर दृष्टि न देकर जो उपकारों को बहुत मानता है।

१४. शुचिः (१।१२) = (प्रातः स्नानादिना प्राणायामाभ्यासादिना प्रत्याहारादिजन्य राग– द्वेषहानेन नित्यं बाह्यान्तरशुद्धा दिना प्रत्याहारादिजन्यरागद्वेषहानेन नित्यं बाह्यान्तरशुद्धः) स्नान से बाह्य शुद्धता तथा प्राणायाम प्रत्याहारों से जिसकी आन्तरिक शुद्धि हुई है।

१५. चारित्र्यसंपन्नः (१।३) = (वृत्तसंपन्नः) सदाचार से युक्त।

१६. दृढ़व्रत (१।२) = (आपद्यपि धर्माय परिगृहीतव्रतविशेषस्य त्यागरहितः) जो आपत्तिकाल में भी धर्माचरण का त्याग नहीं करता।

१७. अनुसूयकः (१।४) = (विद्यैश्वर्यतपःसु परोन्नत्यसहनमसूर्यातद्रहितः) विद्या, ऐश्वर्य, तप आदि में दूसरों की उन्नति सहन न होने का नाम असूया है, वह जिसमें नहीं अर्थात् जो दूसरों की उन्नति देखकर संतुष्ट होता है।

१८. आर्यः (१।१६) =(सर्वपूज्यः) सबको पूज्य।

१६. समाधिमान् (१।१२) = समबुद्धि से युक्त।

२०. समुद्र इव गम्भीरः (१।१७) = समुद्र के समान गंभीर।

२१. पृथ्वीसमः क्षमावान् (१।१८) = पृथ्वी के समान क्षमाशील।

२२. धनदेन समः त्यागवान् (१।१६) = कुबेर के समान दाता।

२३. धर्म इव सत्ये स्थितः (१।१६) = धर्म के समान सत्य का पालन करने वाला।

२४. समः (१।११), सर्वसमः (१।२६) = समभाव से सबके साथ बर्ताव करने वाला। (सर्वेषु सुखदुःखोत्र्केषु हर्षविषाद रहितः शत्रुमित्रोदासीनेषु वैषम्यरहितः) सुख–दुख प्राप्त होने पर अथवा शत्रुमित्र तथा उदासीनों से सम्बन्ध आने पर हर्ष–विषाद न करता हुआ, विषमभाव न प्रकट करता हुआ जो समभाव से व्यवहार करता है।

राष्ट्रीय वृत्ति

२५ सदा सद्भिरभिगतः (१।१६) = सदा जिसके साथ सज्जन ही रहते हैं, दुर्जनों को अपने पास न रखने वाला।

२६. श्रीमान् (१।८।१०) लक्ष्मीवान् (१।१३) = संपत्तिमान्, अलोभवान्, लक्ष्मी जिसके पास है।

२७. धाता(१।१३) (सर्वप्रजाधारणपोषणसामर्थ्य युक्तः) = सब प्रजाओं के धारण–पोषण करने की शक्ति से युक्त।

२८. सर्वभूतहितेरतः (१।३) = प्रकृतिप्रियकाम्यया प्रकृतीनां हितैर्युक्तः (१।२), प्रजाहिते

रतः (१।१२) = सब प्राणियों का हित करने में तत्पर, सब प्रजाजनों का हित करने में दक्ष, सब प्रजाओं का हित करने के कार्य में रममाण होने वाला।

२६. जीवलोकस्य रक्षिता (१।१३) = स्वजनस्य रक्षिता (१।१४) = सब जीवों की रक्षा करने वाला, स्वजनों की रक्षा करने वाला।

३०. धर्मस्य रक्षिता (१।३)= स्वधर्मस्य रक्षिता (१।१४) = धर्म का रक्षक।

३१. सर्व लोकप्रियः (१।१५) = सब लोगों को प्रिय।

३२. प्रजापतिसम (प्रजारक्षक) (१।१३) = प्रजापति के समान प्रजा का पालन करने वाला।

शत्रु निर्दलन

३३. अरिन्दमः (१।६) रिपुनिषूदनः (१।१३) = शत्रु निवर्हणः (१।६) शत्रुओं का नाश करने वाला।

३४. प्रतापवान् (१।११), सुविक्रमः (१।१०) = (प्रताप स्मृतिमात्रेण रिपुहृदयविदारणक्षमं पौरुष्य तद्वान्) –केवल जिसका नाम सुनने से ही शत्रु के हृदय फट जाते हैं, ऐसा विशेष पराक्रमी अथवा (विक्रमःपदाविक्षेपः) = जिसकी चलने की पद्धति अच्छी है।

३५. यशस्वी (१।११) = शत्रु का पराभव करके जिसने उत्तम यश प्राप्त किया है।

३६. महेष्वासः (१।१०) = जिसका धनुष बहुत बड़ा है, जिसके पास उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्र हैं।

३७. जातरोषस्य देवा अपि बिभ्यति १।४) कालाग्निः सदृशः क्रोधे (१।१८) = जिसके क्रुद्ध होने पर देव भी घबरा जाते हैं, क्रोध आने पर जो अग्नि के समान दीखता है।

वैयक्तिक गुण 'ज्ञान'

३८. विद्वान (१।३), ज्ञानसंपन्न (१।१२), विचक्षणः (१।१५) = (विद्वान आत्मानात्म सकल पदार्थ तत्वज्ञः) आत्मा तथा अनात्मा इन सकल पदार्थों के तत्वों का जानने वाला, ज्ञानयुक्त, (विचक्षणो यथोचितलौकिकालौकिक सर्व क्रियासु कुशलः) सब प्रकार के लौकिक तथा अलौकिक कर्मों और व्यवहारों में कुशल, सब कर्मों में निपुण।

३९. बुद्धिमान (१।६), स्मृतिमान् (१।१५) = उत्तमबुद्धि से युक्त, उत्तम स्मरणशक्ति से युक्त।

४०. प्रतिभानवान् (१।१५) = व्यवहारकाले श्रुतस्याश्रुतस्य चोचितार्थस्य शीघ्रं प्रतिभास प्रतिभा तद्वान्) व्यवहार करने के समय सुने अथवा न सुने उचित विषय के सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय करने की शक्ति जिसके पास है।

४१. वेदवेदांगतत्वज्ञः (१।१४) = सर्वशास्त्रतत्वज्ञः (१।१४) = वेद तथा वेदांगों के तत्वों को जानने वाला।

४२. धनुर्वेदे निष्ठितः (१।१४) = धनुर्वेद का उत्तम ज्ञाता।

शूरवीर

४३. वीर्यवान् (१२) महावीर्यः (१।८) = (दिव्यास्त्रबलादिजशक्तिविशेषण पराभवसामर्थ्य वीर्यतद्वान्) = दिव्य शस्त्रास्त्रों के बल से शत्रु को परास्त करने के विशेष सामर्थ्य से युक्त।

४४. धैर्येण हिमवान् इव (१।१७), धृतिमान् (१।१८) = हिमवान् के समान धैर्यवान्।

४५. सत्यपराक्रमः (१।१६) = जिसका पराक्रम बहुत बड़ा है

४६. विष्णुना सदृशोवीर्य (१।१८) = पराक्रम में विष्णु के समान।

४७. समर्थ (१।३) = लौकिकव्यवहारे प्रजारञ्जनादि चातुर्य सामर्थ्य तद्वान) लौकिक व्यवहार में तथा प्रजारञ्जनादि कार्यों में आवश्यक नैपुण्य से युक्त।

वक्तृत्वकला

४८. सत्यवाक् (१।२ १२) = सत्यभाषण करने वाला।

४९. वाग्मी (१।६) = उत्तम वक्ता।

सुदृढ शरीर

५०. समविभक्तांग (१।१) = शरीर का प्रत्येक अवयव जिसका सुन्दर, हृष्टपुष्ट तथा दर्शनीय और बलवान् है।

५१. सुशिराः (१।१०) = जिसका शिर उत्तम है, उत्तम मस्तक वाला।

५२. सुललाट (१।१०) = जिसका ललाट अच्छा है।

५३. महाहनुः (१।६) = जिसकी हनु (ठोड़ी) बड़ी है।

५४. कम्बुग्रीवः (१।६) = शंख के समान जिसका गला पुष्ट है।

५५. गूढ़जत्रुः (१।१०) = गले के नीचे की हड्डियों का नाम जत्रु है, जिसके ये स्कन्ध के अस्थि ढँके हैं, अर्थात् जिसका स्कंध अच्छी तरह पुष्ट है।

५६. महाबाहुः (१।६), = आजानुबाहुः (१।१०) जिसके बाहु बड़े हैं, तथा घुटनों तक लम्बे जिसके हाथ हैं।

५७. पीनवक्षाः (१।११), महोरस्क (१।६) विपुलांस (१।४) = जिसका वक्षस्थल, छाती, उरु और कन्धे उत्तम और बलयुक्त हैं।

५८. विशालाक्षः (१।११) = जिसकी आँखें बड़ी हैं।

शरीर की सुन्दरता

५९. प्रियदर्शन (१।३,१।६,८), सोमवत् प्रियदर्शन (१।१८) = जो सुन्दर है, चंद्रमा के समान सबको प्रिय लगने योग्य जिसकी सुन्दर आकृति है।

६०. द्युतिमान् (१,३,८) = जो अत्यन्त तेजस्वी है।

यह है आर्यों का आदर्श पुरुष राम ! ● श्री वाल्मीकि मुनि ने जिसकी कल्पना पहले अपने मन में की थी, नारद मुनि ने जिसका अनुमोदन किया था और जिसका वर्णन आगे रामायण में हुआ है, वह महात्मा राम हमारे जातीय जीवन के प्रेरणास्रोत हैं। हमारी जाति के आगामी युवा वीर कैसे हों वाल्मीकि रामायण ने यह आदर्श सबके सामने रखा है। यहाँ हम श्रीराम के आदर्श चरित के कतिपय अन्य पहलुओं पर इसी दृष्टि से विचार करेंगे।

- **जरा तुलना कीजिए इसकी- 'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनियाँ' का गीत गाकर मन बहलाव करने वालों के 'राम' से, और आँसू बहाइये उस दुर्भाग्य पर जो स्वार्थवश या अज्ञानवश मध्यकाल में भगवान् राम को ईश्वर बताकर, उस प्रकाश पुञ्ज को सिर्फ मनोरंजन का साधन बनाकर राष्ट्र-जीवन पर लादा गया।**

श्रीरामचन्द्र की शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य व्रत

राम जैसे आदर्श पुरुष का निर्माण यों ही नहीं हो गया, उसके पीछे देववीरों तथा ऋषियों का एक योजनाबद्ध प्रयास था, महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ से इस योजना का सूत्रपात होता है।

इसी निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ही ऋष्यश्रृंग की अध्यक्षता में पुत्र कामेष्टि यज्ञ का उपक्रम किया गया। इस यज्ञ के निमित्त से सवा वर्ष तक दशरथ व तीनों रानियों को उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना पड़ा। वीर और इच्छित सन्तान प्राप्त करने का मुख्य साधन एवं रहस्य इस व्रताचरण में है। यज्ञ में विशेष औषधियों से निर्मित साकल्य का प्रयोग किया गया और यज्ञ शेष के रूप में विशेष विधि से निर्मित 'पायस' रानियों को दिया गया। इस व्रताचरण और औषधिविनिर्मित पायस के सेवन से रानियाँ गर्भधारण में समर्थ हुईं। गर्भ धारण काल में पुरोहितों द्वारा वीर कथायें सुनाने, वीर पुरुषों के चित्र दर्शन और वीर सन्तान के लिये प्रभु से प्रार्थना का क्रम चला। फलतः यथा समय राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसी दिव्य सन्तानों का जन्म हुआ।

महर्षि वसिष्ठ का गुरुकुल– गुरु वसिष्ठ द्वारा चारों राजकुमारों के विधिवत् सभी संस्कार कराये गये। उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में प्रवेश प्राप्त कर वेद–वेदांगों का अध्ययन श्रीराम और अन्य भाइयों ने किया।

प्रश्न- परन्तु वाल्मीकि रामायण में श्री रामचन्द्रजी के उपनयन का कहीं भी उल्लेख नहीं है ?

उत्तर- तो क्या इससे यह समझा जाय कि उनका उपनयन ही नहीं हुआ था ? सो इस विषय में शंका करना ही व्यर्थ है। क्योंकि उनके उपनीत होने के कई प्रमाण वाल्मीकि रामायण में मिलतें हैं जो कि आगे उद्धृत किये जाते हैं–

बालकाण्ड में देवर्षि नारदजी महर्षि वाल्मीकि से श्रीरामचन्द्रजी के गुण वर्णन करते हुए कहते हैं–

वेदवेदागंतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।। (बालकाण्ड, सर्ग १।१४)

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी वेदवेदांग और धनुर्वेद के ज्ञाता है। पुनः अयोध्याकाण्ड – सर्ग २, श्लोक ३४ में भी श्रीरामचन्द्रजी के सम्बन्ध में "सम्यक्–विद्याव्रतस्नातः यथावत्सागंवेदवित्" ऐसा वर्णन है।

पुनः हनुमानजी जब अशोक वाटिका में गये तो सीताजी से भेंट होने पर कहने लगे कि 'मैं रामदूत आपकी खोज में श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से यहाँ आया हूँ ,' तब सीताजी के पूछने पर हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी का जो वर्णन उन्हें सुनाया, उसमें कहा है कि–

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः।।१४

– सुन्दरकाण्ड सर्ग ३५

अर्थात्– श्रीरामचन्द्रजी यजुर्वेद में पारंगत हैं और बड़े–बड़े ऋषि भी इसके लिए उनको मानते हैं तथा वे धनुर्वेद और वेदवेदांगों में भी प्रवीण हैं।

अयोध्याकाण्ड– सर्ग ८२, श्लोक ११५ में भरतजी कहते हैं–

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नानस्य धीमतः।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत्।।

अर्थात्– जिसने गुरुकुल में निवास करके ब्रह्मचर्यव्रत पालन किया है तथा जो विद्याव्रतस्नात है उसका राज्य लेने की आकांक्षा मेरे सदृश मनुष्य कैसे करेगा ?

उपरिनिर्दिष्ट प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीरामचन्द्रजी ने सम्पूर्ण वेद और वेदांगों का अध्ययन किया था। यजुर्वेद में तो वे ब्रह्मर्षियों को भी मान्य ऐसे प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने गुरुकुल में निवास किया था, ब्रह्मचर्यव्रत का भी पालन किया था। यथाविधि ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाभ्यास पूर्ण करके ही वे 'विद्याव्रतस्नात' हुए थे। अब जब कि उपनयन संस्कार हुए बिना 'ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन' का अधिकार किसी को प्राप्य ही नहीं हैं तो श्रीरामचन्द्रजी का उपनयन संस्कार हुआ था, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट ही है।

श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके तीनों भ्राताओं के जातकर्मादि सर्व संस्कार ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी ने राजा दशरथ से करवाये थे। इस विषय में बालकाण्ड सर्ग १८ श्लोक २३ में 'तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्' इस प्रकार वर्णन है। उस पर 'जन्मक्रियादीनि तदाद्यन्त उपनयनादीनि' अर्थात् 'जातकर्म से प्रारम्भ करके नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन आदि सर्व संस्कार राजा दशरथ ने वसिष्ठजी से करवाये थे, ऐसा स्पष्टीकरण टीकाकारों ने किया है। अतः श्रीरामचन्द्र का उपनयन संस्कार हुआ था, यह निश्चित रूप से सिद्ध है, और इस विषय में शंका के लिये अब कोई अवकाश नहीं रहता।

महर्षि विश्वामित्र का गुरुकुल

ऋषियों की निश्चित योजना के अनुसार श्रीराम की शिक्षा को गुरु वसिष्ठ के गुरुकुल की शिक्षा से ही पूर्ण नहीं माना गया। शस्त्र–अस्त्रों के विशेष शिक्षण के लिये मुनि वसिष्ठ की विशेष प्रेरणा से राम–लक्ष्मण महामुनि विश्वामित्र के आश्रम में गये।

राम–लक्ष्मण जब विश्वामित्र के साथ चले तो तीन चार कोस जाते ही वे सरयू नदी के तीर पर पहुंचे। उस रात्रि में वे वहीं सरयू नदी के तीर पर खुली जगह में ही रहे और वहीं घास पर सोये।

जैसे ऋषि सोये, वैसे ही राजपुत्र भी सोये। सम्राट के प्रिय पुत्र राजधानी से बाहर जाते हैं, उनके साथ नौकर–चाकर नहीं हैं, कपड़े –लत्ते भी नहीं हैं। फिर भी उन्हें कोई कष्ट नहीं है, असन्तोष नहीं है। इसी से यह भी स्पष्ट होता है कि इससे पहले भी ऋषि वसिष्ठ के आश्रम में वे आरण्यक गुरुकुलीय जीवन के निरन्तर अभ्यासी रहे थे। यदि पूर्व जीवन को वे ऐश–आराम में ही व्यतीत करते और नरम–नरम गदेलों पर सोते रहते तो एकदम उनको खुली हवा में नदी के तीर पर निद्रा न आती। गुरुकुलीय जीवन की यह कष्ट–सहिष्णुता उनके सम्पूर्ण जीवन के लिए वरदान बन गई। यही कारण था कि वन जाते समय उन्हें किसी प्रकार के कष्ट की अनुभूति नहीं हुई।

राम और लक्ष्मण ये दोनों राजकुमार ऋषि विश्वामित्र के साथ करीब–करीब एक मास रहे। इस थोड़े से समय में पहले तो ऋषि ने राम को बला और अतिबला इन दो विशेष विद्याओं को दिया। और जब राम ने थोड़े ही प्रयास से उन्हें आत्मसात् कर लिया तो प्रसन्न होकर ऋषि ने उन्हें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र दिये, युद्ध–विद्या सिखायी, प्राचीन सत्पुरुषों का इतिहास कहकर उनका उत्साह बढ़ाया, इतना ही नहीं उत्तम राजकन्याओं के साथ उनका विवाह भी कराया। श्रीराम–लक्ष्मणादि राजपुत्रों का इतना कल्याण विश्वामित्र ऋषि ने एक महीने में किया। यदि ये राजपुत्र घर में रह जाते तो इनमें से उनको कुछ भी प्राप्त न होता। ऋषियों के सहवास का एवं गुरुकुलीय शिक्षा और जीवन–पद्धति का ऐसा उत्तम फल होता है।

श्री रामचन्द्रजी पहले ही सब विद्याओं में तथा धनुर्विद्या में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी। इस तरह के गुण–सम्पन्न राजकुमारों को पसन्द करके उनको अपने हाथ में लेकर विशेष शिक्षा देकर विश्वामित्र ने उन्हें किस प्रकार राष्ट्र कार्य के लिये तैयार किया, यह दर्शनीय है। इसी काल में ताड़का–वध के प्रसंग में 'स्त्री–वध' से शंकित हृदय राम को राजनीति की शिक्षा भी दी गई। राक्षसों से प्रथम मुठभेड़ कराके रावण–राज्य की सीमा पर राक्षसों द्वारा यह विध्वंस तथा ऋषि दंशन के क्रूर दृश्य दिखाकर उन्हें भविष्य में 'रावण वध' जैसे बड़े कार्य के लिये निर्भय और सन्नद्ध कर दिया। इससे पता लग सकता है कि ऋषि उस समय के तरुणों का हित कैसे करते थे, तरुणों का उत्साह भी कैसे बढ़ाते थे और किस प्रकार उनकी वृत्तियाँ राष्ट्र कार्य में लगा देते थे। राम और लक्ष्मण की भाँति ही ऋषियों के प्रयत्न से आर्यों की तरुण जनता नवीन उत्साह से उत्साही बनाई गई।

गुरुकुलीय शिक्षा के चमत्कार

वसिष्ठ और विश्वामित्र इन दो ऋषियों ने नई पीढ़ी का मानस ही बदल कर दिखा दिया। जो राजा दशरथ रावण का नाम सुनते ही काँपते थे जैसा कि विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण को माँगने के प्रंसग में एकदम स्पष्ट है, उसी दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने रावण का वध किया और भरत–शत्रुघ्न ने रावण पर हमला करने की तैयारी की थी। दशरथ में राक्षसों का भय था और राम

निर्भयता से वन में विचरते हुए, ऋषि–मुनियों को आश्वस्त करते हुए रावणादि राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा करते हैं। विचारों की यह क्रान्ति ● ऋषियों ने निर्माण की थी। यह गुरुकुलीय शिक्षा का चमत्कार था।

● **आज भी कोई भी क्रान्ति नई पीढ़ी में ही सम्भव है और वह भारतीय आदर्शों से अनुप्राणित गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति द्वारा ही सम्भव है। 'नान्यः पन्था विद्यते यनाय'। इतिहास साक्षी है कि जब तक 'गुरुकुल' पद्धति का शिक्षा क्षेत्र में प्रचलन रहा तब तक राज्य को भी दोनों ओर से ठोकर लगाने वाले राम और भरत जैसे आदर्श भाइयों के दृश्य हमारे सामने आते रहे। पर महाभारत काल में गुरु द्रोणाचार्य को राज दरबार में बुलाकर उन्हें राजकुमारों की शिक्षा के लिये नियुक्त किया गया और इस प्रकार गुरुकुल के स्थान पर 'शिष्यकुल' की परम्परा का प्रचलन हुआ तो आरम्भ में ही भ्रातृ-द्रोह, विलासिता, गुरुजन-अपमान और उच्छृंखलता की नींव पर खड़े 'महाभारत-काण्ड' के दृश्य हमारे दृष्टि-पथ में आते हैं। गुरुकुलीय शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करने के लिये यह एक उदाहरण ही पर्याप्त है।**

एक आदर्श विनय सम्पन्न शिष्य

इस सम्पूर्ण समय में हम श्रीराम को एक आदर्श विनीत शिष्य के रूप में पाते हैं। वे प्रत्येक कार्य गुरु–आज्ञा से करते हैं। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्मों के लिए भी वे गुरु आज्ञा आवश्यक समझते हैं। प्रातः ही गुरु चरणों में नत शिर हो अभिवादन करना वे नहीं भूलते। धनुष–भंग आदि सभी प्रसगों में वे गुरु–आज्ञा का ध्यान रखते हैं।

विश्वामित्र के साथ रहते हुए राम–लक्ष्मण की गुरुभक्ति का एक अति मनोरम दृश्य सन्त तुलसी के शब्दों में देखिये–

मुनिवर सयन कीन्ह जब जाई।
लगे चरन चापन दोऊ भाई।।
बार-बार मुनि अग्या दीनी।
रघुवर जाइ सयन तब कीन्हीं।।

राम की यह आदर्श भक्ति एवं विनय शीलता उनके अन्य सभी गुणों के ऊपर विराजती है और जीवन–समर में विजय–लाभ की क्षमता प्रदान करती है। यह विनयशीलता भ्रातृ–प्रेम, पितृभक्ति, स्वदेश भक्ति गुरुकुलीय शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।

ब्रह्मचर्य-काल निर्णय

ऊपर हम देख चुके हैं कि किस प्रकार राम ने ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक गुरु चरणों में वेद–वेदांगों की शिक्षा प्राप्त की और वे 'व्रत स्नातक' बने। यहाँ केवल इतना विचारणीय है कि उनका यह ब्रह्मचर्य –काल किस अवस्था तक रहा अथवा विवाह के समय श्रीराम की क्या आयु थी ?

इस सम्बन्ध में बाल–विवाह के समर्थक पौराणिक सज्जनों का कहना है कि धनुष यज्ञ के समय राम अपनी आयु के १६ वें वर्ष में थे और सीताजी की आयु ६ वर्ष थी। हमने अपनी अभद्र मान्यताओं को किस बुरी तरह अपने पवित्र आदर्शों पर लाद कर उनके रूप को ही विकृत और घृणित बना दिया है उसकी अत्यधिक घिनौनी, मूर्खतापूर्ण और बुद्धिशून्य मिसाल इस प्रसंग में देखी जा सकती है।

विचारणीय यह है कि क्या श्रीराम की इतनी पूर्ण शिक्षा और अनुभव १५ वर्ष की वयस में सम्भव है ? और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम 'कम से कम २५ वर्ष की आयु में विवाह करने–की वैदिक मर्यादा को क्योंकर तोड़ते जब कि उन्होंने अपने प्रत्येक आचरण से वर्णाश्रम धर्म की विश्रृंखलित मर्यादाओं का स्थापन किया था न कि उनका उन्मूलन ? और यदि थोड़ी देर के लिये इस विचित्र और विनाशकारी मान्यता को स्वीकार भी कर लिया जावे तो बुद्धि–विपर्यय की पराकाष्ठा हमें तत्काल दिखाई देने लगेगी। ६ वर्ष की सीता का शिव धनुष को उठाकर रख देना उसके आधार पर जनक की प्रतिज्ञा, ६ वर्ष की सीता का स्वयंवर! यह शब्द अपनी सारी महत्ता और गरिमा को खोकर कितना अर्थहीन और उपहासास्पद बन जाता है जब सीता को ६ वर्ष की बताया जाता है! और उस स्वयंवर (?) में इतने राजाओं का आना, सन्त तुलसीदास के अनुसार तो पुष्प वाटिका में ६ वर्ष की सीता को देखकर १५ वर्ष के किशोर राम का 'मानहु मदन दुन्दुभी दीनी' कहकर काम–मोहित होना और ६ वर्ष की सीता के मन में राम के प्रति आकर्षण होकर उन्हीं को पाने के लिये मनौतियाँ मनाना–क्या यह सब सर्वथा मिथ्या, बुद्धि–शून्य और अनर्गल प्रलाप मात्र नहीं है ?

श्रीराम के वन–गमन के समय सीताजी राम के साथ चलने का आग्रह करते हुए कहती हैं–

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया।।

– अयोध्या काण्ड २७।१०

अर्थात् 'माता और पिता ने मुझे पति की सेवा करना ही सिखाया है, इसलिए आप मुझे इस समय कुछ और मत कहिये' अतः मेरा निवेदन है कि –

'त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया'

अर्थात् माता–पिता की आज्ञा से मैं अवश्य आपके साथ चलूंगी।

विचारणीय यह है कि क्या ६ वर्ष की बालिका को पातिव्रत की महिमा एवं नारी धर्म के गूढ़ रहस्यों की शिक्षा माता–पिता द्वारा दिया जाना सम्भव है ? और सीता जब ६ वर्ष की होकर सातवें

में लगी थीं तो उनकी छोटी बहिन उर्मिला तो ४–५ वर्ष की होगी! यह सब कुछ बाल–विवाह के पाप के समर्थन में किया गया अविचारपूर्ण प्रयत्न है।

वस्तुतः विवाह के समय राम की आयु २५ वर्ष और सीता की आयु १८ वर्ष थी। अपने इस कथन की सम्पुष्टि में हम वाल्मीकि रामायण से निम्न उद्धरण प्रस्तुत करना चाहेंगे–

राम–लक्ष्मण की अनुपस्थिति में उचित अवसर देखकर रावण ब्राह्मण वेश में सीता के समक्ष उपस्थित होता है। सीता की प्रशंसा करते हुए वह उसका परिचय पूछता है। सीता देवी आर्योचित अतिथि–सत्कार करने के पश्चात् अपना परिचय देते हुए बता रही है कि मैं राजा जनक की पुत्री और राम की रानी हूँ। इसी प्रसंग में आगे वे कहती हैं–

मम भर्ता महातेजा वयस्या पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।।

– अरण्य काण्ड ४७।१०

स्वयम्वर की रीति से, जब मेरे पति महातेजस्वी राम २५ वर्ष के थे और मैं १८ वर्ष की थी, मेरा विवाह हुआ था। इससे अधिक स्पष्ट विवरण और क्या हो सकता है ?

बाल विवाह के पक्षपाती पौराणिक टीकाकारों ने पंचविंशक' का अर्थ किया है कि वनवास के समय राम की आयु २५ वर्ष की थी, पर जब पुराण–रीति से १६ वें वर्ष में विवाह और १२ वर्ष अयोध्यावास के –२८ वें वर्ष में वन जाना स्मरण आया तब अर्थ किया कि 'पंचविंशक' का अर्थ है पच्चीस से ऊपर आयु वाला और जब इसमें भी प्रमाण न मिला तब अर्थ किया कि यहाँ राम की आयु का वर्णन नहीं किन्तु सांख्य सिद्ध २५ वें तत्व 'चेतन–ब्रह्म' या उसके अवतार को बताने का उद्देश्य है। इसी प्रकार सीता की आयु विषयक् 'अष्टादश हि वर्षाणि' को पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत, पाँच इन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि, मन, तीन अन्तःकरण के भेदों को मिलाकर १८ तत्वों वाली प्रकृति (ब्रह्ममाया) सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। बलिहारी है इस बुद्धि–विपयर्य की। विद्वान् लोग जानते हैं कि इतिहास में और विशेषतः प्रस्तुत प्रसंग में ब्रह्म और माया के विवेचन की बात कितनी अप्रासंगिक और हास्यास्पद है।

यह सही है कि इस श्लोक में सीता ने अपनी विवाहकालीन अवस्था का वर्णन किया है और उचित भी यही है कि जन्म के पीछे विवाह (जिससे कि सीता का राम के साथ सम्बन्ध हुआ) वर्णन करती न कि विवाह और वर्तमान आयु को छोड़ वन निर्गमन काल की आयु–पत्री बताती।

इस प्रकार सिद्ध है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने २५ वर्ष का पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करके ही स्वयंवर में भाग लिया था।

ब्रह्मचर्य के धनी राम

राम के ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण निखार तो विवाह के पश्चात् अयोध्या निवास और वनवास काल में सपत्नीक रहते हुए भी संयम–साधना के प्रसंग में देखने को मिलता है।

राम स्वयं शूर्पणखा से प्रेरित खर के द्वारा भेजे गये राक्षसों को अपना परिचय देते हुए कहते हैं–

पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकंवनम्।।
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।

– अरण्य कां० सर्ग २० ।७ ।८

'दशरथ के पुत्र हम दोनों भाई राम–लक्ष्मण फल मूल खाने वाले, दमनशील (जितेन्द्रिय) तपस्वी, ब्रह्मचारी सीता के साथ गहन दण्डकारण्य में आये हैं।'

गृहस्थ जीवन में भी राम की यह ब्रह्मचर्य–साधना किसी विशेष उद्देश्य से ही प्रेरित थी। महर्षि वसिष्ठ और विशेषतः विश्वामित्र ने 'रावण वध' के रूप में राष्ट्रकार्य, देश हित और प्रजा सुख के लिए ही जीवन धारण करने की वह अग्निशिखा राम के हृदय में जला दी थी जिसमें सभी पार्थिव सुखोपभोगों का विचार तक भी भस्मसात् हो गया था।

वनवास काल में तो वे व्रत के बन्धन में थे ही, विवाहोत्तर अयोध्या निवास के समय में भी राम प्रजा–सुख के विचार और कार्यों में इतने तल्लीन रहे कि कोई अन्य विचार उनकी पवित्र संकल्पाग्नि को छू भी नहीं सकता था।

प्रदीप्त यौवन काल में राम की ब्रह्मचर्य साधना का यही रहस्य है। राष्ट्र कार्य के लिए अर्पित जीवनों को राम जीवन के इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर शक्ति–संचय का व्रत लेना चाहिये।

राम का एकपत्नी-व्रत

उपर्युक्त विवेचन से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इतने समय तक ब्रह्मचर्य–साधना के विचार से राम, सीता के प्रति उदासीन रहे या उपेक्षा का भाव रखते रहे। अनेक प्रसंगों में राम का अगाध सीता प्रेम पूरे उत्कर्ष के साथ देखने में आता है। वन गमन के समय किन कोमल शब्दों में राम ने सीता को समझाने का प्रयास किया और अन्त में सीता की पति–निष्ठा का सम्मान करते हुए वे कहते हैं–

न देवि ! तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
न हि मे स्तिभयं किंचित्स्वयम्भोरिव सर्वतः।।

– अ० कां० सर्ग० ३० श्लोक २७

"हे देवी! मैं तुम्हें यहाँ दुःखी रखकर सुख का अनुभव कैसे कर सकता हूं ? मुझे किसी का भय है, ऐसी बात भी नहीं है। यदि तुम मेरे बिना स्वर्ग नहीं चाहतीं तो मैं भी तुम्हारे बिना स्वर्ग की इच्छा नहीं रखता।"

"अतः तुम वनगमन की तैयारी करो" सीता के साथ वन में सम्भावित असुविधाओं को विचार कर भी राम सीता को उक्त शब्दों में अनुमति देते हैं, यह उनके उत्कट सीता–प्रेम का ही परिचायक है।

सीता–हरण के प्रसंग में तो राम की मनोव्यथा फूट पड़ती है। सीता के सौन्दर्य, कोमलता और कष्टों का विचार करके साधारण पुरुषों की भाँति वे विलख पड़ते हैं। यहाँ तक कि संज्ञा–हीन जैसी दशा में पशु–पक्षी और वृक्षों से सीता का समाचार पूछते हैं। सीता–वियोग के सम्पूर्ण काल में राम की मनोदशा का कुछ परिचय हनुमान द्वारा अशोकवाटिका में सीता के प्रति कहे गये निम्न शब्दों में मिल सकता है–

अनिद्रः सततं रामः सुप्तो पि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रति बुध्यते।।

– सु० कां० ३।४४

"हे देवि सीता! तुम्हारे वियोग में नरश्रेष्ठ राम को रात्रि को नींद नहीं आती। जो कभी सोये भी तो सीते ! सीते!! यह मधुर शब्द कहते हुए जाग पड़ते हैं।"

सीता का समाचार मिलने पर वे सीता द्वारा प्रेषित चूड़ामणि को हृदय से लगाते हैं और हनुमान् का अमित उपकार मानते हैं।

इन सभी तथा अन्य अनेक प्रसंगों में श्रीराम का सीता–प्रेम देखा जा सकता है। पर उनके प्रेम की पराकाष्ठा है–'एकपत्नी व्रत' के आदर्श–पालन में।

उस समय राजाओं के बहु–विवाह की प्रथा थी। स्वयं राम के पिता महाराज दशरथ के तीन रानियाँ थीं। शृंगार विभूषिता अतिसुन्दरी शूर्पणखा द्वारा श्रीराम से एक पत्नी की उपस्थित में अपने साथ विवाह कर लेने का प्रस्ताव करना भी तात्कालिक बहुविवाह की प्रथा के आधार पर ही सम्भव है, पर राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वैदिक मर्यादाओं की स्थापना के लिए उन्हें ऋषियों ने तैयार किया था। भगवान् मनु ने लिखा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः।।
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वैध्रुवम्।।

"नारी सम्मान सुख–समृद्धि का मूल है। पति–पत्नी की पारस्परिक प्रसन्नता, पारिवारिक कल्याण की कुंजी है।" मानव धर्म शास्त्र की ये सद्–शिक्षायें श्रीराम ने हृदयगंम की थीं। उनके सामने यह पवित्र वेदोपदेश था–

चक्रवाकेव दम्पती (अ०१४।२।६४)

पति–पत्नी दोनों चकवा–चकवी की भाँति परस्पर प्रीति करने वाले हों। ऋग्वेद १०।८५।४२ में कहा है–

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्मायुर्व्यश्नुतम्।

''हे दम्पति! पति–पत्नी तुम दोनों (इह+एव) यहाँ ही (स्तम्) रहो। (मा) मत (वियौष्टम्) विमुक्त होओ और (विश्वम्) पूरी (आयुः) आयु (व्यश्नुमत्) भागो।''यहाँ 'इहैव' तुम दोनों यहाँ रहो कहा गया है। यदि एक समय में एक से अधिक पति–पत्नी का विधान होता तो 'स्तम्' द्विवचन न होकर 'स्त' बहुवचन होता है।

इस वैदिक शिक्षा के अनुसार ही शूर्पणखा के प्रस्ताव पर एक कवि के शब्दों में वे कहते हैं–

हम आर्य जाति के बच्चे हैं, रघुवंशी वैदिक धर्मी हैं।
जो अधिक एक से व्याह करें, कहते हैं वेद दुष्कर्मी हैं।।

वे मर्यादा के पुजारी श्रीराम का यह एकपत्नी–व्रत उस समय में बहुत प्रसिद्ध हुआ और इस व्रत निष्ठा से श्रीराम का व्यक्तित्व गौरवान्वित हो खूब चमका यहाँ तक कि शत्रुपत्नियों ने भी–

'एक नारि व्रत रघुवर केरा, लषण सुयश मैं सुनेउ घनेरा।'

कहकर राम की इस व्रतनिष्ठा का समादर किया। राम के एकपत्नी व्रत के सम्बन्ध में स्वयं, सीता कहती हैं–

मनस्यापि तथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित्।
स्वदारनिरतश्चैवनित्यमेव नृपात्मज।।

''प्रभो! परस्त्रीगमन तो आपके संकल्प में भी नहीं आया क्योंकि आप पक्के एकपत्नीव्रती हैं।''

राम की आदर्श चरित्रनिष्ठा का एक बहुचर्चित प्रसंग और है। कहते हैं कि जब रावण अनेक प्रयत्न करने पर सीता के मन को न जीत सका और सीता के लिए व्यग्र रहने लगा तो पहले तो कुम्भकर्ण ने उसकी इस पापवृत्ति के लिये कठोर शब्दों में भर्त्सना की फिर अन्त में उसे कहने लगा कि आप तो बड़े मायावी (विज्ञान–कौशल–कुशल) हैं। स्वयं राम का रूप धारण करके सीता के पास जाओ। सीता आपको राम समझ दौड़कर गले से लगावेगी। एक कवि के शब्दों में रावण का उत्तर इस प्रकार है–

तुम राम को रूप अनूप धरौ, पुनि जावहु वेगि सिया ढिंग भाई।
मिलिहैं भरि अंक में दौड़ि सिया, जिय जानि तुम्हें सुपिया रघुराई।।
यह कारज हूं करि देखिलियौ, नहिं पाइ सक्यौ किञ्चित् सफलाई।
जब राम को रूप बनावत हौं, तब मातु सी दीखति नारि पराई।।

धन्य ! धन्य !! वैदिकधर्मी राम आप धन्य हैं। संसार के इतिहास में राम जैसे चरित्र का उच्च आदर्श कहाँ मिलेगा ?

राम का अनन्य निष्ठायुक्त सीता–प्रेम और उनका एकपत्नीव्रत दोनों ही आर्य जाति के युवकों के लिए प्रेरणा, प्रकाश और जीवन का आधार रहे हैं। विशेषतः वे सज्जन जो केवल देवियों को ही पतिव्रत का उपदेश झाड़ते हैं विचार करें कि पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक और पुण्यकारी है।

आदर्श ईश्वरभक्त राम

श्रीराम की सफलता का आधार उनकी अनन्य ईश्वरनिष्ठा थी। जीवन के किसी क्षण में भी–न सुख के गर्वीले क्षणों में और न घोर कष्टों के तमावृत अवसरों पर–उन्होंने अपनी अगाध ईश्वरनिष्ठा को खोया नहीं। दैनिक सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र एवं स्वाध्याय द्वारा अपने आत्मतेज एवं आत्मशक्ति को निखारना और स्वधर्म अर्थात् स्व–कर्त्तव्य के पालन में उस शक्ति का उपयोग करना, यही है श्रीराम की ईश्वर–भक्ति। नित्य कर्मों का अनध्याय (नागा) वे प्रवास काल में भी नहीं करते। ऋषि विश्वामित्र के साथ पदयात्रा में प्रातः और सायं दोनों समय निष्ठापूर्वक नित्यकर्म करना वे नहीं भूलते। वनवास काल में चलते–चलते जहाँ सन्ध्या हो जाती है, वहीं रुक कर सन्ध्यादि कर्म में प्रवृत्त होते और प्रातः आगे प्रस्थान करने के पूर्व सन्ध्यादि नित्यकर्म करते हुए हम उन्हें देख सकते हैं। तो ऐसे अनन्य ईश्वरभक्त श्रीराम थे। पर ईश्वरभक्ति के नाम पर कर्त्तव्य–पराङ्मुख होकर किसी गिरि–गुहा में बैठ कर मालायें घुमाते हुए या 'हरिनाम संकीर्तन' के नाम पर उछलकूद मचाते हुए हमने उन्हें वनवास काल में भी नहीं देखा, जबकि उन्हें वहाँ इसके लिए पर्याप्त अवसर हो सकता था। इस समय में भी हम उन्हें वनवासी प्रजा के कष्ट निवारण की योजनायें बनाते हुए अथवा अगस्त्य आदि ऋषियों के आश्रमों में अपना ज्ञान–वर्द्धन करने एवं नवीनतम वैज्ञानिक अस्त्र–शस्त्रों का शिक्षण प्राप्त करने में रत हुआ पाते हैं।

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार 'स्वधर्म' अर्थात् 'क्षात्र–धर्म' का बड़ी खूबी से पालन करना और इस प्रकार ईश्वराज्ञा का पालन करना ही राम के निकट सच्ची भक्ति थी। 'क्षात्रधर्म' के रहस्य और उसकी महिमा को वे पूरी गहराई से समझते थे। वे कहते हैं–

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त्तशब्दो भवेदिति। (अरण्य काण्ड १० |२)

क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करते हैं ताकि किसी आर्त्त की करुण वाणी न सुनी जा सके। राष्ट्र के तीन महाशत्रु अज्ञान, अन्याय और अभाव में से अन्याय–शमन का व्रत सच्चा क्षत्रिय धारण करता है।

इसी क्षात्र धर्म से प्रेरित हो वे राक्षसों के वध के लिए प्रतिज्ञात होकर प्रवृत्त होते हैं। एक आदर्श प्रभुभक्त की तरह घोरतम कष्टों के बीच भी वे इस निष्ठा से विचलित नहीं होते। स्वधर्म पालन उनके निकट ईश्वर–भक्ति का पर्याय है। इस प्रकार मानो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम वैदिक ईश्वरभक्ति की मर्यादा और उसका आदर्श भी अपने जीवन द्वारा प्रस्तुत करते हैं।

आदर्श पितृ-भक्त राम

भगवान् राम के जीवन के सभी अध्याया अत्यधिक प्रेरणाप्रद और आदर्श हैं, पर उनकी पितृभक्ति मानो सर्वोपरि है।

महाभारत में यक्ष–युधिष्ठिर सम्वाद के प्रकरण में यक्षराज वहाँ कई प्रश्नों में से दो प्रश्न इस प्रकार करते हैं–

यक्ष– पृथ्वी से भी भारी क्या है ?

युधिष्ठिर–माता।

यक्ष–आकाश से भी ऊँचा कौन है ?

युधिष्ठिर–पिता।

सच में माता की सहिष्णुता एव गरिमा और पिता की निज सन्तान के लिए उदारता एवं उच्चता को कौन माप सका है ? श्रीराम ने माता की इस गरिमा और पिता की इस उच्चता को अनुभव किया था और माता–पिता के महान् ऋण से अनृण हो सकने की भावना तथा अदम्य प्रेरणा से उन्होंने अपने आपको ही उनके चरणों में अर्पण कर दिया था।

पितृयज्ञ आर्यजनों के नित्यकर्म का, एक अविभाज्य अंग है। पितृयज्ञ के दो भाग हैं (१) श्राद्ध (२) तर्पण। ● 'श्राद्ध' का अर्थ है प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक माता–पिता एवं गुरुजनों के चरणों में श्रद्धापूर्वक नमन तथा उनकी सेवा–शुश्रूषा और तर्पण का अर्थ है अपने कार्य कलाप और यशस्वी जीवन व्यवहार से उन्हें तृप्त (सन्तुष्ट) करना। राम पितृयज्ञ के इन दोनों रूपों को प्रतिदिन निष्ठापूर्वक निभाते थे।

● **जीवित माता-पिता की श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही सच्चा श्राद्ध है। "जियत पिता से दंगम-दंगा, मरे पिता पहुँचाये गंगा" के अनुसार मृतक श्राद्ध की अवैदिक एवं बुद्धि -शून्य कुरीति से यह सर्वथा भिन्न है।**

विनय सम्पन्न हो गुरुजनों के चरणों में नमस्ते निवेदन करने का महत्व मानव धर्म शास्त्र प्रणेता मनु महाराज ने निम्न प्रकार वर्णित किया है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

अर्थात् अपने बड़ों को नित्य ही सश्रद्धा अभिवादन करने वाले एवं उनकी सद्शिक्षा के अनुसार आचरण करने वाले दीर्घायु, विद्या, यश और बल इन चार अनमोल पदार्थों को पाते हैं। श्रीराम ने गुरु चरणों में बैठकर जीवन–निर्माण के इन सूत्रों का अध्ययन किया था। सन्त तुलसी लिखते हैं–

प्रात समय उठिकै रघुनाथा। मात-पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हर्षहिं मन राजा।।

इतना ही नहीं वे प्रत्येक कार्य करने में माता–पिता की प्रसन्नता का पूर्ण विचार रखते थे। उनके सभी कार्य कलाप पिता की प्रसन्नता को बढ़ाने वाले और माता के आनन्द की वृद्धि करने वाले होते थे।

उनकी यह पितृ–भक्ति सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं रही वरन् जब उनकी परीक्षा का प्रसंग उपस्थित हुआ तो वह खरे कञ्चन की भाँति कसौटी पर उत्तीर्ण हुए।

कैकेयी के भवन में यों बेहाल पड़े अपने पूज्य पिता की विह्लता को राम देख नहीं सके, बड़े करुणापूर्ण स्वर में वे बोले–"माँ, पिताजी ने मुझे किसलिए याद किया है, पिताजी को क्या कष्ट है, पिताजी इस तरह विकल क्यों हैं ? माताजी, हमने तो पिताजी को कष्ट देने वाला कोई कार्य किया नहीं है" और जब कैकेयी ने कहा कि 'राम! राजा तुम्हें कुछ कहना चाहते हैं पर तुम्हारे डर के कारण नहीं कहते" इस कथन पर शांतिमूर्ति श्रीराम आवेश में आ जाते हैं। वे इस चुनौती को सह नहीं पाते और कहते हैं–

अहोधिङ् नार्हसे देवि ! वक्तुंमामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा, नृपेण च हितेन च।।
तद्ब्रूहि वचनं देवि! राज्ञो यदभिकांक्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामोद्विर्नाभिभाषते।।

– अयोध्या काण्ड १८ ।२८ ।३०

"हे माता! मुझे धिक्कार है, जो आप ऐसे संकोच और सन्देह युक्त शब्द कहती हैं। मैं राजा (पिता) की आज्ञा से आग में भी कूदने को तैयार हूँ। हलाहल विष पीने और जीवन समाप्त कर देने वाले समुद्र में डूबने को तैयार हूँ। चाहे जो हो पिताजी मुझे जो आज्ञा करेंगे, उसे मैं जरूर करूँगा। माता! आप स्मरण रखें कि राम कभी दो वचन नहीं बोलता अर्थात् जो एक बार कह देता है उसे अवश्य पूरा करता है।"

इसी प्रसंग में वे आगे कहते हैं–

न ह्यतो धर्माचरणं किञ्चदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचन क्रिया।।

– अ० काण्ड १६ ।२२

सन्त तुलसीदास ने इन्हीं भावों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है –

सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु सेवन हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

अगाध पितृ–भक्ति–रस में पगे राम के ये वचन विश्व इतिहास में पितृ–भक्ति का ऐसा दिव्य आदर्श प्रस्तुत करते हैं जो अपने आपमें अद्वितीय है। इन शब्दों में राम का अदम्य आत्म–विश्वास झांक रहा है।

राम की प्राणप्रिया सीता राम के साथ वन जाने का साग्रह अनुरोध कर रही है। राम के अगाध सीता–प्रेम का तकाजा है कि वे अपनी प्यारी पत्नी को साथ ले जायें। पर तभी पूज्य पिता दशरथ की शोकपूर्ण निगाहें और प्यारी–२ ममतामयी माँ की शोक–कातर तस्वीर राम की आँखों में झूल जाती है, वे अपनी प्यारी प्रिया को समझाते हुए कहते हैं–

सादर सास श्वसुर पद पूजा। एहि ते बड़ा धर्म नहिं दूजा।।

अर्थात् प्रिये! घर पर ही रह कर तुम सासु–श्वसुर की सेवा रूप सबसे बड़े धर्म पालन का लाभ प्राप्त करो। अपनी युवा पत्नी को १४ वर्ष के लिये पितृ–सेवा के लिये घर पर रहने का आग्रह राम की ज्वलन्त पितृ–भक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इसके पीछे कितनी अनुपम त्यागमयी उदात्तता है, इसका अनुमान ही सम्भव है।

श्री लक्ष्मणजी को घर पर रहने के आग्रह के पीछे राम का यही प्रबल पितृ प्रेम और अनुपम पितृभक्ति का आदर्श सामने आता है। लक्ष्मण को समझाते हुए वे कहते हैं–

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धर करिय सुभाय।
लहे लाभ तिन जन्म के, न तरु जन्म जग जाय।।
अस जिय जानि सुनहुं सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई।।
भवन भरत रिपसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुःख मन माहीं।।
मैं वन जाउँ तुमहिं लै साथा। होइहि सब विधि अवध अनाथा।।
रहहु करहु सब कर परितोषू। न तरु तात! होइहि बड़ दोषू।।

वन गमन के प्रकरण में ही माता कौशल्या से भी वे कहते हैं –

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।।(२०।३०)

''माता मैं आपके चरणों में सिर रखकर विनय करता हूँ, आप प्रसन्न हूजिये। मुझमें पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है। अतः मैं वन को जाना चाहता हूँ।''

इसी प्रकार सुमन्त्र को अयोध्या वापस करते समय, भरत द्वारा पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनने के समय तथा ऋषियों–मुनियों के साथ वार्तालाप में श्रीराम की आदर्श पितृभक्ति के दर्शन सहजतया हो सकते हैं।

आदर्श मातृ-भक्ति

पितृ–भक्ति की भाँति ही राम की मातृ–भक्ति भी सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय है। ऊपर के सभी प्रसंगों में भी पितृ–भक्ति के साथ ही उनकी मातृ–भक्ति की छाप भी स्पष्ट ही है।

लंका विजय के पश्चात् वनवास की अवधि–समाप्ति का समय निकट ही जानकर राम–विभीषण और सुग्रीव आदि के अत्याग्रह पर भी उधर रुकना नहीं चाहते। अपने शीघ्र अयोध्या लौटने का हेतु देते हुए वे प्रतीक्षा कर रही माताओं को स्मरण कर कहते हैं–'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' वनवास के अनेकों प्रसंगों में उनका यह मातृ–प्रेम ऊपर उभर आता है।

राम की मातृ–भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सभी माताओं में समान भक्ति रखते हैं। मन्थरा की पापमयी मन्त्रणा से कैकेयी के मन में भी जब तक स्वार्थ का सर्प फण फैलाकर जाग नहीं उठा है तब तक स्वयं कैकेयी भी राम की इस निष्ठा के प्रति कितनी विश्वस्त है, यह उसी के शब्दों में देखिए–

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयो पि राघवः।
कौसल्यातो तिरिक्तं च मम शुश्रूषते।।

– अ० ८।१८

'मेरे लिये जैसे भरत आदर के पात्र हैं, उससे भी अधिक राम हैं। कौशल्या से भी बढ़कर राम मेरी सेवा करते हैं।'

श्रीराम की मातृभक्ति बड़ी ही आदर्श थी। माता कैकेयी के कठोर व्यवहार के समय भी वे बड़ा सम्मान प्रकट करते हुए कहते हैं–

मुनिगन मिलनु विसेषि वन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहिं महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मति जननी तोर।।

कुपित हुए भाई लक्ष्मण को वे कहते हैं –"लक्ष्मण! माता कैकेयी के मन में सन्देह के कारण उत्पन्न हुए दुःख की मैं एक मुहूर्त के लिये भी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

न बुद्धि पूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्।।

– अ० २२।८

"हे लक्ष्मण! मैंने कभी जान–बूझ कर या अनजान में माताओं या पिताजी का कभी थोड़ा भी अप्रिय कार्य किया हो–ऐसा याद नहीं पड़ता।" अपनी मातृ–पितृ भक्ति के प्रति कैसी गहन निष्ठा है, राम में। भरत को राम कहते हैं–'माता कैकेयी ने जो किया उसको कभी मन में न लाना। उसके साथ सदा वैसा ही वर्ताव करना, जैसा पूजनीय माताओं के साथ करना चाहिए।' इससे पता लगता है कि श्रीराम की अपनी अन्य माताओं में कैसी भक्ति रही होगी।

आदर्श भ्रातृ-प्रेम

श्रीराम का भ्रातृ–प्रेम भी अतुलनीय है। बचपन से ही उन्हें अपने सब भाइयों से बड़ा प्रेम था। राम सदा ही अपने सब भाइयों की रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। रामचन्द्रजी को जो भी कोई उत्तम वस्तु या भोजनादि मिलता उसे वे पहले अपने भाइयों को देकर बाद में स्वयं उपयोग में लाते थे।

राम के राज्याभिषेक का प्रसंग है। वे माता कौशल्या के महल में आये हैं। वहीं माता सुमित्रा और लक्ष्मण उपस्थित हैं। लक्ष्मण को देखते ही राम का भ्रातृ–प्रेम उमड़ने लगता है, वे कहते हैं–

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मे न्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।
सौमित्रे भुङ्क्ष्वं भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये।।

– अ० ४।४३

'लक्ष्मण तुम मेरे साथ पृथ्वी का शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो। यह राज्य–लक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। सुमित्रानन्दन! तुम मनोवांछित भोग और राज्यफल का उपभोग करो। मैं जीवन और राज्य तेरे लिए ही चाहता हूँ।'

श्रीराम को अकेले राज्य स्वीकार करने में बड़ा अनौचित्य अनुभव हो रहा है। वे स्वयं में खोये हुए विचार कर रहे हैं–

जनमे एक संग सब भाई। भोजन शयन केलि लरिकाई।।
करनवेध उपवेध विवाहा। संग संग सब भये उछाहा।।
विमल वंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू।।

जीवन–नाटक का पट–परिवर्तन होता है। राम को वनगमन का आदेश मिलता है और भरत को अयोध्या का राज्य। राम प्रसन्न मुद्रा में कहते हैं–

भरत परमप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू।।

राम के वन गमन का प्रसंग है। सीता अपने प्राणाधिक प्रिय पति के साथ चलने का आग्रह कर रही है। राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं–

भ्रातृ पुत्र समौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरत शत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम।।

"सीते! मेरे भाई भरत–शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई या पुत्र के समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिए।"

वन गमन के समय लक्ष्मण को समझाने के प्रसंग में राम कहते हैं–

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे।।

'लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म–परायण, धीर और सदा सन्मार्ग में स्थित रहने वाले हो। मेरे प्राणों के समान प्रिय और मेरे आज्ञानुवर्ती अंतरंग सखा हो।''

भरतजी सेना सहित चित्रकूट आ रहे हैं, यह देखकर श्री राम–प्रेम के कारण लक्ष्मण क्षुब्ध हो, भरत के प्रति अवाच्य शब्द कह बैठते हैं। राम, इससे दुःखी हो जाते हैं, वे कहते हैं–

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते।।
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।।
सद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मे सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुता शिखी।।
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथा गतः।।

– वा० रा० २।९७।५–६,११

'लक्ष्मण! मैं सचाई से अपने आयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी सब कुछ तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं राज्य को भाइयों की भाग्य सामग्री और उनके सुख के लिये ही चाहता हूँ। मेरे विनयी भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्न को छोड़ कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वन में आने की बात कान में पड़ते ही भरत का हृदय स्नेह से भर गया है, शोक से उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं, अतः वह मुझे देखने के लिए आ रहा है। उसके आने का कोई दूसरा कारण नहीं है।'

चित्रकूट पहुँचने पर दूर से ही भरत को प्रणाम करता हुआ देखकर श्रीराम अधीर हो उठते हैं। सन्त तुलसी के शब्दों में –

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनु तीरा।।
बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपा निधान।
भरत-राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान।।

लक्ष्मण–शक्ति के प्रसंग में राम की शोक–विह्लता में भ्रातृ–प्रेम की पराकाष्ठा है। राम कहते हैं–

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः।।
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।।
इष्ट बन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः।।

– युद्ध०कां० १०१।११–१२

'अब मुझे युद्ध से या जीवन से क्या प्रयोजन है ? जब प्यारा भाई लक्ष्मण निहत होकर रणभूमि में सो चुका है, युद्ध का अब कोई काम नहीं है। भाई! जिस प्रकार महातेजस्वी तुम मेरे साथ वन में आये थे, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ यमलोक में जाऊँगा। यह सदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुयायी रहा है, हाय! कपट–युद्ध करने वाले राक्षसों ने आज इसे इस अवस्था में पहुँचा दिया।'

इस अवसर पर राम–प्रलाप का जो वर्णन तुलसीदास ने किया है वह जहाँ हिन्दी साहित्य का अलभ्य रत्न है, वहीं भारतीय संस्कृति की गौरव महिमा का भी अनन्य प्रतीक है। उसका कुछ अंश हम यहाँ देते हैं–

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बन्धु सदा तब मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु विपिन हिम आतप वाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम वच विकलाई।।
जौ जनतेउँ वन वंधु बिछोहू। पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
सुत विन नारि भवन परवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर कर हीना।।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही। जौ जड़ दैव जिआवै मोही।।

भ्रातृ–प्रेम से सराबोर इस करुणा पर करुणा भी रो देगी।

श्रीराम लंका–विजय कर लौटने को तैयार हैं। विभीषण बड़े आग्रह और विनय भरे शब्दों में कुछ समय लंका में रुकने की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम उत्तर में कहते हैं–

न खल्वेतन्न कुर्याम् ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः।।
मां निवर्तयितुं यो सौ चित्रकूट मुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया।।

– युद्ध काण्ड १२१।१८।१९

"राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ– ऐसा कदापि सम्भव नहीं", परन्तु मेरा मन उस भाई भरत से मिलने के लिए छटपटा रहा है जिसने चित्रकूट आकर मुझे लौटा ले जाने के लिए सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनों को स्वीकार नहीं किया था, उस प्राण प्यारे भाई भरत से मिलने में मैं अब कैसे बिलम्ब कर सकता हूँ ?"

भाइयों को उपदेश करते हुए भी उनका भ्रातृ–प्रेम दर्शनीय है। तुलसी रामायण में एक प्रसंग में वे कहते हैं–

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
नर शरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

श्रीराम के भ्रातृ–प्रेम का यह केवल दिग्दर्शन मात्र है। भाइयों के लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरत के राज्याभिषेक के प्रस्ताव से परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाई की माता कैकेयी पर पहले की तरह ही भक्ति करना, मुक्तकण्ठ भरत का गुण–गान करना, भरत पर शंका और क्रोध न करने के लिए लक्ष्मण को समझाना, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर प्राण–त्याग के लिए तैयार हो जाना, समय–समय पर भाइयों को पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर सब पर प्रेम करना, इत्यादि श्रीराम के आदर्श भ्रातृ–प्रेम पूर्ण कार्यों से हम सबको यथा योग्य शिक्षा लेनी चाहिये।

राम का आदर्श मैत्री भाव

श्रीराम जहाँ एक आदर्श शिष्य थे, जहाँ एक आदर्श मातृ–पितृ–भक्त थे, वहीं वे एक आदर्श मित्र भी थे। मैत्री के रहस्य और उसकी महिमा को उन्होंने भलीभाँति समझा था। सुग्रीव के साथ मित्रता होने पर वे मित्र के लक्षण बतलाते हैं–

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी।।
निजदुःख गिरिसमरज कर जाना। मित्र के दुःख रज मेरु समाना।।
देत लेत मन संग न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
विपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा।।

फिर सुग्रीव को आश्वासन देते हुए कहते हैं–

सखा सोच त्यागहु बल मोरे।
सब विधि करव काज मैं तोरे।।

श्रीराम का अपने मित्रों के साथ अतुलनीय प्रेम–भाव था। वे अपने मित्रों के लिए जो कुछ भी करते, उसे कुछ नहीं समझते थे परन्तु मित्रों के छोटे से छोटे कार्य की भी भूरि–२ प्रशंसा किया करते थे। अयोध्या लौटते समय निषाद–राज गुह से मिलना वे नहीं भूलते। अयोध्या में पहुँच कर अपने मित्रों का परिचय कितनी हार्दिकता से करते हैं।

ये सभी प्रसंग हमे मैत्री के आदर्श को स्वजीवन में स्थान देने की प्रेरणा देते हैं।

कृतज्ञता-प्रिय राम

कृतज्ञता का अर्थ है किसी के किये गये उपकार को अनुभव करते हुए उसके आभार को मानना। कृतज्ञता ही मनुष्यता है। ईश्वरभक्ति, गुरुभक्ति, पितृभक्ति सभी का मूल कृतज्ञता है। श्रीराम की कृतज्ञता भी आदर्श थी। सीता को खोजते–२ श्रीराम जब वृद्ध जटायु को मृतप्रायः अवस्था में देखते हैं तो उनका हृदय भर जाता है। वे बड़े करुणापूर्ण शब्दों में उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और उसकी अन्तिम इच्छानुसार वैदिक विधि से उसका अन्त्येष्टि संस्कार करते हैं।

वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवगणों से बातें करते समय बार–२ वे यही शब्द दुहराते हैं– "आप लोगों की सहायता और अनुग्रह से ही मैंने रावण पर विजय प्राप्त की है।"

राज्याभिषेक के पश्चात् विभीषण विमान लेकर उपस्थित हैं और विनय करते हैं–प्रभो ! अब मैं **क्या सेवा करूँ** ? महातेजस्वी राम उस समय कहते हैं–

कृत प्रयत्न कर्माणः सर्व एव वनौकसः।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः सम्पूज्यन्तां विभीषण।।
सहामीभिस्त्वया लंका निर्जिता राक्षसेश्वर।
हृष्टेः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः।।

– यु० कां० १२२।५

"विभीषण! इन सारे वानरों ने युद्ध में बड़ा यत्न एवं परिश्रम किया है, अतः तुम नाना प्रकार के रत्न और धन आदि के द्वारा इन सबका सत्कार करो। राक्षसेश्वर! ये वीर वानर संग्राम में पीछे नहीं हटते हैं और सदा हर्ष एवं उत्साह से भरे रहते हैं। प्राणों का भय छोड़कर लड़ने वाले इन वानरों के सहयोग से तुमने लंका पर विजय पाई है।"

हनुमान् जी सीता का पता लगाकर राम से मिलते हैं। श्रीराम उनके कार्य की अनेक विधि प्रशंसा करके यहाँ तक कह डालते हैं कि वीर! सीता का पता लगाकर तुमने मुझको, लक्ष्मण को और समस्त रघुवंश को बचा लिया है।

राज्याभिषेक के समय और उन्हें विदा करते समय सर्वैश्वर्य-सम्पन्न और अतुलित शक्तिमान होते हुए भी अपने भाइयों, गुरुजनों और प्रजाजनों के प्रति भी राम का यह कृतज्ञ स्वभाव ही उनकी सर्वप्रियता का रहस्य है।

शरणागतवत्सल श्रीराम

यों तो अन्य अनेक स्थानों पर श्रीराम के इस सद्गुण का परिचय मिल सकता है किन्तु विभीषण के प्रसंग में उनकी शरणागतवत्सलता सचमुच स्पृहणीय और आदर्श है।

दुरभिमानी रावण अत्यन्त सद्भावना के साथ कहे गये विभीषण के नीतियुक्त वचनों की अवहेलना करता है, इतना ही नहीं भरी सभा के बीच विभीषण को अपमानित करता है। विभीषण राम की शरण में पहुंचता है। स्वभावतया सभी विभीषण पर सन्देह प्रकट करते हैं। सिर्फ हनुमान् जो विभीषण के स्वभाव और रीति-नीति से पूर्व परिचित थे, विभीषण को निर्दोष बताते हैं और उसे शरण में लेने की सम्मति देते हैं। सबके विचार सुनने के पश्चात् भगवान् राम कहते हैं-

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषी यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हित।।

– युद्धकांड १८।

राम ने जिस सद्भाव और सचाई से विभीषण की बाँह पकड़ी थी, उसका आद्योपान्त निर्वाह किया। भाई लक्ष्मण को जिस समय शक्ति लगी थी, उस समय राम के हृदय में राजपाट, धन-धाम, प्रिय परिवार और बन्धु-बान्धव किसी की चिन्ता नहीं थी। उनके अन्तःकरण में केवल इसी बात की व्यथा थी कि विभीषण का क्या बनेगा? राम के हृदय की अवस्था का वर्णन किसी कवि ने कितने मार्मिक शब्दों में किया है-

राज छुटे कर सोच नहीं, नहिं सोच पिता सुरधाम गये को।
औध अनाथ की सोच नहीं, नहिं सोच कछू बनवास भये को।।
सीय हरे कर सोच नहीं, नहिं सोच दसानन रारि भये को।
सक्ति लगे कर सोच नहीं, इक सोच विभीषन बाँह गहे को।।
तू तो चल्यौ सुरधाम सहोदर, प्रान हमार तोहि संग जैहैं।
देवर कन्त की मृत्यु सुने सिय, व्याकुल होइ समुद्र समैहैं।।
धीरज धारि के धीर धुरन्दर, बानन ते सब सान बुझैहैं।
व्याकुल होइ कहें रघुनन्दन, कौन के भौन विभीषण जैहैं।।

धन्य! शरणागतवत्सल राम आप धन्य हैं!! अपने इन्हीं दैवी गुणों के कारण तो आप नौलाख वर्ष के बाद भी आर्य जाति के हृदय-हार बने हुए हैं।

आदर्श प्रजा-प्रेम

राम को एक आदर्श पुरुष, एक आदर्श शिष्य, एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श पति, एक आदर्श भाई, और एक आदर्श मित्र के रूप में हम देख चुके हैं। आयें, हम 'राजा राम' के भी दर्शन करें। राम, राजा के रूप में सर्वाधिक प्रतिष्ठित हुए हैं, यहाँ तक कि 'राम–राज्य' सुराज्य या आदर्श राज्य का पर्याय ही बन गया है।

किसी भी शासन की उत्तमता की कसौटी है प्रजा का सुख और किसी उत्तम शासक की कसौटी है– उसका प्रजा–प्रेम! राम अपनी प्रजा को पुत्र से भी अधिक चाहते थे। 'आयसु माँगि करहिं पुरा काजा।' इस उक्ति से प्रकट है कि बचपन से ही राम प्रजाजनों के हित में रत रहते थे। यही कारण था कि वे राम में अनन्य निष्ठा और अद्‌भुत प्रेम रखते थे।

महाराजा दशरथ राम को राज्य भार सौंपने का विचार करते हैं। अपनी संकल्पपूर्ति के लिए वैदिक शासन व्यवस्था के अनुसार प्रजा की अनुमति आवश्यक है। दशरथ प्रजा के प्रतिनिधियों को बुलाकर उनकी सम्मति चाहते हैं और एक स्वर में प्रतिनिधियों का घोष गूँज उठता है–

इच्छामो हि महाबाहु रघुवीरं महाबलम्।

'हम राम को राजा बनाना चाहते हैं।' (अ० का० स० २।२२)

इसी प्रसंग में महाराजा दशरथ जब यह प्रश्न करते हैं कि आप लोग राम को क्यों राजा बनाना चाहते हैं। उत्तर में सभासद राम की गुणावली का बड़ा विशद् वर्णन करते हैं।

'राम जाहिं वन जीवन मूल।' प्राणाधिक प्रिय राम वन जा रहे हैं। अयोध्या की प्रजा शोक से पागल हो जाती है। किसी प्रकार अपने प्यारे राजा राम का साथ छोड़ने को तैयार नहीं, अन्त में राजा जब उन्हें सोता हुआ छोड़ कर चले जाते हैं तो वे मानो अपना सर्वस्व गँवाकर बड़े भारी हृदय से अयोध्या लौटते हैं।

भरत के चित्रकूट जाने के प्रसंग में एवं राम के अयोध्या लौटते समय भी प्रजा की राम के प्रति यह अनन्य भक्ति बड़े उत्कर्ष के साथ देखने को मिलती है। ये सारे ही प्रसंग राम की आदर्श प्रजावत्सलता को ही प्रकट करते हैं।

औदार्यमूर्ति राम

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम्।।

– वा०रा० अयो० ४५।६

वनवास जाते हुए राम कहते हैं कि प्यारे अयोध्यावासियो ! आप लोगों की मेरे अन्दर जो प्रीति और बहुमानता है उसे मेरे प्रसन्न करने के लिए भरत में करो।

यह राम की उदारता है कि जो राज्य को त्यागते हुए भरत का आदर अपने जैसा कराने को प्रजाजनों को आदेश देते हैं, अन्यथा राज्य छिन जाने पर दूसरे के हाथ में चले जाने पर ऐसी उदारता तो क्या दर्शाना, लोग प्रजाजनों को उलटा भड़काते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि भरत का भी एक अत्युत्तम आदर्श था, परन्तु राम की उदारता अनुपम है स्वयं भरत के शब्दों में राम की उदारता की एक झांकी देखिये :

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्व भूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति।।
हन्यमानामिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।।
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्।।

— वा०रा० अयो० ७८ ।२१ ।२३

कुब्जा को देख क्रुद्ध हुए शत्रुघ्न को भरत बोले कि स्त्रियाँ अवध्य हैं, नहीं तो मैं पापी दुष्टाचारिणी माता कैकेयी को मार देता, यदि मुझे धार्मिक राम निन्दित न करें। राम यदि इस कुब्जा को भी मारने की सुन लें तो निश्चय ही मुझसे वे बोलेंगे नहीं।

राम की उदारता का एक अति मनोरम दृश्य तब देखने में आता है जब वे रावण की मृत्यु के पश्चात् उसे 'महात्मा' कह कर सम्बोधित करते हैं।

राम के अन्य विशेष गुण

आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघवः।

— वा०रा० किष्कि० २७ ।३५

राम आस्तिक, धार्मिक और निश्चयात्मक थे। राम मर्यादावान् थे।

वर्णाश्रम धर्म के रक्षक

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः।।

— वा० रा० सुन्दर० ३५ ।११

हनुमान सीता से कहते हैं कि हे माता! राम लोक के और चातुर्वर्ण्य के रक्षक हैं तथा लोक की मर्यादाओं का स्वयं आचरण करने वाले और दूसरों से कराने वाले हैं।

राम धर्मपरायण वेदवित् और अस्त्रवेत्ता थे-

यस्मिन् न चलते धर्मो यो धर्म नातिवर्तते।
यो ब्रह्मास्त्र वेदांश्च वेद वेदविदांवरः।।

– वा० रा० युद्ध० २८

जिस राम में धर्म चलायमान नहीं होता, जो धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ है, वह ब्रह्म अस्त्र को जानता है।

राष्ट्र पुरुष राम

श्रीराम तथा रावण का युद्ध दो व्यक्तियों का युद्ध नहीं, यह दो राष्ट्रों का युद्ध था।

राम ने किसी निजी स्वार्थ के लिए नहीं वरन् एक सच्चे राष्ट्रपुरुष के रूप में राष्ट्रगौरव की वृद्धि के लिए ही रावण के साथ युद्ध किया था। सीता तो उसमें निमित्त बन गई। वे तो 'निशिचर हीन करों महि' की प्रतिज्ञा पहले ही कर चुके थे। राम स्वयं सीता से कहते हैं–

विदितश्चास्तु ते भद्रे यो यं रण परिश्रमः।
सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान् न त्वदर्थ मया कृतः।।

– यु० ११५।१५

'हे भद्रे यह तुम्हें विदित होना चाहिए कि यह जो इतना बड़ा युद्ध किया है और मित्रों की सहायता से इसमें विजय प्राप्त की है, वह तुम्हारे लिए ही नहीं किया।' तो यह युद्ध दो राष्ट्रों का युद्ध था।

स्वदेशीय स्वराज्य के संस्थापक राम

राम ने लंकाविजय करके वहाँ स्वयं राज्य नहीं किया, किन्तु वहीं के निवासी रावण के भाई विभीषण को राज्य दे दिया, क्योंकि प्रत्येक देश में अपने देश का राजा होना चाहिए, दूसरे देश को पदाक्रान्त करना ठीक नहीं है। अपनी माता ही अपने बच्चे को उसकी प्रकृति के अनुसार, उसके पूर्ण सुख को साध सकती है, पराई माता नहीं, अतः राम ने लंका को स्वतन्त्र करके अपने देश में ही राज्य किया।

राम राज्य का दृश्य

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।।
निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धाः बालानां प्रतिकार्याणि कुर्वते।।
सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरो भवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्।।
आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासित।।

– वा०रा० युद्ध० १२८।९८।१०१

राम के प्रशासन में विधवाएं न रोती थीं, हिंस्र प्राणी का भी भय न था, व्याधि से उत्पन्न भय भी न था अर्थात् रोग भी अधिक नहीं सताते थे, प्रजाजन चोर डाकुओं से रहित थे, कोई किसी के प्रति अनर्थ या पाप नहीं करता था, बूढ़े–बड़ों के सम्मुख बालकों का देहान्त नहीं होता था, सब प्रसन्न थे, सब धर्मपरायण थे। राम के देखते हुए परस्पर हिंसा नहीं करते थे, अनेक पुत्र–पौत्रों से युक्त वंश सहस्रों वर्षों तक चलते अर्थात् किसी का भी वंश्च्छेदन न होता था, प्रजाजन रोग और शोक से अलग थे।

राष्ट्र में विधवाओं की वृद्धि, सिंह आदि का भय, चोर–डाकुओं का होना, व्यावहारिक अनर्थ, बालमृत्यु, परस्पर मारकाट, वंशच्छेदन आदि का कारण नेता या राजा का अनुचित शासन है जो कि बाल विवाह, जंगलों का अनियन्त्रण, प्रजा की अरक्षा, चिकित्सा के लिए चिकित्सालयों तथा खानपान आदि की कमी आदि दुर्व्यवस्थाओं के रूप में है।

राम का जीवन वेद के अनुसार था। वेद में कहा है-

इन्द्र आसां नेता वृहस्पतिरदतिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्प्रतीनां जयन्तीनां मरुतोयं त्वग्रम्।।

जिन सेनाओं का नेता इन्द्र अर्थात् विद्युत जैसा शक्तिसम्पन्न हो, वृहस्पति अर्थात् पूर्ण विद्वान हो, दक्षिण यज्ञ अर्थात् चतुर संगति कारक हो, सोम अर्थात् गम्भीर हो तो उसकी तोड़फोड़ करती हुई या कँपाती हुई देवसेना–दिव्यसेनाओं के वीर आगे बढ़ते हैं।

राम इन्द्र था, विद्युत की भाँति शक्ति–सम्पन्न, था तभी तो वह जंगली जाति के अन्दर वीरता भर सका। वह वृहस्पति अर्थात् पूर्ण विद्वान था, तभी तो विभीषण को न मारने देकर उसे जीवित बुलाया, उस विभीषण से ही इन्द्रजित द्वारा कृत्रिम सीता के वध का भेद पाकर वह अपनी आत्महत्या से बच गया। तथा विभीषण के आदेश से रावण के वक्षस्थल में प्रहार कर उसे मार सका। वह चतुर

सगतिकारक था तभी तो कार्य को साध सका। सोम के समान गम्भीर और शान्तस्वभाव होने से ही वह विपत्ति को टाल निज साथियों को सम्भाल सका। भारत को पुनः ऐसे महान् नेता की आवश्यकता है।

क्षात्र धर्म के पुण्य प्रतीक राम

राम के इस विमल यश और गौरव का मूल है–उनकी धर्मनिष्ठा, उनका स्वधर्म पालन। राम वैदिक धर्मी थे। वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म में उनकी दृढ़ आस्था थी। अतः वे शौर्य एवं पराक्रम सम्पन्न आदर्श क्षत्रिय थे।

राम से पूर्व क्षत्रिय हतप्रभ हो रहे। परशुराम ने पितृ–वध के बदले में अनेकों क्षत्रिय राजाओं को बड़ी क्रूरता से मार डाला था। रावण ने वानर राष्ट्र को अपने साथ मिला कर अपने बल को बढ़ा लिया था। दण्डकारण्य और आर्यावर्त्त में भी अपनी छावनियाँ कायम करके आर्य राजाओं और देव राजाओं पर छापे मारना, ऋषियों के यज्ञों को विध्वंस करना तथा अन्य क्रूर कर्म करना राक्षसों का नित्यकर्म बन गया था। आर्य राजा इतने भयभीत थे कि जब ऋषियों ने दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के समय रावण के प्रतिकार की योजना बनाई तो उन्होंने उस सभा में भी भाग लेने का साहस नहीं किया। सर्वत्र त्राहि–२ की पुकार थी। ऐसे समय राम ने अपने अद्‌भुत शौर्य और पराक्रम से क्षात्र–धर्म के डूबते हुए पोत को बचाया।

अपने शिक्षा काल में ही ताड़का और सुबाहु का वध करके और मारीच को अपने बल का परिचय देकर उन्होंने क्षत्रियत्व की गरिमा को बढ़ाया था। धनुष यज्ञ में सफलता प्राप्त करके उसके पश्चात् विवाह करके लौटते हुए मार्ग में परशुराम का मान मर्दन कर उन्होंने अपने भावी पराक्रमों का मानबिन्दु कायम किया था। अपनी बुद्धिमत्ता, नीतिज्ञता और पराक्रम से वनवास के अभिशाप को वरदान में बदलकर उन्होंने जीवन जीने की कला सिखाई। दण्डकारण्य में प्रवेश करते ही विराध आदि राक्षसों को मारकर उन्होंने ऋषियों के हृदयों में स्थान प्राप्त कर लिया। ऋषियों ने उन्हें भरपूर सहयोग दिया। अगस्त्य ऋषि ने उन्हें नवीनतम वैज्ञानिक शस्त्र–अस्त्र दिये जिनकी सहायता से वे अकेले ही खर–दूषण और उनकी चौदह हजार सेना को ध्वंस करने में समर्थ हो सके। मानो वन का कोना–कोना गुंजार उठा–राजा राम की जय !'

सीता हरण के महाशोक के क्षणों में भी वे अपने सन्तुलन को नहीं खोते। राम की दूरदर्शिता और उद्‌भट राजनीतिमत्ता का परिचय सुग्रीव की मित्रता और बालि वध के प्रसंग में मिलता है। विभीषण शरणागति के प्रसंग में राम की राजनीति और क्षात्र तेज दोनों देखे जा सकते हैं। आगे लंका युद्ध में तो मानो मूर्तिमान काल बनकर वे राक्षस सेना का संहार करते हैं और अन्त में दुर्धर्ष रावण को मारकर वे 'क्षत्रिय शिरोमणि' के पद को पा लेते हैं। जुल्मों से सहमी धरती माता चैन की साँस लेती और धर्म राज्य, राम राज्य अथवा सांस्कृतिक आर्य साम्राज्य की शुभ चाँदनी सब ओर फैलकर अपूर्व सुख–शान्ति का विस्तार करती है। वर्णाश्रम धर्म या वैदिक धर्म की शीतल छाँह में एकत्रित विश्व भर के नर–नारी एक स्वर से पुकार उठते हैं–

वैदिक धर्म (वर्णाश्रम धर्म) की जय !

राजा रामचन्द्र की जय !!

नारी- रत्न सीता

रामायण के स्त्री पात्रों में सीताजी प्रधान पात्र हैं। पतिपरायणा सीता का पवित्र चरित्र संसार की नारियों के लिए परम आदर्श और अनुकरण करने योग्य है। सीता की भाँति असाधारण पतिव्रत, त्याग, शील, निर्भयता, शांति, क्षमा, सौहार्द, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, सेवा, सदाचार, व्यवहार–पटुता, साहस और शौर्य आदि इतने गुण एक साथ शायद ही संसार की किसी दूसरी स्त्री में मिल सकें। सच में सीता नारी रत्न है।

सीता की पति-भक्ति

पति के सुख–दुःख में अपना सुख–दुःख मानना, पति के आवास–प्रवास में अपना सहयोग देना स्त्री का धर्म है। राम के वन गमन के प्रसंग में सीता का यह धर्म–भाव उन्हें पति का अनुगमन करने को प्रेरित करता है।

वन के लिए प्रस्थान करते समय राम सीता से मिलने के लिये महल में पहुंचे हैं। अपने प्यारे पति को इस अकल्पित वेश में देखकर सीता अवाक् रह जाती हैं और तुरन्त ही अपना कर्त्तव्य निश्चय कर लेती हैं तथा प्रकट में श्रीराम को सम्बोधन कर कहती हैं–

मैं पुनि समझ दीख मन माहीं। पिय वियोग सम दुःख जग नाहीं।।

इसके साथ ही श्रीराम ने जो सुख–दुःख या सम्बन्धियों की सेवा आदि का उपदेश (वन न जाकर घर रहने के रूप में) किया था उसका उत्तर सीता ने सार रूप में निम्न शब्दों में दिया–

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुद, विध सुरपुर नरक समान।।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुह्रद समुदायी।।
सासु श्वसुर गुन सुजन सहाई। सुत सुन्दर सुशील सुख दाई।।
जहँ लग नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरणिते ताते।।
तनु धन धाम धरणि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू।।
भोग रोग सम भूषण भारू। यम यातना सरिस संसारू।।
प्राणनाथ तुम बिन जग माहीं। मो कहं सुखद कतहुं कोऊ नाहीं।।

जिय बिनु देह नदी बिन बारी। तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तिहारे। शरद विमल विधु बदन निहारे।।

खग मृग परिजन नगर बन, वल्कल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, पर्णशाल सुख मूल।।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे।।
प्रभु वियोग लवलेश समाना। होइहि सब बिधि कृपानिधाना।।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।
प्रभु संग मोहि को चितवन हारा। सिंह वधूहि जिमि शशक सियारा।।
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू। तुमहिं उचित तप मो कहं भोगू।।

सीता के इन हृदयोद्गारों से स्पष्ट है कि पति के चरणों में सुख–वैभव को कितना तुच्छ समझती थीं और वे किस प्रकार तन–मन से पति की सेवा करना चाहती थीं।

वन में सीता की पतिसेवा एवं दिनचर्या

पतिसेवा में ही सदा प्रसन्न रहने वाली सीता वन में जाकर अपने समस्त भौतिक सुखों को भूल जाती हैं। वन की कुटिया ही उनका राजमहल है। वन के हरिण और पशु–पक्षी ही उनका परिवार है। वन–देवियाँ उनकी सखियाँ हैं, ऋषि–पत्नियाँ उनकी पूज्या हैं। वनवास को वे एक 'लाभ' मानती हैं। उन्हें राजपाट, महल–बगीचे, धन दौलत और दास–दासियों की कुछ भी स्मृति नहीं होती। निष्ठापूर्वक पति की सेवा करना और अर्घ्य–पाद्य आदि से वनवासी ऋषियों का सत्कार ही उनकी दिनचर्या है। आश्रम के फल–फूलों तथा सम्पूर्ण वातावरण से उनकी आत्मीयता दर्शनीय है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक गीत में उसे चित्रित किया है। आश्रम के पेड़–पौधों को जल देती हुई सीता गुनगुना रही हैं–

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया।
सम्राट् स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहाँ यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग सिंह एक तट पर हैं।
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया।। मेरी कुटिया में०।।
औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,

अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारिविन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ
अपने अचंल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु- लता- सफलता स्वादु आज ही आया।। मेरी कुटिया में०।।
कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा,
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा।
वह वधू जानकी बनी आज यह जाया।। मेरी कुटिया में०।।
गुरुजन-परिजन सब धन्य ध्येय हैं मेरे,
औषधियों के गुण-विगुणज्ञेय हैं मेरे।
वन देव-देवियाँ आतिथेय हैं मेरे,
प्रियखग मृग सब ही प्रेय श्रेय हैं मेरे।
मेरे पीछे ध्रुव धर्म सदा ही धाया।। मेरी कुटिया में०।।

इस गीत में राष्ट्रकवि के शब्दों में सीता की पति–भक्ति, शालीनता, सौम्यता, आतिथ्य भाव, प्राणि–प्रेम, निर्भयता आदि सभी सदगुण मुखर हो उठे हैं। 'सीता–अनुसूया सम्वाद के प्रसंग में अनुसूया के दिव्य उपदेश के समर्थन में सीता कहती हैं– 'यही उपदेश मुझे मेरी माता ने विवाह के समय और मेरी सास ने वन गमन के समय दिया था, जो मुझे अच्छी तरह याद है।' यहाँ माता और सास अर्थात् गुरुजनों के उपदेश और आदेश के प्रति सीता की आन्तरिक निष्ठा और आदरभाव स्पष्ट हैं। आज की बहू और बेटियों को इससे सीख लेनी चाहिए।

सीता का पतिव्रत धर्म

किसी भी प्रकार के प्रलोभन या भय से अथवा बड़ी से बड़ी विपत्ति के आने पर भी धर्म पर दृढ़ रहने की शिक्षा सीता के चरित्र से मिलती है। कौन सा वह प्रलोभन और भय था जो सीता के सामने नहीं आया पर उन सबके बीच सीता की पति–भक्ति अविचल अड़िग और निष्कम्प रही।

सीता–हरण के प्रसंग में भी वे रावण को जिन शब्दों में फटकारती हैं, उनमें सीता की उच्च चरित्रनिष्ठा और अद्भुत पतिप्रेम देखने को मिलता है। अशोक वाटिका में राक्षसराज रावण साम, दाम, दण्ड भेद सभी नीतियों से सीता को वशवर्ती बनना चाहता है पर आर्य ललना सीता का पतिव्रत तेज उस समय और भी निखर उठता है जब वे क्रोध और तिरस्कार के साथ वीरता और निर्भयतापूर्वक कहती हैं–

त्वं पुनर्जम्बुकः सिहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।।

— अरण्य काण्ड ४७।३७

'हे दुष्ट रावण तू गीदड़ होकर मुझे अप्राप्य सिंह को चाहता है ? याद रख, मुझे तू सूर्य की ज्योति के समान छू नहीं सकता।'

अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणा हर्तुमिच्छसि।
अयो मुखानां शूलानां मध्ये चरितु मिच्छसि।
रामस्य सदृशीं भार्यां यो धिगन्तुं त्वमिच्छसि।।

— अरण्य काड ४७।४४

यदि तू राम की प्यारी पत्नी पर बलात्कार करना चाहता है तो निश्चय ही जलती हुई आग को देखकर भी उसे कपड़े में बाँध ले जाने की इच्छा करता है और लोहे की तीखी सलाखों के बीच में विचरना चाहता है।

इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि तुझमें और श्रीराम में उतना ही अन्तर है जितना सिंह और सियार में, समुद्र और नाले में, अमृत और कांजी में, सोने और लोहे में, चन्दन और कीचड़ में तथा हाथी और विलाव में है।

कविवर श्यामनारायण पाण्डेय के भाव—भीने शब्दों में सीता की इस तेजोमय मूर्ति के दर्शन कीजिये—

रावण-सीता सम्वाद

तब तक प्रमदाजन-आवृत, लंकाधिप रावण आया।
आतंक छा गया सब पर, प्राणों में कम्प समाया।।

भयभीत मृगी सी सीता, रो पड़ी विवश घबड़ा कर।
हा! रघुनायक रघुनन्दन! कह अन्तर्व्यथा जगाकर।।
निष्करुण दशानन बोला, सीते! तू क्यों रोती है।
रो-रोकर अपने जीवन के सुख के दिन खोती है।।
तू भूल सकी न अभी तक, उस राम तपस्वी नर को।
मूर्खे! न अभी तक जाना, हम दोनों के अन्तर को।।
वह कहाँ राज हित चिन्तित, मैं कहाँ राज का स्वामी।
वह कहाँ विराट भिखारी, मैं कहाँ कनक-पथ गामी।।

वह उदासीन वनवासी तुझसे न प्रेम करता है।
गुणहीन,कृतघ्न-नराधम, कहने को ही भर्ता है।।
निःस्पृह-असंग-एकाकी, तपसी वियोग क्या जाने।
तुझमें कितना आकर्षण, वह नीरस क्या पहचाने।।
इसलिए नहा-धोकर तू, ले पहन रेशमी साड़ी।
मेरी स्त्री बन रहजा, ओ फूलों सी सुकुमारी।।
तृणपात बीच में रखकर, सीता बोली खिजला कर-
ओ राक्षस लाज न आती, भारी अपकीर्ति कमाकर।
ज्यों सूनी मखशाला से, कुत्ता हवि ले भगता है।
त्यों मुझे चुराया अघ से, क्या तुझे न डर लगता है?
परवश हूँ सुन लेती हूँ, तेरी कठोर बातों को।
मैं विवश सहन करती हूँ, विष बुझे कशाघातों को।।
गाली दे प्रभु को उनकी, क्या महिमा हर सकता है?
तू धूल फैंककर रवि पर, क्या रवि का कर सकता है ?
जिस तरह सोख लेते हैं, रवि के कर सरिता-जल को।
वैसे ही पी जायेंगे, प्रभु के शर तेरे बल को।।
दुम दबा श्वान भगता है, पा गन्ध सिंह की जैसे।
रघुकुल नायक के शर से, तू भाग जायेगा वैसे।।

इस सन्दर्भ से यह सीखना चाहिए कि अपने पतिव्रत धर्म पर यदि आँच आये तो अबला सबला का रूप धारण कर निर्भयता की मूर्ति बन जाये। पापियों के लिये वह काल रूप बनकर उनका मुख मर्दन करे। ईश्वर में विश्वास रखते हुए वह अन्यायी से डरे नहीं और स्वधर्म पालन के लिये प्राणों की आहुति देने के लिये भी सदा तैयार रहे। पतिव्रता की प्रभु रक्षा करता है।

धैर्य, बुद्धिमत्ता

सीता के धैर्य, बुद्धिमत्ता और पतिव्रत की पराकाष्ठा एक अन्य प्रसंग में देखने को मिलती है। हनुमान् सीता को कहते हैं कि ''मैं इन सब राक्षसों को मारकर आपको श्रीराम के पास ले जाने में समर्थ हूँ। आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं आज ही आपको राक्षसों के दुःख से मुक्त कर दूँगा।''

कोई भी साधारण स्त्री इसे इतने लम्बे समय के घोर दुःखों से छुटकारा पाने का सुनहरी अवसर समझ कर इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लेती पर सीता ने उस समय हनुमान को जो

शब्द कहे हैं, उनमें उसकी नीतिमत्ता, दूरदर्शिता और अद्भुत धैर्य का परिचय मिलता है। इसी सन्दर्भ में वे कहती हैं–

भर्तृ भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम।।
सदेहं गात्र संस्पर्श रावणस्य कृता बलात्।
अनीशा किं करष्यामि विनाथा विवशा सती।।

– सु० का० ३७।६३

"वानरश्रेष्ठ! पतिभक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं राम के सिवा किसी दूसरे पुरुष का स्वेच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती। रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हो गया, वह तो उसके बलात्कार के कारण हुआ है। उस समय मैं असहाय, असमर्थ और विवश थी, क्या करती ?"

क्षमाशीलता

सदैव अपने को सताने वाली राक्षसियों को मार डालने की बात जब हनुमान् लंका विजय के पश्चात् सीता से कहते हैं तब दोनों पर सहज प्रेम रखने वाली क्षमाशीलता की मूर्ति सीता कहती है–

विधेयानाम् च दासीनाम् कः कुप्ये वानरोत्तम।
भाग्य वैषम्य दोषेण पुरस्ताद् दुष्कृतेन च।।
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः।।

– यु० का० ११।३।३३।४।४०

"वानरश्रेष्ठ! ऐसा कौन मूर्ख है, जो दूसरों की आज्ञा पालन करने वाली दासियों पर क्रोध करेगा क्योंकि मनुष्य अपने किये हुए कर्मों का ही फल भोगता है। भाग्य की विषमता और पूर्वकृत पापों के कारण ही मुझे यह सब दुःख प्राप्त हुआ। यह सब भाग्य की ही विडम्बना है। इसमें दूसरों का दोष नहीं है। अतः तुम राक्षसियों को मारने की बात मत कहो।'

सीता अग्निहोत्र व सन्ध्या करती थीं

वनगमन के समय जब श्रीराम सीता से विदा लेने के लिये पहुंचते हैं, सीता तभी अग्निहोत्र करके चुकी थीं। वनयात्रा में चलते–२ जहाँ भी शाम हो जाती, राम, लक्ष्मण, जानकी तीनों वहीं रुक जाते और सन्ध्या करने लगते थे। प्रातः यात्रा आरम्भ करने के पूर्व भी सन्ध्या करते थे।

हनुमान् लंका में पहुंचकर सर्वत्र सीता को देख चुके हैं। कहीं भी सीता के दर्शन नहीं हुए। महावीर हनुमान् चिन्तातुर हो उठते हैं। तभी उन्हें एक नदी दीख पड़ती है। सन्ध्या का मनोहर समय है।

हनुमान् सोचते हैं कि यदि सीता मर चुकी तब तो सब कुछ व्यर्थ ही है, पर यदि सीता जीवित है तो इस नदी के किनारे निश्चय ही सन्ध्या करने आयेगी। वहीं हनुमान सीता-दर्शन में सफल होते हैं।

धर्म-तत्व परायणता

सीता धर्मतत्व जानने वाली थी, अतएव उसने अवसर पर राम को भी उपदेश दिया-

अपराधं बिना हन्तुं लोकान् वीर न कामये।
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्।।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्।।
क्व च शस्त्रं क्व च दानं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
आत्मानं नियमैस्तैस्तै कर्षयित्वा प्रयत्नतः।।
प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम्।
नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने।।

– वा०रा० अरण्य० ६।२५,२६,३१

"हे राम! बिना अपराध के लोगों को मारना मुझे पसन्द नहीं, वन में रहते हुए जितेन्द्रिय वीर क्षत्रियों का धनुष से इतना ही प्रयोजन है कि दुःखितों की रक्षा करे। भला कहाँ क्षत्र (राज्य) और कहाँ यह वनवास! तथा कहाँ शस्त्र और कहाँ यह तप है! किन्तु हे राम! उन-उन नियमों से अपनी आत्मा को प्रयत्न के साथ संयत करके ही चतुर जन धर्म को प्राप्त करते हैं, नियम रहित होकर सुगमता से धर्म प्राप्त नहीं होता। अतः इस तपोवन में नित्य पवित्र मति वाला होकर धर्म का आचरण करना ही कर्त्तव्य है।"

सीता ने यहाँ कितना सुन्दर तपस्वियों का धर्म बतलाया है। इस प्रकार सीता धर्म के तत्व को राम से कम न जानती थीं किन्तु धर्मनिष्ठ और धर्मवित् थीं। भारत की नारियों को सीता से यह शिक्षा भी लेनी चाहिए कि वे धर्म का ज्ञान रखते हुए स्वयं धर्म-परायण होकर अपने पतिदेव को अवसर पर अधर्म से बचा धर्म की ओर प्रेरित करें।

सीता की सहिष्णुता

नारी की तुलना सर्वसहा पृथ्वी से की गई है। इस दृष्टि से शीलता या सहिष्णुता नारी का मुख्य भूषण है। सीता के व्यक्तित्व में यह सद्गुण पूर्ण रूप में प्रस्फुटित हुआ है। सम्पूर्ण वनवास काल सीता की सहिष्णुता का अप्रतिम उदाहरण है। एक प्रसंग देखिये-

राम वन जाने को हैं। कैकेयी सीता को भी वनवास के योग्य वस्त्र देती है। इस दृश्य को देखकर औरों का तो कहना ही क्या स्वयं शान्तिमूर्ति तपोनिष्ठ वसिष्ठ क्षुब्ध हो उठते हैं। बड़े कठोर

शब्दों में वे कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। पर सीता ऐसे शान्त भाव से यह सब देखती और सुनती हैं मानो कुछ हुआ ही न हो। वे अपने विचारों में दृढ़ रहती हैं।

इस प्रसंग से यह शिक्षा मिलती है कि सास या उसी के समान बड़ी–बूढ़ी कोई भी स्त्री कुछ कड़ी बात कहे या प्रतिकूल बर्त्ताव करे तो भी उसे खुशी के साथ सहन करना चाहिये और विपत्ति के समय पति–सेवा के लिये कहीं पति के साथ जाय तो उन्हीं की भाँति सादगी से रहना चाहिए, श्रृंगारादि के मोह में नहीं पड़ना चाहिये।

गृहस्थ-धर्म

जब सीताजी लंका से अयोध्या लौट आती हैं, तब वे आते ही बड़ी–बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासुओं के चरणों में प्रणाम करती हैं। घर में रहकर सन्ध्या, देवयज्ञ, अतिथि सेवा आदि पञ्च यज्ञों को नित्य करती हैं, तथा सभी सासुओं की समान भाव से सेवा करती हैं। वन गमन के समय अपनी वृद्धा सासु की सेवा का स्मरण कर वे कहती हैं–

सेवा समय देव वन दीन्हा।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।।

इस प्रकार सीता अपने बड़ों के प्रति सेवा–भाव द्वारा और घर के सभी कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करके सबको मुग्ध कर देती हैं। सीताजी, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न– इन सभी देवरों को पुत्रवत् समझतीं थीं और खान–पान आदि में उनके साथ किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं रखती थीं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि स्त्रियों को विदेश से लौटते ही घर में सभी बड़ी–बूढ़ियों को प्रणाम करना चाहिए, सबकी समान भाव से सेवा करनी चाहिए। घर का सब काम सुचारु रूप से करना चाहिए और अपने देवर आदि के साथ शुद्ध और समान भाव से यथायोग्य बर्ताव करना चाहिए।

सीता-चरित्र से शिक्षा

सीता ने अपने जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्री मात्र के लिए यह सिद्ध कर दिखाया कि जो स्त्री आपत्तिकाल में भी धर्म का पालन करेगी, वह सदा के लिए परमानन्द में मग्न रहेगी और उसकी कीर्ति संसार में सदा के लिए अमर हो जायेगी। सीता की पति–भक्ति, सासुओं के प्रति सेवा–भाव, सबका सम्मान करने की चेष्टा, सबके साथ यथायोग्य प्रेम का बर्ताव, ऋषियों की सेवा, लव–कुश जैसे वीर पुत्रों को जन्म देना, उनको शिक्षा देने की पटुता, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व, धर्मपरायणता, निर्भयता क्षमा आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और अनुकरणीय हैं। संसार में जो कोई स्त्री प्रमाद, मोह और आसक्ति को छोड़कर सीता के चरित्र का अनुकरण करेगी तो उसके अपने कल्याण में तो सन्देह ही क्या है वह अपने पति, पुत्र और कुटुम्ब वालों का भी उद्धार कर देगी। ऐसी सती शिरोमणि पतिव्रता स्त्री दर्शन और पूजन के योग्य है और अपने चरित्र से जगत् को पवित्र करने वाली है।

आदर्श मानव भरत

मानव, मानवता का सिरजनहार है, उसका पोषक है। मानवतारहित व्यक्ति, व्यक्ति नहीं पाषाण है। किसी सहृदय कवि ने लिखा है–

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वधर्म का प्यार नहीं।।

ऐसे व्यक्ति का समाज में कोई स्थान नहीं रहता। वह तो 'आहार निद्रा भय मैथुनं च' इस उक्ति को चरितार्थ करता हुआ अपना जीवन पशुवत् यापन करता है और समाज द्वारा तिरस्कृत होता है।

मानवता, सभ्यता या साधुत्व अलग से दीखने वाली वस्तु नहीं है। वह तो मनुष्य के अन्तर्गत दैवी गुणों का प्रतिबिम्ब मात्र है। यही प्रतिबिम्ब मनुष्य को मनुष्यत्व से देवत्व की ओर ले जाता है। भरत का पुण्य चरित्र मानवता से अभिहित इसी देवत्व का प्रतिमान है।

भरत की पितृ-भक्ति

मातुल गृह से भरत के अयोध्या पहुँचने पर मंत्रियों ने उसे राम के वनवास और पिता के देहान्त को सुनाकर राज सिंहासन पर बैठने की अनुमति दी तो भरत राज्य–प्राप्ति से प्रसन्न नहीं होता किन्तु निम्न प्रकार विलाप करता हुआ अचेत हो भूमि पर गिर पड़ता है–

अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्।।
तदिदं ह्यन्यथा भूतं व्यददीर्णं मनो मम।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम्।।

– वा० रा० अयो० ७२।२८

"मेरे पिता राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करने के हेतु राजसूय यज्ञ करेंगे, यह संकल्प मन में रखकर प्रसन्न हो मैं चला था। हाय! यह क्या हुआ ? आज जो मैं सर्वदा अपना प्रिय और हित करने वाले पिताजी को नहीं देखता, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।"

यह है भरत के सौजन्य का प्रथम दृश्य। राज्यश्री को प्राप्त करने के लिए आजकल लोग निरपराध भ्राता का वध तक कर देते हैं, परन्तु भरत ऐसी राज्य प्राप्ति में भी प्रसन्नता के स्थान पर विलाप करता है, अचेत हो जाता है पुनः चेतना प्राप्त करके अपनी माता कैकेयी को बड़े कठोर शब्दों में धिक्कारता है।

भ्रातृ-भक्ति और मर्यादावत्ता

भरत का भ्रातृ-प्रेम अतुलनीय है। भरत के शब्दों में-'पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यता जानतः।' अर्थात्-धर्म को जानने वाले 'आर्य' श्रेष्ठ पुरुष के लिए बड़ा भाई पिता के समान होता है।

अतः भरत केवल इतने पर ही सन्तोष करके नहीं रह जाता कि जो होना था सो हो गया। राम तो चले गये, राज्य भार तो संभालना ही पड़ेगा। परन्तु भरत तो राम की खोज में घर से बाहर निकल पड़ता है, मार्ग में एक स्थान पर गंगा के किनारे इंगुदिवृक्ष के नीचे घास पर राम के रात बिताने और सोने के सम्बन्ध में विलाप करता है-

हा हतोस्मि नृशंसो स्मि यत् सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्।।

– वा० रा० अयो० ८८।१७

हा! मैं मरा, मैं हत्यारा हूं जो मेरे कारण पत्नी सहित राम अनाथ की भाँति ऐसी शय्या पर सोते हैं।

भरत का कार्य केवल विलाप करने तक ही समाप्त नहीं होता अपितु उसने राम की खोज कर उनकी सेवा में पहुँच अयोध्या लौटने का बहुत आग्रह किया, पर अति प्रयत्न करने पर भी राम नहीं लौट पाये तब भरत विवश होकर क्या राज्यलक्ष्मी का उपभोग करता है ? नहीं-नहीं, किन्तु राम की पादुकायें प्रतिनिधि रूप में लेकर स्वयं वानप्रस्थी का रूप धारण कर नन्दिग्राम नाम के आश्रम में राम के लौटने की प्रतीक्षा करता हुआ १४ वर्ष बिताता है। भरत ने राम की चरण पादुकायें लेकर कहा कि-

स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्।।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकांक्षन् वसन् वै नगराद्वहिः।।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतंत्रं परन्तप।
चतुर्दश हि सम्पूर्णे वर्षे हनि रघूत्तम।।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।।

– वा० रा० अयो० ११२।२३।२५

'हे राम! चौदह वर्ष तक जटावल्कलधारी वानप्रस्थी हो वन के फल-फूल खाता हुआ आपके आगमन की आकांक्षा रखता मैं नगर से बाहर बसता हुआ रहूँगा। चौदहवें वर्ष के पूर्ण होने के दिन यदि मैं आपको न देख सका तो अग्नि में जल जाऊँगा।'

राम के आगमन की प्रतीक्षा में भरत की क्या दशा थी, यह हनुमान् के मुख से भी सुनिये जबकि लंका विजय कर श्रीराम ने अयोध्या लौटते हुए हनुमान् को भरत का हाल जानने के लिए भेजा था-

आससाद द्रुमान् फुल्लान् नन्दिग्रामसमीपगान्।
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीर कृष्णाजिनाम्बरम्।।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदग्धांगं भ्रातृव्यसनकर्शितम्।।
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवासिसम्।।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम्।।

– वा० रा० युद्ध० १२५।२८,२६,३१,३२

अर्थात् अयोध्या नगरी से कोश भर की दूरी पर वल्कल और कृष्णाजिन धारण किये हुए दुःखी, कृश, जटिल, धूल–धूसरित, शृंगारहीन, भ्रातृशोक में व्याकुलित, फलमूलाहारी, दयनीय तपस्वी, धर्मचारी, खुले केशवाले, वृक्षछाल और अजिन पर बैठे हुए नियतेन्द्रिय भावुक ब्रह्मर्षि सदृश भरत को राम के आदेश से हनुमान् ने देखा।

यहाँ भरत का आदर्श कितना ऊँचा है, राम ने राज्य त्यागा और वनवास लिया बलात्, अर्थात् पिता की आज्ञा से। परन्तु भरत ने राज्यश्री को त्यागा और वानप्रस्थी बना स्वेच्छा से। राम के प्रति ज्येष्ठानुवृत्तिधर्म एवं मर्यादा के पालनार्थ भरत का त्याग राम के त्याग से कम नहीं है, अपितु इस दृष्टि से ऊँचा ही है।

अब भरत के उच्चादर्श के सम्बन्ध में साक्षीरूप से राम तथा दशरथ के वचन सुनिए–

न भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

– वा० रा० यु० ८।१५

राम सुग्रीव से कहते हैं कि भरत जैसे भ्राता सभी नहीं होते हैं तथा भरत को प्रजाजनों सहित आता देख लक्ष्मण के क्रोधित होने पर राम कहते हैं–

विप्रियं कृत पूर्वं ते भरतेन कदा नु किम्।
ईदृशं वा भयं ते द्य भरताद् यद् विशंकसे।।
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहम् ह्य प्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते।।

– अयो० का० ६७।१४।१५

'हे लक्ष्मण! भरत ने तुम्हारा कब और क्या अपकार किया है जिसके कारण तुम आज उससे ऐसा भय, इस तरह की आशंका कर रहे हो ? (भरत के आने पर) तुमने उसे कोई कठोर या अप्रिय वचन कहे तो वह बर्ताव मेरे ही साथ किया समझा जायगा।'

इस अवसर पर राम यहाँ तक कह देते हैं– 'लक्ष्मण तुम्हें यदि राज्य की इच्छा है तो मैं भरत को कह दूँगा और वह तुमको राज्य दे देगा।'

इसी प्रसंग मे लक्ष्मण के यह कहने पर कि भरत को राज–मद हो गया है, सन्त तुलसी के शब्दों में राम कहते हैं–

भरतहिं होइ न राज मद, विधि हरि हर पद पाय।
कबहुं कि काँजी सीकरन्हि, छीर सिन्धु विलगाय।।

दशरथ की साक्षी- दशरथ कैकेयी से कहते हैं –

'अयि कैकेयी! तू जिस भरत के लिए राज्य के निमित्त राम को वनवास दिला रही है, वह भरत बिना राम के किसी प्रकार भी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता क्योंकि वह राम से भी धर्म में अधिक प्रबल है, ऐसा मैं मानता हूँ।'

इसी प्रकार निषादराज का सन्देह दूर हो जाने पर उसका मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वह भरत के प्रति कहने लगा–

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि।।

– अ० का० ८५।१२

'आप धन्य हैं! जो बिना प्रयत्न के मिले हुए राज्य को त्याग देना चाहते हैं। अतः इस भूमण्डल में आपके समान मुझे कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।'

भरत की शपथ

यह रामायण का एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रसंग है, जिससे जहाँ भरत की नीतिमत्ता, धर्मज्ञताः मर्यादा, प्रेम और बहुज्ञता का परिचय मिलता है, वहीं रामायणकालीन वैदिक संस्कृति का एक अत्यन्त उदात्त, उज्ज्वल और मनोरम पक्ष पाठक के समक्ष मूर्त हो उठता है।

कौशल्या की चरण–धूलि लेने के लिए आतुर भरत का राष्ट्रकवि गुप्त जी द्वारा प्रस्तुत एक मनोरम चित्र देखिये–

तुम कहाँ हो अम्ब दीना अम्ब!
पति- विहीना पुत्र- हीना अम्ब!
भरत-अपराधी- भरत- है प्राप्त,
दो उसे आदेश अपना आप्त।
मुंह न देखो, पर न हो तुम मौन,
आज यों मुझ-सा अधम है कौन?

प्राप्त है यह राज्य-हारी चोर,
दूर से षड्यन्त्रकारी घोर।
आ गया मैं गृह-कलह का मूल,
दण्ड दो, पर दो पगों की धूल।।

अहा! भरत के परिशुद्ध मानस की क्या पूर्ण कल्पना कभी सम्भव है ? तभी तो कौशल्या कह उठती है –

''झूठ यह सब झूठ तू निष्पाप, साक्षिणी तेरी यहां मैं आप।''
भरत में अभिसन्धि की हो गन्ध, तो मुझे निज राम की सौगन्ध।
वत्स रे आजा, जुड़ा यह अंक, भानुकुल के निष्कलंक मयंक।
मिल गया मेरा मुझे तू राम, तू वही है भिन्न केवल नाम।

धन्य, भरत आप धन्य हैं जिनकी उच्चाशयता के सम्बन्ध में स्वयं राम कहते हैं –

''उसके आशय की थाह मिलेगी किसको,
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको।''

इस प्रकार भरत का जीवन राम से कम आदर्श का नहीं था। राम के जीवन की विशेषताएं और ही हैं। भरत जैसे भाई यदि परिवार में हों तो परिवार बहुत सुखमय बन सके और कभी भी दुःख तथा कलह को स्थान न मिले। कविवर रामचरित उपाध्याय ने भरत के उच्चादर्श के सम्बन्ध में भरत को सम्बोधित कर जो भाव निम्न कविता में व्यक्त किए हैं, वे अपने आप में कितने मर्मस्पर्शी हैं –

धर्म कर्म में राम भरत जैसे थे दृढ़तर,
उसमें उनसे कहीं आप भी थे चढ़ बढ़कर।
किंतु नम्रता अधिक आप में थी इस कारण-
क्षात्र-धर्म हो सका न तुमसे पूरा धारण।।१।।
यद्यपि थे निर्दोष भरत! पर तो भी तुम पर,
दोषारोपण किया अनेकों ने क्यों चिढ़कर ?
निश्छलता के साथ राम को गये मनाने,
लक्ष्मण तुमको देख लगे तब धनुष चढ़ाने।।२।।
सीता को भी वहां राम ने था समझाया,
''वह होगा मद-युक्त राज्य को जिसने पाया।
मेरे गुण या भरत-दोष भी तुम मत कहना,
जानकि! जब तक रहे भरत, तब तक चुप रहना।।३।।

गुह निषाद को भी तो तुम पर रोष हुआ था,
पर जब तुमसे मिला, उसे तब तोष हुआ था।
भरद्वाज भी भरत ! देखकर बोले तुमको-
"निरपराध हैं राम, खोजते हो क्यों उनको?"।।४।।
हे सत्यव्रत भरत ! क्षमा के रूप रहे तुम,
ज्ञान-गेह थे, साधुजनों के भूप रहे तुम।
कहा तुम्हें दुर्वाक्य जिसे जो मन में आया,
धन्य आपने तदपि किसी को नहीं दुखाया।।५।।
अपना अटल अपार प्रेम रघुपति को तुमने-
दिखा दिया था लात मार संपति को तुमने।
भरत चतुर्दश वर्ष आपने बैठ बिताये,
बिना राम के नहीं अयोध्या भीतर आये।।६।।
बिना राम के काम नया कुछ किया न तुमने,
उनका पैसा एक हाथ में लिया न तुमने।
राम-राज्य को भरत ! सँभाला तुमने कैसे,
जल से होकर विलग जलज हो जल में जैसे।।७।।
त्याग-शीलता भरी हुई थी तुममें जैसी,
भरत ! न देखी गयी किसी में अब तक वैसी।
अपने मन से राज्य राम ने कभी न छोड़ा,
उसी राज्य से स्वयं आपने मन को मोड़ा।।८।।
कौसल्या ने कहा आपसे व्यंग्य वचन जो,
दुख से उसको सहा आपने स्थिर कर मन को।
पर सीता के व्यंग्य-वचन तीखे थे ऐसे,
उन्हें आपने सहा भरत ! क्या जाने कैसे ?।।६।।
सच्चे आप अजात-शत्रु थे, सब लायक थे,
विक्रम-शाली भरत ! योगियों के नायक थे।
यम के भी भय-जनक आपके वर सायक थे,
सदा राम के आप बने तो भी पायक थे।।१०।।
गुरु-भ्राता के साथ रहे कैसे लघु भाई।
यह शिक्षा है भरत ! जगत् ने तुमसे पाई।

अयश सहित जो स्वर्ग मिले तो नरक वही है,
धन्य ! तुम्हारा यही सुखद सिद्धान्त सही है।।११।।
पूर्णकाम हो राम भरत! जब लौटे घर को,
तुम पर कर सन्देह प्रथम भेजा कपिवर को।
तप्त स्वर्ण सा विमल उन्होंने तुमको पाया,
दबकर लज्जा मार तुम्हें हँस कण्ठ लगाया।।१२।।
भरत ! आपका चरित व्याप्त निर्मल है जैसा।
राम चरित भी कभी नहीं हो सकता वैसा,
वह जननी थी धन्य ! जिसे सुत आप मिले थे,
स्वर्ण लता में मनों रत्न के फूल खिले थे।।१३।।

यतिवर लक्ष्मण

श्री लक्ष्मण जी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले, धीर वीर तेजस्वी, पराक्रमी और इन्द्रियजयी थे। ये बड़े ही सुन्दर, सरल, तितिक्षु, निर्भय, निष्कपट, त्यागी, पुरुषार्थी, तपस्वी, सेवक, सत्यव्रती, बुद्धिमान् और नीति–निपुण थे। जैसे भरतजी का विनय और मधुरता युक्त गम्भीर प्रेम अनुपम है, वैसे ही श्री लक्ष्मण जी का वीरतायुक्त सेवामूलक प्रेम भी परम आदर्श है।

यतिवर लक्ष्मण रामायण के एक आदर्श पात्र हैं। लक्ष्मण की तपस्या और धर्म–भावना राम से कम नहीं है। राम ने वनवास लिया बलात् पिता के शासन से, परन्तु लक्ष्मण स्वेच्छा से, वन को राम के साथ चल दिये, ज्येष्ठानुवृत्ति स्नेह और धर्मभाव के कारण। युगकवि गुप्त जी की वाणी में यतिवर लक्ष्मण के अछूते व्यक्तित्व की इस बाँकी झाँकी के दर्शन कीजिए–

पूज्य पिता के सहज सत्य पर वार सुधाम धरा, धन को।
चले राम, सीता भी उनके पीछे चलीं गहन वन को।।
उनके भी पीछे लक्ष्मण थे, कहा राम ने कि तुम कहाँ ?
विनत बदन से उत्तर पाया-'तुम मेरे सर्वस्व जहां।।'
सीता बोलीं कि 'ये पिता की आज्ञा से सब छोड़ चले,
पर देवर तुम त्यागी बनकर क्यों घर से मुख मोड़ चले?'

उत्तर मिला कि ''आर्ये बरबस बना न दो मुझको त्यागी,
आर्य चरण-सेवा में समझो मुझको भी अपना भागी।।''
''क्या कर्तव्य यही है भाई?'' लक्ष्मण ने सिर झुका लिया,
''आर्य ! आपके प्रति इस जन ने कब-कब क्या कर्तव्य किया ?''
''प्यार किया है तुमने केवल !''सीता यह कह मुसकाई,
किन्तु राम की उज्ज्वल आँखें सजल सीप- सी भर आईं।।

कैसा आत्म–विभोर करने वाला भाव–चित्र है यह !

लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम एवं सेवा भाव

लक्ष्मण का राम में अनन्य प्रेम था। राम–वन–गमन के प्रसंग में राम द्वारा अनेक विधि कर्तव्य कर्म समझाये जाने पर भी वे तो यही कहते हैं–

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना।।
आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्।।
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यसे।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते।।

– अ० कां० ३१।५, २६।२७

''आपके बिना मैं देवलोक में जाना, अमर होना नहीं चाहता और न समस्त लोकों का ऐश्वर्य ही प्राप्त करना चाहता हूँ।.... मैं आपके लिए सदा फल–मूल और वन में होने वाली दूसरी आवश्यक वस्तुएं तथा हवन की सामग्री जुटाता रहूँगा। आप सीता के साथ पर्वतों के शिखरों पर विचरते रहियेगा। मैं आपके जागते और शयन करते समय भी सभी आवश्यक कार्य करता रहूँगा।'' कैसा सुन्दर सेवा–भाव है, अपने सुख का तनिक भी ध्यान तक नहीं।

एक प्रसंग में राम द्वारा लक्ष्मण को घर लौटने की प्रेरणा करने पर लक्ष्मण का हृदय भर आता है, वे कहते हैं–

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्तमपि जीवामो जलान्मत्स्या विवोद्धृतौ।।

– अ० ३५।३१

"रघुनन्दन ! आपके बिना न तो सीताजी ही और न मैं ही जल से अलग हुई मछलियों की भाँति मुहूर्त भर भी जी सकते हैं।" यहाँ वे अपनी निष्ठा को सीता के तुल्य बतलाते हैं।

निषादराज के साथ वार्ता में तथा अन्य कई वन प्रसंगों में लक्ष्मण का उत्कट राम–प्रेम दर्शनीय है।

वनवास काल को वे प्रभु–प्रदत्त वरदान मानते हैं और इस सेवा साधना को सबसे बड़ा धन। श्री गुप्तजी कृत 'पंचवटी' में वे विचार कर रहे हैं–

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके, पर है मानो कल की बात,
वन को आते देख हमें जब, आर्त्त अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब, अवधि पूर्ण होगी वन की,
किन्तु प्राप्त होगी इस जन को, इससे बढ़कर किस धन की।
होता यदि राजत्व मात्र ही, लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको, छोड़ मार्ग लेते वन का?
परिवर्तन ही यदि उन्नति है, तो हम बढ़ते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे-सच्चे, पूर्व-भाव ही भाते हैं।
मुनियों का सत्संग जहाँ है, जिन्हें हुआ है तत्वज्ञान,
सुनने को मिलते हैं उनसे, नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट-कण्टकों में है, जिनका जीवन सुमन-खिला,
गौरव गन्ध उन्हें उतना ही, अत्र तत्र सर्वत्र मिला।

लक्ष्मण का भरत प्रेम

पंचवटी–निवास का एक प्रसंग है –

वहाँ रहते–रहते शरद् ऋतु बीत गयी है। हेमन्त का आगमन हुआ है, तब एक दिन विनीत लक्ष्मण ने सीताजी के साथ स्नान करने के लिए जाते समय नन्दिग्राम में भरत के तपस्वी जीवन का विचार करते हुए श्रीराम से कहा–

अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते।।

– अरण्य० १६ ।३०

अत्यन्त सुख में पले हुए सुकुमार भरत जाड़े का कष्ट सहन करते हुए रात्रि के पिछले पहर में सरयू जी में कैसे डुबकी लगाते होंगे। इस प्रसंग से इस भ्रान्ति का निराकरण होता है कि लक्ष्मण सिर्फ राम से ही प्रेम करते थे।

सदाचार का आदर्श

लक्ष्मण का सदाचार तो राम से भी ऊँचा है, राम तो वन में अपने विनोद–प्रमोद की साधनभूत अपनी धर्म–पत्नी सीता को भी साथ ले गये परन्तु लक्ष्मण तो अपनी धर्म–पत्नी उर्मिला को भी साथ नहीं ले गये।

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव द्वारा दिये गये आभूषणों को देख राम जब लक्ष्मण से पूछने लगे कि हे लक्ष्मण ! क्या तुम इन आभूषणों को पहचानते हो, ये सीता के हैं? तो उत्तर में लक्ष्मण कहते हैं कि–

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

– वा० रा० किष्कि० ६।२२

मैं सीता के बाहुभूषण नहीं जानता और न कानों के कुण्डल ही पहचानता हूँ किन्तु नूपुर (पैर के भूषण) को जानता हूँ क्योंकि नित्य पादाभिवन्दन (चरण प्रणाम) करता था।

लक्ष्मण की दृष्टि जान बूझकर सीता के पैरों पर ही पड़ती थी अन्य किसी अंग पर नहीं, अन्य किसी अंग पर क्या भूषण हैं, इनका जानना तो दूर की बात है। इतना ऊँचा सदाचार का नमूना अन्य किसी संस्कृति में मिलेगा ?

लक्ष्मण के सदाचार की छाप सीता पर भी थी, सीता हनुमान् से कहती हैं –

पितृवद् वर्तते रामे मातृवन्मामाचरेत्।

– वा० रा० सुन्दर० ३।५०

अयि हनुमान् ! लक्ष्मण राम में पिता के समान और मेरे प्रति माता के सदृश आचरण करता था।

शूर्पणखा के पापपूर्ण प्रस्ताव पर लक्ष्मण कहते हैं –

"पाप शान्त हो ! पाप शान्त हो !! मैं विवाहित हूँ, बाले !"

लक्ष्मण की नीतिमत्ता

श्रीराम और लक्ष्मण ने प्रवर्षण पर्वत पर रहकर वर्षा ऋतु का समय व्यतीत किया। शरद् ऋतु आ गयी। किन्तु इधर सुग्रीव विषय–भोगों में फंसकर श्रीराम के कार्य को भूल गये। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मणजी सुग्रीव के पास गये। उस प्रसंग में श्री लक्ष्मण जी की वीरता, धीरता और शील का वाल्मीकीय रामायण में बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। वहाँ सुग्रीव को समझाते हुए लक्ष्मण कहते हैं–

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वरः।।

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।

— वा० रा० कि० ३४।१०।१२

'वानरराज! जो पहले मित्रों की सहायता से अपना कार्य सिद्ध करके बदले में उनका उपकार नहीं करता, वह कृतघ्न है। शराबी तथा चोर एवं व्रत–भंग करने वाला, इन सबके लिए तो सत्पुरुषों ने प्रायश्चित का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित नहीं है।'

वैराग्य की मूर्ति लक्ष्मण

राम के साथ निजपत्नी को घर छोड़ कर लक्ष्मण का चल पड़ना उनके पूर्ण वैराग्य और संयमशीलता को तो प्रकट करता ही है परन्तु वह राम को भी अवसर पर वैराग्य का उपदेश देते हैं–

किमार्य कामस्य वशंगतेन किमात्मपौरुषस्य पराभवेन।
अयं सदा संह्रियते समाधिः किमत्र योगान् निवर्तितेन।।

हे आर्य! आपके इस पुरुषार्थनाशक, कामवशित्व से क्या लाभ? उससे यह आपकी स्थिर समाधि, मानसिक एकाग्रता, स्वस्थता नष्ट ही होती है। कि० २६।२७

अन्त में राम राज्याभिषेक के पश्चात् लक्ष्मण–उर्मिला मिलन की एक झाँकी देखिये–

लेकर मानो विश्व-विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे, एक दूसरे के वे उर में।
'नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ?'
'प्रिये, प्रिये, हां आज-आज ही वह दिन आया,'
'स्वामी, स्वामी, जन्म-जन्म के स्वामी मेरे,
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ-सबेरे !
खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिलखिल खेला ?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती वेला ?'
'वह वर्षा की बाढ़, गई उसको जाने दो,
शुचि गम्भीरता प्रिय, शरद की यह आने दो।
धरा-धाम को राम-राज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय प्रेम पूर्वक लाने दो।'

अन्य नर पात्र

रामायण में वर्णित नर पदार्थ के अन्तर्गत प्रधान पात्र राम तथा उपपात्र सीता, भरत एवं लक्ष्मण से परिचय हम कर चुके हैं। अब क्रमशः शत्रुघ्न, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा एवं उर्मिला की विशेषताओं के साथ शत्रुघ्न पर संक्षेप से विचार करेंगे।

वा० रामायण में शत्रुघ्न का चरित्र भी अपने ढंग का निराला ही है। शत्रुघ्न मौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषय–विरागी, सरल, तेजपूर्ण, गुरुजन के अनुगामी और वीर थे।

बालकाण्ड में इनके प्रेम का वर्णन करते हुए कहा है–

अथैनं पृष्ठतो भ्येति सधनुः परिपालयन्।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।।

– वा०रा० १।१८।३२

जैसे लक्ष्मण हाथ में धनुष लेकर श्रीराम की रक्षा करते हुए उनके पीछे चलते थे, उसी तरह ही वे लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भी भरत के साथ रहते थे।

भरत के ननिहाल जाने पर शत्रुघ्न भी उनके साथ जाते हैं और लौटने पर साथ ही लौटते हैं। मन्थरा की चोटी खींचने पर भरत जब शत्रुघ्न को समझाते हैं तो वे क्रोधित होते हुए भी तुरन्त भ्रातृ–आज्ञा का पालन करते हैं।

राम-प्रेम- शत्रुघ्न को राम में गहन निष्ठा है। राम के शत्रुघ्न के प्रति स्नेह –भाव का एक प्रसंग है। कैकेयी के प्रति शत्रुघ्न के मन में रोष था। श्रीराम इस बात को जानते थे। इस कारण चित्रकूट से विदा करते समय शत्रुघ्न को वात्सल्यभाव से शिक्षा देते हुए राम कहते हैं–

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तो सि रघुनन्दन।।

– वा० रा० २।११२।२७।२८

'रघुनन्दन शत्रुघ्न! निश्चय ही तुम्हें मेरी और सीताजी की शपथ है, तुम माता कैकेयी की सेवा करना, उन पर कभी क्रोध न करना। 'कितनी आत्मीयता है इन शब्दों में!

दशरथ

महाराजा दशरथ रामायण के एक परमोदात्त एवं आदर्श पात्र हैं।

दशरथ के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि उसने तीन विवाह किये थे जो मर्यादा से बाहर की बात है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कौटिल्य आदि राजधर्म–प्रतिपादक शास्त्रों में

वंशोच्छेदन हो रहा हो तो राजाओं को अनेक विवाह करने का आदेश दिया गया है। दशरथ के सन्तान नहीं हुई थी, यह बात वाल्मीकि रामायण से स्पष्ट है–

सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकरः सुतः।

– वा० रा० बाल० ८।१

अर्थात् सन्तानार्थ दुःखित दशरथ के वंश चलाने वाला पुत्र नहीं था। राजा दशरथ बड़ा धार्मिक एवं प्रजा और राष्ट्र का पूर्ण रक्षक था–

प्रहृष्ट मुदितो लोकास्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।।
न पुत्रमरणः केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।।
न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः।
न वातजं भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा।।
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च।
नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा।।

– वा० रा० बाल० १।६०।६३

दशरथ के राज्य में जन हर्षित, प्रसन्न, पुष्ट, धार्मिक, रोगरहित दुभिक्ष–भय से पृथक् थे तथा कोई भी पुत्र मरण को न देखते थे। स्त्रियाँ अविधवा और पतिव्रता थीं, अग्नि का भय न था, न ही प्राणी जल में डूबकर मरते थे। वायु का भय भी न था और न ज्वर का भय था। नगर और राष्ट्र धन–धान्य से युक्त थे जैसे कृतयुग में होने चाहिए।

राजा दशरथ का पुत्र–प्रेम दर्शनीय है। मनोविज्ञान के पण्डितों के अनुसार श्रेष्ठ और आज्ञाकारी सन्तान के निर्माण में यह पितृ वात्सल्य बड़ा आवश्यक तत्व है। आज की सन्तानों में पितृ–अवज्ञा के मूल में माता–पिताओं में सच्चे पुत्र प्रेम का अभाव भी एक मुख्य तत्व है। हम यह भूलें नहीं कि प्रेम और मोह सर्वथा भिन्न और विरोधी तत्व हैं।

राजा दशरथ के कर्त्तव्य–भाव ने मोह पर विजय प्राप्त की। प्राण देकर भी उन्होंने अपनी कुल मर्यादा और गौरव को सुस्थिर रखा।

चौ०- रघुकुल रीति यही चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई।।

इन दो पक्तियों में दशरथ के महान् चरित्र और प्रेरक व्यक्तित्व का जो रेखांकन हुआ है, वह अनुपम है।

कौशल्या

कौशल्या राम की माता थीं। इनका जीवन भी बड़ा धर्मपरायण था। वह प्राणायाम, सन्ध्या तथा हवन करती थीं–

प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्।

– वा० रा० अयो० ४।३३

कौशल्या प्राणायाम के साथ परमात्मा का ध्यान भी करती थीं। तथा–

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमंगला।।

– वा० रा० अयो०२० ।१५

वह कौशल्या रेशमी वस्त्र पहने हुए नित्य व्रतपरायण मन्त्र सहित हवन करती थी।

सन्त तुलसीदास की तूलिका से निर्मित माता कौशल्या का एक अत्यन्त भव्य और गरिमामय चित्र देखिये–

राम माता से विदाई के लिये उपस्थित हैं। माता कहती है–

जो पितु कहेउ जाहु वन ताता। तो जनि जाहु जानि बड़िमाता।।
जो पितु-मातु कहेउ वन जाना। तो कानन शत अवध समाना।।

अर्थात् हे पुत्र! तुम्हारे वन–गमन में यदि केवल पिताजी की अनुमति है तो माता को पिता से बड़ा समझ कर वन को मत जाओ। पर यदि माता (कैकेयी) और पिता दोनों की आज्ञा है तो वन तुम्हारे लिए सौ अयोध्याओं के समान सुखदायी हो। सौतिया डाह संसार में प्रसिद्ध है और कौशल्या भी इसकी सर्वथा अपवाद नहीं थी जैसा कि वा० रामायण के अन्य प्रसंगों से स्पष्ट है। फिर भी अवसरोचित नीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता से किस प्रकार समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, इसकी शिक्षा प्रत्येक स्त्री को इस प्रसंग से लेनी चाहिए।

'माता निर्माता भवति' (जो करे पुत्र निर्माण सोई माता) इस आदर्श को माता कौशल्या ने पूरी तरह अपने जीवन में घटित किया था, तभी वे राम जैसा सर्वविध आदर्श पुत्र दे सकीं।

कौशल्या एक आदर्श माता तो थीं हीं, वे एक आदर्श पतिपरायणा पत्नी भी थीं। पुत्र–शोक से व्यथित हो वे महाराजा दशरथ को कुछ कठोर शब्द कह बैठती हैं पर तुरन्त ही अपनी भूल का अनुभव कर महाराजा के चरणों में गिर कर क्षमा–याचना करती हैं। पतिदेव के अन्त समय तक वे उनकी परिचर्या और शुश्रूषा करती हैं।

कैकेयी

कैकेयी को रामायण का अतिनिकृष्ट पात्र माना जाता है। कैकेयी बड़ी दुष्टा, अतिदोषी और अपराधिनी थी– ऐसा आबालवृद्ध के मुखाग्र पर रहता है। परन्तु यह ठीक नहीं।

सभी जानते हैं कि मन्थरा के अतिरहस्यमय कटु शब्दों का उत्तर भी कैकेयी क्या देती है ? वह कहती है–

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाब्रवीदिदम्।।
इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते।।
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्ष्ये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा राम राज्ये भिषेक्ष्यति।।

– वा० रा० अयो० ८।३३।३५

अर्थात् कैकेयी मन्थरा की बात सुन उस कुब्जा को आभूषण पारितोषक रूप में देकर कहने लगी कि– 'हे मन्थरा! तूने यह मुझे परम प्रिय बात सुनाई कि राम का कल राज्याभिषेक होगा। बोल, यह जो तूने प्रिय सम्वाद सुनाया इसके लिए मैं तुम्हें और क्या दूँ ? राम या भरत में मैं भेद नहीं देखती हूँ। भरत को राज्य मिला या राम को राज्य मिला एक ही बात है, अतः मैं प्रसन्न हूँ कि महाराज राम का अभिषेक करेंगे।'

अब प्रश्न यह है कि जब कैकेयी इतनी धार्मिक थी तो मन्थरा के 'इस प्रकार राम राजा बन गया तो फिर उसके पश्चात् राम का पुत्र राजा बनेगा, भरत तो राजवंश से त्याज्य हो जावेगा और भरत को किसी दूसरे देश आदि में निकाल देगा' सुझाने पर भरत को राज्य दिलाने की कैकेयी को क्यों सूझी जब कि राज–सिंहासन पर बैठने का अधिकार राम का था क्योंकि राम ही दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र था। इसमें कुछ रहस्य है, जो कि कैकेयी के पूर्व कहे हुए उदार वचनों में झलकता है। कैकेयी ने कहा कि मैं राम और भरत में भेद नहीं देखती, राम राजा बना तो क्या और भरत राजा बना तो क्या? भरत के भी राजा बनने को कोई कारण होगा ही तभी तो कैकेयी का ऐसा कहना सार्थक है। इस रहस्य का पता निम्न प्रसंग में मिलता है–

चित्रकूट पर्वत पर राम को मनाने जब भरत चलते हैं तब उन्हें अयोध्या वापस चलने के लिए आग्रह करते हैं। परन्तु राम ने निम्न वचन कहे जिससे भरत को निरुत्तर होकर लौटना पड़ा–

पुरा भ्रातः पिता नः मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्।।

– अयो० १०७।३

'हे भरत भाई! तेरी माता के साथ विवाह करते हुए हमारे पिता ने नाना के प्रति पहले ही राज्य शुल्क की प्रतिज्ञा की थी।'

अब सर्वथा स्पष्ट हो गया कि कैकेयी के साथ दशरथ का विवाह उससे उत्पन्न हुए पुत्र को राज्य देने के प्रणबन्ध से हुआ था, अतः भरत का अधिकार राज्य पाने का था। हाँ, यह ठीक है कि राम के प्रति ऐसे उदार भाव रखने वाली कैकेयी की कठोरता प्रायः क्रूरता तक पहुँच जाती है। किन्तु हम याद रखें कि कैकेयी मानवी थी। मानव सुलभ दुर्बलता उसमें भी थी। ऐसी दुर्बलता,स्वभाव की ऐसी द्विविधा–वृत्ति रामायण के अन्य पात्रों में भी कम या अधिक देखने को मिलती है। स्वयं राम भी तो राज्य लेने को तैयार हो गये थे। फिर जहाँ एक ओर भरत के प्रति वे प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित करते हैं, वहाँ कहीं–कहीं भरत के प्रति उनका उपेक्षाभाव भी स्पष्ट देखने में आता है। तब कैकेयी ने अपने पुत्र के अधिकार को पाने के लिए यत्न किया तो क्या वह दुष्टा कही जावे ? नहीं, नहीं। कौशल्या ने भी तो राम के राज्य पाने में प्रसन्नता दर्शाई थी और कैकेयी के प्रति उपेक्षा। स्वयं राम भी तो कहते हैं–

लक्ष्मणेमां मया सार्द्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।

– वा० रा० अयो० ४।४३

हे लक्ष्मण! तू मेरे साथ इस पृथ्वी का शासन कर।

लक्ष्मण राम के साथ रहता था और राम का आज्ञाकारी था, अतएव राम ने उसे ऐसा कहा। पर यहाँ भरत की उपेक्षा करने से राम अपराधी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः कैकेयी अपराधिनी और दुष्टा नहीं, उसने जो किया वह मानव–सुलभ दुर्बलतावश अपने अधिकार प्राप्ति के लिए किया।

कैकेयी के मानस में स्वार्थ का जो झीना आवरण आ गया, वह भी अनुताप की ज्वाला में उस समय जलकर भस्म हो जाता है जब चित्रकूट पर कैकेयी की आत्म–स्वीकृति निम्न शब्दों में व्यक्त होती है–

'युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी-
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी !'

कैकेयी के चरित्र के विशेष अध्ययन हेतु श्री गजानन्द आर्य रचित ग्रन्थ 'वीरांगना कैकेयी' अवश्य पढ़ें।

सुमित्रा

सुमित्रा, शब्द के सही अर्थों में सुमित्रा थीं। सुमित्रा का नाम लेते ही एक परम साध्वी पतिव्रता देवी, एक आदर्श जननी तथा एक कर्तव्य–निष्ठ नारी का चित्र नेत्रों के समक्ष आ खड़ा होता है। सुमित्रा को हम कभी अपने लिये सोचता हुआ नहीं पाते। सहिष्णुता की मूर्ति सुमित्रा ने मानो अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं और अभिलाषाओं को जन–जन के कल्याण की वेदी पर होम दिया था। इसके लिए सुमित्रा ने अपने दोनों पुत्रों–लक्ष्मण और शत्रुघ्न का ज्येष्ठ भ्राताओं के अनुचर रूप में समर्पण कर

दिया था। अर्थात् लक्ष्मण को राम के और शत्रुघ्न को भरत के सुपुर्द कर दिया था। राम को वनवास मिला तो लक्ष्मण को भी सुमित्रा वनवास में साथ जाने के लिए आदेश देती हैं–

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति।।
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत्।।
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम्।
रामं दशरथं विद्धि मां जनकात्मजाम्।।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्।।

– वा० रा० अयो० ४० |५ |६

'हे लक्ष्मण। तू वनवास के लिए सृजा गया (ईश्वर ने सृजा या सुमित्रा द्वारा प्रेरित किया हुआ) है। राम में भलीभाँति अनुरक्त रहना, भ्राता राम के वनवास जाते समय तू प्रमाद मत करना। चाहे वह सुखी हो या दुखी हो, उसके साथ रहना, यही तेरी गति है। यही सत्पुरुषों का धर्म है कि ज्येष्ठ भ्राता का अनुचर होना। यही इस कुल का उचित सनातन आचरण है। राम को तू दशरथ के स्थान में और सीता को मेरे स्थान में समझना, वनभूमि को अयोध्या जानना, अतः हे पुत्र! तू सहर्ष राम के साथ जा।'

सुखद सुजान राम वन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कुछ नाहीं।।

सुमित्रा अति नीतिमती थी, वह जानती थी कि ज्येष्ठ होने के कारण राज्य मिला तो राम को मिलेगा और प्रणबन्ध के कारण मिला तो भरत को मिलेगा। अतएव उसने अपने एक पुत्र लक्ष्मण को राम का अनुचर बनाया और दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भरत के साथ लगाया।

उर्मिला

उर्मिला रामायण की एक ऐसी पुनीत स्त्री–पात्र है जिसकी ऊँचाई और गरिमा को शब्दों में बाँधना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। शायद इसी कारण आदिकवि इस महामहिमामयी देवी के पावन चरित्र को अंकित करने का साहस नहीं कर सका, उपेक्षा करके निकल जाने में ही उन्होंने अपने काव्य–गौरव की प्रतिष्ठा को सुरक्षित समझा। पर क्या इस प्रकार वे क्षम्य माने जा सकेंगे। आधुनिक हिन्दी गद्य के स्वरूप सृष्टा श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी का ध्यान ही सम्भवतया सर्वप्रथम इस ओर गया 'कवियों की उर्मिला विषयक् उदासीनता, शीर्षक लेख में उन्होंने बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में एतद् विषयक् अपनी मनो–व्यथा को व्यक्त किया है। कुछ स्पष्ट भाव देखिये–

'हाय वाल्मीकि! जनकपुर में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक वधूवेश में दिखाकर चुप हो बैठ गये। अयोध्या आने पर ससुराल में, उसकी सुधि यदि आपको न आई थी तो न सही पर क्या लक्ष्मण के वन–प्रयाण के समय में भी उसके दुःखाश्रु–मोचन करना आपको उचित न जँचा ? राम–जानकी के साथ निज पति को १४ वर्ष के लिये वन जाते हुए देख छिन्न मूल शाखा की तरह राज–सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमिपर लेटती हुई उर्मिला क्या आपके नयन–गोचर नहीं हुई?''

'सन्त तुलसीदास आपने भी वन चलते वक्त लक्ष्मण को उर्मिला से न मिलने दिया। माता से मिलने के बाद झट कह दिया–'गये लषण जह, जानकि नाथा'।

अपने इष्टदेव के अनन्य सेवक लक्ष्मण 'पर इतनी सख्ती क्यों ? अपने कमण्डलु के करुणा–वारि की एक भी बूँद आपने उर्मिला के लिए न रक्खी। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते।'

कैसी करुण कैसी मर्मस्पर्शी अन्तर्व्यथा है, इन शब्दों में! युग–कवि गुप्त जी ने 'साकेत–' की रचना द्वारा आचार्य–ऋण मोचन का सफल प्रयास किया है। 'साकेत' महाकाव्य में विरहिणी उर्मिला के कई गीत–चित्र अत्यन्त मनोरम और हृदयग्राही बन पड़े हैं। कुछ शब्द चित्र देखिये–

राम –लक्ष्मण जानकी के वन–प्रयाण के पश्चात् सखियाँ उर्मिला को आश्वस्त करती हैं कि राजा दशरथ ने सुमन्त्र के साथ केवल वन दर्शन के लिए उन्हें भेजा है, वे शीघ्र ही लौट आयेंगे–

इसलिए न इतना सोच करो, अब भी आशा है धैर्य धरो।
बोली उर्मिला विषादमयी, 'सब गया, हाय आशा न गई।
आशे, निष्फल भी बनी रहो, तुम हो हीरे की कनी अहो।।'

चित्रकूट पर किसी कार्य से सीता अपने प्यारे देवर लक्ष्मण को कुटी के अन्दर भेज देती हैं। वहाँ लक्षमण एवं उर्मिला के मिलन का मर्मस्पर्शी वर्णन देखिये–

जाकर परन्तु जो वहाँ उन्होंने देखा,
तो दीख पड़ी कोणस्थ उर्मिला रेखा।
यह काया है या शेष उसी की छाया,
क्षण भर उनकी कुछ नहीं समझ में आया।
''मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,
मैं बांध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी।
गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया पद-तल में,
वह भींग उठी प्रिय चरण धरे दृग-जल में।

करुणा को भी रुलाने वाला कैसा करुण दृश्य है, यह! सीता का त्याग अद्भुत है। पर 'मम व्रते ते हृदयं दधामि'' विवाह वेदी पर की गई इस प्रतिज्ञा की परिपालना का पूर्ण उत्कर्ष तो उर्मिला के चरित्र में ही मिलता है। सीता और उर्मिला की स्थिति की तुलना निम्न पंक्तियों में कीजिए–

स्वामी सहित सीता ने नन्दन माना सघन-गहन कानन भी,
उर्मिला वधू ने वन किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी।
साल रही सखि मां की झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे-मिला न वन ही न भवन ही तुझको।

स्वयं सीता द्वारा निर्मित अनुजा का चित्र देखिए–

आंखों में आंसू, हँसी बदन पर आँकी।
मैंने अनुजा की एक मूर्ति है आंकी।।

विरहिणी उर्मिला की मर्मस्पर्शी व्यथा का एक अन्य शब्द–चित्र देखिये–

मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती थी उस विरह में, बनी आरती आप।
आंखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग!
आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मिक ज्ञान!

साकेत, का सम्पूर्ण नवम सर्ग उर्मिला, की वियोग–वेदना का लहराता अथाह सागर है। 'आजा मेरी निंदियाँ गूँगी' 'स्नेह जलाता है यह बत्ती' 'मन को यों मत जीतो' 'कहती मैं चातकि फिर बोल' 'मेरी ही पृथिवी का पानी' 'दरसो परसो घन, बरसो' 'हम राज्य लिए मरते हैं' 'मुझे फूल मत मारो' 'अब जो प्रियतम को पाऊँ' 'मेरे चपल यौवन बाल' आदि कितने ही गीतों में उर्मिला की विरहव्यथा विथुरी पड़ी है। पर धन्य है आर्य ललना उर्मिला! विरह के इस ज्वार को अन्तस् में समेटे हुए वह कहती है–

सिर माथे तेरा यह दान, हे मेरे प्रेरक भगवान!
अब क्या माँगू भला और मैं फैला कर ये हाथ ?
मुझे भूलकर ही विभु वन में विचरें मेरे नाथ!
मुझे न भूले उनका ध्यान।। हे मेरे०।।

भारतीय संस्कृति के शीर्ष इतिहास की निर्माता उर्मिला जैसी धन्य जीवन आर्य ललनाएँ ही कह सकती हैं–

कमल तुम्हारा दिन है और कुमुद यामिनी तुम्हारी है,
कोई हताश क्यों हो, आती सबकी समान बारी है।

रावण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत रावण प्रधान पात्र है। यह राम का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी पात्र है। 'रावण–वध' ही रामायण का केन्द्रीय विचार तत्व है। 'रावण–वध' के उद्‌देश्य से ही दशरथ के अश्वमेघ–यज्ञ में ऋषियों ने क्षात्रधर्म के पुनरुत्थान की योजना बनाई। उसी योजनानुसार पुत्र–कामेष्टि यज्ञ, राम जन्म, रामादि का विशिष्ट शिक्षण तथा अन्य आवश्यक आयोजन हुए।

रावण का विचार आते ही दश सिर वाले, बीस भुजाओं वाले, लपलपाती जिह्वा वाले एक भयानक जीव की तस्वीर प्रायः हमारे मानस चक्षुओं के सामने आ खड़ी होती है किन्तु ऐसी बात नहीं है। राक्षस मनुष्य ही थे, मनुष्येतर प्राणी या बर्बर और जंगली नहीं थे। इसका विशद् विवेचन आप आगे समीक्षा–भाग में पढ़ेंगे। यहाँ इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि रावण मनुष्य था। इतना ही नहीं, वह उत्तम कुलोत्पन्न, एक अद्वितीय शूरवीर, एक अच्छा विद्वान और वेदाभ्यासी उच्च कोटि का वैज्ञानिक (मायावी) तथा महान् नीतिज्ञ था।

रावण के दुर्गुण और उसका दुष्टाचरण तो प्रायः सब पर प्रकट ही है। हम यहाँ वाल्मीकि रामायण के आधार पर उसकी उक्त विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालना चाहेंगे!

रावण का वंश– रावण पौलस्त्यवंशज था–

पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः।

— वा० रा० बा०२० ।१६

राक्षसेन्द्र महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम्।
रावणं शत्रु हन्तारं, मन्त्रिभिः परिवारितम्।।

— वा० रा० अर० ३२ ।३३

अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम्।
व्यवस्यन्त्यनु राजानो धर्मं पौलस्त्यनन्दन।।

— वा० रा० अर० ५० ।६

इन वचनों में रावण को 'पौलस्त्यवंशप्रभव, पौलस्त्यकुलनन्दन, पौलस्त्यनन्दन, आदि कहा है।

रावण वेदविद्याव्रतस्नातक था

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्म निरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद् वधं वीरं मन्यसे राक्षसेश्वर।।

— यु० ६२ ।६४

हे रावण! वेदविद्याव्रतस्नातक तथा स्वकर्मपरायण होकर स्त्रीवध (सीता का वध) क्यों करना चाहता है ?

रावण को आर्य पुत्र भी कहा गया है

आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः।
परिपेतुः कबंधाकां मही शोणितकर्दमाम्।।

– युद्ध० ११० ।४

रावण की स्त्रियाँ इसका वध हो जाने पर विलाप करती हैं। उनमें से कुछेक 'आर्यपुत्र' ऐसा कहकर और कुछेक 'नाथ' ऐसा कहकर उसकी रक्तभरी शवभूमि पर गिर पड़ीं।

रावण का शिष्टाचार

स्त्री के सम्मुख शिर नीचे करके बात करना–

तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम्।
अवाक्शिराः प्रपतितो बहु मन्यस्व मामिति।।

– वा० रा० सुन्दर ५८ ।६८

रावण नीचे शिर करके तथा साष्टांग सा झुककर दुःखिनी सीता से बोला कि मुझे बहुत अच्छा मानो।

सीता को एक वर्ष की अवधि देना

सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं रामामायतलोचना।।

– वा० रा० युद्ध १२ ।१८ ।१६

'उस सीता ने एक वर्ष की अवधि अपने पति राम की प्रतीक्षा के लिए मुझसे मांगी है, ऐसा रावण ने अपने मन्त्रियों से कहा।'

हस्तगत सीता को उसकी इच्छा के अनुसार राम की प्रतीक्षार्थ एक वर्ष की अवधि का रावण द्वारा दिया जाना उसके शिष्टाचार और श्रेष्ठ व्यवहार को दर्शाता है।

रावण की महती मर्यादावत्ता

एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि।।

– वा० रा० सुन्दर० २० ।६

रावण सीता से कहता है कि हे सीता! तू मेरे प्रति कामभाव नहीं रखती है तो मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकता।

धर्मशास्त्रों में बन्ध्या, रजस्वला, अकामा आदि स्त्री को स्पर्श करने का निषेध है, अतः अपने प्रति अकामा सीता को न छूना यह रावण की भारी मर्यादावत्ता है जिससे वह आजकल के अनेक राजा महाराजों से भी श्रेष्ठ और मर्यादावान् ठहरता है।

रावण में गुण अनेक थे, केवल अधर्म बलवान् था, यह हनुमान् के मुख से भी सुनिये–

अहोरूपमहो धैर्यमहो कान्तिरहोद्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता।।
यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता।।

– वा० रा० सुन्दर० ४६।१८

रावण को देखते ही हनुमान् मुग्ध हो जाते हैं और कह उठते हैं– अहो रावण का रूप–सौन्दर्य, अहो धैर्य, अहो कान्ति, अहो सर्वलक्षणयुक्त होना। यदि इसमें अधर्म बलवान् न हो तो यह इन्द्रसहित देवलोक का भी स्वामी बन जाता।

रावण अधर्मात्मा क्यों ?

रावण की इन विशेषताओं और गुणों का विचार करके स्वभावतया यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा गुणी व्यक्ति क्योंकर इतना पतित और गर्हित सिद्ध हुआ कि आज भी कोई माता–पिता अपने पुत्र का नाम 'रावण' नहीं रखना चाहेंगे।

रावण में अधर्म विषयक् जो दोष थे उनका परिगणन रावण की पत्नी मन्दोदरी उसके वध पर करती है, और विलाप करती हुई वह कहती है कि–

नैकयज्ञविलोप्तारं, धर्मव्यवस्थाभेत्तारं।
देवासुरनृकन्यानामाहर्त्तारं ततस्ततः।।

– वा० रा० युद्ध० १११।५१

अनेकों यज्ञों का विलोप करने वाले, धर्मव्यवस्थाओं को तोड़ने वाले, देव, असुर तथा मनुष्यों की कन्याओं के जहाँ–तहाँ से हरण करने वाले! आज तू अपने इन पाप कर्मों से वध को प्राप्त हुआ।

इन अधर्मों या इन पापों के कारण रावण दुष्ट या पापी माना गया, अन्यथा वह तो ऋषि सदृश था। मय ने उसे अपनी पुत्री मन्दोदरी महर्षि–पुत्र कहकर दी थी–

एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः।
महर्षेस्तनयः ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।।

– वा० रा० उत्तर० १२।१६।१८

रावण के गुणों का विचार करते हुए कुछ लोगों का कहना है कि राम की विजय और रावण की पराजय ही रावण के अपयश का प्रमुख कारण है। राम–रावण युद्ध में यदि रावण की विजय और राम की पराजय हुई होती तो तस्वीर सर्वथा भिन्न होती अर्थात् तब संसार राम को गिरा हुआ और पतित कहता और रावण को सर्वविध प्रशंसनीय।

हम इस दलील को चुटकियों में नहीं उडाना चाहते। हम मानते हैं कि जय–पराजय का इतिहास की धारा के निर्णय में बड़े महत्व का स्थान है, पर यही सब कुछ नहीं है। राम–रावण युद्ध में राम की पराजय होने पर भी अपनी अन्य विशेषताओं से वह आर्यरक्षक अपनी जाति का हृदय–हार बना रहता, वह आर्य जाति के गौरव के निमित्त आत्म–बलिदान करने वाले वीरों में अग्रगण्य होता और रावण की विजय होने पर भी उसकी मदान्धता अनेकों गुणा बढ़कर उसे निकृष्टतर बना देती।

आखिर भौतिक विजय ही तो सब कुछ नहीं है। इतिहास और महान् इतिहास के निर्माण में कुछ दूसरे भी तत्व हैं जो अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भौतिक विजय और वैज्ञानिक प्रगतियाँ रावण के शासन में चरम सीमा को प्राप्त थीं। पर वे सभी रावण की मदान्धता और दुराचरण को बढ़ाने में सहायक बनीं। सचाई यह कि रावण की निरन्तर की अबाध विजय और उसके राज्य की अकल्पनीय वैज्ञानिक प्रगति ही उसकी मौत और अपयश का कारण बनी। क्यों ? इसलिए कि विजयों से उत्पन्न मद को वह पचा नहीं सका। उसका दुरभिमान और दुराचार ही वे दुर्गुण थे जिन्होंने उसके अन्य सभी गुणों पर पानी फेर दिया।

तू हित की बात न सुनता, यह लक्षण कुल-घातक है।
तू धर्मनिपुण होकर भी, मद- वश करता पातक है।।

सीता देवी के इन शब्दों में मानो रावण का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही समा गया है।

अतः यह धारणा सत्य नहीं कि राम–रावण युद्ध में रावण के विजयी होने पर रावण यशस्वी और राम अयशस्वी होता। विजय यश का कारण बनती है, पर तभी जब उससे उत्पन्न मद को पचाया जा सके। राम का चरित्र इसका साक्षी है। विजय–मद को यदि न पचाया जा सके तो वह किस तरह घोर अपयश और जनापवाद का कारण बनता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारत के स्वतन्त्रता–युद्ध के नेताओं के रूप में हमारे सामने है। विजय–मद को वे पचा नहीं सके हैं, फलतः वे भारत के सर्वनाश और स्वयं की अपकीर्ति के कारण बने और बन रहे हैं।

रावण और उसके राज्य की तुलना आज के मानव और संसार से की जा सकती है। 'भुङ्क्ष्व भोगान् पिब रमस्व च' अर्थात् खाओ, पीओ और मौज करो, (Eat, drink and be merry) रावण का यह जड़वादी घोष (नारा) आज पूर्व से चौगुने जोश से दुहराया जा रहा है।

आज की अचिन्तनीय वैज्ञानिक प्रगति से उन्मादित अपने ही बुद्धि–वैभव पर अभिमान करने वाला, अहम्मन्यता की मूर्ति बना आज का सफेद–पोश मानव! क्या रावण की तुलना में सैकड़ों गुना पतित और गर्हित नहीं बन गया है ?

सीता के साथ रावण के उस मर्यादित व्यवहार की आज के कथित मनुष्य की मनस्थिति के साथ जरा तुलना तो कीजिए। क्या आज के भौतिक विजय–मद ने मानवात्मा को जकड़ कर उसकी मानवता को निःशेष नहीं कर दिया है ? क्या इस कथित विजयोन्माद और ' मैं हूँ ' के अभिशाप ने सम्पूर्ण मानव जाति को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा नहीं कर दिया है ? महाकवि पन्त ने इस विनाशोन्मुख स्थिति को यों चित्रित किया है–

चरमोन्नत जग में जब कि आज विज्ञान-ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यन्त्र-यान, वैभव महान्।
प्रस्तुत हैं विद्युत, वाष्प-शक्ति, धन-बल नितान्त,
फिर क्यों जग में उत्पीड़न, जीवन यों अशान्त?
मानव ने पाई देश-काल पर जय निश्चय,
मानव के पास न पर मानव का आज हृदय!
गर्वित उसका विज्ञान-ज्ञान, वह नहीं परिचित,
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित।
चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव-उर में फिर मानवता का हो प्रवेश!

महाकवि ने समस्या का समाधान भी दिया है जिसे हम रावण के पराभव और पतन से शिक्षा के रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। भौतिक विजय, सु–साधन, धनैश्वर्य, विविध ज्ञान–विज्ञान सम्बन्धी उपलब्धियों का अन्तिम उद्देश्य मनुष्यता का विकास होना चाहिए। राम के जीवन की भाँति भौतिकता और आध्यात्मिकता का सहचार ही मानव का चरम ध्येय है। पवित्र वेद के शब्दों में ब्राह्म–शक्ति और क्षात्र–शक्ति दोनों का सम्यक् सहचार ही विश्व–जीवन का आधार है। अकेला कोई भी एक अकल्याण और विनाश का ही कारण बनेगा।

रावण के जीवन से एक अन्य शिक्षा यह भी मिलती है कि कोई कितना ही विद्वान, बलवान, राजनीतिज्ञ और वेदज्ञ भी क्यों न हो यदि वह आचरणहीन है तो सदैव अपयश और अपमान ही उसके हाथ लगेगा। मनीषी जनों ने सत्य ही कहा है–

'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'

रावण के चरित्र से शिक्षा लेने के रूप में महाकवि 'शंकर' के 'रुद्र–दण्ड' की यह पक्तियाँ स्मरणीय हैं–

करता है जो पातकी, विधि निषेध का लोप।
होता है उस नीच पर, 'शंकर' प्रभु का कोप।।

* * * * *

तथा–

खलों में खेलते-खाते, भलों को जो जलाते हैं।
विधाता न्यायकारी से, सदा वे दण्ड पाते हैं।।

* * * * *

तजे जो धर्म को, धारा कुकर्मों की बहाता है।
न ऐसे नीच पापी को कभी ऊँचा चढ़ाता है।।
सदा जो न्याय का, प्यारी प्रजा को दान देता है।
महाराजा उसी को तू बड़ा राजा बनाता है।।

* * * * *

जिसे प्राण - प्यारा सदाचार होगा।
वही मनुज भव-सिन्धु से पार होगा।।
कहो काठ का केहरी क्या तरेगा?
जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा।।

महावीर हनुमान्

वानर पदार्थ के अन्तर्गत हनुमान् प्रधान पात्र हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्य, अनुपम शौर्य, अप्रतिम नीतिमत्ता, अलौकिक पुरुषार्थ, अनूठा पाण्डित्य एवं बुद्धि–गरिमा और इस सबके साथ आदर्श सेवा भावयुक्त अद्भुत समर्पण–भाव एवं अतुलनीय नम्रता और शालीनता ये सभी तथा अन्य अनेकों आर्योचित देवोपम गुण किसी एक महापुरुष में देखने हों तो वे हैं– पवन–पुत्र महावीर हनुमान्।

ऐसे पवित्र चरित्र पर भी अलौकिकता की छाया डाल कर, अवतारवाद का ढक्कन मढकर एक महान् अनर्थ किया गया है। मानव जाति के मुकुट–मणि इस महापुरुष को भी केवल पूजा की वस्तु बनाकर मनुष्य के अन्दर का निकृष्ट स्वार्थ हँसता रहा है। इस आदर्श आर्यवीर को 'वानर' शब्द से उत्पन्न भ्रान्तिवश कोरा बन्दर' बनाते समय तनिक भी तो बुद्धि–विवेक से काम लिया होता। इस सम्बन्ध में विशेष विचार 'वानर पदार्थ विवेचन' शीर्षक लेख में हम पृथक से करेंगे। यहाँ इतना ही ज्ञातव्य है कि हनुमान् न तो पूँछ वाले बन्दर थे और न 'प्रातः समय रवि भक्ष लियो' की पौराणिक गप्प के अनुसार इस पृथ्वी से १३ लाख गुने बड़े सूर्य को गाल में दबा लेने वाले अतिमानव। वे एक आदर्श महामानव थे। उनके सद्गुणों को धारण कर कोई भी व्यक्ति हनुमान् जैसा बनकर धन्य जीवन हो सकता है। यह मृतप्राय आर्यजाति उनके पुण्य चरित्र से शिक्षा लेकर प्राणवान् हो सके, इसी विचार से हम यहाँ इस नर–पुंगव की चर्चा से अपनी लेखनी को पवित्र करेंगे।

आदर्श मानव

हनुमान् एक निष्ठावान् आदर्श मनुष्य थे, मनुष्यता से युक्त सच्चे मानव। महर्षि दयानन्द लिखते हैं– "मनुष्य उसी को कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख और हानि–लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व–सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति और प्रियाचरण तथा अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ महा बलवान् और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश और अप्रियाचरण सदा करता रहे।..... चाहे प्राण भी भले ही जावें पर इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।" (सत्यार्थ प्र०)

ऋषि निर्धारित मनुष्यता की इस कसौटी पर हनुमान् पूर्णतया खरे उतरते हैं। अन्यायकारी बलवान् बाली का साथ न देकर वे निर्बल पर धर्मात्मा सुग्रीव का साथ देते हैं। उन जैसा विद्वान, बलवान् और नीतिमान् बाली के यहाँ ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता था, पर मानवता के इस पुजारी ने समस्त सुखोपभोग पर ठोकर मारकर स्वेच्छया कण्टकाकीर्ण न्याय–पथ और धर्म–पथ का वरण किया और वे अन्त तक सुग्रीव के सहयोगी रहे।

अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रती

अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना और उस साधना का उपयोग जन–कल्याण, प्रजाहित और राष्ट्र सेवा के लिए करने वाले जिन कतिपय महात्माओं के शुभ नाम इतिहास के पृष्ठों में हमें देखने को मिल सकते हैं उनमें हनुमान् का स्थान निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

ब्रह्मचर्य का पावन प्रताप स्वयं सिद्ध है। ब्रह्मचर्य की महिमा वेद के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' में विस्तार से वर्णित है। इस सूक्त का निम्न मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत।।

– अथर्व० ७।११।१९

'विद्वान ब्रह्मचर्य रूप तप से ही मृत्युञ्जयी बनते हैं, अमरता लाभ प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।

'ब्रह्मचर्य रूप तप से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। मध्य युग में बाल ब्रह्मचारी शंकर और आज के युग में युग–प्रवर्त्तक देव दयानन्द संसार का जो इतना महान उपकार कर सके, उसके मूल में उनका श्लाघनीय ब्रह्मचर्य व्रत ही रहा है। हनुमान् मानो मूर्तिमान ब्रह्मचर्य थे। अनेकों असाधारण कार्यों को सहजतया सम्पादित करने का विपुल सामर्थ्य हम जो उनमें देखते हैं, उसका रहस्य ब्रह्मचर्य की सनिष्ठ साधना ही है। आज के दुरवस्थाग्रस्त राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए ऐसे ही व्रतनिष्ठ जीवनों

की अपेक्षा है। महाकवि नाथूराम 'शंकर' शर्मा ने ब्रह्मचर्य महिमा सम्बन्धी अपने एक गीत में वीरवर हनुमान् की ब्रह्मचर्य–साधना का बखान निम्न शब्दों में किया है–

सुग्रीव का सु-मित्र बड़े काम का रहा।
प्यारा अनन्य-भक्त सदा राम का रहा।।
लंका जलाय काल खलों को सुझा दिया।
मारे प्रचण्ड-दुष्ट दिया भी बुझा दिया।।
हनुमान् बली वीरवरों में प्रधान है।
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान् है।।

सीता खोज के प्रसंग में हनुमान् की अनूठी ब्रह्मचर्य–साधना का परिचय मिलता है। पानभूमि में सीता को खोजते हुए रावण की स्त्रियों के कई अभद्र दृश्य उनके दृष्टि–पथ में आते हैं। इससे एक बार तो धर्म–भीरु महावीर बड़े संक्षुब्ध हो उठते हैं पर तभी वे विचारते हैं कि जब मन ही सब शुभाशुभ कर्मों का मूल है और मेरा मन अपनी आत्मा के निकट पवित्र है तो मुझे निःशंक कर्त्तव्य–रत रहना चाहिए।

महावीर की शूरता, नीतिमत्ता एवं पाण्डित्य

हनुमान् की नीतिमत्ता का प्रथम चरित्र राम और सुग्रीव की मैत्री कराने के रूप में हमारे सामने आता है। अपने बुद्धिचातुर्य, वाक्–कौशल, सम्यक्–अभिभाषण और पाण्डित्य से वे श्रीराम को प्रभावित करने में सफल होते हैं। श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर कहते हैं–'ये ब्राह्मण बड़े बुद्धिमान् हैं। इनकी बातों से मालूम पड़ता है कि इन्होंने सांगोपांग वेदों का अध्ययन किया है। इनके बोलने में एक भी अशुद्धि नहीं है। इनकी आकृति पर कोई ऐसा लक्षण प्रकट नहीं हुआ है जिससे इनका भाव दूषित कहा जा सके। ये किसी राजा के मन्त्री होने योग्य हैं। ये व्याकरण के पण्डित प्रतीत होते हैं। इनकी उच्चारण–शैली और नीतिमत्ता दोनों ही गम्भीर तथा प्रभावोत्पादक हैं।' इनके सिवा और बहुत प्रकार से हनुमान् के वचनों की सराहना करते हुए वे अन्त में कहते हैं कि जिस राजा के पास ऐसे बुद्धिमान् दूत हों, उसके समस्त कार्य दूत की बातचीत से ही सिद्ध हो जाया करते हैं। हम जानते हैं कि हनुमान् का यही प्रभाव राम को सुग्रीव के साथ मैत्री के व्रत बन्धन में बाँध देता है।

बाली का वध करके भगवान् राम भाई लक्ष्मण के सहित प्रवर्षण पर्वत पर निवास करके वर्षा ऋतु का समय व्यतीत करते हैं। इधर सुग्रीव विलासिता में निमग्न हो राम कार्य को भुला देता है। राजनीति के पण्डित हनुमान् सुग्रीव को सचेत कर कर्तव्य तथा मित्र–धर्म का स्मरण कराते हैं और वानरों को इकट्ठा होने का आदेश जारी करते हैं। कैसी अपूर्व बुद्धिमत्ता है !

सीताजी की खोज के लिए वानरों को सब दिशाओं में भेजने का प्रसंग उपस्थित है। हनुमान् की कार्य–क्षमता और बुद्धि–कौशल के प्रति सुग्रीव अत्यधिक आश्वस्त हो, राम के समक्ष ही कहते हैं–

त्वय्येव हनुमन्नास्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नीतिश्च नयपण्डितः।।

— किष्किन्धा ४४।७

'हनुमान्! तुम नीति शास्त्र के पण्डित हो, बल, बुद्धि, पराक्रम देश–काल–अनुसरण और नीति पूर्ण वर्ताव–ये सब एक साथ तुम में पाये जाते हैं। इसी प्रसंग में सुग्रीव हनुमान् के शौर्य का भी विशद वर्णन करते हैं। स्वयं राम भी हनुमान् की कार्य कुशलता पर ही पूरा भरोसा रखते हैं तभी उसे सीता के लिए अपनी मुद्रा उतार कर देते हैं तथा सन्देश भी।

लंका प्रवेश और वहाँ पहुँचकर सीता से भेंट रूप कार्य सिद्धि में हनुमान् की बुद्धि प्रखरता सर्वथा द्रष्टव्य है। रावण जैसे दुर्दान्त शत्रु के गढ़ में प्रवेश कर सफलतापूर्वक लौटना हनुमान् के असाधारण बुद्धि–वैभव का ही परिचायक है।

सीता को पहचानने, अपने विषय में उसे विगत–सन्देह करने, अशोक वाटिका को उजाड़ने, अनेकों वीरों को मार गिराने और लंका दहन आदि से रावण सभा में अपने बल, बुद्धि और शौर्य का सिक्का जमाने आदि सभी प्रसंगों में उनकी गति एवं प्रतिभा अद्वितीय है।

समुद्र लांघने के प्रसंग को लेकर सभी वानर अपने–२ बल–पौरुष का बखान कर रहे हैं। हनुमान् सर्वथा शान्त हैं। वे केवल सुनते भर हैं। यहाँ उनकी निरभिमानता के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर जाम्बवान् द्वारा हनुमान् की बुद्धि, बल, तेज, पराक्रम, विद्या और वीरता का चित्रण भी बड़ा ही विचित्र और दर्शनीय है, वे कहते हैं–

वीर वानरलोकस्य सर्व शास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि।।
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्वं च हरि पुंगव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे।।

— किष्किन्धा ६६।२।७

'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ तथा वानर जाति के अद्वितीय वीर हनुमान्! तुम कैसे एकान्त में चुप बैठे हो, कुछ बोलते क्यों नहीं ? तुम तो तेज और बल में श्रीराम और लक्ष्मण के समान हो। वानर श्रेष्ठ! तुम्हारे अन्दर समस्त प्राणियों से बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य है, फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते ?'

अतुलित पराक्रम

रामायण के अनेकों प्रसंगों में हनुमान् के पराक्रम एवं शौर्य के दर्शन होते हैं। अशोक वाटिका–ध्वंस के समय की एक झाँकी देखिये–

तलेनाभिहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परंतपः।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्।।
प्रममाथोरसा कांश्चिदुरुभ्यामपरानपि।
केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि।।

— सुन्दर० ४५।१२।१३

हनुमान् ने उन राक्षसों में से किसी को थप्पड़ मारकर गिरा दिया, कितनों को पैरों से कुचल डाला, कइयों का मुक्कों से काम तमाम कर दिया और बहुतों को नखों से फाड़ डाला। कुछ का छाती से रगड़कर कचूमर निकाल दिया तो किन्हीं—२ को दोनों जाँघों से दबोच कर पीस डाला। कितने ही राक्षस उनकी भयानक गर्जना से वहाँ पृथ्वी पर ही गिर पड़े।'

आदर्श सेवा-भाव

ऐसा बल, ऐसा विक्रम, इतना पांडित्य और ऐसी बुद्धिमत्ता एवं नीतिमत्ता के धनी होने पर भी हनुमान् को अभिमान छू भी नहीं गया है। वे निरभिमानता और सेवा भाव की मूर्ति हैं। जहाँ कोई भी तैयार न हो वहाँ हम हनुमान् को सेवार्थ प्रस्तुत पाते हैं। यहाँ सिर्फ एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

मेघनाद आज साक्षात् काल बनकर रणभूमि में आया है। उसकी विकट मार से और तो और राम—लक्ष्मण भी मूर्छित हो गये हैं। सभी व्यग्र और चिन्तातुर हैं। जाम्बवान् की आँखें केवल हनुमान् को खोज रही हैं। विभीषण के यह पूछने पर कि और किसी की कुशलता न पूछकर आप सिर्फ हनुमान् की कुशलता क्यों जानना चाहते हैं? जाम्बवान् उत्तर देते हैं—

शृणु नैर्ऋत शार्दूल यस्मात् पृच्छामि मारुतिम्।।
अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।।
हनूमत्युज्झित प्राणे जीवन्तो पि मृता वयम्।।

— युद्ध० ७४।२१।२२

'राक्षसराज! सुनो, मैं हनुमान के लिए इसलिए पूछ रहा हूँ कि यदि इस समय वीरवर हनुमान् जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जी सकती है और यदि उनके प्राण निकल गये हो तो हम जीते हुए भी मृतक तुल्य हैं।'

आखिर हनुमान् ही सञ्जीवनी बूटी लाकर सबकी प्राण—रक्षा करते हैं। दौत्य कर्म में तो वे पारगंत हैं। उनकी सेवा—भावना के कारण ही वे 'रामसेवक' या 'रामदूत' करके प्रसिद्ध हैं। सेवक की कृत्कृत्यता इसमें है कि स्वामी उसका प्रशंसक हो। राम, हनुमान् के प्रशंसक ही नहीं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता का भाव रखते हैं।

*

(पात्र-परिचय खण्ड समाप्त)

*

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम

ईश्वरावतार या मर्यादा पुरुषोत्तम ?

रामायण का प्रारम्भ वाल्मीकि के नारद मुनि से किये गये इस प्रश्न से होता है–

कोवास्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यमान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः।।२।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।३।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान्को नसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च, जातरोषस्य संयुगे।।४।।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं, परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थो सि, ज्ञातुमेवंविधं नरम्।।५।।

– वा० रा० बाल सर्ग १

अर्थात् इस संसार में वीर, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, सच्चरित्र, सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान्, उत्तम कार्य करने में समर्थ, सबके लिए प्रिय दर्शन वाला, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतने वाला, तेजस्वी, ईर्ष्या न करने वाला, युद्ध में क्रोध आने पर देव भी जिससे भयभीत हों, ऐसा मनुष्य कौन है, यह जानने की मुझे उत्सुकता है। महर्षे! तुम ऐसे मनुष्य को जान सकते हो।

यहाँ प्रश्न में ''महर्षे त्वं समर्थो सि, ज्ञातुमेवं विधं नरम्'' ये शब्द आये हैं, जिनका अर्थ स्पष्ट है कि तुम ही इस प्रकार के गुणों से युक्त नर (मनुष्य) को जान सकते हो, उसके विषय में मुझे बताओ।

वेद-साक्ष्य

'धर्म जिज्ञासमानानाम् प्रमाणं परमं श्रुतिः' इस मनु वाक्य के अनुसार धर्म के जिज्ञासुओं के लिये अखिल धर्मों का मूल वेद ही परम प्रमाण है। यजुर्वेद ४० वें अध्याय के आठवें मन्त्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतो र्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

– यजु०४० ।८

वह परमेश्वर सर्वत्र व्यापक, न्यायकारी सर्वशक्तिमान्, (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) शरीर से रहित, छिद्र रहित, नस और नाड़ियों के बन्धन से परे, शुद्ध, पवित्र, निष्पाप, क्रान्तिदर्शी सर्वज्ञ, सब जीवों के मनोभावों को जानने वाला, दुष्ट और पापियों का तिरस्कार करने वाला तथा सबके ऊपर विराजमान् है। वह स्वयम्भू, अनादि स्वरूप है तथा अपनी सनातन प्रजा (जीवों)के लिए यथार्थ भाव से सब पदार्थों को रचता है।

'न तस्य प्रतिमा स्ति यस्य नाम महद्यशः' यजु० ३२।३

उस ईश्वर की कोई आकृति नहीं है, जिसके नाम का महान् यश है, अर्थात् इस मन्त्र में अवतारवाद की कल्पना का कैसा स्पष्ट खण्डन है!

उपनिषद्-साक्ष्य

उपनिषदों में भी ईश्वर को निराकार और जन्मरहित वर्णन किया है– **अशरीरं शरीरेषु** (कठ० २।२२)

वह परमात्मा साकार वस्तुओं में व्यापक होकर भी निराकार है। **सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।** (श्वे० ३।१७)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

वह परम पुरुष हाथ और पैर से रहित है। वह स्वसंकल्प से वेगवान् और ग्रहण करने वाला है। वह नेत्ररहित है परन्तु सबको देखता है, उसके कान नहीं हैं परन्तु वह सब कुछ सुनता है। वह सब कुछ जानता है परन्तु उसे पूर्णरूपेण जानने वाला कोई नहीं है। उसी भगवान् को ज्ञानी लोग सबसे मुख्य, महान् और 'पुरुष' कहते हैं। (श्वे० ३।१६)

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मनं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्।।

– वेदा० ३।२१

ईश्वर का साक्षात्कार कर ब्रह्मवादी कहता है– मैं उस अविनाशी, सनातन, सर्वद्रष्टा और सामर्थ्यवान् होने से सर्वत्र व्यापक ईश्वर को जानता हूँ। ब्रह्मवादी कहते हैं कि वह नित्य है और कभी जन्म नहीं लेता।' यहाँ अवतारवाद का स्पष्ट खण्डन है।

दर्शन-साक्ष्य

दर्शन के प्रमाण भी इस विषय में दर्शनीय हैं –

क्लेश कर्म विपाकैरापरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

– यो० द० १।२४

अविद्या आदि पाँच क्लेश, कर्म–फल और वासनाओं के संसर्ग से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है। इस लक्षण से सिद्ध है कि ईश्वर देहधारी नहीं हो सकता क्योंकि ये सब बातें देहधारी में होती हैं।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः। (वे० द० २।२।४०)

यदि ऐसी कल्पना की जाये कि ईश्वर शरीरधारी है और उसके नेत्र, कर्ण आदि इन्द्रियाँ हैं तो ठीक नहीं क्योंकि ऐसा मानने से ईश्वर में भोग, जरा, दुःख आदि आ जायेंगे। अतः ईश्वर शरीर धारण नहीं करता।

अन्तवन्तमसर्वज्ञता वा। (वे० द० २।२।४१)

यदि ईश्वर के शरीर मानें तो उसे अन्त वाला स्वीकार करना पड़ेगा। अन्त वाला अल्पज्ञ होगा, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जो सर्वज्ञ नहीं है और अन्त वाला है, वह परमात्मा कदापि नहीं हो सकता।

न च कर्तुः करणम् (वे० द० २।२।४३)

अतः सिद्ध हुआ कि ईश्वर के शरीर और इन्द्रियादि साधन नहीं हैं।

प्रश्न- पर अन्यत्र तो दर्शनों में ईश्वर के अवतार धारण करने का वर्णन आता है। देखिये–

लोकवत्तु लीला कैवल्यम्। (वेदा० २।१।।३३)

परमात्मा लीला करने के लिए अवतार धारण करता है।

उत्तर- इस सूत्र का यह अर्थ नहीं है। इस पर शंकराचार्य जी का अर्थ देखिये–

'जैसे श्वास–प्रश्वास बिना किसी प्रयत्न के चलते रहते हैं ठीक इसी प्रकार ईश्वर बिना किसी प्रयत्न के संसार की रचना करता है। संसार की रचना के लिए उसे विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इस प्रकार वेद, उपनिषद् दर्शन सभी ईश्वर को नित्य और अजन्मा बताते हैं तथा अवतारवाद की कल्पना का खण्डन करते हैं।

गीता में अवतारवाद

प्रश्न- गीता के निम्न श्लोकों में तो अवतार धारण करने का स्पष्ट उल्लेख है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

'जब–जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है, तब–तब मैं अवतार धारण करता हूँ। साधुओं की रक्षा के लिए, दुष्टों के नाश के लिए, धर्म की स्थापना के लिए मैं युग–युग में अवतार लेता हूँ।' (गीता ४।७।८)

उत्तर- ये श्लोक वेद–विरुद्ध होने के कारण प्रमाण नहीं माने जा सकते। श्रीकृष्ण धर्मात्मा और योगेश्वर थे। धर्म की रक्षा के लिए यदि उनकी यह कामना रही हो कि मैं समय–समय पर जन्म लेकर

सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का विनाश करूँ तो इसमें दोष भी क्या है ? श्रीकृष्ण की इस कामना मात्र से वे ईश्वर नहीं हो सकते। फिर यदि हम थोड़ा भी विचार करें तो इन्हीं श्लोकों से अनेकों कथित अवतारों की निस्सारता सिद्ध हो जाती है।

यहाँ दूसरे श्लोक में अवतारवाद के तीन कारण बताये हैं। हम क्रमशः एक–एक को लेते हैं–

साधुओं की रक्षा- यह प्रथम कसौटी है। वामनावतार जो प्रमुख दस अवतारों में से एक है, इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। राजा बलि प्रसिद्ध दानी और यज्ञशील पुरुष था। उसने ९९ अश्वमेध यज्ञ किये। जब वह सौवां अश्वमेध यज्ञ करने लगा तो इन्द्र को भय हुआ कि अब मेरी पदवी छिन जायेगी। देवताओं और इन्द्र ने भगवान् को अवतार लेकर राजा बलि का व्रत भंग करने के लिये बाध्य किया। उनकी प्रार्थना पर ईश्वर ने वामन अवतार लेकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी माँगकर उसे छला। दो पगों में भूलोक और आकाश को माप लिया और तीसरा पग राजा बलि के सिर के ऊपर रखकर उसे पाताल पहुँचा दिया। यह कथा अनेक पुराणों में वर्णित है। इससे सिद्ध है कि बड़े–बड़े अवतार भी ठगी का कार्य करते रहे हैं। बलि जैसे धर्मात्मा के नाश को कोई भी साधुओं की रक्षा नहीं मान सकता।

भागवत स्कन्ध ८, अध्याय १२ में मोहिनी अवतार की कथा आती है जो निम्न प्रकार है–

एक बार विष्णु जी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री मोहिनी का रूप धरकर गेंद उछालते हुए बड़े हाव–भाव से शिवजी के समक्ष आये। जब शिवजी ने मोहिनी को देखा तो काम से ऐसे पीडित हो गए कि अपने आपको वश में नहीं रख सके। जैसे मस्त हाथी हथिनी के पीछे दौड़ता है ऐसे ही वे मोहिनी के पीछे दौड़े और उसे पकड़ लिया। मोहिनी स्वयं को छुड़ाकर भाग निकली। शिवजी ने उसके पीछे दौड़ लगाई। उसके पीछे भागते हुए शिवजी का वीर्यपात हो गया।

यह है पौराणिकों का मोहिनी अवतार। हम पूंछना चाहते हैं इस अवतार ने कौन से दुष्टों का नाश किया और कौन से सज्जनों की रक्षा की। सज्जनों की रक्षा तो दूर रही, इसने तो शिवजी को पतित कर दिया।

कुछ लोग कहते हैं कि यह तो अंलकारिक वर्णन है। यदि इसे अंलकारिक वर्णन ही मान लिया जाय तो एक अवतार का तो सफाया हो जाता है।

पापियों का नाश – यह अवतार धारण करने का दूसरा हेतु है। पुराणों के पृष्ठ उलटने से ज्ञात होता है कि कई अवतारों की जीवनियाँ अनर्थों और अत्याचारों से भरी हुई हैं। इन अवतारों ने इस बात का विचार तक नहीं किया कि हम पापियों का नाश कर रहे हैं या धर्मात्माओं का। इस बात की पुष्टि के लिए केवल परशुराम का उदाहरण पर्याप्त होगा।

परशुराम जी प्रमुख दस अवतारों में से एक हैं। आपने किसी क्षत्रिय से अप्रसन्न होकर पृथ्वी को कई बार क्षत्रियों से शून्य कर दिया था–

त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान्नव।।

(भाग० ६ ।१६ ।१९)

भगवान् परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों को मारकर संसार को निःक्षत्रिय किया और कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों के खून से नौ लाख तालाब भर दिए।

पाठक तनिक विचार करें क्या यह शिष्टाचार है। हमें तो परशुरामजी का यह कर्म नादिरशाही कार्य प्रतीत होता है।

धर्म की स्थापना– यह तीसरा हेतु है। मुख्य अवतारों के चरित्र धर्माचरण के इतने विरुद्ध हैं कि उन्हें धर्म की स्थापना करने वाला मानते हुए संकोच होता है। यह ठीक है कि उनमें उत्तम गुण थे परन्तु उन्होंने जो अधर्म कार्य किए उससे भी आँखें नहीं मींची जा सकतीं। उत्तम गुणों के कारण इन व्यक्तियों को महापुरुष तो माना जा सकता है परन्तु ईश्वर नहीं। जब हम इनकी कमजोरियों पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि ये ईश्वर के अवतार कदापि नहीं हो सकते।

वामन, परशुराम और मोहिनी की करतूतें धर्मस्थापना के लिए कभी नहीं हो सकतीं। श्रीराम का केवल धोबी के कहने मात्र से शुद्ध हुई सीताजी को त्याग देना (जैसा पौराणिक मानते हैं) धर्म–विरुद्ध है। श्रीकृष्ण का १६१०८ रानियों से विवाह करना (जैसा भागवत में लिखा है) धर्मानुकूल नहीं हो सकता। 'गोपाल कामिनी जार, चौर जार शिखामणि' गोपाल सहस्रनाम। १३७। व्यभिचारी और चोरों का शिरोमणि (जैसा कि पौराणिक श्रीकृष्ण को मानते हैं) ईश्वर का अवतार कदापि नहीं हो सकता। बुद्ध भी ईश्वर का अवतार था, उसने ईश्वर और वेद को मानने से ही इनकार कर दिया।

देवी भागवतकार ने तो इस अवतारवाद पर पूरा चौका ही लगा दिया है–

माया विमोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः।
करोति स्वेच्छया विष्णुरवतारानेकशः।।
मन्दो पि दुःखगहने गर्भवासे ति संकटे।
न करोति मतिं विद्वान् कथं कुर्यात्स चक्रभृत्।।
कौशल्या देवकी गर्भे विष्ठामलसमाकुले।
स्वेच्छया प्रवदन्त्यधः गतो हि मधुसूदनः।।
बैकुण्ठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम्।
चिन्ता कोटि समुत्थाने दुःखदे विषसंमिते।।

(दे० भा० ५।१।४७।५०)

माया से मोहित मूर्ख लोग कहते हैं कि विष्णु स्वेच्छा से अवतार धारण करता है। परन्तु जब मूर्ख मनुष्य भी दुःखदाई गर्भ में नहीं रहना चाहता तो चक्रधारी विष्णु इस प्रकार की इच्छा कैसे कर सकता है कि वह स्वेच्छा से विष्ठा–मल से पूर्ण कौशल्या अथवा देवकी के गर्भ में जाकर रहे। बैकुण्ठ के आनन्द को छोड़कर करोड़ों चिन्ताओं एवं दुःखों को देने वाले गर्भवास में सुख ही क्या ?

वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद की मिथ्या कल्पना का लेश भी नहीं। प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर सर्वत्र ही राम को एक महामानव के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(३)

श्रीविचार-दोहन

समीक्षा खण्ड

अवतारवाद मीमांसा

अवतार शब्द 'अव' उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से निष्पन्न होता है, अवतार का अर्थ होता है उतरना। अवतार शब्द का प्रयोग सर्वव्यापक परमात्मा में नहीं घट सकता। उतर तो वह सकता है जो एक देशी हो, कहीं स्थान विशेष पर, सिहांसन पर बैठा हो। उतर वही सकता है जो ऊपर हो, नीचे न हो। जो सर्वत्र व्यापक है, अणु–अणु और कण–कण में विद्यमान है, वह किस स्थान से किस स्थान पर उतरेगा ? अतः उसका अवतार कैसा?

यहाँ हम प्रथम वेद, तत्पश्चात् उपनिषद्–दर्शन तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर अवतारवाद की इस अमूलक कल्पना के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि नारद ने प्रारम्भ इस श्लोक से किया है–

बहवो दुर्लभाश्चैव, ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा, तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।।

अर्थात् जो बहुत से और दुर्लभ गुण तुमने गिनाये हैं, मुने! उनसे युक्त मनुष्य के विषय में विचार कर तुम्हें बताता हूँ, सुनो! इसके बाद श्रीराम के गुणों का वर्णन किया गया है। जिस बात की ओर हम पाठक महानुभावों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं, वह वाल्मीकि और नारद के प्रश्नोत्तर में 'नर' शब्द का प्रयोग है। न तो वाल्मीकि मुनि ने ईश्वर विषयक् प्रश्न किया और न महर्षि नारद ने ईश्वर वा ईश्वरावतार विषयक् उत्तर दिया। अतः यह स्पष्ट है कि रामायणकार श्रीराम को पुरुषोत्तम ही मानते थे।

'स्वर्यस्य च केवलम्' इत्यादि द्वारा ईश्वर को वेदादि सत्शास्त्रों एवं दर्शनों में पूर्ण आनन्दमय

बताया गया है। श्रीराम को जो अनेक कष्ट उठाने पड़े, पिता और पत्नी का वियोगादि हुआ और उनको इनके कारण जो शोक हुआ उसे अवतारवादी मानव–लीला कहकर टालने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु वाल्मीकि रामायण अरण्यकांण्ड सर्ग ६३ में श्रीराम की निम्न उक्ति इस विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं–

स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नम्, शोके निमग्नो विपुले तु रामः।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपम्,उष्णं विनिःश्वस्य रुदन् सशोकम्।।२
न मद्विधोदुष्कृतकर्मकारी, मन्ये द्वितीयो स्तिवसुन्धरायाम्।
शोकानुशोको हि परम्परायाः, मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च।।३
पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि, पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको, दुःखेन दुःखं यदहं विशामि।।४
राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः, पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगम्, आपूरयन्ति प्रविचिन्तितानि।।५

अर्थात् अत्यधिक शोक में मग्न श्रीराम ने शोक के साथ रोते हुए और गर्म श्वाँस लेते हुए शोकातुर लक्ष्मण को ये वचन कहे– 'मैं समझता हूँ कि पृथ्वी में मेरे समान कोई बुरे कर्मों का करने वाला नहीं है क्योंकि शोक की परम्परा मेरे मन और हृदय का भेदन करती हुई बार–२ मुझे प्राप्त हो रही है। पहले मैंने अनेक पाप कर्म किये थे, उन्हीं का यह फल मुझे दुःख पर दुःख प्राप्त हो रहा है। राज्य का नाश, स्वजनों से वियोग,पिता की मृत्यु, माता से वियोग ये सब मेरे शोक को बढ़ाते जा रहे हैं, इत्यादि।' इन श्लोकों पर निष्पक्ष भाव से विचार करने पर कोई भी इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि ईश्वर के जो लक्षण वेदशास्त्रानुसार योगसूत्र में बताये गये हैं, श्रीराम में वे सर्वथा नहीं घटते। क्लेश, पापकर्म उनके फल के रूप में शोक और कष्ट इन सबको श्रीराम ने इन श्लोकों द्वारा स्वयम् स्वीकार किया है। ये सब ईश्वर के लक्षणों से विपरीत बातें हैं। शोक, विलाप करना, सीता देवी के वियोग में उन्मत्तों की तरह वृक्ष, वनस्पतियों, लताओं, पक्षियों मृगादि से प्रश्न करना ये सब बातें मनुष्य रूप में तो स्वाभाविक हो सकती हैं, किन्तु ईश्वर के लक्षणों के साथ इनकी कोई संगति नहीं लग सकती।

विराध द्वारा सीता के उठा लिये जाने के प्रसंग में भी श्रीराम का मानव सुलभ हृदय शोक से उबल पड़ता है। वे यहाँ तक कह बैठते हैं कि आज कैकेयी का मनचीता हो गया जिसके लिये उसने हमें वनवास दिया था।

वाल्मीकि रामायण युद्ध काण्ड सर्ग १०१ के अनुसार जब लक्ष्मण जी युद्ध में मूर्छित हो गए तो उनको मरा हुआ समझकर श्रीराम ने कहा–

किं मया दुष्कृतं कर्मं, कृतमन्यत्र जन्मनि।
येन मे धार्मिको भ्राता, निहतश्चाग्रतः स्थितः।।

– युद्ध० श्लो० १०१।१६

अर्थात् मैंने पिछले जन्म में कौन–सा पाप कर्म किया था जिससे मेरा धार्मिक भ्राता मेरे आगे मरा पड़ा है।

वास्तव में लक्ष्मण जी मरे नहीं थे मूर्छितावस्था में पड़े थे। जैसे ही सुषेण वैद्य ने श्रीराम के भ्रम को दूर करते हुए उन्हें स्पष्ट बताया–

त्यजेमां नर शार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम्।
नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।।

– युद्ध० श्लो १०१।२४

अर्थात् हे मनुष्यों में सिंह समान! आप इस व्याकुल बनाने वाली बुद्धि का परित्याग कर दें। लक्ष्मण जी मरे नहीं हैं। 'नरशार्दूल' सम्बोधन से ही स्पष्ट है कि श्रीराम को सुषेण वैद्य तथा अन्य उनके सहयोगी मनुष्य ही समझते थे, ईश्वर नहीं।

हनुमान् जी ने जो श्रीराम के परमभक्त थे और जिन्हें तुलसी रामायण में श्रीराम को साक्षात् ईश्वर मानने वाला बताया गया है, रावण के सम्मुख श्रीराम को मनुष्य ही कहा है। उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड सर्ग ५१ श्लोक २७ में हनुमान् जी की निम्न उक्ति पाई जाती है–

सुग्रीवो न च देवो यं, न यक्षो न च राक्षसः।
मानुषो राघवो राजन्, सुग्रीवश्च हरीश्वरः।।

– वा० रा०५।५१।२७

अर्थात् सुग्रीव कोई देव, यक्ष या राक्षस नहीं वह वानर जाति का सेनापति है और श्रीराम जी मनुष्य हैं।

न केवल श्रीराम के सब सहयोगी उन्हें मनुष्य समझते थे, अपितु वे स्वयं भी अपने को मनुष्य ही समझते थे न कि ईश्वरावतार, यह बात वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त भाग से भी स्पष्ट सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ सीता–परीक्षा के समय वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड के सर्ग ११७ में वर्णन आता है कि जब ब्रह्मा जी ने श्रीराम को–

कर्त्ता सर्वस्य लोकस्य, श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभु।
उपेक्षसे कथं सीतां, पतन्तीं हव्यवाहने।।
कथं देव गण श्रेष्ठम्, आत्मानं नावबुध्यसे।।६

–इत्यादि श्लोकों द्वारा संसार के कर्त्ता, सर्व व्यापक सर्वज्ञ के रूप में स्तुति की तो श्रीराम जी ने आश्चर्य के साथ कहा–

आत्मानं मानुषं मन्ये, रामं दशरथात्मजम्।
सो हं यश्च यतश्चाहं, भगवांस्तद् ब्रवीतु मे।।११

अर्थात् मैं तो अपने को महाराज दशरथजी का पुत्र राम नामक मनुष्य ही समझता हूँ, वास्तव में मैं जो कुछ हूँ वह मुझे आप बतायें।

यह सर्ग श्रीराम को साक्षात् जगत्कर्ता परमेश्वर सिद्ध करने के लिए पीछे से गढ़ा गया है तो भी श्रीराम की अपनी उक्ति से स्पष्ट है कि वे अपने को मनुष्य ही समझते थे, ईश्वर नहीं।

उत्तर काण्ड के सर्ग ३७ के पश्चात् जिन ५ सर्गों के विषय में सुप्रसिद्ध तिलक टीका में लिखा है कि वे प्रक्षिप्त सर्ग हैं, वहाँ पञ्चम प्रक्षिप्त सर्ग में ऊपर लिखे श्लोकों के समान ही श्लोक आये हैं जिनमे नारद द्वारा श्रीराम को कहा गया है कि–

भगवान् नारायणो देव, शंखचक्रगदाधरः।
शार्ङ्गपद्मायुधो वज्रो सर्वदेवनमस्कृतः।।
वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनम्।
किं न वेत्सि त्वमात्मानं, यथा नारायणो ह्यहं।।

अर्थात् आप साक्षात् सब देवो से नमस्कृत विष्णु भगवान् हैं जो रावण के वध के लिए मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए हैं। आप क्यों अपने को नहीं जानते कि मैं नारायण विष्णु हूँ। धन्य हैं वे परमेश्वर! जो अपने स्वरूप को भूले हुए हैं। ब्रह्मा नारदादि को यह बताने की आवश्यकता होती है कि वे साक्षात् विष्णु हैं। उत्तरकाण्ड के इन ५ सर्गों के अन्त में ऊपर उद्धृत–श्लोक भी हैं। तिलक टीका रामायण में स्पष्ट लिखा है–

इत्यार्षे श्रीमद् वाल्मीकीयरामायणे।
आदिकाव्य उत्तरकाण्डे प्रक्षिप्तः सर्गः।।

श्रीराम अपने को मनुष्य ही समझते थे, यह वाल्मीकीय रामायण के निम्न श्लोकों से भी स्पष्ट ज्ञात होता है जहाँ रावण वध के पश्चात् सीता देवी को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं–

या त्वं विरहिता सीता चलचित्तेन रक्षसा।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः।।

– वा० रा० ६ ।११५ ।५

यत्कर्तव्यं मनुष्येण, धर्माणां प्रतिमार्जिता।
तत्कृतं रावणं हत्वा, मयेदं मानकांक्षिणा।।

– वा० रा०६ ।११५ ।१३

अर्थात् तुझे जो चंचल चित्त वाले राक्षस रावण ने मुझसे वियुक्त कर दिया था, दैव सम्पादित उस दोष को मुझ मनुष्य ने जीत लिया वा दूर कर दिया। तिलक टीका में यहाँ मानुष्येण का अर्थ 'मनुष्य साध्य पराक्रमेण' ऐसा किया गया है। अर्थात् मनुष्यों द्वारा साध्य पराक्रम के द्वारा मैंने उस दैवकृत दोष को दूर कर दिया। इससे श्रीराम अपने को मनुष्य ही समझते थे, यह स्पष्ट है। श्लोक १३ में तो यह बात और स्पष्ट रूप में श्रीराम ने कही है कि मनुष्य को अपने अपमान का बदला लेने के लिए जो कुछ करना चाहिए, मैंने अपने मान की इच्छा से रावण को मारकर वही काम किया है।

इस प्रसंग में राम ने न केवल अपने को मनुष्य ही कहा है बल्कि यह भी कहा है कि युद्ध में विजय उन्हें अपनी दैवीशक्ति से नहीं अपितु मित्रों की सहायता से प्राप्त हुई।

विदितश्चास्तु भद्रं ते, यो यं रणपरिश्रमः।
सुतीर्णं सुहृदां वीर्याद्, न त्वदर्थं मया कृतः।। ६।११५।१५

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के इन तथा अन्य अनेक श्लोकों से श्रीराम मनुष्य ही थे, न कि ईश्वर यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है। जिस प्रकार श्रीराम के माँसभक्षण, शम्बूकवध, आदर्श पतिव्रता सीता देवी के परित्याग आदि विषयक् श्लोक वाल्मीकि रामायण में पीछे से मिला दिये गये, वैसे ही मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को साक्षात् विष्णु का अवतार सिद्ध करने वाले श्लोक भी कहीं–कहीं मिला दिये गये किन्तु विवेकपूर्वक रामायण का अनुशीलन करने पर उनकी प्रक्षिप्तता स्पष्ट ज्ञात हो जाती है।

तुलसी रामायण में

तुलसी रामायण में तुलसीदास ने श्रीराम को ईश्वर अवतार के रूप में वर्णित किया है। पर स्वयं श्रीराम अपने को मनुष्य ही मानते हैं। यह सत्य अवतार लीला के घटाटोप के बीच से भी सूर्य किरणों की भाँति जहाँ–तहाँ स्पष्ट झलक आता है।

श्रीराम सुग्रीव से मिलने के लिए ऋष्यमूक पर्वत पर जा रहे हैं। हनुमान् यह जानने के लिए कि ये कौन हैं, उनके पास आते हैं और उनसे पूछते हैं –

को तुम श्यामल गौर शरीरा। छत्री रूप फिरहु वन वीरा।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु विचरहु वन स्वामी।।
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह वन आतप बाता।।
की तुम तीनि देव महँ कोऊ। नर-नारायण की तुम्ह दोऊ।।

जग कारन तारन भव, भंजन धरणी भार।
की तुम अखिल भुवनपति, लीन मनुज अवतार।।

श्री राम ने उत्तर देते हुए कहा –

कोसलेस दशरथ के जाए। हम पितु वचन मानि वन आए।।
नाम राम लछिमन दोऊ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
यहाँ हरी निसिचर वैदेही। खोजत विप्र फिरहिं हम तेही।।

यहाँ श्रीराम ने अपने को अवतार न बताकर दशरथ का पुत्र बताया है। अन्य अनेक प्रसंगों में भी श्रीराम स्वयं को मनुष्य और दशरथ–पुत्र कहते हैं।

विचार कीजिए

अवतारवाद का सिद्धान्त तर्क की कसौटी पर ठहर नहीं सकता। इस सम्बन्ध में कतिपय बिन्दुओं पर विचार कीजिए –

(१) सतयुग में धर्म (पौराणिकों के अनुसार) चार टाँगों पर टिका होता है, तब चार अवतार हुए त्रेता में तीन अवतार हुए। द्वापर में दो अवतार हुए और कलियुग में जब धर्म का एक ही चरण शेष है एक भी अवतार नहीं हुआ ऐसा क्यों ? धर्म की हानि तो इस समय अधिक हो रही है। अतः अब कलियुग में सबसे अधिक अवतार होने चाहिए। जबकि सतयुग में एक भी अवतार की आवश्यकता नहीं थी। इस विचित्र विडम्बना और उलटे क्रम पर ध्यान दीजिए।

आज भारत की दशा सभी समयों से गई बीती है। आज मिथ्याचार, पापाचार, अनाचार, पाखण्ड दिन–प्रतिदिन बढ रहा है। देश पर शत्रुओं के आक्रमण हो रहे हैं। भारत के माथे की बिन्दी कश्मीर को मिटाने के कुचक्र चल रहे हैं। ब्राह्मणों की आज यह दुर्गति है कि वे बूटों पर पालिश करते हैं। पुराण में अवतार लेने से पहले कही भी गौवध का वर्णन नहीं आता, परन्तु आज राम और कृष्ण के देश में सूर्योदय होने से पूर्व बम्बई और कलकत्ता में सहस्रों गौओं के गले पर आरा चला दिया जाता है। पौराणिक लोग कहते है कि श्रीकृष्ण ने द्रोपदी का चीर बढा दिया था परन्तु आज लाखों द्रोपदियों के चीरों का हरण हो रहा है। आज पुत्रियों, बहिनों और पुत्र–वधुओं के साथ व्यभिचार करने वाले नीचों की कमी नहीं है, फिर ईश्वर अवतार क्यों नहीं लेता ?

सन् १९४७ में भारत के टुकड़े हो गये। उस समय साम्प्रदायिक दंगे हुए। प्रत्यक्षदर्शी लोगों का कहना है कि दुधमुँहे मासूम बच्चों को बेसन लगाकर तेल के कड़ाहों में छोंका गया। भोले–भाले बच्चों को आकाश में उछालकर भालों की नौंक पर टाँगा गया। युवतियों को नग्न करके बाजारों में उनके जलूस निकाले गये, उनके स्तनों को काटा गया। मैं पूछना चाहता हूँ अवतार के पोषकों से कि उस समय आपका अवतार कहाँ छिपा बैठा रहा ? इससे बढ़कर पाप और क्या हो सकता है। इतना पाप, अनाचार और अत्याचार तो द्वापर में भी नहीं हुआ था तब तीन–तीन अवतार हुए और इस समय एक भी अवतार नहीं हुआ। अतः अवतारवाद ढकोसला है, पाखण्ड है, अवैदिक और तर्कशून्य है।

पूर्वी पाकिस्तान में जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है। वहाँ से हजारों, लाखों बूढे स्त्री–पुरुष भारत आये। युवतियों को बेचने के लिए जहाजों में भर–भरकर अरब भेजा गया। भारत की ललनाओ का ऐसा भीषण अपमान तो पहले कभी हुआ नहीं था, फिर इस समय ईश्वर–अवतार क्यों नहीं लेता?

(२) ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तीनों अवतार एक ही समय हुए। कृष्ण, बलराम, व्यास और अर्जुन ये चारों एक ही समय में उत्पन्न हुए। राम और परुशराम भी एक ही समय में हुए। इतना ही नहीं ये अवतार एक दूसरे को पहचान भी न सके। परिणामस्वरूप राम और परशुराम का युद्ध हुआ। विष्णु और शिव तथा ब्रह्मा और शिव के युद्ध भी प्रसिद्ध हैं।

(३) श्रीकृष्ण को १६ कलापूर्ण अवतार माना जाता है, अन्य अवतारों कोई दो कोई चार कला का था तो कोई आठ का और कोई बारह का। भागवत में कहा है –

एते चांशकलाः पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। (भा० १।३।३८)

ये सब अवतार तो पुरुष के अंश हैं, परन्तु कृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतार परमात्मा नहीं हैं। इसके विपरीत गीता (१५।७) में कहा है –

'ममैवांशोजीवलोके जीवभूत सनातनः।।'

इस संसार में जो सनातन जीव हैं वह निश्चय करके ईश्वर के ही अंश हैं। इस प्रमाण से सभी प्राणी अवतार सिद्ध हो गये।

अंश में तथा सम्पूर्ण में क्या भेद है ? क्या श्रीकृष्ण में सम्पूर्ण परमात्मा आ गया था और रामादि में ईश्वर का टुकड़ा था। जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह एकदेशी होकर श्रीकृष्ण में कैसे प्रविष्ट हो गया और अखण्ड परमात्मा खंड रूप होकर राम के शरीर में कैसे आ गया ? अतः अंशावतार या पूर्णावतार को सिद्ध करना असम्भव है।

(४) श्रीराम वन में चले गये तो अयोध्या खाली हो गई और जब अयोध्या में थे तो वन में नहीं थे। जब लंका में थे तो वन में नहीं थे और वन में थे तब लंका में नहीं थे। अतः ऐसा एक देशी व्यक्ति ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर तो सर्वत्र व्यापक है।

इस युक्ति के उत्तर में पौराणिक कहा करते हैं कि जैसे अग्नि एक स्थान पर प्रकट होकर भी दूसरे स्थान पर विद्यमान रहती है, इसी प्रकार परमात्मा एक स्थान पर विशेष रूप से प्रकट होता है परन्तु रहता तो वह सर्वत्र है।

यह दृष्टान्त विषम है। अग्नि तो साकार पदार्थ है। वह कहीं प्रकट और कहीं तिरोहित है परन्तु परमात्मा तो सदा एकरस रहता है उसमें अग्नि की भाँति प्रकट होना या तिरोहित होना नहीं घटता।

(५) पौराणिकों के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त कोई और पदार्थ नहीं है, सम्पूर्ण संसार ब्रह्म है, ऐसी स्थिति में अवतार किसका और किसके लिए। राम भी ब्रह्म और रावण भी, कृष्ण भी ब्रह्म और कंस भी, चींटी भी ब्रह्म और हाथी भी।

प्रश्न- यदि ईश्वर अवतार धारण न करे तो रावण और कंस आदि का नाश कैसे हो सकता है?

उत्तर- इस युक्ति पर हंसी आती है। हम सब जानते हैं कि किसी भी वस्तु को बनाना नाश करने की अपेक्षा कठिन होता है। जो ईश्वर बिना शरीर धारण कर कंस और हिरण्यकश्यप का निर्माण कर सकता है, वह बिना शरीर धारण किये उन्हें नष्ट क्यों नहीं कर सकता ? इस विषय में महर्षि दयानन्द ने कितना सुन्दर लिखा है–

'जो ईश्वर अवतार धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, करता है उसके आगे कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं है। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिये जन्म मरण युक्त कहने वाले की मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? (सत्यार्थ प्रकाश सप्तम् समुल्लास)

वेदों में अवतार विधायक मन्त्रों की भ्रान्ति

अवतार के पोषक किन्हीं मन्त्रों में राम–कृष्ण आदि शब्द देखकर उनसे अवतार की सिद्धि किया करते हैं। यहाँ हम पूर्व पक्ष के मंत्रों को उदधृत कर उनका उत्तर देंगे–

पूर्व०–वेद के निम्न मन्त्र में वाराह अवतार का वर्णन है–

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपास्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराया विजिहीते मृगाय।।

– अथर्व० १२।१।४८

अर्थात् वाराह रूप धारी प्रजापति ने इस पृथिवी का उद्धार किया।

उत्तर- इस मन्त्र में वराह और पृथिवी पद आने से अवतारवाद की सिद्धि नहीं हो सकती। वैदिक साहित्य में 'वराह' पद मेघ के लिए भी प्रयुक्त होता है। देखो निघण्टु १।१० मन्त्र का सत्यार्थ इस प्रकार होगा–

(मल्वम्) तुच्छ और (गुरुभृद्) भारी पदार्थ को (बिभ्रती) धारण करने वाली तथा (भद्रपापस्य) धर्मात्मा और पापी मनुष्य के (निधनं) मरण को (तितिक्षुः) सहन करने वाली (पृथिवी) भूमि (वराहेण) उत्तम जल देने वाले मेघ के साथ (संविदाना) अच्छी प्रकार मिली हुई वर्षा–जल से युक्त होकर (मृगाय) सब पदार्थों के शोधक (सूकराय) सूर्य के चारों ओर (विजीहिते) विशेष रूप से गमन करती है।

वायु पुराण ६।१२ के अनुसार यह वराह **'दशयोजनविस्तीर्ण शतयोजनमुच्छितम्।'** दस योजन विस्तीर्ण और सौ योजन ऊँचा था। अतः यह पशु नहीं मेघ ही हो सकता है।

पूर्व०–निम्न मन्त्र में वामन अवतार का स्पष्ट वर्णन है कि विष्णु ने संसार को तीन पैर से नाप लिया।

इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पाँसुरे स्वाहा।। (यजु०५।१५)

उत्तर- महर्षि यास्क ने इस मन्त्र का अर्थ सूर्यपरक किया है और शतपथ ब्राह्मण में इस मंत्र का अर्थ यज्ञपरक है। विष्णु का अर्थ सर्वव्यापक परमात्मा भी होता है। इस मन्त्र में अवतार की गन्ध भी नहीं है। ठीक अर्थ इस प्रकार है–

'परम पिता परमात्मा ने इस जगत् का निर्माण किया है। उत्तम, मध्यम और अधम तीन गतियों की उसने संसार में स्थापना की है। वे सब गतियाँ उनमें छिपी हुई हैं। त्रिविध गतियों के नियामक प्रभु के लिए मैं अपने को समर्पित करता हूँ।

पूर्व०–निम्न मन्त्र में राम और कृष्ण के अवतार का स्पष्ट वर्णन है–

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नी च।
इदं रजनी रजय किलासं पलितं च यत्।।

— अथर्व० १।२३।१

उत्तर- इस मन्त्र में राम और कृष्ण औषधियों के नाम हैं, किसी व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं। मन्त्र का ठीक अर्थ निम्न है–

'हे राम, कृष्ण और असिता नाम वाली औषधि! तू रात्रि में बढ़ने वाली है। हे रंगने वाली औषधि! तू श्वेत कुष्ठ और श्वेत केशपन का जो रोग है, उसे रंग दे।'

पाठकगण! इस प्रकार के और भी अनेक मन्त्र हैं। जिन से पौराणिक लोग ईश्वर–अवतार की सिद्धि किया करते हैं। यहाँ स्थान नहीं कि उन सबको उद्धृत करके उनका सत्यार्थ दर्शाया जाय। अन्त में पूर्वपक्षियों से एक बात हम अवश्य कहना चाहेंगे कि वे केवल राम, कृष्ण, वराह आदि पदों को देखकर ही वेद मंत्रों में अवतार की कल्पना न कर लिया करें अन्यथा अवतारों की संख्या सीमातीत हो जायेगी। इतना ही नहीं ईसा और कबीर आदि भी अवतार सिद्ध हो जायेंगे। आप उत्सुक होंगे कि यह कैसे? अवलोकन कीजिए –

ईशावास्यमिदं सर्वम् (यजु० ४०।१) में ईशा शब्द पड़ा हुआ है, अतः ईसा पौराणिकों के अवतार सिद्ध हो गये। सत्यार्थ ईश्वर है।

मर्यं न योषा (ऋ०१०।४।२) इस मंत्र में मर्यम और योषा (यीषु) दोनों का नाम आता है। ठीक अर्थ मनुष्य व स्त्री है।

नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः (यजु० २५।१६) में जैनियों के तीर्थंकर नेमिनाथ का वर्णन है। सत्य अर्थ अखण्ड, अटूट है।

कविर्मनीषी (यजु०४०।८) के अनुसार कबीरजी भी अवतार हो गये। शब्दार्थ क्रान्तिदर्शी और मन को गति देने वाला है।

शतमदीना (यजु० ३६।२४) में मयंक मदीना का वर्णन है। शब्दार्थ सौ वर्ष तक अदीन के हैं। अनिल नाम के सभी व्यक्ति तब 'वायुः अनिलम्' (यजु०४०।१५) से अवतार हो जायेंगे।

सिद्ध है कि अवतारवाद का सिद्धान्त अवैदिक, तर्कशून्य और अकर्मण्यता का प्रसारक है। अतः इसे जितनी शीघ्र तिलाञ्जलि दी जाये उतना ही श्रेष्ठ है।

(श्री पं० जगदीशचन्द्रजी 'विद्यार्थी' के लेख से साभार)

अवतारवाद या सर्वनाश

प्रश्न- यह ठीक है कि राम एक आदर्श पुरुष एवं महामानव थे। पर यदि उन्हें ईश्वरावतार ही मान लिया जाये तो इसमें क्या हानि है, कम से कम श्रीराम का तो इससे गौरव बढ़ता ही है ?

उत्तर- राम–कृष्ण आदि अपने महापुरुषों को ईश्वर बताने या मानने में एक नहीं अनेकों हानियाँ हैं और ऐसी भयंकर हानियाँ हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। रही राम–कृष्णादि को ईश्वर बनाने में उनकी गौरव–वृद्धि की बात सो यह एक विचित्र भ्रान्ति मात्र है।

याद रखिये, महात्मा बुद्ध का गौरव उन्हीं के अनुयायियों द्वारा उस दिन खत्म करने की कोशिश की गई जिस दिन बुद्ध को ईश्वर की जगह पर बिठला कर उनकी मूर्ति की पूजा आरम्भ की गई और इस तरह जब बुद्ध के चरित्र की पूजा की जगह उनके चित्र की पूजा शुरू हुई। ठीक इसी तरह श्रीराम और श्रीकृष्ण का गौरव उस दिन मिटाने का प्रयत्न किया गया जिस दिन बौद्धों की नकल करते हुए उन्हें ईश्वरत्व की चादर ओढ़ा दी गई। यद्यपि सत्य सिद्धान्तों की अवमानना स्वयं सबसे बड़ी हानि है। पर हम इस प्रकरण में अवतारवाद की दार्शनिक और सैद्धान्तिक कमजोरियों की चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ तो हमें यह देखना है कि किस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को ईश्वर बनाकर जहाँ हमने उनकी महानता को मिटाने का अपराध किया, वहीं अपने सामाजिक और चारित्रिक पतन का रास्ता भी हमने तैयार कर लिया, जिसके परिणाम में हजारों साल की लम्बी गुलामी का कुफल भोगना पड़ा।

महापुरुषों के गौरव की समाप्ति

जब हम यह कहते हैं कि श्रीराम को ईश्वर बना कर हमने उनके गौरव को मिटाया है तो पहली बार सुनने में यह बात आपको अजीब सी लगेगी। पर है यह सही। आप जरा विचारिये कि श्रीराम का महत्व, उनका महान् गौरव उनके महान् चरित्र और आदर्श जीवन में है। हम बड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि हमारी वैदिक संस्कृति ने ही श्रीराम जैसी महान् विभूतियाँ संसार को दीं। पर क्या उन्हें ईश्वर बनाकर भी हमारा यह स्वाभिमानयुक्त गौरव शेष रहेगा ?

राज्याभिषेक की पहली रात्रि। राम सोने लगे हैं। विचार आता है कि अन्य भाइयों को छोड़कर मुझे ही अयोध्या का यह चक्रवर्ती राज्य क्यों दिया जा रहा है ? क्या यह उचित है ? और इसी विचार को करते–करते वे सो जाते हैं। उन्हें ज्ञात है कि प्रातः होते'–होते उन्हें अयोध्या का विशाल राज्य मिलना है। पर आप जानते हैं रात्रि में ही नक्शा बदल जाता है और उसके अनुसार श्रीराम को दूसरे

दिन जागने पर आदेश मिलता है–'तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी।।' पर वाह रे आर्योत्तम राम! धर्म–धुरीण राम!! मर्यादा पुरुषोत्तम राम!!! न उसे राज्य मिलने के विचार से कोई खुशी थी और न अब जंगलों की भयानक राह के राही बनने के समाचार से कोई विषाद है। यह महापुरुष राम के जीवन का कैसा गौरवशाली चित्र है, इसमें कितनी चमक है। पर जरा इसी चित्र पर ईश्वरत्व की तूलिका फेर दीजिए, आप देखेंगे न सिर्फ चित्र की चमक ही खत्म हुई है, श्रीराम का चेहरा ही गायब हो गया है, उनका अस्तित्व ही मिट गया है। आप हैरान मत हूजिए। बात बिल्कुल साफ है। राम यदि ईश्वर है और उसको राजगद्दी से खुशी नहीं हुई और जंगल जाने से दुःख नहीं हुआ तो इसमें गौरव की कौन सी बात है ? भाई, ईश्वर राम के लिए तो जैसा घर वैसा ही बाहर। जैसा ही राजमहल वैसा ही वनवास। इसमें विशेषता की क्या बात है ? देखा आपने श्रीराम को ईश्वर बनाते ही उनके चरित्र की सारी विशेषता समाप्त हो जाती है। अब आप श्रीराम–जीवन के महत्वपूर्ण चित्रों को एक–एक करके सामने लाइये। आप देखेंगे जब तक श्रीराम आर्य जाति के एक महान् रत्न, एक सर्वोपरि आदर्श महापुरुष के रूप में हैं (जो कि उनका वास्तविक रूप है), इन चित्रों में कितनी चमक है, श्रीराम का मुखमण्डल आर्योचित तेज से कैसा दीप्तिमान है। पर जहाँ आपने उन्हें ईश्वर बनाया नहीं कि–भरत के आग्रह पर भी अयोध्या का राज्य स्वीकार न करने वाले श्रीराम के अनुपम त्याग, शबरी के आश्रम को पवित्र करने वाले पतित पावन राम, विभीषण के आते ही उसे–'लंकेश' कहकर पुकारने वाले शरणागतवत्सल राम और यदि रावण शरण में आजाये तो उसे अयोध्या का राज्य देने की भावना रखने वाले महान् अपरिग्रही राम तथा जंगल में नितान्त साधनहीन होने पर अयोध्या से भरत की कोई सहायता न लेकर वानरराष्ट्र और राक्षसराष्ट्र की संधि को खत्म कराके वानरराष्ट्र को अपनी ओर मिलाकर राक्षसराष्ट्र को धराशायी करने वाले राजनीति विशारद राष्ट्रपुरुष राम के महान् जीवन के ये सारे गौरवमय चित्र कितने बेजान और अर्थ–शून्य हो जाते हैं। आखिर ईश्वर राम ने यह सब कुछ किया तो इसमें क्या बात हुई ? हाथी ने चींटी को कुचल दिया यह कोई बखान करने वाली बात है! इसके बखान से तो हाथी का अपयश ही होगा। राम का 'रामत्व' राम की वे विशेषतायें जिसके कारण राम 'राम हैं, तभी तक रहती हैं जब तक वे एक महापुरुष, राष्ट्र–पुरुष, जन–नायक, लोकनायक या युगपुरुष रहते हैं। राम में देवत्व का आरोपण करते ही उनके चारित्रिक गौरव का महल धड़ाम से गिर पड़ता है। उसके नीचे ऐतिहासिक सत्य, सामाजिक चेतना, अतीत का गौरव और युग–निर्माण के सभी उज्ज्वल दृश्य भी दबकर नष्ट हो जाते हैं। तो महापुरुषों के महान् जीवन और कार्यो से हम प्रेरणा लेते हैं, स्फूर्ति लेते हैं और प्रकाश प्राप्त करते हैं जिससे हम भी अपने जीवनों को प्रकाशमय और प्रेरणाप्रद बना सकें।

ऐतिहासिक सत्य का लोप

प्रश्न- अवतारवाद की मान्यता से ऐतिहासिक सत्य का लोप कैसे हो जाता है ?

उत्तर- महापुरुषों को अवतार सिद्ध करने के लिये चमत्कारवाद का आश्रय लिया जाता है। उनके जीवन की सहज, सरल घटनाओं को ऐसा रंग दिया जाता है जिससे वे अमानवीय प्रतीत हों।

सीता की माता का नाम 'धरणी' था। इसी को एक रंग दे दिया गया और सीता के जन्म की एक कथा गढ़ ली गई। कहा गया कि सीता का जन्म धरणी (स्त्री) से नहीं धरणी (पृथ्वी) से हुआ और सीता की इहलीला की समाप्ति के लिये भी पृथ्वी के फट जाने की कहानी तैयार की गई। अहल्या को शिला (पत्थर) बना दिया गया, हनुमान् और सुग्रीव को पूँछ वाला बन्दर और रावणादि राक्षसों को अति वीभत्स बना दिया गया। राम–जन्म की घटना के पीछे कई अनोखी बुद्धिशून्य और परस्पर विरोधी कथायें गढ़ ली गईं। राम–केवट सम्वाद जैसे हास्यास्पद प्रसंग तैयार किये गये।

सागर (जल–समूह) को हाथ जोडकर खडा किया गया, हनुमान् ने इस धरती से तेरह लाख गुने बडे सूरज को गाल मे दबा लिया, राम का एक साथ ही हजारों लोगों से मिल लेना आदि अनेकों चमत्कारों की रचना अवतार सिद्धि के लिये ही की गई। इसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि राम का यशस्वी जीवन इतिहास से मिट रहा है। हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। यहाँ भी हुई। आज हम सुन रहे हैं कि राम और उनका पावन वृत्त ऐतिहासिक सचाई नहीं कवि–कल्पना की उपज है। यह इन चमत्कारो का नतीजा है। किसी ऐतिहासिक पात्र का जमीन से पैदा होना, पैर छूते ही पत्थर का स्त्री बन जाना कैसे सम्भव है ? यह कैसे सम्भव है कि इसी धरती का एक क्षुद्र प्राणी इस धरती से सहस्रों गुने बडे सूरज को गाल में दबा ले ? इन सब अतिवृत्तों को रामायण में जोडने से पाश्चात्य विद्वानों और उन्ही की विद्वत्ता के कायल भारतीय महानुभावों की दृष्टि में रामायण जैसा महनीय ऐतिहासिक ग्रन्थ कल्पना प्रधान काव्य–ग्रन्थ मात्र रह गया है। क्या यह हमारे गौरवमय अतीत के साथ एक घोर दुर्भाग्यपूर्ण खिलवाड नहीं है ? ऐतिहासिक, सत्य की यह निर्मम हत्या सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक अभिशाप, है जिसका मूल है 'अवतारवाद' की मिथ्या और विनाशकारी कल्पना।

जातीय गौरव का ह्रास

प्रश्न- रामायण एक इतिहास ग्रन्थ नहीं है, ऐसा मानने में और विशेष हानि क्या है ?

उत्तर- आप शायद इससे उत्पन्न समस्या की गहराई तक नहीं पहुंचे। राम को अनैतिहासिक मानकर 'राम हमारे पूर्वज हैं', यह गौरवमयी स्थिति समाप्त हो जाती है। हम बड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि हमारी वैदिक संस्कृति ने राम जैसे महापुरुष, सीता जैसी देवियाँ, लक्ष्मण और भरत जैसे आदर्श भाई, कौशल्या जैसी मातायें, हनुमान् जैसे आदर्श सेवक संसार को दिये। पर क्या अवतारवाद के पाप के प्रतिफल से इन्हें अनैतिहासिक मान लिये जाने पर हमारा यह सांस्कृतिक और जातीय गौरव शेष रह सकेगा ?

यों महापुरुष किसी भी देश–विशेष की सम्पत्ति नहीं होते। उनका जीवन सार्वजनिक होता है। फिर भी वे किन्हीं विशिष्ट सांस्कृतिक आदर्शों और विशिष्ट जातीय गौरव के प्रतीक होते हैं। पर ईश्वर के लिए यह बात नहीं है। यदि राम ईश्वर हैं तो 'वे भारतीय संस्कृति की महान् देन है' ऐसा कहने, सोचने, समझने और उससे गौरवान्वित होने का अवकाश ही कैसे रह जाता है ?

प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है

इसी प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि आखिर किसी महापुरुष का लाभ उसके देशवासियों तथा सर्वसाधारण के लिए क्या है ? महापुरुषों की जयन्तियाँ हम क्यों मनाते हैं ?

इसीलिए न कि आगे आने वाली पीढ़ियां उन महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलकर उन्नत हो सकें।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि 'लांगफैलो' की प्रसिद्ध कविता 'सम आफ लाइफ' की निम्न पंक्तियाँ मननीय हैं–

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime.
And departing leave behind us,
Foot prints on the sands of time.

अर्थात् महापुरुषों के पवित्र चरित्र हमें अपने जीवनों को पवित्र और चरित्र को समुन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं कि हम भी संसार से विदा होते समय अपने पीछे आने वालों के लिए समय की बालू पर (मार्गदर्शक) पद–चिह छोड़ सकें।

राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, गाँधी जयन्ती, दयानन्द बोधोत्सव आदि पर्व हम इसलिए मनाते हैं कि युगों–२ के बाद भी हमारा राष्ट्र इन पवित्र चरित्रों से प्रेरणा ले सके। महापुरुषों का किसी देश या जाति के लिए यही महत्व है। श्रीकृष्ण जी महाराज की 'यद्‌यदाचरित श्रेष्ठः तत्तत्देवतरो जनः' की उक्ति इसी विचार से तो है। पर अपने इन महापुरुषों को ईश्वर बनाकर हम इस लाभ से भी वंचित हो जाते हैं, हमारी प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है।

जिस राष्ट्र के जितने ऊँचे आदर्श चरित्र होते हैं, वह देश चरित्र और आचार–विचार की दृष्टि से उतना ही ऊँचा उठ जाता है। हमारे देश के पास जब तक श्रीराम जैसे महान् चरित्र रहे, भारत संसार का गुरु बना रहा। पर जब हमने अपने आदर्शों को ईश्वर बना डाला तो हमें प्रकाश और प्रेरणा की ऊष्मा मिलना बन्द हो गया। अँधेरे के घटाटोप में हम ठोकरें खाने लगे और पतन की राह पर चल पड़े। हमने अपने महापुरुषों को ईश्वर बना कर उनके साथ जो अन्याय किया है और अपने राष्ट्रीय आदर्शों को खोकर आप ही अपने पैरों पर जिस प्रकार कुल्हाड़ी मार ली है, इसको राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघ चालक डा० हैडगेवार जी ने अपनी 'विचारधारा' में बड़े खेद के साथ व्यक्त किया है। उस संदर्भ का कुछ अंश हम यहाँ ज्यों का त्यों दे रहे हैं।

आदर्श क्या हो, इस प्रंसग में डा० साहिब कहते हैं– "मेरी सदा की प्रथा के अनुसार मैं यहाँ भी एक छोटा सा उदाहरण बतादूँ। किसी समय हमारे यहाँ एक परिचित मेहमान पधारे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान–सन्ध्या करने के उपरान्त अध्यात्म रामायण का एक अध्याय पढ़ा करते थे। एक दिन की बात है कि मैंने भोजन करते समय उनसे पूछ ही तो लिया कि आपने जो अध्याय पढ़ा, उसका अनुशीलन तो आप करेंगे ही। इतना सुनना था कि बस वे बौखला उठे और क्रोध से संतप्त होकर

बोले– "आप रामचन्द्र जी और भगवान का उपहास करते हैं। हम लोग गुण–ग्रहण करने की दृष्टि से नहीं अपितु पुण्य–संचय और मोक्ष प्राप्ति के लिए ग्रन्थ–पाठ करते हैं।"

हिन्दु जाति की अवनति के जो अनेकानेक कारण हैं, उनमें से उपर्युक्त भावना भी एक प्रधान कारण है। वास्तव में हमारे धर्म–साहित्य में एक से एक बढ़कर ग्रन्थ हैं। हमारा गत इतिहास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण, वीररस–प्रधान तथा स्फूर्तिदायक है। परन्तु हमने कभी उस पर योग्य रीति से विचार करना सीखा ही नहीं। जहाँ कहीं भी कोई कर्त्तव्यशाली या विचारवान् व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में धकेल देते हैं, उस पर "देवत्व" लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते। इस कारण यह भ्रममूलक धारणा रखते हुए कि देवताओं के गुणों का अनुशीलन मनुष्य की शक्ति से परे है, हम उनके गुणों को कभी भी आचरण में नहीं लाते। यहाँ तक कि अब तो शिवाजी और लोकमान्य तिलक जी की गणना भी अवतारों में की जाने लगी है। शिवाजी महाराज को तो शंकर का अवतार समझने भी लगे हैं और शिव चरित्र (शिवाजी के चरित्र) में इसी के समर्थन में एक उल्लेख भी पाया जाता है। वास्तव में लोकमान्य जी तो हम लोगों के समय में हुए हैं परन्तु मैंने एक बार ऐसा चित्र देखा जिसमें उन्हें चतुर्भुज बनाकर उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म दे दिये गये थे। निस्सन्देह इस तरह अपनी महान् विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में धकेल देने की सूझ की बलिहारी है। महान् विभूति के देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में। वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है, किन्तु उसके गुणों के अनुकरण करने का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पर आने वाली जिम्मेदारी जानबूझ कर टाल देने की यह अनौखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपना ली है।

अतएव आप किसी व्यक्ति को ही आदर्श मानना चाहें तो शिवाजी को ही अपना आदर्श रखें। अभी तक वे पूर्णतया भगवान् के अवतारों की श्रेणी में नहीं धकेले गये हैं। इसलिए भगवान् बना दिये जाने के पूर्व ही उन्हें आदर्श व्यक्ति मानकर अपने सामने रखिये।"

(परम पूजनीय डा० हैडगेवार छठवीं आवृत्ति पृ०६६-७१)

आत्म-हीनता का पाप

अवतारवाद का एक और घोर दुष्परिणाम यह है कि इससे आत्महीनता की वृत्ति का उदय होता है। आत्महीनता, आत्महत्या है। आत्म–विश्वास ही जीवन की सफलता का मूल मन्त्र है। 'अवतारवाद' इसे हमसे छीन लेता है।

प्रश्न- सो कैसे ?

उत्तर- अपने महापुरुषों को ईश्वर बनाकर हम हर ऊँचे आदर्श के बारे में सोच बैठते हैं, "वे ईश्वर थे, ऐसा काम वही कर सकते थे। ऐसी आदर्श मातृ–भक्ति, गुरु–भक्ति, ऐसा अनूठा भ्रातृ–प्रेम, ऐसा अछूता पत्नीव्रत, ऐसी अपूर्व देश–सेवा और त्याग भावना उन्हीं के द्वारा सम्भव है, हमारे वश की यह बात कहाँ है ? इस प्रकार हम आत्म–हीनता के शिकार होकर कभी ऊँचा उठने का विचार तक नहीं कर पाते।

स्वाभिमान-शून्य मृत जीवन : पुरुषार्थ पर चौका

आत्महीनता की इस वृत्ति का एक पहलू और है। देश का अंग–भंग हो जाता है, माँ–बहिनों की इज्जत लुटती है। एक–दो नहीं, शत–शत आर्य–ललनाओं के नंगे जुलूस निकाले जाते हैं, 'सीता का छिनाला' जैसी गन्दी पुस्तकें निकलती हैं। 'राम मुर्दाबाद' के नारे लगते हैं। अवतारवादी के पास इन सबके प्रतिकार के लिए एक ही उत्तर है–'अभी पाप का घड़ा भरा नहीं है, भर जाने पर कल्कि अवतार होगा और तब सबका एकदम सफाया!' आपने तब तक क्या करना है ? पुरुषार्थ पर चौका फेरने वाला उत्तर मिलता है–'हमारे वश का क्या है ?' और तभी हमें कवि की ये पंक्तियाँ याद आती हैं–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।।

सचमुच आज का आर्य (हिन्दु) 'नर–पशु' बनकर रह गया है। अपमान की जिन भीषण चोटों से मुर्दा भी एक बार तिलमिलाकर उठ खड़ा होता, हम पर उनका कोई प्रभाव नहीं। 'नर हो, न निराश करो मन को, कुछ काम करो, कुछ काम करो।' कवि के ये प्रेरक गीत, भावोद्गारों की यह शीतल वारि–धारा, अवतारवाद की विस्तृत मरुस्थली में सूख जाती है।

चरित्र नाशः सर्वनाश

पानी का सहज स्वभाव नीचे की ओर जाने का है। विशेष यान्त्रिक क्रिया से ही उसे ऊँचा चढ़ाया जाता है। यदि वह क्रिया निष्पन्न न हो तो पानी नीचे की ओर ही बहेगा। मानव जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाने के लिए महापुरुषों के उज्ज्वल चरित्र यान्त्रिक क्रिया का काम करते हैं। अवतारवाद द्वारा उस आधार को नष्ट कर दिए जाने पर इन्द्रियों के इन्द्रजाल से विमोहित मनुष्य का चारित्रिक पतन स्वयं सिद्ध है।

विद्वानों का कथन है कि चरित्रनाश ही सर्वनाश है। मनीषियों की दृष्टि में धन–नाश कोई हानि नहीं, स्वास्थ्य–नाश एक बड़ी हानि है और चरित्रनाश सर्वनाश है। अवतारवाद की अवैदिक मान्यता ने हमें चरित्रनाश का प्रसाद दिया है। महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर चरित्र–निर्माण का मार्ग जब त्याग दिया तो चरित्र का पतन तो स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं अवतारवाद की आड़ में चरित्र–नाश के नए नुस्खे भी तैयार हुए। किसी भी महापुरुष में पहले तो कुछ न कुछ मानव–सुलभ दुर्बलतायें होना भी सम्भव है फिर अपने पापों की ओट के लिए अनेकों झूठे और पापपूर्ण प्रसंग इन महापुरुषों के जीवन के साथ जोड़ दिए गए। श्रीराम पर तो 'मर्यादा पुरुषोत्तम' होने से कुछ कृपा की गई पर श्रीकृष्ण के नाम पर 'दान लीला', 'मान लीला', 'चीर–हरण लीला', 'कुब्जा–सम्भोग' आदि कितने ही प्रसंगों में पाप–कथायें जोड़कर स्वेच्छापूर्ण दुराचारी जीवन के रास्ते खोले गये। मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना और दूसरे कथित तीर्थस्थानों पर नारी जाति के पवित्र सतीत्व के साथ

खिलवाड़ करने वाले इन नरपिशाचों से कोई पूछे कि यह तुम क्या करते हो तो उत्तर मिलता है–"जब भगवान् ही ऐसा करते हैं तो हमारे करने में क्या दोष ?" हर पाप के समर्थन के लिये अवतारवादी के पास ओट है। 'लगे रगड़ा मिटे झगड़ा' का घोष करने वाले भंगड़ियों की 'बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते' की बात कहकर आप पूछिये कि इस बुद्धिनाशिनी भंग का सेवन आप क्यों करते हैं तो झट शिवजी को लाकर खड़ा कर देंगे। धोखेबाजी, छल–कपट, झूँठ, मक्कारी, वामाचार, माँस–मदिरा सेवन, परस्त्रीगमन आदि सभी पापों के समर्थन के लिए 'अवतारवाद' तैयार है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य अनेक वैदिक महापुरुष अवतारवादियों के हाथों पड़कर कितने बदशक्ल और विद्रूप कर दिये गये हैं कोई भी सहृदय व्यक्ति इनकी पहली झाँकी पर ही रो उठेगा। साथ ही जो भारत कभी जगद्गुरु था उसकी दीन–हीन करुण दशा का मूल कारण भी उसकी निगाहों में स्पष्ट हो उठेगा।

मूर्तिपूजा का अभिशाप

चक्रवर्ती शासक के भाग्य में हजार साल की लम्बी गुलामी और उसके बाद यह कटी–फटी स्वतन्त्रता, अनन्त ऐश्वर्यों के अधिपति का भूखे पेट सोना, जीवन और शौर्य के धनी की यह अर्द्धजीवित दशा–जिस मूर्तिपूजा के परिणाम हैं, राष्ट्र–जीवन के उन अनेक दुर्भाग्यों की जननी, अनेक पाखण्डों की पोषक मूर्तिपूजा का अभिशाप भी अवतारवाद की कल्पना का परिणाम है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महात्मा बुद्ध के पूर्व मूर्तिपूजा का वर्तमान रूप कहीं अस्तित्व में नहीं था। मूर्ति के लिए प्रयुक्त 'बुत' शब्द बुद्ध का ही अपभ्रंश है। महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में भी मूर्तियाँ नहीं थीं। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनीश्वरवादी चेलों ने अन्धश्रद्धा के अतिवेग में बुद्ध को ही ईश्वर बना डाला। महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं और मूर्तिपूजा आरम्भ हुई। आम लोगों को सस्ता नुस्खा चाहिए था, वे बौद्ध मत की ओर झुके। बस, बुद्ध और महावीर की स्पर्धा में ही राम–कृष्णादि क्षत्रिय वीरों को लाकर खड़ा किया गया। उन्हें ईश्वरावतार घोषित किया गया और अनेक विध दुःख–दारिद्रय की जननी मूर्तिपूजा को 'सनातन धर्म' के नाम से हमारे गले मढ़ दिया गया।

ईश्वर पर पक्षपात का दोष

एक दो नहीं चौबीस–२ ईश्वर के अवतार हुए किन्तु वे सारे के सारे भारत में ही हुए। तो क्या संसार भर में सबसे अधिक पापी भारत में ही हुए। या फिर यह ईश्वर का पक्षपात था ? अवतारवादी विचारें और इस पापपूर्ण विचार को त्यागें।

नास्तिकता का मूलः सच्ची ईश्वरभक्ति का उन्मूलक

'नास्तिको वेद निन्दकः' इस आधार पर अवतारवाद की कल्पना वेद के विरुद्ध होने से नास्तिकता को पोषण देती है। इस शास्त्रीय व्यवस्था के अतिरिक्त ईश्वर और धर्म के नाम पर जब अवतारवाद की कल्पना से प्रसूत और स्वार्थ एवं दम्भ से पूर्ण घिनौने चित्र सामने आये, एक–दो नहीं चौबीस–चौबीस ईश्वरावतार जिनमें कच्छ, मच्छ और वराह भगवान्! भी शामिल हैं, तैयार किए गए और

ये सब मिलकर हमारे सर्वनाश का ही कारण सिद्ध हुए तो अनेकों बुद्धिजीवी जन ईश्वर और धर्म के ही खिलाफ उठ खड़े हुए। अवतारवाद ने धर्म को रूढ़िगत कर्मकाण्ड बनाकर रख दिया, सदाचार को बुहारी दे दी गई। धर्म आचरण की चीज न रहकर 'सौगन्ध खाने' के काम का रह गया। सब कुछ पापाचार करने पर भी अवतारवाद की ओट में सब कुछ माफ था। ऐसी दशा में बुद्धिजीवियों द्वारा धर्म और ईश्वर का विरोध स्वाभाविक था। इस प्रसंग में महाकवि अकबर की निम्न पंक्तियाँ कितनी अर्थपूर्ण है–

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनकिर हुई है दुनियाँ।
कि ऐसे बन्दे हों जिस खुदा के वह कोई अच्छा खुदा नहीं है।।

अवतारवाद ने ही सदाचारनिष्ठ, कर्त्तव्य–प्रेरक, सच्ची ईश्वरभक्ति की जगह मिथ्या नाम–माहात्म्य आदि की कदाचार प्रवर्तक मान्यताओं को जन्म दिया। इस तरह एक प्रकार की ढकी हुई नास्तिकता को अवतारवाद ने उत्पन्न किया जिसकी प्रतिक्रिया आज प्रत्यक्ष नास्तिकता के रूप में हो रही है।

महापुरुष ईश्वर कैसे ?

प्रश्न- यह सब तो बिल्कुल ठीक, युक्ति–युक्त और वास्तव में एक सचाई है, किन्तु जब श्रीराम आदि महापुरुष थे, उनके समकालीन भी उन्हें महामानव ही मानते थे तब वे ईश्वरावतार क्यों कर माने जाने लगे ?

उत्तर- बड़ा युक्तियुक्त प्रश्न है, महापुरुषों को ईश्वरावतार कैसे बना दिया जाता है? इस सम्बन्ध में युगपुरुष एवं राष्ट्रपिता बापू का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। अति श्रद्धा धीरे–धीरे अन्ध श्रद्धा का रूप ले लेती है और अन्धश्रद्धा से जो भी अनर्थ हो जाय वही थोड़ा है। जैसे आज के अति बुद्धिवाद ने मनुष्य को हृदयहीन, स्पन्दनहीन, जड़वत् और यन्त्रवत् बना दिया है, उसी प्रकार अति श्रद्धा से उत्पन्न अन्धश्रद्धा ने हमारे देश में और सर्वत्र ही सर्वनाश का दृश्य उपस्थित किया है।

गाँधीजी जब जीवित थे तभी बिहार के बुद्धिविहीन अन्धभक्तों द्वारा उनकी मूर्ति बनवाई गई और 'टन–टन, पूं–पूं' का दौर शुरू हुआ। पर गाँधीजी तब जीवित थे। उन्होंने अपने पत्र 'हरिजन' में इन बुद्धि के शत्रु अन्धे चेलों की वह खबर ली कि उनके 'औंधे नगाड़े' हो गए। उन्होंने डाँट बताते हुए कहा– "भोले भाइयो! मैं एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ, उससे अधिक कुछ नहीं। हर कोई मेरे जैसा बन सकता है। मेरे में कोई चमत्कार और ऐसा कुछ नहीं है जो दूसरे मनुष्यों की पहुँच से परे हो। मेरी मूर्ति बनाकर मुझे जिन्दा ही मारने की कोशिश मत करो। यदि तुम्हें मेरी भक्ति सवार हुई है तो मेरी भक्ति का अर्थ है–मेरे १४ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम का आचरण और प्रचार–प्रसार।"

कितना स्पष्ट समाधान है, प्रस्तुत शंका का। वह मन्दिर बन्द कर दिया गया। गाँधीजी के जीवन से ही अन्धविश्वास के खण्डन का एक और उदाहरण लीजिए–

एक गरीब किसान और उसकी स्त्री गाँधीजी से मिलने गए। गाँधीजी २१ दिन के उपवास से काफी कमजोर हो चुके थे। किसान दम्पत्ति ने उनसे मिलने की प्रार्थना की और कहा कि उनका

इकलौता लड़का बहुत सख्त बीमार है और वे गाँधीजी के चरणों का चरणामृत ले जाकर उसे देना चाहते हैं।

गाँधीजी ने अपने पास उन्हें बुलाया और धीमी पर दृढ़ आवाज में कहा– "क्या तुम ईश्वर पर विश्वास करते हो?" दोनों ने सिर झुका दिया। गाँधीजी बोले–"ईश्वर में विश्वास रखते हुए तुम क्यों उसका अपमान करते हो ? मेरे लिए कितने शर्म की बात है कि अपने पाँवों की धोवन का मैला पानी तुम्हारे लड़के को पीने के लिए दूँ। क्या बीमारियाँ मैला पानी पीने से जाती हैं ?" इसी तरह गाँधीजी पौन घण्टे तक उन्हें समझाते रहे। दोनों ने लज्जा से सिर झुका लिया।

अन्ततः गाँधीजी ने किसान दम्पति को समझाया–"ईश्वर में विश्वास रखो और अपने लड़के का इलाज कराओ।"

आज गाँधीजी को ईश्वर बनाने की सिरतोड़ कोशिश की जा रही है, और करीब–२ आधा ईश्वर तो उन्हें बना ही दिया गया है। दिल्ली में राजघाट पर जाकर कोई भी देख सकता है कि आज गाँधीजी की कब्र पूजा शुरू हो गई है। गाँधीजी के चरित्र की पूजा का स्थान उनकी चित्र पूजा लेती जा रही है और फूलों के ढेरों के नीचे दबी गाँधीजी की आत्मा जैसे कराह रही है। एक सहृदय कवि से जब यह नहीं देखा गया तो उसका स्वर फूट निकला–

मानव केवल मानव गाँधी, जय मानव जय मानव गाँधी,
कहना है गाँधी को ईश्वर, करना है गाँधी को पत्थर।
देखो जिसकी आत्म-शक्ति से, काँप उठी बर्बरता थर-थर,
वह मनुष्य कुल का सपूत था, मानव केवल मानव गाँधी। जय०

कहाँ है आज गाँधीजी के आदर्श ! गाँधीजी की प्यारी गाय आज और अधिक कटती हैं। यान्त्रिक जीवन, शहरी सभ्यता, अंग्रेजियत और विदेशीपन का बोलबाला है। इस प्रकार गाँधीजी के आदर्शों की लाश पर आज गाँधीजी को ईश्वर बनाने और केवल पूजा की वस्तु बनाने की कोशिश की जा रही है। यदि यही क्रम रहा तो कुछ समय में गाँधीजी का जन–जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। एक ईश्वर आया था, उसने अपने चमत्कार से अंग्रेजों को भगा दिया, यही कहानी शेष रह जायेगी। पर ऐसा करके क्या हम उस गाँधी के साथ न्याय करेंगे जिसने कितने तप और साधना के बाद अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाई और जिसने आत्मविजय द्वारा विश्व–विजय के सपने को साकार करके संसार के हर इन्सान को प्रेरणा दी कि दुनियाँ का दुर्बल से दुर्बल इन्सान भी आत्म–विजय द्वारा लोकविजय कर सकता है। हृदय पर हाथ रख कर जरा तो सोचिये कि महामानव गाँधीजी की यह कब्रपूजा क्या गाँधीजी के साथ घोर अन्याय तथा आज के इस विज्ञान के युग में एक महामूर्खतापूर्ण नाटक मात्र ही नहीं है?

हम गोडसे को गाँधी का हत्यारा कहते हैं। ठीक है। पर याद रखिये गोडसे ने गाँधी का शरीर मात्र हमसे छीना था (यदि ऐसा कहा जा सकता है तो) पर गाँधी की कब्र–पूजा करने वाले गाँधीजी के सिद्धान्तों की, गाँधी के आदर्शों की हत्या के रूप में गाँधी की आत्मा–हत्या का पाप कर रहे हैं।

चरित्र की नहीं चित्र की पूजा !

अवतारवाद के इस पाप ने हमारे रक्त को ही विषाक्त कर दिया है। सबसे बड़ी खराबी तो यह है कि न किसी के जीवनकाल में और न उसके बाद ही उसके आदर्शों या उसूलों पर आचरण किया जाता है, पर मरने के बाद उसकी मिट्टी की, उसके चित्र की और उसकी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है। उसकी राह पर चलने का कोई नाम नहीं लेता।

नेहरूजी की मृत्यु के बाद क्या हुआ ? उनकी भस्म के साथ भी गान्धीजी की भस्म के समान अत्याचार किया गया है, उसे हम नेहरू जी की मिट्टी ख्वार करना ही कहेंगे।

हम याद रखें कि यह सम्मान-प्रदर्शन नहीं, घोरतम पाप है। आपकी दृष्टि में यदि गाँधीजी तथा नेहरू जी वीर थे तो आप बेशक उनकी वीरपूजा कीजिए। मिट्टीपूजा का नाम वीरपूजा नहीं है। वीरों का गुणगान और अनुकरण ही वास्तविक वीरपूजा है। महापुरुषों के चित्र की नहीं चरित्र की पूजा उनके प्रति सबसे बड़ा सम्मान-भाव है। आशा है उक्त विवेचन से प्रस्तुत शंका से सम्बन्ध में कि महापुरुष ईश्वर कैसे बन जाते हैं, उचित समाधान मिलेगा।

निष्कर्ष- सच्चाई यह है कि न केवल भारत में अपितु संसार के हर देश में और हर काल में युग-पुरुष, लोकनायक महापुरुष जन्म लेते रहे हैं और लेते रहेंगे। वे औरों के सुख में अपना सुख तथा औरों के दुःख में अपना दुःख मानते हैं। राम, कृष्ण की भाँति ही बुद्ध, महावीर, शिवा, प्रताप, कबीर, नानक, दयानन्द और गाँधी ही नहीं, मुहम्मद और ईसा भी अपने-अपने युग के महापुरुष हुए हैं। अपने तप-त्याग और उच्च आदर्शों से ये ईश्वरीय गुणों को धारण कर जन-जन की श्रद्धा के पात्र बन जाते हैं। कालान्तर में यह श्रद्धा अतिश्रद्धा में और फिर अंधश्रद्धा में बदल कर अवतार, पैगम्बर, ईश्वर का इकलौता पुत्र आदि मूढ़ और नाशकारी कल्पनाओं को जन्म दे डालती है।

श्री पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा लिखित अवतारवाद की कल्पना से उत्पन्न दुष्परिणामों के कुछेक नमूने और पेश कर के हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे-

"हमारे सामने '१९६२, पूर्व-पश्चिम मिलन' पत्रिका रखी है। इसमें तथाकथित पुरातन पुरुष मेहर बाबा का एक रसीला चित्र है। इसके पृष्ठ ७ पर मेहर बाबा कहते हैं, 'सनातन काल से मैं सिद्धान्त और आचार-नियम निर्धारित करता आया हूँ लेकिन किसी ने उनकी परवाह नहीं की। इसलिए मैंने अपने इस अवतारी स्वरूप में मौन धारण कर लिया है।"

आगे चलकर वह फिर बोलता है, "तुम्हें नहीं त्यागना है। मेरी कृपा से ही तुम्हें अपनी सीमित खुदी को त्यागना असम्भव है। मैं उसी कृपा की धारा बहाने आया हूँ।"

और सुनिए, वह ऐलान करते हैं, "मैं अपने को मनुष्य से उसके खुद के अज्ञान के पर्दे में छिपाए रखता हूँ और विरले लोगों को ही अपना तेज प्रकट करता हूँ। मेरा मौजूदा अवतार स्वरूप इस कालचक्र का अन्तिम अवतार है।"

उनकी अन्तिम दो पंक्तियाँ हैं, "तुम्हारे बीच मेरे आने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता न था और न है। मुझे आना था और मैं आ गया। मैं वही पुरातन पुरुष हूँ।"

मेहर बाबा नाम का यह खुदा बाइबिल के परेशान खुदा के टोन में बोल रहा है। एक तरफ यह नया खुदा परेशान है कि मनुष्य ने उसके फर्मानों की परवाह नहीं की, इसलिए उसने मनुष्य से बोलना बन्द कर दिया और मौन धारण कर लिया। फिर दूसरी ओर वह कहता है कि उसकी कृपा के बिना मनुष्य न खुदी को त्याग सकता है, न उसके तेज का दर्शन कर सकता है। और अन्त में अपनी मजबूरी जाहिर करता हुआ वह कहता है कि मनुष्य के उद्धार के लिए उसे गर्भ रूपी नरक में पड़ना पड़ा यद्यपि वह स्वयं पुरातन पुरुष है।

जो खुदा बिना जन्म–मरण के चक्र में पड़े अनंत असीम सृष्टि की रचना करके अपनी अन्तर्व्यापी प्रेरणा से उसका संचालन कर रहा है, वह खुदा अपनी अन्तःप्रेरणा से मानव जाति का उद्धार क्यों नहीं कर सकता ? एक ओर यह खुदा इन्सान को हिदायत कर रहा है कि अपनी खुदी को मिटाकर खुदा बन जाओ और दूसरी ओर वह स्वयं अपने आपको जन्म–मरण के चक्कर में डाल रहा है। जो जन्मता है, वह मरता है और मरने पर संस्कार तथा कर्मफल के अनुसार फिर जन्म लेता है। इस बात का क्या सबूत है कि इस खुदा का यह अन्तिम जन्म है।

एक ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्तक दादा लेखराम अपने आपको साक्षात् ब्रह्म बताते थे और उनकी कुमारियाँ उन्हें ब्रह्मा–विष्णु–महेश घोषित कर रही हैं। इस प्रकार की इस समय दो सौ फिरी हुई या बनी हुई खोपड़ियाँ हैं जो अपने को परमेश्वर का अवतार कहकर न केवल अपने आपको पुजवा रहे हैं, अनेक अनर्थ भी करा रहे हैं और धर्म तथा ईश्वर के शुद्ध–स्वरूप को लोगों की निगाह से ओझल करके अधर्म को धर्म और अनीश्वर को ईश्वर बता रहे हैं। धर्म और ईश्वर के नाम पर यह अनाचार और भ्रष्टाचार उनके लिए एक खुली चुनौती है जो अपने आपको 'पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराने वाले' का अनुयायी बताते हैं। इस्लाम भी है जो एक ईश्वर की उपासना का दावा करके खुदा की जगह कब्रों की पूजा कर रहा है। ईसाइयत में भी पिता के स्थान में पुत्र की उपासना है। सिख पन्थ है जिसमें भगवान् की वाह–वाह के बजाय गुरुओं की वाह–वाह है। तुर्रा यह है कि कहीं चरित्र की प्रतिष्ठा नहीं है। सर्वत्र 'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' दौलत के ढक्कन से सत्य का मुँह ढँक रहा है।" इसलिए–

जी चाहता है धर्म के, महलों को फोड़ दूँ।
ईश्वर के नाम पर बने, भवनों को तोड़ दूँ।।

ईश्वर हमें अपेक्षित आत्म–बल दें कि हम अवतारवाद के मोहक शिकंजे से स्वयं बचकर अपने देश–बन्धुओं को उससे बचायें।

।। ओ३म ।।

चमत्कारवाद

कहावत मशहूर है कि 'चमत्कार को नमस्कार है।' और यह ठीक भी है। चमत्कार सामान्य और सही अर्थ में उन विशेषताओं का नाम है जो किसी महापुरुष के चरित्र में त्याग–तप, उदारता, प्रेम, सद्‌भाव, समभाव आदि दैवी गुणों की प्रचुरता के रूप में प्रकट होती हैं। इन सद्‌गुणों को ग्रहण और धारण करने की दृष्टि से ऐसे महापुरुषों के प्रति जन–सामान्य की श्रद्धा न केवल उचित ही है, वरन् आवश्यक है। किन्तु अतिश्रद्धा या अन्धश्रद्धा इस सहज रूप से सन्तुष्ट नहीं होती, और तब महापुरुषों को अलौकिक या अतिमानवी व्यक्तित्व देने की दृष्टि जन्म लेती है।

बस यही दृष्टि चमत्कारवाद का मूल है। चमत्कारवाद, अवतारवाद की उपज है। स्वार्थी जनों अथवा अति श्रद्धालुओं (अन्ध श्रद्धालुओं) द्वारा महापुरुषों में अवतार–सिद्धि के लिए अनेकों सृष्टिक्रम विरुद्ध, बुद्धि–शून्य, तर्कशून्य, ईश्वरीय नियमों और व्यवस्थाओं को चुनौती देने वाली मूढ़ कल्पनायें की गई हैं। कालान्तर में ये विवेक–शून्य, मनगढ़न्त कल्पनायें इतनी रूढ़ हो जाती हैं कि सत्य की भूमि पर खड़े होकर इनका विरोध भी एक दुस्साहस जैसा प्रतीत होने लगता है। पर सत्यप्रिय, सत्यवीर रूढ़ियों के कुहासे को हटाने और सत्य सूर्य के आलोक से धरती को पुलकित कर पाने में एक दिन अवश्य सफल होते हैं

चमत्कारों को महापुरुषों के जीवन के साथ जोड़ने का सबसे भयंकर परिणाम यह होता है कि सम्बन्धित महापुरुष का इतिवृत्त, उनकी ऐतिहासिकता, सन्देह–विदग्ध हो जाने से उस महापुरुष का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। बहुत बार अलंकारिक वर्णनों को ही और कभी–कभी योग साधनाओं को भी चमत्कारों का रूप दे डाला जाता है। पर हम याद रखें कि मिथ्यात्व के आधार पर किसी के महत्व प्रतिपादन का यह भोंड़ा तरीका प्रायः उनकी गौरव हानि का ही कारण सिद्ध हुआ है और कम से कम मानव–संस्कृति के विकास–पथ का तो वह सबसे बड़ा रोड़ा बनता है।

चमत्कारों की यह लीला ईसा, मूसा, मुहम्मद, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक, दादू, कबीर और यहाँ तक कि अब गाँधी और जवाहर तक के साथ जोड़ने का दुस्साहस उनके कथित चेले करते रहे और कर रहे हैं।

मान सच्चिदानन्द के दूत पूत अवतार।
भूले महिमा ब्रह्म की अबुध अविद्या धार।।

अस्तु, हमारा निश्चय है कि आरम्भ में किसी एक मजहब वाले ने अपने ग्रन्थों में चमत्कारों का वर्णन लिख दिया होगा, उसे देख दूसरे मजहब वाले ने और दूसरे को देखकर तीसरे मजहब वाले ने सोचा होगा कि यदि लोग हमारे मजहब में चमत्कारों का वर्णन न पावेंगे तो लोग हमारे मजहब को तुच्छ व निर्बल समझेंगे। ऐसा विचार कर उन्होंने अपने ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न प्रकार के अद्‌भुत कर्मों का उल्लेख कर दिया होगा। उनकी आशा भी पूर्ण हुई, क्योंकि वह समय उनके अनुकूल था, पर अब अन्धविश्वास का समय नहीं रहा। अब ऐसी बातों पर कोई नव–शिक्षित विश्वास नहीं करता। ऐतिहासिक विद्वान् इन चमत्कारों को प्रमाण नहीं मानते। विज्ञान (साइंस) से भी चमत्कारों का मिथ्यात्व सिद्ध है। मनःशक्ति और मेस्मेरेजम के द्वारा जो अद्‌भुत कार्य देखे जाते हैं उनसे भी मजहबी चमत्कारों जैसे सूर्य को निगल जाना, समुद्र पी लेना, उँगली पर पर्वत उठा लेना, चन्द्रमा को उँगली के इशारे से काट देना, इच्छामात्र से कोढी को ठीक कर लेना व मुर्दों को जिन्दा कर देना आदि की सिद्धि नहीं होती। तर्क और दूरदर्शिता से विचार करने से पता लगता है कि मजहब फैलाने के लिए ईश्वर कभी किसी व्यक्ति को चमत्कार–शक्ति नहीं देता। वह संसार को रचता, धारण करता और अपने न्याय–नियम के अनुसार सब जीवों को शुभाशुभ कर्मों का फल देता है। ईश्वर को कुछ भी आवश्यकता नहीं कि वह लोगों को चमत्कार–शक्ति दे। यदि वह पहले लोगों को चमत्कारी बनाता तो अब भी अवश्य बनाता। लेकिन चमत्कारवाद तो एक भुलावा है और धोखाधड़ी है। असल में यह मजहब वालों की कारस्तानी है, जो उन्होंने अपने मजहब को खुदा का मजहब सिद्ध करने तथा अपने मजहब की प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि के लिये चमत्कारों की मिथ्या कल्पना करली है।

पुराणों के लेखकों ने असल घटनाओं में नमक–मिर्च मिला चमत्कारों का वर्णन लिख दिया है, लेकिन ये सब चमत्कार मिथ्या और कल्पित हैं। पुराणों में जिस प्रकार के कल्पवृक्ष, कामधेनु और अमृत का वर्णन है वह कल्पनामात्र है। खेद है कि हमारे पौराणिक भाई पुराणों को पढ़ते–सुनते समय वैशेषिक दर्शन के इन दो सूत्रों को एकदम भूल जाते हैं–

(१) **कारणगुणपूर्वको कार्यगुणो दृष्टः।**

(२) **कारणाभावात्कार्याभावः।**

किसी वृक्ष या गाय से हजारों तरह की वस्तुएँ उत्पन्न होना उक्त दो सूत्रों अथवा साइन्स से असिद्ध है। इसी तरह फल या वायु से मनुष्य की उत्पत्ति मानना और शिव के वीर्य से सोना–चाँदी आदि धातुओं की उत्पत्ति मानना भ्रम है। ऐसा अमृत होना असम्भव है, जिसे पीकर कोई शरीर से अमर हो जाय। हाँ, यदि किसी विशेष औषधि को (जो स्वास्थ्य, बल–वीर्य व कान्ति को बढ़ावे) अमृत मान लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। दूध, दही और शहद का समुद्र होना गप्प है।

जैनियों के तीर्थंकर हमारी तरह मनुष्य ही थे, दस–दस या पचास–पचास गज के लम्बे नहीं थे। हममें और उनमें इतना ही अन्तर है कि वे अहिंसक, त्यागी, योगाभ्यासी और तपस्वी थे। ईसामसीह हमारी तरह मनुष्य थे, कुँआरी कन्या से पैदा नहीं हुए थे और न उन्हें चमत्कार से पुनः जीवन मिला था। उनको कुँआरी कन्या से उत्पन्न ईश्वर का पुत्र मान लेना इतना ही मिथ्या व भ्रमपूर्ण है जितना

कि कर्ण को कुमारी कुन्ती से उत्पन्न, इस चमकते और दहकते हुए प्रचण्ड सूर्य का पुत्र मान लेना और हनुमान को पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई वायु का पुत्र मान लेना। हनुमान, कर्ण और ईसा तीनों ही मनुष्य थे और मनुष्य के पुत्र थे।

निदान जिन्हे लोग देवता, अवतार, पैगम्बर, तीर्थंकर और ईश्वर का पुत्र मानते है, वे सब मनुष्य थे। अदभुत चमत्कार की बात बनावटी और मनगढ़न्त है।

एक अध्यापक ने महात्मा गाँधी को पत्र लिखा था कि ऋषि लोग योग व अहिंसा का अभ्यास करके असम्भव को सम्भव कर दिखलाते थे। इस पर आपका विश्वास है या नहीं। उसका उत्तर महात्मा गाँधी ने इस प्रकार लिखा था–

"योग और अहिंसा के अभ्यास से जैसे कार्यों की सिद्धि होना आपने बताया है, मै उसे नही मानता। पहुँचा हुआ योगी और अहिंसाव्रती भी प्रकृति के अपरिवर्तनीय और अटल नियमों को नहीं बदल सकता। प्रकृति के नियमों के बंधन से वे भी ऐसे ही बँधे होते है जैसे हम सब। स्वयं परमात्मा ने भी अपने नियमों को बदलने का अधिकार अपने हाथ में नहीं रखा है और ऐसा परिवर्तन करने की उसे कोई आवश्यकता भी नहीं होती। वह सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। उसे बिना किसी प्रयास के प्रत्येक क्षण भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान होता है। इसलिए उसे किसी बात में पुन विचार करने, बदलने या संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। हिंसात्यागी और योगी निस्सन्देह कई शक्तियाँ बढ़ा सकते हैं किन्तु वे सब ईश्वर के प्राकृतिक नियमो के भीतर होती हैं। महात्मा गाँधी के उक्त विचारों पर गम्भीरता से विचार कीजिये।

ईश्वर का बड़प्पन चमत्कारों या नियमविरुद्ध असाधारण बातों के दिखाने में नहीं है। सबसे बड़ा चमत्कार यही है कि ईश्वर के नियम अटल है जिनमें देश–काल की अपेक्षा से कोई परिवर्तन नहीं होता। समस्त सृष्टि ही ईश्वर की शक्ति का एक जाज्वल्यमान चमत्कार है, उसे अन्य चमत्कारों की आवश्यकता नहीं और न उनका मानना उचित ही है। आज भी धूर्त और पाखण्डी समझदार लोगों को भी धोखे में डाल देने वाले चमत्कारों की बातें करते हैं, उनसे सावधान रहना चाहिए। यहाँ रामायण का प्रसंग उपस्थित है। भगवान् राम, महावीर हनुमान्, माता सीता तथा रामायण के अन्य पात्रों के जीवन के साथ जोड़े गये चमत्कारों के भ्रम को दूरकर हमें श्रेष्ठकर्मा बन अमूल्य मानव जीवन को सफल बनाना चाहिये।

'यतो व्रतानि पश्पशे' ईश्वर व्रतों (नियमों) से बँधा है।

।। ओ३म्।।

अलंकारवाद

काव्यगत अलंकार निश्चय ही काव्य–सौष्ठव की श्री–वृद्धि करने में सहायक और आवश्यक हैं। साहित्य के विद्यार्थी अलंकार–महिमा तथा उनके द्वारा उत्पन्न चमत्कार से भलीभाँति अवगत हैं। हम यहाँ उसकी विवेचना में नहीं जाना चाहेंगे। हमें जो कहना है वह यह है कि सत्य, न्याय और बुद्धि के शत्रुओं द्वारा काव्यगत अलंकारिक चमत्कार को सत्य घटना का रूप देकर महापुरुषों के ऐतिहासिक वृत्त को बिगाड़कर जिस बुरी तरह ध्वंस किया गया है, उन धब्बों को सर्वथा मिलाकर तस्वीर को सही रूप देना एक दुष्कर कार्य हो गया है। चतुर से चतुर कलाविद् की तूलिका से भी कुछ अनमिल धब्बे शेष रह जावें, यह सम्भव है।

प्रश्न- यह सब अनर्थ होता कैसे है ?

उत्तर- इसका मूल या तो अतिश्रद्धा है या फिर महापुरुषों के नाम पर सम्प्रदाय खड़े करके चलाने का मानव का घृणित स्वार्थ। दोनों ही कारणों से 'अन्धश्रद्धा' का जन्म होकर महापुरुषों को ईश्वरावतार, ईश्वर–पुत्र या ईश्वर–दूत बनाया गया। अवतार–सिद्धि के लिए चमत्कारों का सहारा लिया गया और चमत्कारों को गढ़ते समय काव्यगत अलंकारिक चमत्कारों को ही सत्य घटना बना डाला गया।

प्रश्न- उदाहरण से समझाइये।

उत्तर- गान्धीजी हमारे जमाने के महापुरुष हुए हैं। उनके सम्बन्ध में कविवर सोहनलाल द्विवेदी की 'युगावतार गान्धी' शीर्षक प्रसिद्ध कविता है। सन् १९५० की बात है। एक दिन हम अपने विद्यालय की सातवीं कक्षा में पहुँचे। 'अमरभारती' नामक पाठ्य–पुस्तक में से यह पाठ हमने निकलवाया। एक विद्यार्थी को हमने कविता पढ़ने को कहा, वह पढ़ने लगा। कविता की आरम्भिक पंक्तियाँ हैं–

चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।।

आगे एक पंक्ति है–

हे कोटि रूप, हे कोटि बाहु, हे कोटि-चरण तुमको प्रणाम।।

विद्यार्थी को यहीं रोककर हमने इस पंक्ति का अर्थ पूछा उत्तर में विद्यार्थी ने पंक्ति का अर्थ करते हुए बताया–"हे करोड़ों रूपों वाले, हे करोड़ों भुजाओं वाले, हे करोड़ों पैरों वाले गान्धी आपको हमारा

प्रणाम हो। अन्य विद्यार्थियों का भी यही उत्तर पाकर हमें बड़ा आत्मिक–कष्ट हुआ, साथ ही अध्यापक की बुद्धि पर भी तरस आया। अपने मनःकष्ट को छिपाकर हमने एक बड़े विद्यार्थी से पूछा– बेटे, क्या तुमने कभी गाँधीजी को देखा था ?'' उसका उत्तर स्वीकारात्मक था। यह पूछे जाने पर कि उसने गाँधीजी को कब देखा, वह बोला ''आपके ही साथ हम कुछ विद्यार्थी करीब ५ साल पहले स्टेशन गये थे, वहीं गाँधीजी के दर्शन हमने किये थे।'' हमें याद आया कि विद्यार्थी सन् १९४५ की बात कहता है जब हमारे प्यारे बापू शिमला कान्फ्रेंस में जाते हुए मथुरा स्टेशन से गुजरे थे और हमने भी उनके पुण्य दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल किया था। अस्तु, अब हमारा प्रश्न था– 'बेटे यह बताओ कि गाँधीजी के कितने हाथ, पैर और मुख तुमने देखे थे ?' विद्यार्थी का उत्तर था, श्रीमन् ! हमारी सबकी तरह एक मुख, दो हाथ, दो पैर।' 'तब फिर आप लोग कैसे कहते हैं कि गाँधीजी करोड़ों हाथों– पैरों वाले थे, ऐसा अर्थ क्यों करते हो ?' 'पंक्ति का सीधा अर्थ तो यही होता है श्रीमन्'–एक विद्यार्थी बोला। 'प्यारे बच्चे! यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारे अध्यापकजी का दोष है, जिनकी आँखें इन पंक्तियों में निहित काव्य–सौष्ठव को नहीं देख सकीं। थोड़ी–सी खुली आँखों से देखो, आरम्भ की दो पंक्तियों में कहा गया है– 'गाँधीजी के दो पैर जिस मार्ग पर बढ़ते थे, करोड़ों पैर (व्यक्ति) उनका अनुगमन करते थे। गाँधीजी की एक निगाह जिधर उठती थी, करोड़ों निगाहें उधर उठ जाती थीं। इन दोनों पंक्तियों के साथ इस तीसरी पंक्ति की संगति लगाकर देखिये, अर्थ होगा– वह युगपुरुष व राष्ट्र–पुरुष गाँधी करोड़ों व्यक्ति जिनके दो पैरों का अनुगमन करते थे, भारतीय प्रजा की करोड़ों निगाहें जिनकी एक निगाह के साथ उठती थीं, करोड़ों हाथ जिनका साथ देते थे, उस युगनायक को हमारा प्रणाम हो।'

हमने देखा कि तथ्य, प्रकरण, सृष्टि–क्रम, ईश्वरीय नियम और अभिनव काव्य–सौन्दर्य सबकी हत्या करके किस प्रकार चमत्कार–सृष्टि सम्भव है। आज तो गाँधीजी के दर्शन करने वाले लाखों, करोड़ों व्यक्ति देश–विदेश में जीवित हैं। पर गाँधीजी को ईश्वर बना डालने का दौर जिस तेजी से चल रहा है, वह यदि चलता रहा तो अब से हजार, पाँच सौ वर्ष बाद के लोग इसे एक सचाई मानने लगेंगे कि गाँधी नामक एक अवतार भी हुआ जिसके करोड़ों हाथ, पैर और सिर थे। करोड़ों भारतवासी ही गाँधी के हाथ–पैर (अंग) थे, यह सत्यार्थ वे सोच भी न सकेंगे।

कविवर दिनकर की 'हिमालय के प्रति' एक कविता है–

मेरे नगपति मेरे विशाल।
साकार दिव्य गौरव विराट्, पौरुष के पु जीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिमकिरीट, मेरे भारत के भव्य भाल।।
जिसके द्वारों पर खड़े क्रान्त, सीमापति तूने की पुकार।
पद-दलित इसे पीछे करना, पहले ले मेरा सिर उतार।।

हम देखते हैं कि कवि ने हिमालय को यहाँ व्यक्तित्व दे दिया है। 'सीमापति तूने की पुकार' इन शब्दों में हिमालय बोल पड़ा है। अब इस वर्णन से कोई कहने लगे कि हिमालय तो बातें करता है। हाँ, काव्य की भाषा में वह बातें करता है, पर यदि कोई साधारण अर्थ में इसे घटाने लगे तो क्या

यह उसकी बुद्धि के दिवालियेपन का ही द्योतक नहीं होगा ? हम मुहाविरे की भाषा का जब प्रयोग करते हैं तो कहते हैं कि नदियाँ हँस रही हैं, वायु पंखा झल रहा है आदि। जब कोई किसी बड़े कार्य को अपनी बुद्धिमत्ता से आसानी से कर डालता है तो हम कहते हैं 'तुमने तो पहाड़ को उँगली पर उठा लिया' विचारिये, कृष्ण ने कंस–वध के रूप में इसी प्रकार तो गोवर्द्धन को उठाया था। हम गाया करते हैं– 'पर्वत यदि आये रस्ते में, ठोकर से उसे उड़ा देंगे' या– 'सागर से कह दो थम जाये, पर्वत से कह दो नम जाये' यह सब मानव के दृढ़ संकल्प की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही तो है। ऋषि दयानन्द का गुणगान करते हुए जब हम गाते हैं–

'अन्धों को आँख मिल गई, मुर्दों में जान आ गई' काव्य दृष्टि से इन पंक्तियों में कितना सौष्ठव है, पर यदि इसे साधारण दृष्टि से सत्य माना जाये तो कितना अनर्थ हो जायेगा ? हिन्दी काव्य में छायावाद की एक धारा ही जड़–प्रकृति को व्यक्तित्व देने अथवा प्रतीकात्मक शैली के उपयोग के रूप में सामने आई थी। पर उसका दुरुपयोग ही हुआ, अतः वह अपनी लोकप्रियता को खो बैठी।

अनेकों पौराणिक गाथायें प्रतीकात्मक अलंकारों के रूप में हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव–त्रिदेव की कल्पना अलंकारों के आधार पर ही है। गणेश ब्राह्मण का कार्टून है, शिवजी का सम्पूर्ण वर्णन हिमालय का अलंकारिक वर्णन है, शिवजी का तीसरा नेत्र ज्ञानी की ज्ञान–दृष्टि का उपलक्षण है। गंगावतरण के वर्णन में भी अलंकारवाद का ही पुट है। अलंकारिक चमत्कार के कुछ स्पष्टीकरण के लिये एक पौराणिक धारणा पर विचार करें। कहा जाता है कि स्वर्ग पाने के लिये वैतरणी नदी को पार करना होता है। यह 'वैतरणी नदी' क्या है ? वितरणशीलता, दानशीलता, उदारता की भावना का यह प्रतीकात्मक नाम है। भाव यह है कि जो दानशील और उदार हैं, जो दूसरों को सुख बाँटते –वितरण करते हैं, वही सुख या स्वर्ग पा सकेंगे। गाय–पृथ्वी पर प्रभु–प्रदत्त सर्वोत्तम सम्पत्ति को मरते हुए व्यक्ति द्वारा दान कराने में मूलतः यही भाव है जिसका शुद्धस्वरूप पौराणिकता के पीछे छिपा दिया गया है।

वेद परम प्रभु का अमर काव्य है। साधारण कवियों की कृतियों में जब हमें अद्भुत काव्य–छटा के दर्शन हो सकते हैं तो उस 'कविर्मनीषी' के काव्य का क्या कहना ? वेद के अनेकों अत्यन्त मनोरम और हृदयग्राही अलंकारिक वर्णनों को शतपथ आदि ब्राह्मणों में आख्यान के रूप में समझाने का प्रयास किया गया। बस पुराणकारों ने इन्हीं आख्यानों की धरती पर कल्पना के महलों को खड़ा करके अलंकारों को व्यक्तित्व ही दे डाला। हमारे विचार में अहल्या की कथा का मूल भी वास्तव में वेद में उषा काल का अलंकारिक वर्णन है। अहल्या का अर्थ है रात्रि, **'अह लीयते अस्यां'** दिन जिसमें लीन होता है, रात्रि अथवा सायंसंध्या। गौतम, चन्द्रमा को कहते हैं। इन्द्र नाम सूर्य का है। उषाकाल में अहल्या और इन्द्र का जार भाव काव्य–चमत्कार की पराकाष्ठा है। इन्द्र के सहस्र भग सूर्य की सहस्रों किरणें हैं। अब जरा काव्य रसिक वेद के ललित काव्य सौष्ठव की गहराई में डुबकी लगाकर इसके आनन्द को अनुभव करें। बलि और वामन की गाथा का मूल भी वेद का एक प्रातःकालीन वर्णन है। यहाँ इतना अवकाश नहीं कि इनमें हम विस्तार से जा सकें। किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ में सुविधानुसार शीघ्र ही हम इन पर विशेष रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

वेद में इतिहास की भ्रान्ति

इन काल्पनिक गाथाओं के मूल शब्द वेद में देखकर अनेक विचारशील भी वेद में इतिहास की भ्रान्ति कर बैठते हैं, पर वे भूल जाते हैं कि वेद किसी देश विशेष या काल विशेष का इतिहास न होकर सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। वेद में अयोध्या, गंगा, यमुना, राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, सीता शब्दों को देखकर यह सब भ्रान्ति होती है। पर यदि हम प्रकरण और सृष्टिक्रम आदि को ध्यान में रखकर उन पर विचार करें तो तुरन्त विदित हो जावेगा कि वेद में ऐतिहासिक वृत्तों की छाया भी नहीं है। सचाई यह है कि वेद से लोक–व्यवहार के लिए नामों को लिया गया है न कि वेद में एकदेशीय वृत्तों का वर्णन हो। इस सबसे जो अनर्थ हुआ है, उसका पूर्ण विचार सम्भव नहीं है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस सम्बन्ध में जो मार्गदर्शन कराया है, वह मननीय है।

यह सब तो हमने प्रसंगवश निवेदन कर दिया, हमारा आशय यह है कि रामायण के भी अनेकों काव्यगत अलंकारिक वर्णनों को व्यक्तित्व देकर उन्हें चमत्कार के रूप में वर्णित करके बड़ा अनर्थ किया गया है। आयें, हम इस प्रकार के कुछ रूपकों, प्रतीकों और मुहावरों पर विचार करें।

कुम्भकर्ण का छः मास सोना- यह रावण के सीता–हरण के नीच कर्म के प्रति कुम्भकर्ण की उदासीनता का द्योतक है। छः महीने के समय की बात या तो निरी गप्प ही है या फिर इसके सम्बन्ध में यही सम्भव है कि रावण के सीता को चुराकर लाने के समय से छः महीने के समय तक कुम्भकर्ण ने उसकी ओर घोर उपेक्षा रखी हो। पश्चात् रावण के बहुत कहने सुनने पर आरम्भ में उसने अपना विरोध और अन्त में अपने सहयोग का आश्वासन दिया हो। जो भी हो, एक मनुष्य छः महीने तक लगातार सोने और उसे जगाने के लिए एक पूरा तमाशा करने वाली बातें अस्वाभाविक, बुद्धि–शून्य और रामायण के शुद्ध इतिहास में सन्देह पैदा करने वाली हैं। साधारणतः लोक–व्यवहार में किसी की उपेक्षा या उदासीनता अथवा असहयोग को उसका "पैर लम्बे करके सोना" या "लम्बी तानकर सोना" कहा जाता है। वही आशय यहाँ है।

सीता जन्म- सीता की माता का नाम 'धरणी' था। पृथ्वी को भी धरणी कहते हैं। इसी से यह भ्रान्ति पैदा कर दी गई कि सीता जमीन से पैदा हुई। इस चमत्कार को और भी चमकाने के लिये सीता के धरणी में ही समा जाने की कल्पना और जोड़ दी गई। विशेष विचार अलग से करेंगे।

इन्द्र, वरुण, काल आदि का रावण की पाटी से बँधा होना- बड़ा सुन्दर अलंकारिक वर्णन है। रावण के राज्य में वैज्ञानिक प्रगति का पता इससे लगता है। इन्द्र वर्षा का अधिपति है। वैज्ञानिक प्रयोगों से रावण–राज्य में जब चाहिये कृत्रिम बादल बनाकर वर्षा की जा सकती थी। वरुण जल का अधिपति है और लंका में नलों द्वारा यथेच्छ जल–प्राप्ति सम्भव कर दी गई थी। बड़ी से बड़ी ऊँचाई पर जल पहुँचाना तथा उससे विविध उपयोग लेना सम्भव था। बिजली का बटन दबाकर वायु करना भी सम्भव कर दिया था और आज के वैज्ञानिक युग की भाँति ही वायुयानों द्वारा काल (समय) और दूरी पर भी काबू प्राप्त किया गया था। इस प्रकार आज की वैज्ञानिक प्रगति से भी कहीं अधिक प्रगति रावण–राज्य

में थी। यही सब भौतिक विकास रावण के अहंकार का कारण बना और इसी से अन्ततः उसका सर्वनाश हुआ। वैज्ञानिक प्रगति से मदान्ध आज के संसार को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

आकाश-वाणी- तुलसी रामायण में इसका प्रयोग है। यों तो स्पष्टतया आज यह शब्द रेडियो स्टेशन के लिये प्रयुक्त होता ही है पर अनेक स्थानों पर यह 'अन्तःप्रेरणा' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। काव्य–चमत्कार को न समझने से ही भ्रान्ति है।

अहल्या का शिला या शिलावत् होना- यदि इस कथा को सत्य माना जाय तो यह अहल्या की प्रायश्चित–साधना में तल्लीनता को प्रकट करने के लिए प्रतीकात्मक प्रयोग है। जिस प्रकार विवाह–संस्कार में शिलारोहण–दृढ़ता, ध्रुव दर्शन–अटलता और सूर्य दर्शन–तेजस्विता के प्रतीक हैं। अतः तुलसीदास ने जिस रूप में इसे लिखा है, वह सर्वथा असत्य है।

सीता की अग्नि-परीक्षा- यहाँ 'अग्नि–परीक्षा' शब्द 'शुद्धि संस्कार' के लिए प्रयुक्त हुआ है और 'अग्नि–परीक्षा' तो स्पष्ट ही एक प्रचलित मुहावरा है। 'अग्नि सभा का भी नाम है।' सीताजी को सभा में प्रवेश कराके, सभी की स्वीकृति से राम ने ग्रहण किया। यदि सभा का एक भी व्यक्ति सीताजी की शान में कुछ कह देता तो .... यही सीता की अग्नि–परीक्षा थी। आग में अपने को डालकर कोई व्यक्ति जीवित बचेगा, यह सर्वथा असत्य, भ्रामक और सृष्टिक्रम–विरुद्ध है। हाँ, किसी विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया से निर्मित किसी लेप को शरीर में लगाकर बाजीगरी दिखाना अलग बात है। माता सीता की घोर तपस्या ही उनकी 'अग्निपरीक्षा' थी। हमारे विचार में राम द्वारा सीता के प्रति ऐसे अशिष्ट अशालीन शब्दों का प्रयोग और अनार्योचित अभद्र व्यवहार भी सर्वथा प्रक्षिप्त और अवतारवादियों के चमत्कारवाद का ही अंग है।

समुद्र का हाथ बांधकर खड़ा होना- यह भी काव्यगत अलंकारिक प्रयोग है। ऐसे मुहावरे हम प्रायः प्रयोग करते हैं।

बाली का रावण को काँख में लगाना- 'काँख में लगाना' स्पष्ट ही एक मुहावरा है जिसका अर्थ दबाकर रखने या अधिकार में रखने से है। प्रचलित मुहावरे को भी चमत्कार का रूप देने की बुद्धि की बलिहारी है।

राम-नाम लिख शिला तराई (तुलसी)- यहाँ 'राम–राम कह' शिला तराई नहीं है। अतः इसमें कोई चमत्कार नहीं है। नल–नील की प्रतिभा और वैज्ञानिक कौशल से निर्मित सेतु पर उसके मूल निर्माता राम का नाम लिखना स्वाभाविक ही है, पत्थर का पानी में तैरना ऐसा साधारण अर्थ युक्ति–युक्त नहीं।

सुरसा-समागम- 'सु–रसा' का अर्थ है, बहुत रसीला। भोग रसीले होते हैं। लंका की सभ्यता भोगवादी थी। किसी भी युवक के मन पर लंका जैसे भोगप्रधान क्षेत्र के आकर्षणों का प्रभाव स्वाभाविक है। लंका में प्रवेश करते ही सु–रसा भोगवादी सभ्यता के आकर्षक दृश्य हनुमान् के सामने आये। आकर्षण जितने प्रबल रूप धारण करते थे, हनुमान् की दृढ़ता उससे दूनी होती जाती थी। अन्त में उन्होंने अपने योग–बल (सूक्ष्म रूप) से उस पर विजय प्राप्त की। यह आलंकारिक चमत्कार ही यहाँ

युक्तियुक्त और समाधान–कारक हो सकता है। गोस्वामीजी ने इस सुन्दर अलंकार को व्यक्तित्व देकर इसकी रस–प्रवणता और सौष्ठव ही नष्ट कर डाला है। हा हन्त !

शूर्पणखा की नाक कटना- एक विद्वान् ने राम–लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के प्रस्ताव की अस्वीकृति को ही उसकी 'नाक कटना' लिखा है। 'नाक कटना' अपमान के भाव को प्रकट करने के लिए एक प्रचलित मुहावरा है। अतः यह विवेचन बहुत कुछ उचित दीखता है। यद्यपि हमारे विचार में शूर्पणखा की 'नाक कटना' ऐतिहासिक घटना ही प्रतीत होती है।

लंका-दाह- एक विद्वान् के अनुसार 'आग लगाना' 'फूट डालने' के लिए आज भी प्रयुक्त है। हनुमान् द्वारा लंका–नगरी को अपनी नीतिमत्ता की लपेट में लेकर रावण और विभीषण के बीच फूट की चिनगारी डाली गई और इसी आग में रावण–राज्य ही खाक हो गया। इस विवेचन में कुछ खींचतान–सी तो प्रतीत हो सकती है, फिर भी यह विचारणीय अवश्य है।

राम-रावण युद्ध- इसमें भी कई अलंकारिक वर्णनों को और वैज्ञानिक प्रयोगों को चमत्कार मान लिया गया है। 'युद्ध में राम सबको देखते थे पर राम को कोई नहीं देखता था', इस कथन में कोई चमत्कार नहीं है। राम का युद्ध कौशल ही काव्यमयी शैली में वर्णित है।

राम का अयोध्यावासियों से मिलन- वनवास से लौटने पर राम एक साथ अयोध्या की समस्त प्रजा से मिले। इसमें भी कोई चमत्कार नहीं है। आज भी जब कोई राष्ट्र नेता पधारते हैं तो किसी ऊँचे मंच पर खड़े हो, हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए सब ओर घूम जाते हैं। इस प्रकार एक साथ हजारों, लाखों लोगों से मिल लेते हैं। श्री नेहरू के ऐसे अनेकों मिलन प्रसंग सहृदयों के निकट सदैव स्मरणीय रहेंगे।

पवनपुत्र हनुमान्- ये भौतिक (जड़) हवा के बेटे नहीं थे। पवन या प्रभ जन बल का प्रतीक है। हनुमान् तो रत्नपुर के ऐतिहासिक राजा पवन के पुत्र थे। ●

इसी प्रकार 'वानर' शब्द की भ्रान्ति से वानर नामक वीर जाति को बन्दर बता देना, वानरों के आभूषण लांगूल को पूँछ बता देना और 'राक्षस' शब्द की भ्रान्ति से राक्षस जाति को भी मनुष्येतर महा भयानक प्राणी, असभ्य, बर्बर और क्रूर बताना सत्य के विरुद्ध है।

हो सकता है, हमारे उक्त विवेचन में कहीं–२ आपको कुछ खींचतान–सी प्रतीत हो, क्योंकि घटनाओं को इस बुरी तरह बिगाड़ा गया है जिन्हें सँभालना एक समस्या बन गई है। पर यह सुनिश्चित है कि रामायण के सैकड़ों अलंकारिक वर्णनों और काव्यगत विशेषताओं को अवतारवाद और अलौकिकता की सिद्धि के लिए चमत्कारों का रूप दे डाला गया है। इस सबसे जो महान् अनर्थ और जनहित की हानि हुई है, उसकी पूरी–२ कल्पना नहीं की जा सकती।

● **विशेष विवरण 'शुद्ध हनुमच्चरित' में विस्तार से पढ़ें।**

राक्षस एवं वानर पदार्थ विवेचन

हमारे प्राचीन शिक्षकों का कथन है कि 'राक्षस' कोई भयानक, विशालकाय, कुरूप, वीभत्स, घिनौने, धर्मध्वंसक, यज्ञ–यागविध्वंसक, गोब्राह्मणभक्षक, विजातीय जीव थे, तथा वानर लम्बी पूँछ वाले और काले मुँह वाले पशु थे। इसी तरह अर्वाचीन शिक्षक कहते हैं कि 'राक्षस और वानर मनुष्य तो थे, किन्तु 'वार्बेरियन्स (बर्बर)' और 'अनार्य' थे। वास्तव में 'राक्षस और वानर' यह क्या पदार्थ है, इसका निर्णय करते हुए, उपरिनिर्दिष्ट दोनों प्रकार के शिक्षकों के मतों का विचार करके हमें यह प्रतिपादन करना है कि प्राचीन शिक्षकों के कथनानुसार न तो राक्षस ही कोई भयंकर विजातीय जीव थे और न वानर ही कोई लम्बी पूँछ वाले तथा काले मुँह वाले पशु थे, किन्तु वे हमारे ही सदृश श्रौताचार सम्पन्न मनुष्य थे। उसी तरह अर्वाचीन शिक्षकों के कथनानुसार वे बर्बर या अनार्य भी नहीं थे, अपितु आधुनिक सभ्यता के अत्युच्च शिखरारूढ़ और सभ्यता में पाश्चात्य लोगों से भी बहुत बढ़े–चढ़े थे। इससे यह अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है कि प्राचीन और अर्वाचीन, दोनों प्रकार के शिक्षकों ने जनता को केवल दिग्भ्रमित करके रखा है।

राक्षस भी मनुष्य ही थे

१– राक्षसों का विवाह–सम्बन्ध देव, दानव, दैत्य, असुर, गंधर्व तथा मनुष्यों से हुआ था। इसी से सिद्ध होता है कि राक्षस मनुष्य ही थे, अन्यथा मनुष्यों से उनका विवाह किस तरह होता ?

२– श्री रामचन्द्रजी का सैन्य किष्किन्धा से समुद्र तक पहुँचा। तब रावण को पता लगा कि अब युद्ध टल नहीं सकता। इसलिए उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और पूछा कि, अब क्या करना चाहिए। तब वज्रदंष्ट्र नामक मंत्री ने कहा–

'इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में कुशल, शूर, देखने में प्रौढ़, बड़े पराक्रमी हजार राक्षस मनुष्यवेश में राम के पास भेजे जायँ। वे निर्भयता के साथ श्रीराम के पास जायँ और उससे कहें कि हम आपके भाई भरत के पास से आपकी सहायतार्थ आ रहे हैं। भरत ने ही हमें भेजा है और स्वयं भरत भी बड़ी सेना लेकर पीछे आ रहे हैं।

कामरूपधराः शूराः सुभीमाः भीमविक्रमाः।
राक्षसानां सहस्राणि राक्षसाधिप निश्चिताः।।१३
काकुत्स्थमपसंगम्य बिभ्रतो मानुषं वपुः।
सर्वे ह्यसंभ्रमाः भूत्वा ब्रुवन्तः रघुसत्तमम्।।१४
प्रेषिता भरतेनैव भ्रातातव यवीयसा।
सहि सेवा समुत्थाप्य क्षिप्रमेवोपयास्यति।।१५

– युद्ध सर्ग०८

यहाँ राक्षसों को मनुष्य भेष में श्रीराम के पास भेजने की सलाह रावण को दी है। इससे सिद्ध होता है कि राक्षस केवल भेष बदलने से ही मनुष्यों में मिल सकते थे अर्थात् वे मनुष्य ही थे, अन्यथा यह कैसे हो सकता था ? शत्रु की सेना में वेषांतर करके जाना और वहाँ रहना, यह शरीर, भाषा, भेष, रहन–सहन की समानता के बिना नहीं हो सकता।

(३) रावण संन्यासी के भेष में सीता को ले जाने के लिए श्रीराम के आश्रम में गया था, वह केवल संन्यासी के कपड़े धारण करने से ही संन्यासी जैसा दीखने लगा था। यदि उसका शरीर लोक विलक्षण होता, तो यह कैसे बनता ? इसलिये राक्षस मनुष्य ही थे।

(४) राम–रावण–युद्ध के प्रारम्भ में श्री रामचन्द्र की ओर से स्थिर आज्ञा सब सेना को दी गई थी, वह अब देखिये–

वानर मानवी भेष में न रहें

न चैव मानुषं रूपं कार्यं कपिभिराहवे।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धे स्मिन् वानरे बले।।३३।।
वानरा एव वश्चिह्नं स्वजने स्मिन् भविष्यति।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान्।।३४।।
अहमेव सहभ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा।
आत्मना प चमश्चायं सखा मम विभीषणः।।३५

- वा० रा० युद्ध० सर्ग ३७

'इस युद्ध में वानर कभी मानवी भेष न धारण करें। इस हमारे सैन्य का भेष वानर वेश ही सबका रहे। मैं स्वयं, लक्ष्मण और अपने चार मन्त्रियों के साथ विभीषण–ये सात ही मनुष्य वेश से रहकर शत्रु से युद्ध करेंगे। यह स्थिर आज्ञा थी। जब तक युद्ध समाप्त न होगा तब तक यह आज्ञा जारी रहने वाली थी। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य, वानर और राक्षस के भेष ही अलग–२ थे, उनके शरीर समान अर्थात् मानवी शरीर ही थे। नहीं तो विभीषण मानव भेष से रहेंगे, इसका और क्या अर्थ हो सकता है ? सैनिकों की पहचान वेश से होती है। इसलिए कौन किस वेश (uniform) में रहे, इसकी स्थिर आज्ञा इस तरह दी गयी थी। इससे वानर और राक्षस मानव–शरीर–धारी थे, यह बात सिद्ध होती है।

(५) हनुमानजी सीता की खोज करने के लिए लंका में गये थे, उन्होंने रावण के अन्तःपुर में रावण की स्त्रियाँ देखीं। उनका वर्णन देखिये–

रावणानशंकाश्च काश्चिद्रावणयोषितः।
मुखानि च सपत्नीनां उपाजिघ्रन् पुनः।।५७
अन्या वक्षसि चान्यसाः तस्या काश्चित्पुर्भुजम्।
अपरास्थ्वडंमन्यस्याः तस्याश्चाप्यपरा कुचौ।।६०

उरु-पार्श्व-कटि-पृष्ठं अन्योन्यस्य समाश्रिताः।
परस्परनिविष्टांग्यः मदस्नेहवशानुमाः।।६१
अन्योन्यभुज सूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदाः।।६३
उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा।
विवेकः शक्यमाधातुं भूषणांगाम्बर स्त्रजाम्।।६६

– वा० रा० सुन्दर० सर्ग ६

रावण के अन्तःपुर में देव, असुर गंधर्व, राक्षस और मनुष्य की स्त्रियाँ थीं, वे सब स्त्रियाँ एक दूसरी के साथ मिलकर ऐसी सोई थीं कि उन सबकी एक माला जैसी वन गई थी। निद्रा में एक स्त्री अपनी सपत्नी का मुख रावण का मुख है, ऐसा मानकर सूँघती थी, इतना उनके मन में रावण के विषय में प्रेम था। वे सब स्त्रियाँ कोई किसी के पेट पर, छाती पर, कमर पर, बगल पर, जंघा पर, भुजों पर, परस्पर निर्भयता के साथ अपना सिर रखकर सो गई थीं। इन सबके वस्त्र–भूषण आदि प्रत्येक के अलग–अलग होने पर भी उनके परस्पर एक साथ सोने के कारण कौन सा वस्त्र भूषण किसका है, यह पहचानना असम्भव सा हो गया था।

राक्षसी और मानुषी स्त्री की शरीरयष्टि यदि एक जैसी समान न मानी जाय, तो यह वर्णन कैसे संगत हो सकता है ? यदि राक्षस स्त्री वृक्ष जैसी बडी हो और मानुषी दो–तीन हाथ की ऊँची हो, तो वे दो प्रकार की स्त्रियाँ एक दूसरे के शरीर पर सिर रखकर कैसे सो सकती हैं ? राक्षसों के सिर का भार पडने से मानवी स्त्री दबकर मर जायगी, और मानवी स्त्री सीडी लगाकर भी राक्षसी के कंधे पर अपना सिर नहीं रख सकेगी। पर यहाँ जो वर्णन है वह समान शरीरावयव वाली स्त्रियों का वर्णन है, इसलिए मानवी और राक्षसी स्त्रियाँ समान शरीर वाली थीं, इसमें सन्देह नहीं है। कवि लिखते हैं कि (न) विवेकं शक्यं आधातुं भूषणागांम्बरस्त्रजाम्।' उनके भूषण, वस्त्र आदि में कौन किसका है, इसका पता नहीं लगता था। अर्थात् मानवी स्त्री की माला राक्षसी पहन सकती थी और राक्षसी का गहना मानव–स्त्री पहन सकती थी। अर्थात् मानवी, गन्धर्वी और राक्षसी स्त्रियों में कोई भेद नहीं था। रावण की मुख्य रानी मन्दोदरी में हनुमान् को सीता का भ्रम होना भी इस कथन की पुष्टि करता है।

(६) रावण के अन्तःपुर में जो स्त्रियाँ थीं, उनके सम्बन्ध में वाल्मीकि ऋषि लिखते हैं–

राजर्षि-विप्र-दैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः।
रक्षसां चाभवत् कन्याः सर्वाः तस्य वशंगताः।।६८
युद्धकामेन ताः सर्वाः रावणेन हृताः स्त्रियः।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः।।६६

– सु० सर्ग ६

रावण के अन्तःपुर में जो स्त्रियाँ थीं उनमें राजर्षि, विप्र, दैत्य, गन्धर्व आदि कुल की स्त्रियाँ थीं। रावण के रूप से मोहित होकर वे रावण के पास आयी थीं। अर्थात् रावण का रूप ऐसा सुन्दर था कि

इन जातियो की स्त्रियाँ उस पर काम से मोहित हो जातीं और काम से मोहित होना तो समान शरीराकार रहने पर ही सम्भव है। इसलिए रावणादि राक्षस मनुष्य के सदृश शरीर वाले थे, यह सिद्ध है।

(७) वैषयिक प्रेम समान जातियों में होता है, गौ और घोड़े में नहीं हो सकता तथा पहाड़ जैसा ऊँचा राक्षस और तीन हाथ ऊँची स्त्री में प्रेम का होना सम्भव नहीं। रावण के पास जो स्त्रियाँ आयीं थीं, उनमें कई तो स्वयं उस पर प्रेम करती हुई आयीं थीं। समान शरीराकृति न हो, तो यह कदापि सम्भव नही है।

(८) उक्त स्थान पर जो कुलों का वर्णन किया गया है, उससे सिद्ध है कि राम और रावण की कुल–परम्परा एक ही थी।

श्री रामचन्द्र जी का पितृकुल और रावण का मातृकुल एक ही था। कश्यप पुत्र विवस्वान् के कुल में राम हुए, और उसी विवस्वान् की पुत्री भवा के कुल में रावणादि राक्षस हुए। इस तरह इनकी उत्पत्ति एक ही कुल–परम्परा की है। इसलिए भी मानव तथा राक्षस– ये दोनों मनुष्य ही थे।

इतना और जान लेना आवश्यक है कि 'राक्षस' शब्द कर्मवाची न होकर जातिवाची या भौगोलिक आधार पर प्रयुक्त शब्द है, जैसे कि हम प जाबी, बंगाली, गुजराती अथवा अंग्रेज, फ्रै च, जर्मन, रशियन, चीनी, पाकिस्तानी आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। किसी स्थान विशेष का अथवा जातीय नस्ल के प्रभाव का सामान्य अन्तर आज भी देखने में आता है। गोरखे और जाट सेना के लिए अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। बंगाली प्रायः शरीर से कमजोर पर बुद्धि में प्रखर होते हैं। मराठी, गुजरातियों की अपेक्षा शरीर–बल में तगड़े पड़ते हैं। पंजाब और राजस्थान की वीरता प्रसिद्ध है। तो इसी प्रकार का सामान्य भेद नर (आर्य), वानर और राक्षस में भी हो सकता है। 'राक्षस' शब्द दुष्टकर्मा प्राणी के लिए बाद में रूढ़ हुआ है, उस समय यह जातिवाची ही था। विभीषण के लिए भी राक्षस, राक्षसेश्वर आदि शब्दों के प्रयोग से भी यह तथ्य स्पष्ट है।

राक्षस बर्बर नहीं वरन् सभ्य और सुसंस्कृत थे, इसका परिचय वा० रामायण में कई स्थलों पर मिलता है। राक्षस राज्य की अद्भुत वैज्ञानिक प्रगति, लंका का निर्माण, राक्षस–स्त्रियों की शिक्षा, मन्दोदरी आदि के विविध वस्त्राभूषण, युद्ध–कौशल, राजसभा और उसके नियमों आदि के वर्णनों में उनकी सभ्यता को देखा जा सकता है। अतः सिद्ध है कि राक्षस न तो बर्बर थे और न मनुष्येतर अन्य जीवधारी।

वानर पदार्थ विवेचन

'राक्षस पदार्थ विवेचन' प्रकरण के अन्तर्गत ही बहुत–कुछ स्पष्ट हो चुका है कि वानर भी मनुष्य ही थे। आज भी दक्षिण प्रदेशों में वानर जाति मिलती है। महावीर हनुमान् के संक्षिप्त परिचय में हम उस नरपुंगव के अपूर्व पाण्डित्य, वेदानुशीलन, नीति–ज्ञान, अतुलित शौर्य–पराक्रम, सेवाभाव और ब्रह्मचर्यव्रत के सम्बन्ध में विचार कर चुके हैं। क्या यह सब विशेषतायें एक बन्दर (पशु) में सम्भव हैं ? यहाँ इस सम्बन्ध में कतिपय तथ्यों पर और विचार कीजियेः–

(१) हनुमान् की बातचीत सुन राम, लक्ष्मण को कहते हैं कि यह ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम को अच्छी तरह जानता है तथा इसने अनेक बार व्याकरण पढ़ा है। किष्कि० सर्ग ३।२८

(२) राम–सुग्रीव की मैत्री के समय हनुमान् ने याज्ञिक ब्राह्मणों की भाँति अरणियों से अग्नि को निकाल कर हवन कुण्ड में स्थापित किया। किष्किन्धा ५।१४

(३) हनुमान् की माता अंजना और पिता केसरी बन्दर न थे अपितु धार्मिक पुरुष थे, और मनुष्य की सन्तान पशु, पक्षी कभी नहीं हो सकती। देखो वा० रा० कि० सर्ग ६६।८

(४) वर्षाकाल बीतने पर राज्य सिंहासन पर बैठे सुग्रीव को सीता की तलाश करने के लिए महामंत्री के नाते जो उपदेश हनुमान् ने सुग्रीव को दिया, क्या उसे कोई वेदवित् विद्वान होने के बिना कर सकता है ? देखो कि० २८।८।२७

(५) सीता की सुध के लिए जब हनुमान् लंका की अशोक वाटिका में गया, तो पहले सीता ने उसे रावण समझ कर बातचीत में संकोच किया, पर पीछे जब हनुमान् ने विश्वास दिलाया कि मैं राम का संदेश लेकर आया हूँ, तथा राक्षसों के डर से रात को लंका में दाखिल हुआ हूँ, तब सीता ने प्रसन्नता प्रगट की। देखो सु०का० सर्ग ३५। इससे भी ज्ञात होता है कि हनुमान् बन्दर न थे, पुरुष थे। एक तो यदि बन्दर होते तो हनुमान् में रावण का भ्रम न होता, दूसरे हनुमान् लंका में रात को न आते बल्कि दिन में अन्य पशु–पक्षियों की भाँति आते। फिर राज्य के गुप्तचर भी विदेशी पुरुषों की देखरेख किया करते हैं, न कि पशु–पक्षियों की। अब बाली के सम्बन्ध में विचारें–

बाली की राम से बातचीत, सुग्रीव को संदेश, अंगद को उपदेश तथा मानुषी धर्म शास्त्रानुसार छोटे भाई की स्त्री से बलात् सम्बन्ध करने के अपराध में वध रूप दण्ड श्रीराम के हाथ से मिलने और अन्त में द्विजों की भाँति वेदरीति के अनुसार संस्कार करने या कराने से प्रतीत होता है कि वह बन्दर न था। उत्तर काण्ड में भी लिखा है कि जब रावण युद्ध के लिए आया तो बाली समुद्र तट पर सन्ध्या कर रहा था, देखो (उत्तर का० सर्ग ३४)। स्पष्ट है कि वह न केवल साधारण पुरुष था अपितु वैदिक धर्मी उच्च वर्ण का राजा था।

हमारे विचार से तो वह सूर्य वंश की किसी बिछुड़ी हुई शाखा का फल था क्योंकि उसके पिता का नाम अंशुमान और अन्य वृद्धों का नाम सूर्य या सूर्य–वंशी लिखा है (देखो वा०रा० कि० का० सर्ग ४।१६)। सुग्रीव को जो बाली का भाई था 'भास्करात्मजः सूर्यपुत्रो महावीर्यः' के विशेषण से स्मरण किया गया है। बाली के मरने पर उसकी स्त्री ने उसे 'आर्य कहकर विलाप किया है (देखो कि० २०।१३)। इसी तरह के अनेकों प्रमाण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। सुग्रीव के सम्बन्ध में भी थोड़ा सोचें–

जो लोग सुग्रीव को बन्दर मानते हैं वे तनिक विचार करें या वाल्मीकीय रामायण पढ़कर बतावें कि–

(१) क्या कभी बन्दरों के भी वेदवेत्ता ब्राह्मण मन्त्री होते हैं ? कि० ३।२६।३

(२) क्या बन्दरों की शरण में भी कभी रामचन्द्र जैसे विद्वान या योद्धा जाया करते हैं ? कि० ४।१८।१६

(३) क्या कभी बन्दर भी अग्निहोत्र कर वेद मन्त्रों से मैत्री दृढ़ किया करते हैं ? कि० ५।१४।१६

(४) क्या कभी बन्दरों की भी शास्त्रविहित पाप–पुण्य की मर्यादा देखी है ? कि० सर्ग १८ ।४ ।४१।।

(५) क्या कभी बन्दरों का राजतिलक, रत्न, धूप–दीप या औषधियों के जल से स्नान और हवन–यज्ञ होता है या उनमें राज्याधिकारों की पद्धति ऐसी ही होती है जैसी कि सुग्रीव के वंश में थी ? कि० २६ ।२४

(६) क्या किसी बन्दर को 'आर्य' भी कहा जाता है ? कि० ५५ ।७

(७) क्या बन्दरों में भी कभी तारा, रूमा, अंजना जैसी पतिव्रता और शास्त्र जानने वाली स्त्रियाँ हुईं, देखो। कि० सर्ग ३५ ।३ ।५।

(८) क्या बन्दरों की पत्नी बन्दरी की जगह नारियाँ हो सकती हैं ?

(६) क्या कभी किसी बन्दर को विद्वानों या राजाओं की सभा में बुलाया गया था? उत्तर० का० सर्ग ४०। यदि नहीं, तो क्यों सुग्रीवादि की जाति को आर्य जाति की वानर नाम से प्रसिद्ध एक उप जाति नहीं मानते ? आशा है, इन्हीं प्रमाणों से पाठक अंगद आदि के सम्बन्ध में भी समझ लेंगे।

शंका- इन प्रमाणों को पढ़कर भी कई थोड़ी बुद्धि के पुरुष शंका किया करते हैं कि यदि हनुमान् आदि बन्दर न थे तो उनको वानर, कपि और प्लवग आदि क्यों कहा जाता है, जो कि प्रायः बन्दरों के नाम हैं ?

उत्तर- हनुमान् आदि के ये सब नाम उनके गुण–कर्मों के अनुसार हैं। हनुमान् ने स्वयं सीता से लंका में कहा है। देखो सु० ३५ ।८१ और कि० का० स० ६६ ।२४। परन्तु स्पष्टीकरणार्थ हम इनके अर्थ– १. शब्दकल्पद्रुम, २. शब्दार्थ चिन्तामणि, ३. पदमचन्द्र, ४. शब्दस्तोयमहानिधि और ५. वाचस्पत्य वृहद्विधान आदि संस्कृत के प्रतिष्ठित कोषों में से लिख देते हैं, जिन्हें सन्देह हो, वहाँ देख लें।

१. प्लवग– का अर्थ है नौका व तुलाओं से तरने वाला, क्योंकि प्लव का अर्थ है जलतरण–साधन, देखो मुण्डकोपनिषद् १ ।२ ।७।

२. वानर का अर्थ है, वन के फल–फूल खाने वाला निरामिषभोजी आर्य। यथा–

'वने भवं वानं। वानं राति गृहणातीति।'

३. कपि का अर्थ है– कं जलं पिबेतीति।

कात् आत्मानं पाति रक्षतीति। कम्पते पापात् सदा वा 'कपि'।

१. मद्यादि त्याग, जल पीने वाला २. समुद्र जल में भी अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला तथा सदा पापों से डरने वाला पुरुष कपि है और ये सब गुण हनुमान् में थे। हनुमान् उसका इसलिए नाम था कि उसकी ठोड़ी टेढ़ी थी।

कई लोगों के मत में प्लवग का अर्थ लम्बा कूदने वाला है। इस जाति के पुरुष क्योंकि बन्दरों की भाँति बड़ी–बड़ी कूदें लगा सकते थे इसलिए इनका नाम प्लवग था। अब भी बहुत से पुरुषों के वीर और कायर स्वभाव को देखकर प्रायः लोग उन्हें सिंह और गीदड़ की उपाधियों से बुला ही लिया करते हैं।

वानर उस समय एक जाति (आर्य जाति की उपजाति) थी जिसके पुरुषों में कुछ नियम ढीले पड़ गये थे।

प्रश्न- क्या कोई वानर जाति भी थी ?

उत्तर- हाँ, जैसे नाग, पतग, यक्ष, देव, गन्धर्व स्वभाव और कर्मों से मनुष्य जाति के भेद हैं, वैसे ही वानर जाति भी थी।

प्रश्न- नाग सर्प को और पतग पक्षी को कहते हैं। इन्हें मनुष्य किसने माना है ?

उत्तर- सब ऋषियों ने। देखो, महाराज जटायु पतग जाति के ब्राह्मण और नागों के नाग वंशी राजपूत अब तक भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में हैं। मध्यभारत का प्रधान नगर 'नागपुर' इसी वंश के अगुआ ने बसाया था और अगस्त्य मुनि के आश्रम में इन सब जातियों के विद्यार्थी पढ़ते तथा धर्मानुष्ठान करते थे। देखो (वा० रा० अ० कां० ११।६१)।

यत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह।
वसन्ति नियताहारा। धर्म माराधयिष्णवः।।

विदेशियों की सम्मति- आजकल क्योंकि विदेशियों की राय अधिक विश्वास योग्य मानी जाती है। अतः हम नीचे एक अँग्रेज की राय उद्धृत करते हैं-

'संस्कृत कोशों में वानर उसको लिखा है, जो वन में रहे और अपनी आयु वन के फलों पर काटे। वास्तव में ये लोग किसी समय इसी भाँति अपना जीवन व्यतीत करते थे और भील तथा गोंड लोगों के समान रहते थे।' (देखो, पिक्चर्स आफ इण्डिया पृष्ठ १६६।१६१)

प्रश्न- क्या जिस प्रकार गुण-कर्मों को देखकर हनुमान् आदि की वानर संज्ञा हो गई थी, इस समय भी किसी मनुष्य या मनुष्य समुदाय की पशु-पक्षी संज्ञा हुई है ?

उत्तर- हाँ, आजकल भी बहुत से समाजों या पुरुषों को उनके कर्म को देखकर वैसे नामों से ही बोला वा बुलाया जाता है। जैसा कि अभी थोड़े दिनों की बात है कि जब रूस और जापानियों का युद्धारम्भ हुआ तो जापानियों की कूद-फाँद देख रूसियों ने उनका नाम (यलो मन्की) 'पीले बन्दर' रख दिया था क्योंकि जापानियों का रंग कुछ पीला होता है। यह शब्द वर्षों तक रूस में जापानियों के लिए प्रचलित रहा। रूसी पुरुषों को आज भी सारे योरुप में 'रूसी रीछ' कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार 'ब्रिटिश सिंह' और 'जान बुल' का शब्द अंग्रेजों के लिए प्रचलित है। वस्तुतः जो केवल शब्द को लेते हैं और अर्थ को नहीं सोचते वे सदा भ्रम में पड़े रहते हैं।

वानर जाति सभ्य और सुसंस्कृत थी। महावीर हनुमान् के परिचय-प्रसंग में वानर जाति की सभ्यता और संस्कृति की एक झलक हम देख चुके हैं। सुग्रीव के श्वसुर सुषेण का आयुर्वेद-ज्ञान, विदुषी तारा का राजनीति-ज्ञान, नल और नील का अपूर्व शिल्प-ज्ञान, किष्किन्धा नगरी का वैभव, बाली और सुग्रीव की शासन-नीति के प्रसंग में वानर जाति की उच्च सभ्यता दर्शनीय हैं। वेद, दर्शन, व्याकरण के पठन-पाठन और वैदिक संस्कारों के साथ ही वानर जाति में वर्ण-व्यवस्था का पालन भी होता था-'पण्या पण्यवती दुर्गा चातुर्वर्ण्यं पुरस्कृता' (उ० ३७।७), अर्थात् किष्किन्धा दुर्ग (नगरी) प्रशंसनीया क्रय-विक्रय योग्य और चारों वर्णों से सुशोभित थी। इस प्रकार के अन्य अनेकों प्रसंगों में वानर जाति की उच्च संस्कृति और सभ्यता की झाँकी मिलती है।

(४)

रहस्य-निरुपण

समीक्षा खण्ड-२

अहल्या-उद्धार रहस्य

धर्म–शास्त्रों में जिस प्रकार बाह्मण या ब्राह्मणी को अन्य वर्णस्थ स्त्री–पुरुषों को प्रायश्चित कराने शुद्ध करने की आज्ञा है, इसी प्रकार ब्राह्मण या ब्राह्मणी से कोई निन्दित कर्म हो जाय तो उसका वैदिकधर्मी राजा को प्रायश्चित करने पर शुद्ध करने का अधिकार है। अहल्या–उद्धार का यही रहस्य है।

अहल्या को शाप- वाल्मीकि रामायण में जो शाप (दण्ड) अहल्या को दिया गया, वह उसकी अन्तःकरण की पवित्रता के लिए था। उसमें उसको अन्तःशुद्धि के लिए जो आदेश दिये गये, वे ये हैं–(१) तप कर, (२) उपवास कर, (३) निरशन के पदार्थ फल, मूल, कन्द खाकर रह, घर के बाहर न जा, (४) भस्म पर सोना, सुन्दर शय्या पर न सोना (वा० रा० बाल०), (५) उत्तम वस्त्र न पहन, आभूषण धारण न कर, (६) विरूप बनकर रह, (वा० रा० उत्तर), (७) शरीर क्षीण कर, तप से शरीर सुखाकर कृश बना, (पद्म पुराण), (८) आश्रम की शिला पर बैठ, इधर–उधर न जा, (९) शिला पर बैठकर गर्मी, सर्दी सहन कर, (अध्यात्म०), (१०) ईश्वर–भक्ति कर।

ये सब बातें अन्तःशुद्धि के लिए हैं। जिनसे कामभाव बढ़ते हैं, वे सब बातें यहाँ दूर की गयी हैं और जिनसे अन्तःकरण निर्दोष हो, वे सब बातें यहाँ करने को कही हैं। व्यभिचारी होने पर भी अहल्या का उद्धार होने के उपाय यहाँ कहे और उनके करने पर उसकी शुद्धि होने के बाद उसको समाज में उच्च स्थान भी प्राप्त हुआ। यही समाज धारणा का मार्ग है। (मध्यकाल की भाँति समाज से बहिष्कृत करने की कल्पना भी यहाँ नहीं है।)

कई पुराणों में भी यह कथा है। उनमें इस प्रायश्चित विधान में थोड़ा–२ फर्क है। अध्यात्म रामायण में कहा गया है–'शिलायां तिष्ठ' इसी शिला पर बैठ, इधर–उधर न जा। अलंकारिक रूप में

इसका आशय यह भी लिया गया है 'शिला में बैठ।' लगता है कि अन्धश्रद्धावश अपने ईश्वर राम के साथ चमत्कार जोड़ने के विचार से इसी को अपने ढंग से मोड़–तोड़ कर गो० तुलसीदास ने अहल्या को पत्थर ही बना डाला।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सफेद झूठ है। गौतम–पुत्र शतानन्द और विश्वामित्र सम्वाद से तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है जिसमें अपनी तपस्विनी माता की कुशलता और उसके प्रायश्चित्त की पूर्ति के सम्बन्ध में शतानन्द जानकारी प्राप्त करता है।

वैदिक शिष्टाचार का लोप- वा० रामायण के अनुसार राम ने तपस्विनी अहल्या के चरणों को स्पर्श किया था न कि वैदिक मर्यादा और शिष्टाचार के धनी राम ने ऋषिपत्नी अहल्या को अपना पैर लगाया। कोई साधारण पुरुष भी इस प्रकार अभद्र और अशिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि यहाँ भी अवतारवाद का विष दंश अपना काम कर रहा है। स्त्री का पत्थर हो जाना और पत्थर का पुनः स्त्री बन जाना चमत्कारवाद की लीला है। राम–केवट सम्वाद के प्रसंग में भी 'रावरे दोष न पायन को पग धूरि को भूरि प्रभाउ महा है' कह कर केवट राम को नाव पर नहीं चढ़ने देता। काव्य की दृष्टि से ऐसे प्रसंगों को सरस और मनोरम भले ही कहा जा सके पर इन चमत्कारिक वर्णनों से राम के शुद्ध ऐतिहासिक वृत्त का गला घोंटकर जो अनर्थ किया गया है उसकी पूरी–पूरी कल्पना कर सकना भी कहाँ सम्भव है ? सत्य के प्रति जागरूक आत्माओं के निकट आशा है कि उक्त विवेचन सत्य–दर्शन में सहायक सिद्ध होगा। इस कथा का शिक्षा–सार निम्न है–

राम–लक्ष्मण को यह शिक्षा मिली (१) व्यभिचारी चाहे स्वयं इन्द्र ही हो, उसकी कैसी दुर्गति होती है (२) तप करना पुण्य–कर्म है पर पत्नी की अनुमति से पति तप करे, ऐसी धर्म–शास्त्र की आज्ञा है। यदि पत्नी के मन पर असाधारण दबाव पड़ता रहेगा तो अवसर मिलते ही उसका मन धर्म–मार्ग का उलंघन करने में प्रवृत्त हो सकता है। (३) यदि किसी स्त्री से ऐसा पातक बन जाय तो उसको मृत्यु तक पतित नहीं समझना चाहिए। उसे पूर्ण पश्चात्ताप होने पर प्रायश्चित कराके पुनः समाज में ले लेना चाहिए।

प्रश्न- अहल्या की कथा सत्य है या काल्पनिक ?

उत्तर- अहल्या की कथा कई पुराणों में भी मिलती है। उसमें भिन्नता है, अतः अहल्या की कथा हमारे विचार में काल्पनिक है वेद में वर्णित एक सुन्दर अलंकार को जिसमें उषाकाल का वर्णन है, इतिवृत्त का रूप दे दिया गया है।

सीता-जन्म रहस्य

प्रश्न- सीता का जन्म पृथ्वी से हुआ था, वे 'अयोनिजा' थीं। क्या यह सत्य है?

उत्तर- यह सर्वथा असत्य, निराधार, भ्रामक और मिथ्या कल्पना है।

जिस तरह वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायणादि के विरुद्ध अकारण ही लोगों में अहल्या के पत्थर होने और राम के पद–रज–स्पर्श से स्वर्ग को चढ़ जाने का सिद्धान्त गढ़ा गया है, इसी तरह

सीता के जन्म की बाबत भी मिथ्या संस्कार बैठा हुआ है कि वह 'अयोनिजा' होने के कारण पृथ्वी से प्रकट हुई थी और उसको जन्म देने वाली माता व साथ लेने वाले भाई, बहिन कोई नहीं थे। इस मिथ्या सिद्धान्त से न केवल ईश्वरीय नियम, सृष्टिक्रम तथा वैदिक सिद्धान्त को धब्बा लगता है, अपितु इतिहास की भी जड़ें खोखली हो जाती हैं और आर्य जाति के अपूर्व आत्म–बलिदान एवं पौरुष से निर्मित रामायण के समान महान् इतिहास भी उपन्यास एवं किस्सा–कहानी जैसा प्रतीत होने लगता है। इसलिए यहाँ पर हम सीता के जन्म के विषय में वाल्मीकीय, अध्यात्म एवं अद्भुत रामायणादि के पुष्ट प्रमाणों द्वारा इस विषय पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

संस्कृत के कोषों में अपने से पैदा हुई पुत्रियों को आत्मजा, तनया, सुनुः, सुता और जन्म देने वाली माताओं को जनयित्री, प्रसू, माता, जननी नामों से पुकारा जाता है। पौराणिक समय के अमरकोष तक में यही लिखा है–

आत्मजस्तनयः सूनुः पुत्रः त्वपि।
स्वजाते त्वौर सारस्यौ तातस्तु जनकः पिता।।
जनयित्री प्रसूर्माता जननी, भगिनी स्वसा।

(अमरकोष द्वितीय काण्ड मनुष्य वर्ग श्लोक २७,२८) इसके अलावा धात्वर्थ से भी 'सुता' का अर्थ प्राणि–गर्भ से उत्पन्न हुई ही है। आगे हम बतलावेंगे कि सीता महाराजा जनक तथा महारानी धरणि की आत्मजा, सुता व तनया (देह से पैदा की हुई) 'सुता' थी न कि पृथिवी से पैदा हुई धर्मपुत्री। इसी प्रकार यशस्विनी महाभागा महारानी धरणि सीता को जन्म देने वाली जननी (माता) तथा राजा जनक जन्म देने वाले पिता थे, न कि पालन करने वाले मां–बाप। साक्षी के लिए सबसे प्रथम हम वा० रामायण के ही कई एक प्रमाण देते हैं जिनमें स्वयं महाराजा जनक सीता को 'सुता' व 'आत्मजा' कहते हैं–

जनकानां कुले कीर्ति महारिष्यति मे सुता।

– बा० का० सर्ग ६७। श्लोक २२

पूर्व प्रतिज्ञा विदिता वीर्य शुल्का ममात्मजा।

– बा० का० सर्ग ६८ ।७

सेयं मम सुता राजन्।

– बा० का० सर्ग ६८ श्लोक ८

सीता स्वयं अपनी माता धरणि को और पिता जनक को जन्म देने वाले और छोटी बहिन उर्मिला को अनुजा (पीछे पैदा होने वाली) कहती है। यथा–

१. जिस समय अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया, तब सीता ने यह शब्द कहे कि हे देवि! वन को चलते हुए मेरी सास ने तथा विवाह के समय में मेरी जननी ने यही उपदेश दिया था, जो मैंने अपने हृदय में धारण किया हुआ है। तथा–

पाणिप्रदान काले च यत्पुरा त्वन्ति सन्निधौ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम्।।

— अयोध्या काण्ड सर्ग ११८।८

इस श्लोक में टीकाकार लिखते हैं कि– **मात्रानुशासनमपि मेहृद्गतमेवास्ति**- अर्थात् विवाह समय की मेरी जननी (माता) की शिक्षा मेरे हृदय में ही है। इससे सिद्ध है कि सीता की माता एक चेतन स्त्री थी, न कि जड़ पृथिवी क्योंकि पृथिवी में उपदेश करने की शक्ति नहीं होती।

इसी प्रकार सीता अनुसूया को अपना इतिहास सुनाती हुई कहती है कि मेरी युवावस्था होने पर मेरे जन्मदाता ने प्रतिज्ञा की थी कि –

स्वयंम्वर तनूजायाः करिष्यामीति धर्मतः।।२।११८।३८
मम चैवानुजा साध्वी उर्मिला शुभ दर्शना।२।११८।५३

यहाँ सीता की छोटी बहिन उर्मिला थी, यह स्पष्ट है। क्या उर्मिला भी अयोनिजा थी ? श्री रामचन्द्रजी ने भी वनगमन के प्रसंग में अयोध्या काण्ड के २८ वें सर्ग में 'सीते महाकुलीनासि' कह कर उसके ब्रह्मनिष्ठ जनक के कुल में जन्म लेने की प्रशंसा की है।

हनुमान् जी ने भी लंका काण्ड में जनकसुता ही कहा है। रावण को अपना परिचय देती हुई सीता अपने को जनक की पुत्री और दशरथ की पुत्र–वधू बतलाती है।
अब अद्भुत रामायण का प्रमाण लीजिये–

धरणि तनयया यद्दतं कृत्यं धरण्यां कृत मिह मनसातच्चिन्तयन्ते द्विजेन्द्राः।

— सर्ग २३ श्लोक ७२

अर्थात् धरणि रानी की सुता (सीता) ने (धरणि) पृथ्वी पर अद्भुत कर्म किये।
सन्त तुलसी ने भी सीता को जनक–तनया कहा है–

तात जनक तनया यह सोई। धनुष-यज्ञ जेहि कारण होई।।

रामायण के प्रसिद्ध समालोचक श्रीयुत् सी.वी वैद्य एम. ए. एल. एल. बी. आनरेरी फैलो यूनीवर्सिटी आफ बॉम्बे भी इस विषय में नीचे का श्लोक लिखकर सम्मति देते हैं–

विदेहराज जनकः सीता तस्यात्मजा विभो।
यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषी प्रिया।।

"सीता को जनक की पुत्री कहा जाता है किन्तु उसके पृथ्वी से उत्पन्न होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उक्त श्लोक उसको 'अयोनिजा' सिद्ध नहीं करता" –रिडल आफ रा.१६०।

यदि सीता विदेह जनक की पुत्री नहीं होती तो जनक जैसे सत्यवादी ब्रह्मवेत्ता २२ पीढ़ियों का क्रमशः नाम लेकर सीता को अपनी आत्मजा पुत्री कदापि स्वीकार नहीं करते।

भ्रम का कारण- स्वाभाविक रूप से प्रश्न होगा कि यदि सीता जी अपनी माता से उत्पन्न हुई, तो फिर उन्हें पृथ्वी से उत्पन्न हुई, क्यों कहा और क्यों माना जाने लगा। इसके कारण निम्न प्रतीत होते हैं–

१. सीता के भक्तों की ओर से 'अयोनिजा' का विचार अध्यात्म रामायण के २३ वें सर्ग से होता है। अर्थात् जैसे रामकृष्णादि को ब्रह्मबुद्धि से उपासना करने वालों ने उनके जन्म और कर्म विचित्रता से बतलाये हैं– वैसे ही सीता के भक्तों ने सीता को अन्ध भक्ति से पृथ्वी से पैदा हुई मान लिया है।

२. सीता, चूँकि हल की (पृथ्वी पर खिंची) लकीर (रेखा) का भी नाम है –उसी को सिया भी कहते हैं। इससे भी प्रायः सीता और सिया यह नाम मान लिया और पृथ्वी से उत्पन्न होने की भ्रान्त धारणा बना ली गई।

३. धरणि नाम पृथिवी का भी है और सीता की जननी का भी। जैसे कि गंगा नाम भागीरथी नदी का और वही नाम महाराजा शांतनु की पटरानी भीष्मजी की माता का भी होने से विचारहीन पुरुषों ने भीष्म जी को गंगा नदी का पुत्र मान लिया क्योंकि गंगा शब्द स्त्रीलिंग है। अतः जहाँ पर गंगा की मूर्ति का विवरण आता है, वहाँ वही स्त्री के मनुष्याकार रूप में लिखी जाने लगी। और नदी का भी नाम बनाये रखने को उनकी सवारी मकर पर बना देते हैं कि जिससे दोनों बातें बनी रहें। यह सब पौराणिक पोप–लीला है।

४. **सीता और धरणि-** यथार्थ में यौगिक नाम हैं, महाराजा जनक जी राजर्षि कहलाते थे। उनके प्रायः ब्रह्म–विचार में रत रहने से राज्य का सब प्रबन्ध उनकी स्त्री स्वयं करती थीं, इसी से उनका नाम धरणि था। सीता (लांगल पद्धति) हल की रेखा, जिस प्रकार अपने में बीज वपन कर बहु गुणा कर देती है इसी प्रकार (जनकसुता) विद्यादि शुभ गुणों के बीजों का अपने हृदय–क्षेत्र में धारण कर अभ्यास द्वारा इतना बढ़ाती थी कि थोड़े ही काल में वह विद्या बहुगुणी होकर साक्षात् हो जाती थी।

५. सीता एक वैदिक शब्द है। वेद में एक 'सीता सूक्त' है, जिसमें कृषि–विद्या का वर्णन है। बहुत सम्भव है उसी के आधार पर यह भ्रान्ति पैदा की गई हो।

सीता-अग्नि परीक्षा रहस्य

लंका विजय के पश्चात् जब सीता को राम के समक्ष लाया गया, उस समय राम सीता को अत्यन्त कठोर और मर्मस्पर्शी शब्द कहते हैं। सीता, राम को अनेकविध विश्वास दिलाती है, पर राम को विश्वास नहीं होता। अन्त में सीता चिता में प्रविष्ट होती हैं, पर अग्नि उन्हें जलाती नहीं। अग्निदेव राम के सामने करबद्ध खड़े होते हैं और सीता के सतीत्व की साक्षी देते हैं तब कहीं राम सीता को ग्रहण करते हैं।

वस्तुतः यह सम्पूर्ण प्रकरण सर्वथा असत्य और प्रक्षिप्त है। यह अवतारवादियों एवं चमत्कारवादियों की पोप–लीला मात्र है। इसमें श्रीराम जैसे देव पुरुष का मिथ्या भाषण, अनार्योचित व्यवहार, नारी के प्रति घोर अपमान की भावना और चमत्कारवाद की लीला देखने को मिलती है।

सच तो यह है कि सीता का सम्पूर्ण जीवन ही अपने आपमें एक 'अग्नि–परीक्षा' था। इस प्रसंग में इतना ही सम्भव है कि नीति–कुशल राम ने 'अग्नि' नामक आचार्य के आचार्यत्व में सीता का 'शुद्धि संस्कार' कराके उन्हें ग्रहण किया हो। अथवा लोक–व्यवहार की दृष्टि से राम ने सीता–ग्रहण में अपना असमंजस प्रकट किया हो, तभी अग्नि अर्थात् किसी विद्वान् ब्राह्मण या सभा द्वारा सीता को सम्मानपूर्वक स्वीकार करने की व्यवस्था दे दी गई हो।

अन्य प्रसंगों की भाँति अवतारवादियों ने इस सहज से प्रसंग को भी खूब रंग दिया तथा इसे अलौकिक और चमत्कारिक बनाने की चेष्टा की गई। अग्नि की लपटों में सीता का बच जाना और अग्नि का पुरुष वेश धारण कर राम से प्रार्थना करना यह सब असम्भव और सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। पर महापुरुष राम को ईश्वर बना डालने पर तुले हुए महानुभावों को यह सब विचारने की कहाँ गुंजाइश थी ? उन बेचारों ने इसके दुष्परिणामों की सम्भवतया कल्पना भी नहीं की होगी कि इस प्रकार के चमत्कारों से हम राम के ऐतिहासिक अस्तित्व को ही मिटाने का अक्षम्य अपराध कर रहे हैं।

जटायु-जाति रहस्य

वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, रघुवंश और महाभारत आदि के अनेकों प्रमाणों से (जिन्हें हम यहाँ स्थानाभाव से नहीं दे रहे) स्पष्ट है कि रावण से युद्ध करने वाला और सीता की रक्षा के लिए बन्दा वैरागी की भांति अपने समाधि–सुख को त्याग शस्त्र धारण करने वाला महात्मा जटायु पक्षी न था, अपितु महाराज दशरथ का वयस्य (सहवासी, समान आयु या एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाला), अरुण ऋषि का पुत्र कश्यप गोत्री सम्पाति का छोटा भाई विज्ञान–विद्या आदि में प्रवीण वानप्रस्थी ब्राह्मण था।

शंका- साधारण बुद्धि के मनुष्य शंका करेंगे कि इसमें क्या प्रमाण है कि वह दशरथ का मित्र (सखा) और मनुष्य था? क्या मनुष्य के पशु–पक्षी सखा नहीं हो सकते जो कि उनके साथ सदा उपकार करते रहते हैं ?

उत्तर- १. यह सच है कि मनुष्य के गौण रूप में उपकार करने वाले पशु–पक्षी भी मित्र कहला सकते हैं, पर उन उपकारी जीवों को कहीं भी 'वयस्य' 'आर्य' 'तात' तीर्थभूत, महान् साधु, पूजनीय, मान्य, महाराज आदि शब्दों से सम्बोधित नहीं किया जाता।

२. और नाहीं पशु–पक्षी अग्निहोत्रादि नित्यकर्म करते या कर सकते हैं, जैसा कि 'कृताह्निक' शब्द से जटायु के वंश में सिद्ध होता है।

३. और नाहीं किसी पशु का मृतक संस्कार वैदिक विधि से करना लिखा है। जैसा कि वा० राम० अरण्य काण्ड सर्ग ६८ श्लोक ३० तथा पद्मपुराणादि में पाया जाता है कि श्री रामचन्द्रजी ने उसका वेद–विधि (रीति) से अन्येष्टि संस्कार किया। यथा– 'संस्कारमकरोत्तस्य रामो ब्रह्मविधानतः।'

४. कोई पशु एवं पक्षी चाहे वे कितनी ही बड़ी आयु के भी हों कभी राजा या राजकुमारों को शिशु नहीं कह सकते और नाहीं वे किसी बुद्धिजीवी पुरुष या स्त्री की रक्षा करने की शक्ति और बुद्धि रखते हैं।

५. पक्षियों का पुरुषों के साथ गोष्ठी (वार्त्तालाप) करना भी असम्बद्ध या असम्भव है।

नोट- देखो अमरकोष कां० २ सर्ग ६ श्लोक १२।

प्रतिकूल तर्क- महात्मा जटायु को पक्षी मानने वाले यह तर्क करेंगे कि यदि जटायु मनुष्य था तो इन ग्रन्थों में उसके लिए जटायु, गृध्र, गृध्रराज, लूनपक्ष, पक्षी, पतगेश्वर आदि शब्द क्यों आये हैं जो कि प्रायः पक्षी विशेष के वाचक हैं तथा युद्ध में शस्त्रों के स्थान में इसकी ओर से तुण्ड (चोंच) से प्रहार क्यों लिखा है ?

सावधान- ये जो नाम दिये गये हैं उसके गुणों को देख कर यौगिक भाव से दिये गये हैं, जो कि संस्कृत कवियों ने साहित्य के भूषण माने हैं। इनको न समझना या अन्यथा समझना हमारा दोष है न कि ऋषियों या कवियों का। जैसे कि कहा है– 'नायं स्थाणोरपराधो यतेनमन्धो न पश्यति।'

जटायु- का अर्थ है बड़ी उमर वाला, देखो शब्द कल्पद्रुम। 'जट' सहत (दृढ़) आयुःयस्य सः जटायुः।

पक्षी- का अर्थ है दृढ़ पक्षी– स्कन्धों वाला या पितृ कार्यादि के ग्रहण (वरण) के योग्य वैदिक विद्वान् आर्यों के सत्पक्ष पालने वाला। सो ये सब गुण जटायु में थे। यही कारण है कि उसने राम का जीवनान्त तक पक्ष (सहाय) किया।

पक्ष शब्द स्कन्धादि का वाचक भर्तृहरि के समय में भी माना जाता था, इसीलिए लिखा है 'वरं पक्षच्छेदः' इत्यादि।

गृध्र- का अर्थ है वीर योद्धा, गृह्णति अभिकांक्षति युद्धमिति, जो सदा युद्ध को चाहे।

जटायु क्योंकि प्रसिद्ध योद्धा था इसीलिए इसको गृध्रराज भी कहा है। रावण ने इसकी भुजा काटी इसीलिए इसे राम ने 'लूनपक्ष' कहा।

पतग- इसका नाम इसलिए है कि वह पक्षियों की भाँति दो पक्ष वाले विमान में बैठकर इतना ऊँचा उड़ता था कि वहाँ से पर्वत उपलों की तरह, हिमालय व विन्ध्याचल जलाशय में हस्तियों की तरह तथा बड़ी नदियाँ सफेद धागों, तन्तुओं के समान दिखाई देती थीं। देखो किष्किन्धा कां० सर्ग६१ श्लोक ८।१७। पतगेश्वर भी इसी निमित्त कहा है।

पतग जाति के अनेकों मनुष्य महर्षि अगस्त्य के आश्रम में धार्मिक तत्त्व समझने भी आया करते थे, देखो वा० रा० आ० का० सर्ग ११ श्लोक ११। गृध्रराज पतगेश्वर का ही पर्याय है।

तुण्ड- चोंच का नाम नहीं किन्तु उसके उस शस्त्र का नाम है जिससे ये रथ के अन्दर बैठे हुए शत्रु के अंगों पर प्रहार कर सकता था। महाभारतादि में तुण्ड नाम एक राक्षस का भी है जिससे नल का युद्ध हुआ।

तुंडेन च नलस्तत्र पटुश पनसेन च।३।२।८४।६

यह बात संस्कृत भाषा में नहीं किन्तु प्राकृत में भी पाई जाती है कि कई एक जातियों या व्यक्तियों का नाम भी ऐसा होता है जो पशु–पक्षियों का भी है जैसे पंजाब में एक 'सूरी' और एक 'बैल' जाति है और गुरु गोविन्दसिंह के शिष्यों को केवल 'सिंह' बोला जाता है और इसी प्रकार कई व्यक्तियों के नाम तोता, मैना, नीलकण्ठ आदि भी हैं।

और जैसे कोई पाठक रामदास सूरी वा गोपालचन्द बैल, तोता, पाधा, मैना, कहारन, नीलकण्ठ से इन पशु–पक्षियों को मनुष्यों का काम करने वाला मान ले और गुरु गोविन्दसिंहजी के इस वचन को कि–

'एक-२ सिंह लड़े लाख ही म्लेच्छन सौं।
तित्तिरों पै बाज जैसे शेर मृगान में।।

शेरों और मुसलमानों की लड़ाई में लगा ले तथा विचारे कुछ न, तो यह क्या कवियों का दोष है ?

जटायु का कुल या गोत्र

अब प्रश्न होगा कि यदि जटायु पुरुष था तो उसका कुल, गोत्र, माता, पिता, भाई, बन्धु, वर्ण, आश्रम, इष्ट–मित्र आदि कौन थे ?

इसके उत्तर में हम रामायण के आधार पर कह सकते हैं कि वह मरीचि वंश के कश्यप गोत्री अरुण राजा का कनिष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम श्येनी तथा बड़े भाई का नाम सम्पाति था। वर्ण इसका ब्राह्मण, आश्रम वानप्रस्थ तथा इष्टमित्र महाराजा दशरथ आदि थे।

हम प्रसन्न होंगे अगर कोई समालोचक इसकी समालोचना करता हुआ अन्य प्रमाण ढूँढ़ने से पूर्व हमारे प्रमाणों वा युक्तियों का भी उत्तर देगा।

रामायण के प्रसिद्ध समालोचक श्रीयुत् चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल० एल० बी०, फेलो ऑफ बाम्बे यूनीवर्सिटी ने भी जटायु को मनुष्य माना है। पर खेद है कि पूर्ण अनुसंधान न करने के कारण दशरथ के मित्र (ब्राह्मण) होने के स्थान में उसे उनका नौकर माना गया है।

रावण के दश सिरों का रहस्य

जिस तरह जटायु तथा हनुमान् के सम्बन्ध में अनहोनी प्रसिद्ध है, वैसे ही रावण के दश सिर और बीस भुजादि की बात भी प्रसिद्ध है। परन्तु हम नीचे वाल्मीकीय रामायण से ही दो चार प्रमाण लिखते हैं जिससे सिद्ध है कि रावण के न दश सिर थे, न बीस भुजायें थीं। हाँ, कवियों ने उसकी युद्ध शक्ति को देखकर दश सिर वाला तथा बीस भुजा वाला कहा होगा जैसा कि राम के पिता को दश रथियों के समान बल वाला देखकर दशरथ, दत्तात्रेय को तीन शिर, ब्रह्मा को चार मुख, शिव को पाँच मुख, सोम कार्तिक को छः मुख वाला इनकी शक्ति आदि को देखकर कहा गया है।

(१) रावण की आकृति मनुष्य की ही थी। इसी कारण वह सीता स्वयंवर में गया तथा वन में से सीता हर लाया। यदि उसकी जाति या रूप मनुष्य से भिन्न होता तो वह यह दोनों मनुष्यों के कर्म न कर पाता।

(२) जब हनुमान् लंका में गया तब उसने रावण की दो बाहु और एक मुख का वर्णन किया है। देखो वा० रा० सु० कां० सर्ग १० श्लोक २१।२४।।

ददर्श कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रूषिताविव।।२१
तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात्।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम्।।२४

यहाँ (बाहू) द्विवचन और (महामुखात्) एक वचन है।

(३) इन वाक्यों का अर्थ करते हुए टीकाकार तिलक ने लिखा है–

'अत्र द्वि भुजत्वकथनाद्युद्धादि काल एवं विंशति भुजत्वं दशशीर्षत्व चेति बोध्यम्'

अर्थात् युद्धादि स्थलों पर ही बीस भुजादि का वर्णन उसके बलादि की दृष्टि से ही किया गया है। नीचे के प्रमाण से सिद्ध होता है कि युद्ध में भी एक शिर और दो भुजादि ही थे १०।२० नहीं।

(४) जब राम रावण से युद्ध कर रहे थे, तब राम ने कहा, रावण आज मेरे वाणों से कटा हुआ तेरा शिर माँसाहारी जीव युद्ध की भूमि में उछालेंगे।' देखो यु० कां० सर्ग १०३ श्लोक २०।

अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
क्रव्यादा व्यापकर्षन्तु विकीर्ण रणपांसुषु।।१०३।।२०

(५) जब इन्द्रजित् मारा गया और रावण विलाप करने लगा तो उस समय के वर्णन में भी पाया जाता है कि रावण के दो नेत्र या एक ही शिर था। देखो युद्धकाण्ड सर्ग २ श्लोक २२।

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रपातन्नश्रुबिन्दवः।
दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः।।६२।२२

(६) जब रावण मरा तब भी उसके एक मुख (शिर) दो भुजा तथा दो पाँव ही थे जैसा कि लिखा है–

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्तते।
हतस्य वदनं दृष्टवा काचिन्मोहमपागमत्।।११०।६
काचिदं के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती।
स्नापयन्ती मुखं वाष्पैस्तुषारैरिव पंकजम्।।११०।१०

अर्थात् रावण के मरने पर कोई तो उसकी दोनों भुजाओं को उठाकर (जीवन परीक्षार्थ) पुनः पृथ्वी पर उन्हें फेरने लगी। कोई मरे हुए रावण के मुख को देखकर मूर्छित होने लगी। कोई उसके शिर को गोदी में रखकर उसको देखती हुई रोने लगी।

यहाँ 'भुजौ' द्विवचन और 'वदनम्' तथा 'शिरः' एकवचन दिखाने से स्पष्ट है कि उस समय भी रावण का एक शिर और दो भुजाएं ही थीं। आजकल की कल्पना केवल कवियों के अलंकार युक्त शब्द के न समझने के कारण मूर्खों की कृपा से फैली है।

(७) युद्ध काण्ड के ११ सर्ग श्लोक ३४, ३५, ३६, ३७ में मन्दोदरी ने रावण के एक मुख (शिर) का ही वर्णन किया है। (८) इसके अतिरिक्त नेत्र शब्द दो संख्या का ही वाचक है। १० ।२० का नहीं।

परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य एक शिर तथा दो भुजा वाले ही होते हैं। दश शिरादि की कल्पना सृष्टि नियम के विरुद्ध भी है और अनेकों भ्रमों की उत्पादक भी।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है कि रावण जहाँ निज स्वरूप में है उसका वर्णन एक शिर और दो भुजा वाले के रूप में ही है किन्तु जहाँ दूसरों के समक्ष भय प्रदर्शनार्थ उसका वर्णन आता है, उसे दशग्रीव या दशानन कहा गया है। इसका भी कुछ रहस्य हो सकता है।

स्वामी ब्रह्ममुनिजी महाराज इस विषय में लिखते हैं–

"रावण के दश सिर होने की चर्चा रामायण में आती है, साथ में राम जिस शिर को वाण से काट देता था पुनः उसके स्थान पर दूसरा शिर उभर आता था, यह भी वर्णन आता है। वा० रा० युद्ध०१६७ ।५४ ।५५ में इसका स्पष्ट उल्लेख है।"

अब यहाँ यह विचारना चाहिये कि जन्म का अंग कट जाने पर पुनः उसके स्थान पर दूसरा उत्पन्न नहीं हो सकता, हाथ कट जावे तो पुनः उत्पन्न नहीं हो सकता एवं पैर या शिर कट जाने पर भी वह पुनः उत्पन्न नहीं हो सकता। इससे सिद्ध होता है। कि रावण के दश शिर जन्म के नहीं थे, जन्म के होते तो उनके कट जाने पर पुनः उत्पन्न न होते। और रामायण के शब्दों में भी शिर के कट जाने पर उसके स्थान पर दूसरा उत्पन्न हो गया, ऐसा शब्द न होकर शिर 'उत्थित' ऊपर उभर आया ऐसा है। अतः रावण के दश सिर कृत्रिम अर्थात् बनावटी थे, यही समझना चाहिए। रावण आदि मायावी माया करने वाले अर्थात् ऐन्द्रजालिक थे यह तो रामायण में स्थान–स्थान पर बतलाया ही है। उसके द्वारा माया अर्थात् वैज्ञानिक कौशल करना भी रामायण में आता ही है। रावण ने लंका में राम का बनावटी शिर कटा हुआ सीता के सम्मुख रखा था, इसको मधुजिह्व राक्षस ने बनाया था। इन्द्रजित ने बनावटी सीता का संग्राम में राम के सम्मुख वध किया ही था। इसी प्रकार रावण के दश शिर भी बनावटी थे, यह माना जा सकता है। युद्धकाल में शत्रु को धोखा देने के लिए ऐसा प्रयोग किया गया होगा कि शत्रु वास्तविक शिर को न काट सके ● जो कि उनके नीचे छिपा रहता था जिसके काटने का भेद विभीषण ने राम को बतलाया था। वे कृत्रिम शिर रबर और स्प्रिंग के बने हुए होंगे जिससे एक के कट जाने पर दूसरा उसके स्थान पर ऊपर उभर आता था, बस यह है रावण के दश शिर होने का रहस्य।

● योरोप के युद्ध में जर्मनी के हिटलर ने भी अपनी शक्ल के १० हिटलर बना रक्खे थे।

हमारे अपने विचार में रावण के कटे शिर के पुनः उभर आने की बात प्रक्षिप्त है। उसे दशग्रीव व्य जना शैली में बल प्रदर्शनार्थ ही कहा गया है।

शंका-समीक्षा

(१)

राम के जीवन की महत्ता प्रदर्शित करने के पश्चात् उनके ऊपर किए जाने वाले कुछ आक्षेपों का विचार करते हैं।

प्रश्न- राम ने शूर्पणखा के नाक–कान कटवा दिये। यह राम ने स्त्री पर प्रहार किया जो ठीक नहीं, मर्यादा के विरुद्ध है।

उत्तर- राम राजकुमार थे। यह राजधर्म की बात है कि यदि स्त्री पाप वश दण्डनीय हो तो उसे अवश्य दण्ड दे। देखिये विश्वामित्र ऋषि ने ताड़का–वध के लिये राम को क्या आदेश दिया है–

नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्य हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना।।

– बाल० २५।१७

हे राम! तुझे स्त्रीवध में घृणा न करनी चाहिए, चातुवर्ण्य के हितार्थ स्त्रीवध भी राजपुत्र का कर्तव्य है, क्योंकि–

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा।।
राज्यभार नियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्या जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते।।
श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्।।
विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नीं पतिव्रता।
अनिन्द्र लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता।।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः राज्यपुत्रै र्महात्मभिः।
अधर्म सहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः।।
तस्मादेतां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप।

– वा० रा० बा० २५।१८।२२

"चाहे हिंसा कर्म समझा जावे या अहिंसा कर्म समझा जावे, पातक हो या दोषयुक्त हो परन्तु प्रजारक्षण के कारण राज्य संचालकों को ऐसा करना ही चाहिए, यह सनातन धर्म है। हे राम! यह ताड़का पापिनी है, इसमें धर्म नहीं है। अतः इसका वध कर। इस प्रकार दुष्टा पापिनी स्त्रियों का वध

पुराकाल में पुरातन राजपुत्रों (राजाओं) ने भी किया है। इन्द्र ने पृथ्वी को नष्ट करना चाहती हुई विरोचन–पुत्री मन्थरा का हनन किया। विष्णु ने अनिन्द्रता चाहती हुई भृगुपत्नी काव्यमाता का हनन किया। इसी प्रकार अनेक महात्मा राजाओं ने भी अधर्मयुक्त स्त्रियों का वध किया। अतः इस घृणा को छोड़कर मेरे आदेश से इस ताडका को मार।"

शूर्पणखा के प्रसंग में भी ऋषि विश्वामित्र की यह शास्त्रीय व्यवस्था राम के सामने थी। इसी कारण उस दुष्टा, कुलटा और अकारण सीता पर आक्रमण करने वाली राक्षसी के नाक कान कटवा देना सामाजिक मर्यादा को सुस्थिर रखने की दृष्टि से एक धर्मात्मा राजा के निकट सर्वथा उचित और आवश्यक था। शूर्पणखा कामोन्मादिनी और कुलटा भी थी, यह कभी राम और कभी लक्ष्मण के पास जाने से उसके व्यवहार से स्पष्ट हो ही चुका था।

(२)

प्रश्न- राम ने वन में, मृग अर्थात् हिरण जैसे दयनीय प्राणियों का वध किया, इससे उनके द्वारा हिंसा करना और माँस खाना दोनों दोष सिद्ध होते हैं जो कि उनकी महापुरुषता में अश्रद्धा कराते हैं।

उत्तर- इसके सम्बन्ध में वक्तव्य है कि राम ने मृग मारे, यह ठीक है, परन्तु मृग का अर्थ हिरण ही लेना उचित नहीं क्योंकि मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु भी है। राम राजकुमार थे, सिंह आदि जंगली पशुओं का वध करना उनका कर्त्तव्य था, अतः राम ने उन्हें मारा। मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु है। इस विषय में प्रमाण देते हैं–

(१) सिंह आदि जंगली पशुओं के शिकार करने को 'मृगया' कहते हैं। इससे भी मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु है।

(२) संस्कृत साहित्य में सिंह को 'मृगेन्द्र' कहते हैं। जैसे 'नरेन्द्र' का अर्थ 'नरो में राजा' है। वह नरेन्द्र नर है। वैसे ही जो मृगराज है, वह मृगेन्द्र सिंह भी मृग है। अतः मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु है।

(३) वेद में भी मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु का आता है 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः'। मृग के समान भयंकर ऐसा कहना दयनीय हरिण का सूचक नहीं, किन्तु सिंह जैसे भयंकर पशु के ही अर्थ में है।

(४) रामायण की अन्तःसाक्षी भी मृग के अर्थ सिंह आदि जंगली पशु के सम्बन्ध में है, देखिये–

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृग राक्षस सेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे।।

जटायु राम से कहता है कि हे राम! यह दुर्गम्य वन मृग और राक्षसों से भरा है। आश्रम से लक्ष्मण सहित आपके बाहर चले जाने पर मैं सीता की रक्षा करूँगा। यहाँ राक्षसों के साथ मृग का होना तथा उनसे सीता की रक्षा का प्रसंग आना मृग का अर्थ सिंह आदि जंगली पशु सिद्ध करता

है।

मृग सम्बन्धी इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध है कि राम ने जो मृग मारे वे सिंह आदि जंगली पशु ही थे :

रही राम के माँस खाने की बात सो वे माँस नहीं खाते थे—

न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।।

— वा० रा० सु० ३६।४१

हनुमान् सीता से कहता है कि राम न माँस खाता है और मद्य पीता है।

राम ने हरिण जैसा दयनीय पशु मारा या वह मांस खाते थे, यह सर्वथा अप्रामाणिक और निराधार आक्षेप है जिसका सम्यक् निराकरण विस्तार भय के कारण संक्षेप से ही यहाँ किया गया है।

(३)

प्रश्न- भरत को उसकी ननिहाल भेजकर पीछे से राम को राज्य देने में क्या दशरथ की दुरभिसन्धि नहीं थी ?

उत्तर- हम पहले ही इस विषय में यह जान चुके हैं कि कैकेयी का विवाह दशरथ के साथ इसी पणबन्ध (शर्त) के आधार पर हुआ था कि उसका पुत्र ही राज्याधिकारी होगा। किन्तु एक तो ज्येष्ठ पुत्र होने से कुल परम्परा के नाते, दूसरे राम के आदर्श गुणों और प्रजावत्सलता के कारण दशरथ अन्तर्मन से राम को ही युवराज बनाना चाहते थे। वह पणबन्ध तो उन्होंने कामवश ही किया था। ऐसी स्थिति में उनके हृदय में अवश्य ही अन्तर्द्वन्द्व रहा होगा। भरत की अनुपस्थिति में महर्षि वशिष्ठ के अनुमोदन और प्रजाजनों के समर्थन पर उन्होंने राम के राज्याभिषेक के कार्य को अति शीघ्र निष्पन्न करा देना उत्तम समझा होगा। कैकेयी राम के गुणों पर मुग्ध थी ही। सभी भाइयों में प्रेम भाव भी अपार था। दशरथ ने सोचा कि भरत के सामने न होने पर कैकेयी को इसका विचार भी नहीं आवेगा। फिर भरत को गये अभी अधिक समय नहीं हुआ था, और इतनी दूरी से उसको शीघ्र ही बुलाया जाना सम्भव भी नहीं था। अतः सन्देह भी इसमें क्या होगा, ऐसा दशरथ ने विचारा होगा।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भरत को जानबूझ कर उसके मातुल—गृह भेजा गया, ऐसा कहना तो उचित नहीं है क्योंकि भरत का मामा युधाजित् स्वयं ही भरत को ले जाने के लिये बहुत समय से अयोध्या में रुका था। हाँ, भरत के पीछे से राम का राज्याभिषेक अवश्य ही अयुक्त लगता है। उसका दुष्परिणाम भी सामने आया है।

भरत से सुत पर भी सन्देह। बुलाया तक न उसे जो गेह।।

—कहकर ही मन्थरा ने कैकेयी के हृदय—प्रदेश में विद्रोह के बीजों को अंकुरित किया और सारा चित्र ही बदल गया।

(४) **प्रश्न-** क्या विभीषण भ्रातृद्रोही न था ?

उत्तर- यह ठीक है कि विभीषण रावण–वध व लंकाविजय में राम का सहायक सिद्ध हुआ। उसका स्वार्थ भी इसमें माना जा सकता है। पर उसने एकमात्र स्वार्थ वश ही रावण का साथ छोड़ा यह कहना उचित न होगा। प्रथम तो उसने रावण को सब प्रकार समझाया था और तब अन्त में 'न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है' इस नीति का पालन किया।

(४)

प्रश्न- राम का शासन काल १० सहस्त्र वर्ष रहा, ऐसा कहा जाता है। यह कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर- (१) **'दशवर्ष सहस्त्राणि रामो राज्यमकारयत्'** (यु० १२८ ।१०४) के आधार पर पौराणिक भाई ऐसा कहते हैं जो श्लोकों की बनावट एवं प्रसंग से असंगत है तथा आयुर्वेद और धर्म–शास्त्र के प्रमाण से भी असम्भव है। (२) कई लोग दस सहस्त्र वर्ष वाक्य को ठीक मानकर वर्ष का अर्थ दिन कर २७ वर्ष से कुछ अधिक मानते हैं, जिसे लोग थोड़ा मान कर प्रसन्न नहीं होते। पर हमारी सम्मति में रामायण में राम–राज्य काल ढूढ़ना व्यर्थ है। यह सत्य है कि श्रीराम ने वानप्रस्थ आश्रम में जाने तक आदर्श राज्य–शासन किया।

(५)

उपसंहार

पतित पावन-पावन दयानन्द!

काव्य की भाषा में कविरत्न 'प्रकाश' जी ने लिखा है–

पाप-ताप वारिधि ते देव दयानन्द तूने,
एते जन तारे जेते नभ में न तारे हैं।

और सच है, इस आर्यजाति एवं विश्व के प्राणि–मात्र पर ऋषि दयानन्द के इतने असीम उपकार हैं, जिनका पूर्ण विचार भी आज सम्भव नहीं है। प्रायः तो अपने इस महोपकारक चिकित्सक को भ्रमभरी एवं रोगग्रस्त दुनियाँ ने अपना शत्रु ही समझा और जिन्होंने समझने का प्रयास भी किया वे भी स्वयं विष पीकर संसार को अमृत पिलाने वाले इस 'मूलशंकर' (कल्याण के मूल) के अभिनव चित्र का एकाध पहलू ही देख सके हैं। दयानन्द के वेदोद्धारक, पतितोद्धारक, अनाथरक्षक, विधवा–रक्षक, गौ–रक्षक, नारी–उद्धारक, स्वदेशी प्रचारक, स्वातन्त्र्य प्रेरक, राष्ट्र भाषा–विस्तारक आदि शतशः स्वरूप हैं। हम यहाँ 'पतित पावन–पावन' दयानन्द की एक झाँकी के दर्शन करें।

आत्म स्वरूप को भुलाकर आत्म–हीनता के महा–समुद्र में अपना समूचा राष्ट्र डूबा था। ऋषि दयानन्द ने हमें उदबुद्ध किया। युगों–युगों से श्रीराम का समुज्ज्वल चरित्र आर्यजाति के कीर्तिस्तम्भ और प्रेरणा–स्रोत के रूप में शत–सहस्र पतितों को सन्मार्गगामी बनाने का आधार बना चला आता था। समय ने पलटा खाया। बौद्ध मत और उसके बाद तान्त्रिक युग, वाममार्ग काल, और पौराणिक प्रभाव के समय में पतित पावन भगवान् राम के इस सन्मार्ग प्रेरक स्वरूप को अवतारवाद, अलंकारवाद, पोपवाद, अविवेक और अन्धश्रद्धा के भारी–२ शिलाखण्डों के नीचे दबा दिया गया। परिणामतः समाज की चेतना मूर्छित हो गई, राष्ट्रजीवन का पाया हिल गया और आत्महीनता का सागर ठाठें मारने लगा। यों सभी प्राणवान् सुधारकों को यह स्थिति असह्य अनुभव हुई। कबीर ने तो साफ ही कहा– 'दशरथसुत तिहुं लोक बखाना। राम नाम का मरम न जाना।।' किन्तु देव दयानन्द प्रथम महापुरुष थे जिन्होंने ईंटों की वर्षा, गालियों की बौछार और अपमानों के प्याले पीकर भी इन शिलाखण्डों के नीचे दबे हमारे पतित–पावन राम को हमें वापस देकर उस पर लगी सभी धूल, मिट्टी और कीचड़ हटा कर 'पतित पावन–पावन' इस संज्ञा को सार्थक किया।

कवित्त

(ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम')

पतित–दलित, दीन–हीन, अभिशप्त जो,
उनको उठाते पतित पावन प्रसिद्ध है।
शत–शत पतितों को उर से लगााया यों,
राम–पतित–पावन थे सत्य–अविरुद्ध है।।
वही राम दबे थे, ढके थे, शिलाखण्डों में,
अवतार–अविवेक, अन्ध ज्ञान रुद्ध है।।
देव दयानन्द ने दिलाया मुझे मेरा 'राम,'
इसीसे वह 'पतित पावन–पावन' सुसिद्ध है।।१

देव दयानन्द की धन्यता!

चमत्कार–चक्र की चोखी चकाचौंध मांहि,
खो गया था मेरा रामचन्द्र वह सुहावना।
दुष्ट दर्प–कालरूप, मूर्तिमान् क्षात्र धर्म,
खो गया था चित्र वह, हाय! मनभावना।।
अवतार मरुस्थल मांहि स्रोत प्रेरणा का दिव्य,
शुष्क हो गया था, सब ओर था भयावना।
धन्य दयानन्द देव! काटे भ्रम–पाश दृढ़,
तर भवनिधि को, सिखाया हमें तारना।।२
गौरव हमें है राम पूर्वज हमारे थे,
शुद्ध इतिहास 'राम– चरित' सुहाना है।
राम को बताते ईश–अवतार भूलते हैं,
हीनता जगाना यह, पाप को बढ़ाना है।।
काव्य–अलंकार को बताके चमत्कार सत्य,
जग को हँसाना, आप मूढ़ कहलाना है।
धन्य,दयानन्द! जो बताया हमें रामायण–
है न धर्म–ग्रन्थ, आर्ष–चरित–तराना है।।३

मातृ–भक्ति, पितृ–भक्ति, ईश–भक्ति, गुरु–भक्ति,
भ्रातृ प्रेम का अनूठा पाठ जो पढ़ाता है।
वर्णाश्रम धर्म की महिमा सिखाता जो,
वेद धर्म–गौरव–छटा को छितराता है।।
वही 'राम चरित' विनष्ट हुआ हाय, हाय!
अवतारवादी 'ईश–लीला' जो बताता है।
धन्य दयानन्द! जो बचाया मेरा प्यारा 'राम',
पीके विष आप, हमें अमृत पिलाता है।।४
राम! तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो–
यह तथ्य है, इसी में तव गरिमा निहित है।
मानवता–रक्षण और दानवता–मर्षण में,
रावरी छटा की कोर–कोर विलसत है।
अवतारवाद की भित्ति पर चित्रित तव,
चित्र यह सलोना हाय, कैसा मर्दित है।
अन्ध–अविवेक–शिलाखण्ड सब दूर किये,
'देव दयानन्द धन्य–धन्य हो' ध्वनित है।।५

आर्यसमाज और श्रीराम

हमारे भाई–बहिनों में आर्यसमाज के स्वरूप और कार्य के सम्बन्ध में जहाँ अनेकों भ्रान्तियाँ हैं, वहाँ एक आम धारणा यह भी है कि आर्यसमाज राम और कृष्ण को नहीं मानता। यह भ्रान्ति कुछ तो इस कारण है कि अपने को आर्यसमाजी कहने वालों में से भी अनेकों ने आर्यसमाज को उसके सही रूप में समझा ही नहीं। हर बात को आँख मींचकर खण्डन करना ही उनकी दृष्टि में 'आर्यसमाज' है। कुछ इस भ्रान्ति का कारण हमारे वे प्रचारक और व्याख्याता हैं जो स्वयं आचरण–हीन होने पर भी दूसरों को गाली देना ही 'आर्यसमाज का प्रचार' समझे हुए हैं और इस भ्रान्ति का बड़ा कारण, क्षमा करें, हमारे वे पौराणिक पण्डित हैं जो आर्यसमाज के पक्ष को हृदय में सही मानते हुए भी, इस मिथ्या भय से कि उनकी रोजी–रोटी का क्या बनेगा, अपनी आत्मा के विरुद्ध और कभी–कभी दुराग्रह–वश भी ऐसी–२ भ्रान्तियाँ जन–समाज में फैलाते रहते हैं। आयें, हम इस पर थोड़ा विचार करें।

(१) इस सम्बन्ध में पहली जानने योग्य बात यह है कि आर्यसमाज कोई नया पन्थ या मत नहीं है। आर्यसमाज 'दयानन्द मत' नहीं है। फिर आप जानना चाहेंगे कि आर्यसमाज क्या है ? इसके

उत्तर में हम निवेदन करेंगे कि आर्यसमाज –वेद प्रचारक संघ है, आर्यसमाज चरित्र–निर्माण आन्दोलन है, आर्यसमाज 'मानव निर्माण आन्दोलन' है।

(२) ऋषि दयानन्द ने हमें केवल भूली हुई वैदिक सचाइयों को फिर से याद कराया : हम भूल चुके थे कि हमारा नाम आर्य है, हम भूल चुके थे कि हमारा इष्टदेव 'ओ३म्' है गुरुमंत्र 'गायत्री' है, हम भूल चुके थे कि हमारा अभिवादन 'नमस्ते' है। हम भूल चुके थे कि हमारा धर्म ग्रन्थ वेद है, हम भूल चुके थे कि हम भी संसार के चक्रवर्ती सम्राट रहे थे और कि हम राम–कृष्ण जैसे महान् पूर्वजों की सन्तान हैं। ऋषि दयानन्द ने इन सब भूले हुए तत्वों को याद कराया। ऋषिवर दयानन्द ने उलटे हुए को उलटा यानी उसे सीधा किया। ऊपरी निगाह से देखने वालों ने समझा कि वह हमारी मान्यताओं और आदर्शों को उलट रहा है पर गहराई से देखने वालों ने देखा और समझा कि उस प्यारे ऋषि ने आत्म–बलिदान के मूल्य पर भी उलटे को उलट कर संसार को फिर सीधा और सही सत्य सनातन राज मार्ग (वेद–पथ) बताया था, जिसे हम मत मतान्तरों की पगडण्डियों में भूल बैठे थे। कोई नई बात, कोई नई राह उन्होंने नहीं बताई। वैदिक धर्म ही सनातन धर्म है, इस पर जो धूल–कीचड या काई जम गई थी, उसे ऋषि ने साफ किया। खुद भी नया देने का दावा उन्होंने कहीं भी नहीं किया। हाँ, यदि कहीं वैदिक सचाइयों को समझने में उनसे भी कोई भूल हो गई हो तो विश्वहित को समक्ष रख कर उसमें भी आवश्यक सुधार करने तक का अधिकार ऋषि ने सभी को दिया। (अहा! इस उदारता का भी कुछ ठिकाना है!)

(३) सच्चा धर्म बुद्धि और विज्ञान का विरोधी नहीं हो सकता। धर्म में विज्ञान और सृष्टि–क्रम (ईश्वरीय नियम) के विरुद्ध चमत्कारों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। ईश्वरभक्ति शक्ति का स्रोत है। धर्म का अर्थ आत्म–निर्माण और युग–निर्माण का समन्वय है। सच्चा धर्म सच्चरित्रता का आधार है। इन्हीं तत्वों के आधार पर आर्यसमाज श्रीराम को युग–पुरुष, राष्ट्रनायक और महापुरुष मानता है, ईश्वर नहीं। धर्म का ऐसा रूप, ऐसी मान्यतायें जो मानव के चरित्र को गिराती हैं, आर्यसमाज केवल उन्हीं का खण्डन करता है।

(४) यदि यह कहा जाय कि आर्यसमाज ही और एकमात्र आर्यसमाज की दृष्टि से सोचने वाले ही श्रीराम को मानते हैं अन्य नहीं, तो यह विस्मयकारक भले ही हो पर है सत्य! कैसे ? विचारिये– जो लोग श्रीराम को काल्पनिक मानते हैं वे तो स्पष्ट है कि राम को मानते ही नहीं पर जो राम को ईश्वर मानते हैं वे भी राम के अस्तित्व को कहाँ मानते हैं ? सम्पूर्ण राम–चरित यदि अखिल ब्रह्माण्ड–पति ईश्वर की लीला मात्र है तो इसमें जहाँ ईश्वर की 'ईश्वरता' का अपमान है वहीं राम के 'महान् कर्त्तव्य' की परिसमाप्ति भी है। तो ऐतिहासिक महापुरुष, आर्य–कुल–भूषण, आर्य जाति के महान् पूर्वज के रूप में राम की मान्यता की दृष्टि से सिर्फ आर्यसमाज ही राम को मानता है निष्पक्ष–भाव से इस पर फिर विचार कीजिए।

व्यावहारिक क्षेत्र में भी शुद्धि आन्दोलन के रूप में हैदराबाद सत्याग्रह, शिव मन्दिर सत्याग्रह आदि के रूप में भी आर्य समाज राम के पुजारियों की रक्षा के लिए सर्वस्व होमने को सन्नद्ध रहा है।

(५) महापुरुषों के चित्र की पूजा, मिट्टीपूजा, हमें चरित्रपूजा से दूर ले जाती है। अवतारवाद चरित्र का नाशक और भारत राष्ट्र के महापतन के प्रमुखतम कारणों में से एक है। राम के महापुरुषत्व से ही प्रेरणा लेकर हमारा अधोगत राष्ट्र व्यक्तिधर्म, राष्ट्रधर्म और क्षात्रधर्म की दीक्षा लेकर शक्तिमान् हो सकता है। **चित्र की पूजा नहीं, चरित्र की पूजा** ही आज के युग का घोष होना चाहिए।

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में ही श्रीराम के सम्बन्ध में आर्यसमाज का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इसे मनोयोगपूर्वक पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति, भले ही वह कितना ही हृदय–हीन हो, यह तो कह ही नहीं सकता कि आर्यसमाज राम को नहीं मानता। हाँ, पौराणिक भाइयों के तरीके में और आर्यसमाज के मानने के तरीके में अन्तर है। उस अन्तर पर पिछले पृष्ठों में हमने विस्तार से विचार किया है। यहाँ एक दृष्टान्त से इस अन्तर पर थोड़ा और विचार कीजिए।

हमारे सामने अपने प्यारे राम की दो तस्वीरें हैं। एक तस्वीर में राम के पैरों में घुँघरूँ बँधे हैं, वह नाच रहा है। उसके नीचे एक पंक्ति लिखी है–'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनियाँ, दूसरी तस्वीर में राम क्षात्रतेज से दीप्तिमान् हैं, धनुष पर प्रत्य चा चढ़ाये 'निशिचरहीन करों महि' की व्रतपूर्ति के लिए सन्नद्ध। इस तस्वीर पर भी एक पंक्ति लिखी है–'धमक चलत रामचन्द्र हालत सब दुनियाँ।' पहली तस्वीर पौराणिक भाइयों के राम की है और दूसरी आर्यसमाज के राम की। दोनों के अन्तर पर गहराई से सोचिये और तब सोचिये कि क्या हम अपने शक्तिस्रोत राम को अब भी सिर्फ मनोर जन और मन बहलाव का साधन या फिर पापों से नहीं, पाप के फल से छुट्टी पाने का साधन बनाये रखेंगे ? बन्धु, आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक देव दयानन्द के उपकार को समझिये और उनके कृतज्ञ हूजिये। **'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।'**

अपने पौराणिक बन्धुओं से !

हमारे आदरणीय बन्धु, आपको 'पौराणिक' ऐसा कहते हुए हमें कितना मर्मस्पर्शी कष्ट होता है, इसकी कल्पना शायद आपको नहीं है। पर जब तक आप वेदादि सत्शास्त्रों के ऊपर पुराण, गीता और तुलसीकृत रामायण को प्राथमिकता देते हैं तब तक न चाहते हुए भी हम ऐसा कहने को विवश हैं। आप कहेंगे कि वेद को तो हम भी मानते हैं, पर आप सच बताइये कि आपने अपने सम्पूर्ण जीवन में क्या कभी वेद के दर्शन किये हैं ? क्या आपके–वेद कितने हैं, उनके नाम क्या हैं, उनके विषय क्या हैं–इसका ज्ञान है ? क्या आपने कभी जीवन में एक बार भी वेद कथा सुनी है ? क्या आपने कभी वेद प्रचार के कार्य में सहयोग दिया है ? क्या आपको गायत्री मंत्र या १–२ वेद मंत्र याद हैं ? प्यारे भाई! तब आप कैसे कह सकेंगे कि हम भी वेद को मानते हैं। सचमुच वह कितने सौभाग्य के क्षण होंगे, जब हम सभी ६० करोड़ वेदभक्त सचमुच में वैदिकधर्मी होंगे, जब हम और आप सभी किसी भी सचाई की कसौटी वेद को मानेंगे। तुलसीकृत रामायण की, वा० रामायण की, गीता की, अथवा पुराण की कोई बात सत्य है या नहीं इसके लिए जब हम वेद को ही परम प्रमाण मानेंगे, तभी न हम कह सकेंगे कि हम वेद को मानते हैं।

बन्धु, आप इस भ्रान्ति को कतई अपने मन से निकाल दीजिये कि वेद तो हमारी पहुँच से बाहर है। एक बार एक भाई कह रहे थे कि वेद तो इतने वजनी होते हैं कि गाड़ियों में ही लदकर आ सकते हैं। बन्धु, अपने मान्य धर्मग्रन्थ के सम्बन्ध में हमारी यह अज्ञानता! अन्यों के निकट यह कैसी हास्यास्पद और अपने निकट यह कैसी लज्जास्पद एवं करुणाजनक स्थिति है (!) क्या कभी विचार किया है आपने, क्या है इस दयनीय स्थिति का मूल कारण ? क्या वेदेतर ग्रन्थों की प्रधानता, उनकी कथायें, उनके अखण्ड कीर्तन और वेद की अप्रधानता या उपेक्षा ही इसका मूल कारण नहीं है ? पर हम याद रखें कि नकली और सस्ती दवाओं की भरमार में असली की उपेक्षा सदैव ही स्वास्थ्य–नाशक और जीवन–नाशक सिद्ध हुई है। ठीक ही कहा था श्रद्धेय डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी ने कि "हम गीता सम्मेलन करते हैं किन्तु जिस वेद से हजारों गीतायें निकल सकती हैं उस वेद के 'वेदसम्मेलन' कोई नहीं करता ?" कैसा दर्द है, इन शब्दों में !

प्यारे भाई, हम आपको कैसे हृदय चीरकर दिखलायें कि आर्यसमाज आपका सबसे बड़ा हितैषी, और सच्चा मित्र है। किसी कवि का कथन है–'सबसे कठिन है अपने को पहचानना।' जहाँ आत्म–स्वरूप को पहचानना, अपनी ही कमजोरियों को देख पाना कठिन है, वहाँ कौन वास्तव में अपना है और कौन पराया यह जानना भी सरल नहीं है। च चल चित्त विद्यार्थी सिनेमा और सिगरेट का शौक पैदा करने वाले लड़कों को अपना मित्र समझते हैं और माता–पिता तथा दूसरे सुहृदों को जो उनको इस कुपथ से रोकते हैं, उन्हें अपना शत्रु! समझ आने पर उन्हें पश्चात्ताप होता है, वे रोते हैं। पर इससे पहले वे अपने स्वास्थ्य, सदाचार, धन और बहुत–कुछ को स्वाहा कर चुके होते हैं। मेरे प्यारे बन्धु, आर्यसमाज जब धर्म के नाम पर सत्य–नाशक मान्यताओं से आपको रोकता है तो आप उसे अपना शत्रु मान बैठते हैं और जो स्वार्थवश आपको सत्य से दूर रखते हैं उन्हें अपना मित्र मानते हैं। पर क्या यह बाल–बुद्धि नहीं है ? हमने कितने ही बन्धुओं को जब उन्हें समझ आती है, यह कहते सुना है–'आर्यसमाज ने मुझे बचा लिया।' तब वे कृतज्ञता के आँसू बहाते हैं, यह उनके पश्चात्ताप के आँसू होते हैं।

हमारे स्नेही बन्धु, यह ग्रन्थ आपके समक्ष है। आप ईमानदारी से और गहराई से सोचिये कि क्या राम को ईश्वर बताकर हम राम के अस्तित्व और गौरव को मिटाने का पाप नहीं करते ? और क्या प्यारे राम को मिटाने का दुष्प्रयास एक भीषण राष्ट्र–द्रोह नहीं है ? यदि हाँ, तो इस राष्ट्रद्रोह और मानवता द्रोह से बचिये। आज से मत कहिये कि राम ईश्वर थे, मत कहिये कि सीता पृथ्वी से पैदा हुई, मत कहिये कि हनुमान् बंदर और जटायु गिद्ध था, मत कहिये कि अहल्या पत्थर थी। मत सोचिये कि कोरे नाम जाप से पाप माफ हो जाते हैं। शुभाचरण कीजिये और विश्वास कीजिये कि हम आप भी श्रीराम जैसे यशस्वी और गौरवमय बन सकते हैं। इसी में श्रीराम का गौरव है।

बन्धु, आप सच बताइये, ईमानदारी से–कि गोवर्धन की मुड़िया पूनों का मेला, वृन्दावन का रथ का मेला और बरसाने की होली का हुरदंगा! क्या इन्हें धार्मिक आयोजन कहा जा सकता है ? क्या रामलीला आँख सेकने और सस्ते मनोरंजन का धन्धामात्र नहीं है ? क्या राम की बरात (!) आदि को धार्मिक आयोजन कहा जा सकता है ? क्या इनका चरित्र–निर्माण से दूर का भी सम्बन्ध है, उल्टे

क्या ये चरित्र–नाशक नहीं हैं ? तब क्या यह राष्ट्रद्रोह नहीं है ? तब इस अमूल्य मानव–जीवन को इन विनाशकारी मान्यताओं की भेंट चढ़ाकर क्या आप चिन्तनीय घाटे का ही सौदा नहीं कर रहे ?

प्यारे भाई, क्या आपने कभी मनुष्य और पशु के अन्तर पर विचार किया है ? क्या ज्ञान तत्व, विवेक तत्व ही वह वस्तु नहीं है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है ? तब यदि धर्म के नाम पर बुद्धि और विवेक को ताला लगाया जाय तो क्या ऐसे धर्म को मनुष्यता से पतित करने वाला नहीं माना जावेगा ? बन्धु, आप में श्रद्धा है, बड़ी उत्तम बात है पर याद रखिये कि अति हर चीज की बुरी होती है। श्रद्धा को विवेक से नियन्त्रित कीजिये। बिना ब्रेक की साइकिल सदैव ही भयप्रद है। श्रद्धा और विवेक का समन्वय कीजिये और इस कसौटी पर हमारे इस ग्रन्थ का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कीजिये। हमारा विश्वास है आपको प्रकाश मिलेगा और परमदेव प्रभु आपका कल्याण करेंगे।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से आपके मानस पर कोई सत्प्रभाव हो तो उसे ईश्वर–कृपा मानकर, उसका हृदय से धन्यवाद कीजिये और भगवान् राम के पावन चरित्र से अपने जीवन को चरित्रवान् बनाने का व्रत लीजिये और कोई भूल या त्रुटि हो तो उसे हमारी मानकर हमें सुझाइये, हम आपका उपकार मानेंगे– अमित उपकार। यदि आपके मन में किसी बात से तनिक भी कष्ट हो तो उसके लिए हम आपसे अग्रिम क्षमायाचना करते हैं। हर मनुष्य से भूलें सम्भव हैं। राम, कृष्ण, दयानन्द, गाँधी सभी से भूलें सम्भव हैं फिर हम तो उनकी चरण–रज के तुल्य भी नहीं। पूर्ण तो एकमात्र परमात्मा है, ऐसा समझकर हमें आप क्षमा करदें और हृदय से क्षमा करदें।

बन्धु, आप हमारी भावनाओं को समझिये। आचार्य देव दयानन्द के हृदय की अन्तर्ज्वाला की, टीस को पहचानिये। भरे–पूरे परिवार को ठोकर लगाकर प्रदीप्त यौवन के आह्वान से मुख फेर कर, ब्रह्मानन्द जैसे अवर्ण्य समाधि–सुख को त्यागकर, तिल–तिल जलने वाले उस विषपायी देवता की आत्म–पुकार को गहराई से जानिये। यदि आपमें कुछ भी मानवता है, आपका रोम–रोम पुलकित हो उठेगा, आप निहाल हो जायेंगे और हमारे स्वर के साथ स्वर मिलाकर कहेंगे–जगद्गुरु ऋषि दयानन्द की जय! राष्ट्र–पुरुष राम की जय! जगज्जननी भारत माता की जय! वैदिक धर्म की जय! गो माता की जय! मानवता अमर है! संसार के श्रेष्ठ पुरुषो एक हो!!

अपने ब्राह्मण बन्धुओं और पौराणिक पण्डितों से!

हमारे आत्मीय बन्धुओ, आप हमें अपना विरोधी कहते हैं पर हम आपको सर्वाधिक प्यार करते हैं। विश्वास रखिये, आर्यसमाज आपका सर्वाधिक हितैषी है। आर्यसमाज तो है ही ज्ञान–प्रचारक–ब्राह्मण संस्था! आप शब्द के सही अर्थों में ब्राह्मण और पण्डित बनें, इतना ही हमारा काम्य है। रसोई बनाना, पानी पिलाना, क्या यह आपके काम हैं ? शोक, महाशोक!! एक–एक रुपये के लिये द्वार–द्वार 'येनबद्धोबली राजा' कहते हुए राखी बाँधते फिरना, यह आपका स्वरूप है ? जिस ब्राह्मण के चरणों में सम्राट झुकते थे, उसकी यह दीन–हीन दशा! राष्ट्र और विश्व का मार्गदर्शक आज जूतों पर पालिश करता है, हा हन्त!! तो हमारे बन्धु आर्यसमाज इस कथित ब्राह्मण को 'ब्राह्मण' बनाना चाहता है। पर

यह तभी सम्भव है, जब 'ब्राह्मण' (आचरणशील वैदिक विद्वान) को ही ब्राह्मण कहा जावे। जन्मगत ब्राह्मणत्व का मोह अब त्यागना ही होगा।

सच्चे ब्राह्मणत्व के उदय होने पर हम देखेंगे कि राष्ट्र की स्थिति किस प्रकार बदल जाती है। 'राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः' यह एक वैदिक ब्राह्मण का घोष है। राष्ट्र में वैदिक पण्डित (पुरोहित) जागते रहें, अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहें तो वर्णाश्रम धर्म का पालन यथाविधि होने से सम्पूर्ण राष्ट्र चैतन्य, सशक्त, प्रज्ञावान् और धन–धान्य से परिपूर्ण रहेगा। देव दयानन्द इस सत्य को समझते थे और आपको अपने सबसे अधिक निकट मानते थे। "पोप तेरी माता बाँझ क्यों न रह गई" तथा "इन भागवतादि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ में ही नष्ट हो गये या जन्मते समय ही मर क्यों न गये? क्योंकि इनके पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःख से बच जाता।" ●

–इन शब्दों के पीछे झाँक रही अद्भुत आत्मीयता के दर्शन कीजिये! किसी माँ को अपने कपूत पुत्र को यह शब्द कहते आपने अवश्य ही सुना होगा– "तू जन्मते ही क्यों न मर गया, मैं बाँझ ही रह जाती तो अच्छा था' बाहरी और ऊपरी दृष्टि से हृदय–हीनों के निकट ये शब्द भले ही कर्ण कटु हों, पर मां के हृदय को पहचानने वालों की आँखें इन शब्दों के पीछे छिपे मां के हृदय के हाहाकार को अवश्य ही देख पाती हैं। मां जैसी यह आत्मीयता हर किसी के भाग्य में नहीं है। विश्व के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेने वाले योगीजन ही एकमात्र इसके अधिकारी हैं।

● आज के साधनाहीन आर्यजन महर्षि की इस शैली के प्रयोग का अधिकार कतई नहीं रखते।

यों सम्पूर्ण संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है और इसी दृष्टि से ऋषि ने सभी के कल्याण के लिए प्रयास किया। 'सत्यार्थ प्रकाश' के तेरहवें एवं चौदहवें समुल्लास इसके प्रमाणभूत हैं, पर जो अपने अधिक निकट हैं पहले उस ओर ध्यान जाता है। ग्यारहवें, बारहवें समुल्लास का क्रम भी इसी आधार पर है। अपने घर की सफाई करके ही दूसरों को स्वच्छता का महत्व और आनन्द बताना समीचीन होता है। ईसाइयों और मुसलमानों के गपोड़ों और चमत्कारों की बात की जावे तो वे पुराणों को ला रखते हैं। इसलिए पहले ऋषि ने अपनों की खबर ली। यों भी घर की आग बुझाकर ही बाहर ध्यान जाता है। अपनों को ही अधिक कठोर बात भी दोष देखने पर कही जा सकती है। पड़ौसी के बच्चे को किसी बुराई के लिए हम उतनी ही कठोरता और दृढ़ता से नहीं रोक पाते जितना अपने बालक को। आर्यसमाज आपको जो कठोर बातें कह देता है, विश्वास रखिये उसका यही रहस्य है। हाँ आज का युग अवश्य ही कुछ और तरह का है। न तो आज हम अपने बिगड़ रहे पड़ौसी को सँभालना चाहते हैं और न उससे हित की बात सुनना चाहते हैं। बिगड़ते को और भी बिगाड़ने तक की नीचता आज देखने में आती है और यदि इतना न हो तो यह तो आम बात है–'कोई बिगड़ता है तो बिगड़ने दो, मुझे क्या' साथ ही यदि कोई किसी के हित की बात कहने लगे तो उत्तर मिलता है– तुझे क्या ? 'मुझे क्या और तुझे क्या' की बीमारी ने संसार का सर्वनाश किया हुआ है और घोर दुर्भाग्य यह है कि इस रोग को स्वस्थता का लक्षण समझा जाता है। आपने प्रायः अन्य मतस्थ लोगों को यह कहते सुना होगा कि आर्यसमाज के यज्ञ–हवन, पूजा–पाठ, संस्कार–पर्व आदि तो हमें बहुत अच्छे लगते हैं, पर वह दूसरों

की आलोचना करता है, यह बात बहुत बुरी है। दूसरे मत वाले अपना भला–बुरा जैसा भी है करते हैं पर किसी की आलोचना तो नहीं करते। क्या यह रोग को स्वास्थ्य का लक्षण समझना नहीं है ? 'तू कहे न मेरी, मैं कहूं न तेरी' या 'चोर–चोर मौसेरे भाई' वाली यह स्थिति कितनी भयावह है, इसकी पूर्ण कल्पना सम्भव नहीं है। किसी दृढ़ आधार पर खड़ा होकर ही कोई दूसरों को और यहाँ तक कि सबको चुनौती दे सकता है। यह बात आर्यसमाज की कमजोरी, त्रुटि या दोष की सूचक नहीं, उसकी विशेषता की द्योतक है। फिर आर्यसमाज की समीक्षा के पीछे छिपी आत्मीयता और हित–भावना आप पहचानिये।

सदियों बाद ऋषि दयानन्द ने धर्म के क्षेत्र में आत्म–कल्याण के साथ राष्ट्र–कल्याण और विश्व–कल्याण की वैदिक भावना को इन शब्दों में रखा–''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।'' बन्धु, हमारा विश्वास है आप हमारी समीक्षा को इसी दृष्टि से देखेंगे, उसके पीछे हमारी भावना को पहचानेंगे और हमारे किन्हीं शब्दों से यदि कष्ट हुआ हो तो उसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

एक बात और, एक दुकानदार असली घी की जगह नकली घी ग्राहक को दे देता है। यह पाप है, घोर पाप। पर उस घी का सेवन करने वालों का सिर्फ शरीर ही रोगी होता है। किन्तु धर्म के नाम पर विकृत पदार्थ देने से तो राष्ट्र की अनेकों पीढ़ियाँ जीवन–शून्य, आत्म–गौरव–हीन और पापग्रस्त हो जाती हैं। बन्धु, इस भयंकर पाप की कल्पना करके ही ऋषि अपने आत्मीय जनों को इस पाप–पंक से निकालना चाहते थे।

पूज्य पण्डित वर्य! ध्यान रहे, पेट तो सभी भर लेते हैं–यहाँ तक कि कुत्ते–बिल्ली भी, पशु–पक्षी भी। फिर सिर्फ इस उदरदरी की खातिर आप नकली धर्म का सौदा बेचकर क्या करने लगे हैं ? इसका कैसा घोर परिणाम हुआ है और होगा ? इसका विचार करते हुए हृदय काँपता है। आप जानते हैं सारे अनर्थों की जड़ अधर्म है और इस अधर्म का दायित्व .....?

मान्यवर, आप कहते हैं कि हम पेट भरने के लिये ऐसा करते हैं, पर याद रहे यह निकृष्टतम व्यापार है। बन्धु, यदि व्यापार ही करना है तो कोई भी दूसरा व्यापार कीजिये।

आर्य बन्धुओं की सेवा में !

हाँ, इस ग्रन्थ की समाप्ति के पूर्व हमारे अभिन्नहृदय आर्य बन्धु! आपको भी हमें कुछ कहना है और वह यह कि अब समय आ गया है जब हम अपने दायित्व और कर्त्तव्य की गम्भीरता को समझें।

(१) पहली बात जो हम आपकी सेवा में निवेदन करना चाहेंगे, यह है कि वैदिक सिद्धान्त अकाट्य हैं, यह ध्रुव सत्य है, पर उनकी व्याप्ति मौखिक प्रचार से नहीं साचार प्रचार से ही सम्भव है! यदि अपने ऊँचे–ऊँचे और महान् सिद्धान्तों को आचरण की भाषा में हम नहीं कह सकते तो हमारी स्थिति 'ऊँची दुकान, फीके पकवान' जैसी होगी। जिस उत्साह और निष्ठा से , जिस सौरस्य, मनःशान्ति और आत्मविकास के भाव को लेकर आगन्तुक हमारे पास आयेगा, उसे न पाकर वह गाली देता हुआ वापस लौटेगा।

(२) यह सुनिश्चित है कि आप श्रीराम को मानते हैं और उसको सही रूप में मानते हैं पर जनता की यह भ्रान्ति कि आप श्रीराम को नहीं मानते, तभी दूर होनी सम्भव है जब हमारे जीवनों में और अन्य मत–पन्थों के अनुयायियों के जीवन में सदाचरण और उच्च चरित्र की भेदक रेखा हो। हम अपने त्यागपूर्ण उदाहरणों से मातृ–पितृ–भक्ति, पुत्र–प्रेम, भ्रातृ–प्रेम, पति–पत्नी प्रेम ,आदर्श मैत्री, आदर्श सेवा–भाव, राष्ट्र–प्रेम और धर्म प्रेम की सोई हुई मानवीय भावनाओं को जगा सकें। तभी हम अपने को राम के सच्चे और एकमात्र पुजारी या भक्त कह सकेंगे। आर्य अध्यापक, आर्य व्यापारी, आर्य कर्मचारी, आर्य चिकित्सक कोई भी हो, उसके जीवन की विशेषता,उसकी साख, अपने ढंग की निराली हो जिससे उदात्त मानवता और राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति हो।

(३) विवेक या तर्क तत्व मानव को पशु जीवन से अलग करता है। यह जीवन का चिह्न है, पर इसका अविवेकपूर्ण उपयोग उतना ही भयानक है। हम भूलें नहीं कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत'। हमारा तर्क–कुतर्क की सीमा तक न पहुँचे, उसमें हृदय तत्व या श्रद्धा तत्व की उपेक्षा न हो, यह हमें देखना है। कुतर्क और श्रद्धा–शून्य बुद्धिवाद मनुष्य को पाश्चात्य जड़वादी सभ्यता की भाँति 'नर पशु' और 'दानव' बना देता है। श्रद्धेय पं० प्रकाशचन्द्रजी 'प्रकाश' ने कितने भावपूर्ण शब्दों में लिखा है–

मानव! मानवता छोड़ नहीं।
जिसमें तेरी छवि अंकित है, तू उस दर्पण को फोड़ नहीं।
विज्ञान मुक्ति का कारण है, यदि श्रद्धा का मधु मिश्रण है,
तू बुद्धिवाद के पाहन से सहृदयता का घट फोड़ नहीं।
रवि की किरणें भू पर आतीं, तेरे पद-रज को छू जातीं,
मानव! तू है सबसे महान्, देवों की भी कर होड़ नहीं।।

(४) हमारे पौराणिक बन्धुओं में पोपलीला है तो हम में–लोपलीला। आप कहेंगे कैसे ? हम अपने को वेदभक्त कहते हैं। अपने पौराण्कि बन्धुओं से निवेदन में हमने जो प्रश्नमाला रखी है, आयें उस पर हम–आप भी ईमानदारों से विचार करें और सोचें कि क्या हमें अपने को वेदभक्त कहने का अधिकार है ? यदि हम प चयज्ञों का पालन नहीं करते तो मूर्तिपूजा के खण्डन का अधिकार हमें कैसे मिल गया? तब यदि हमारे पौराणिक बन्धु हमें नास्तिक कहते हैं तो इसमें क्या दोष है ?

(५) समालोचना का काम बड़े महत्व का है, पर गालियाँ नाजुक हैं। रोगी, सन्निपातग्रस्त रोगी डाक्टर को गालियाँ निकालता है, पर कुशल डॉक्टर मुस्कराता है। आपरेशन जैसा नाजुक काम है यह। समालोचना एक बड़ा दायित्वपूर्ण और पवित्र भगवदीय कार्य है। रोगी की कल्याण–कामना से डाक्टर का हृदय आपूर रहना चाहिए। जैसे कुशल सर्जन ही आपरेशन का काम कर सकता है, उसी प्रकार से निष्ठावान् सदाचारी व्यक्ति ही समालोचना का कार्य करने का अधिकारी है। उसने इस कार्य में दीक्षा प्राप्त की हो, सर्वोत्तम। अनाड़ी व्यक्ति के हाथ में चाकू देने पर जहरवाद का भय रहता है और अधिकांश में तो 'न रोग रहता है, न रोगी।' समीक्षा शस्त्र के गलत प्रयोग का ही यह परिणाम

है कि आर्यसमाज का नाम सुनते ही अनेकों महानुभाव आगे की कोई बात सुनना ही नहीं चाहते। क्या यह स्थिति हमारे लिये लज्जास्पद नहीं है ?

हम जानते हैं कि हित की बात को कहने वाले और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ होते हैं। आपके मन में दूसरों के हित की कामना है, कल्याण कामना है, यह बड़ी पुण्यमयी स्थिति है। हम यह भी जानते हैं कि हित की बात में प्रयत्न करने पर भी कुछ न कुछ कड़वाहट आ जाती है फिर भी हम 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रुयात्' के आदर्श को अपने सामने रखें तो बड़ी सीमा तक कठिनाई दूर हो सकती है।

बन्धु, बहुत बड़ा दायित्व आ जाता है हमारे कन्धों पर, जिस क्षण हम अपने को देव दयानन्द का अनुयायी या आर्यसमाज का एक सिपाही मानते हैं। उस गुरुतर दायित्व को हम समझें। राम के इस शुद्ध चरित्र को हम घर–घर में पहुँचायें पर साथ ही ध्यान रखें कि रावण वेदों का पण्डित था, किन्तु वेदानुकूल आचरण न होने से वह महापतित और कुकर्मी राक्षस माना गया। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' की उक्ति को हम निरन्तर याद रखें। वैदिक धर्म की जय, श्रीराम की जय, देव दयानन्द और भारत माता की जय, कोरी नारेबाजी से न होगी। हमारा सदाचरण ही वैदिक संस्कृति की विजय और सांस्कृतिक आर्यसाम्राज्य की स्थापना में सहायक होगा। हमारा सदाचरण ही हमारी राम–भक्ति का प्रमाण होगा।

अपने तपोभूमि-परिवार से

यों व्यापक दृष्टि से सम्पूर्ण राष्ट्र और समस्त विश्व ही अपना परिवार है फिर भी अपना परिवार अपना ही होता है। अपने मन का दर्द, अपने दिल की कसक पूरे रूप में अपने परिवार के समक्ष ही रखी जाती है और अपने परिवारी ही होते हैं जो उसे पूरे रूप में समझते हैं और उस पर मनोयोगपूर्वक ध्यान देते हैं।

बन्धु, एक लम्बे समय से आपका हमारा सम्बन्ध है। अब तक हमारे मनोगत को आप न समझे, ऐसी बात नहीं। आपका आत्मीयतापूर्ण सहयोग और हमारे प्रति आपका निश्छल प्यार इसका प्रभूत प्रमाण है। देव दयानन्द का महान् मिशन आज हमारी हृदयहीनता से और श्रद्धा तत्व के अभाव से मर रहा है। जिस दिव्य ज्योति–दीप ने विश्वभर को उजाला देना था, वह आज स्नेह–तेल के अभाव में निर्वाण–प्राय है। पंथाई मत बढ़ रहे हैं– बड़े उग्र रूप में बढ़ रहे हैं, राजनीति, धर्म–नीति सभी में दौरात्म्य और पाप–ताप का बोलबाला है। कौन इसे ललकारे ? सब अपनी–अपनी निबेड़ने में लगे हैं, किसे पराई पड़ी है। पराई–पीर को कौन समझे और क्यों समझे, आज तो यह भी प्रश्न है। 'भुङ्क्ष्व भोगान्, पिब, रमस्व च' रावण का यह नारा ही आज सर्वत्र गूँज रहा है। कभी वह राजनीति का चोगा पहन लेता है तो कभी साम्प्रदायिक मत–पन्थों का। मूल में मनुष्य का वही जडवादी दृष्टिकोण है। सभी ईश्वर को भुला प्रकृति के उपासक बने हैं– अपने को साक्षात् ईश्वर कहने वाले भी और अनीश्वरवादी तो हैं ही। आर्यसमाज का त्रैतवाद का सिद्धान्त सिर्फ शास्त्रार्थ के काम आता है और

अब तो वह भी नही, उस पर आचरण की बात करने वालो का मखौल बनाया जाता है। बन्धु, ऐसे युग मे हम जी रहे हैं।

इन सबसे टक्कर लेने वाला आर्यसमाज, प्यारा आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज नहीं रहा। संस्थावाद के फेर मे पड कर वह कुर्सी की लड़ाई में अपनी सम्पूर्ण सरसता और धर्म–भाव को खोकर कुतार्किक और व्यवहार मे नास्तिक बनता जा रहा है। राम का, प्यारे राम का नाम जयकारो में भले ही हो, व्यवहार में उसकी पराजय सुस्पष्ट है। तो एक शब्द मे 'तपोभूमि परिवार' को इस पराजय को विजय में बदलना है, जिससे धरा–धाम फिर एक बार राम के आदर्शों से अनुप्राणित हो उठे।

बन्धु, ऐसे नाजुक क्षणों मे आर्यसमाज को 'मानव निर्माण आन्दोलन' या 'चरित्र निर्माण आन्दोलन' के रूप में प्रस्तुत कर इन समस्त अनैतिकताओं को ललकारने की ध्रुव धारणा लेकर आपके परिवार का जन्म हुआ है। एक आर्य के अपेक्षित गुण हमारे जीवनो मे हों, यह निष्ठा हमें जगानी है। आर्यसमाज राम–कृष्ण को नही मानता, आर्यसमाज मे दानशीलता नहीं, श्रद्धा तत्व नहीं, अतिथि–सत्कार की भावना नही– इस स्थिति और अपवादो को अपने आचरण की उच्चता और सद्व्यवहार के सौरभ से आपके 'तपोभूमि–परिवार' को समाप्त करना है।

कुर्सियों की लड़ाई से दूर, आत्म–निर्माण और युग–निर्माण के सपने सँजोकर आज भी अनेकों आर्य सज्जन साधना–रत है, पर वे बिखरे हुए है। 'तपोभूमि परिवार' के रूप में ये निष्ठावान् आर्य–रत्न मालाकार होकर वैदिक सांस्कृतिक विजय का शख नाद कर सकें, ऐसी हमारी सदिच्छा है। उद्देश्य की पूर्ति के लिये आज के युग के दो सबल साधन–प्रेस और प्लेटफार्म में से हमने 'प्रेस' या सत्साहित्य प्रचार के साधन को अपनी अति सीमित शक्ति के अनुसार उठा लिया है। एक–एक घर और एक–एक जन तक–आबाल वृद्ध सभी तक–साहित्य की विविध शैलियों मे वेद के पवित्र सन्देश को युग की नई समस्याओं के सम्यक् समाधान के रूप में पहुँचाना हमारा जीवन व्रत है।

हमारे बन्धु, इसके लिए आपने अब तक जो पुनीत सहयोग किया है, उसके लिये हम हृदय से आभारी हैं। पर इस इतने बड़े कार्य के लिए हमें आपका और अधिक सहयोग तथा प्यार चाहिये। आप स्वयं अपना कर्त्तव्य सोचें और शक्ति भर जो कर सकते हों, करें। सुदूर से वह ध्वनि आ रही है–शिवास्ते तव पन्थानम्।

-'प्रेम' भिक्षुः (आचार्य)

।। ओ३म् ।।

रामायण काल

विषय-सूची

सम्पादकीय

रामायण 'महाकाव्य' है। भक्तिरस की प्रधानता करके कई कवियों ने इसे भक्तिरस से रंगा है। वैसे भक्तिरस वाले काव्य आजकल जनता को बहुत प्रिय भी हुए हैं। इन कवियों ने इतिहास की ओर दुर्लक्ष्य किया है और इतिहास की ओर दुर्लक्ष्य करने का अभ्यास आजकल जनता को भी बहुत ही हुआ है। क्योंकि शुद्ध और शुष्क इतिहास की अपेक्षा भक्तिरस का रसपूर्ण काव्य सभी को प्रिय लगना स्वाभाविक ही है, तथा परतन्त्र रहने के कारण जिनके सामने राष्ट्रीय कर्त्तव्य अनेक मुखों से उपस्थित नहीं होते हैं, वे ऐसे ही काव्यरस से रंगे हुए कथाभाग प्राप्त करके ही आनन्द लेने का नाटक करते हैं।

पर महर्षि वाल्मीकि के सामने उदयोन्मुख राष्ट्र था, जो शत्रु को परास्त करके अपनी स्वतन्त्र राष्ट्रीयता सिद्ध कर चुका था। अतः रामायण–इस राष्ट्रीय महाकाव्य द्वारा वाल्मीकि ऋषि को कुछ विशेष कार्यक्रम रखना था, नयी दिशा से राष्ट्रीय स्फुरण जनता में करना था। इसलिए आजकल के कवियों के समान भक्ति से उछला हुआ काव्यरस वाल्मीकि ने अपने पाठकों के सामने नहीं रखा। वही ऋषि की भूमिका लेकर हमने इस महाकाव्य का निरीक्षण किया है और वही ऋषि की दृष्टि जनता के सामने रखी है। हमारा ख्याल है कि ऋषि की व्यापक दृष्टि आज भी हमारे लिये लाभदायी होगी।

इतिहास की रक्षा का प्रश्न

राम हमारे पूर्वज थे, वे युगनायक और राष्ट्र–पुरुष थे। उन्होंने किस प्रकार ऋषियों की योजनानुसार अपने समय के तरुण वीरों को राष्ट्र–कार्य में लगाया, जनता की तैयारी किस तरह की गई और जन–जन के मन में बैठे हुए रावण–साम्राज्य के भय को दूर करके किस प्रकार उन्होंने सांस्कृतिक आर्य साम्राज्य की स्थापना की– यह सब हम पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। हम जानते हैं कि ऐसे क्रान्तदर्शी राष्ट्रपुरुष को किस प्रकार धर्मान्धता की आड़ में अवतारवाद के पाटों के बीच पीसा गया और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप किस प्रकार एक ओर तो आज राम और रामायण को काल्पनिक और अनैतिहासिक बताया जा रहा है तो दूसरी ओर उन्हें सामन्तशाही का पोषक और दुर्दान्त शासक सिद्ध किया जा रहा है।

स्वाधीन भारत में यह इतिहास–शुद्धि या इतिहास की रक्षा का प्रश्न सर्वाधिक महत्व रखता है। खेद यह है कि इस प्रश्न की गम्भीरता की ओर कभी हमारा ध्यान तक नहीं जाता और कि इसकी सबसे अधिक उपेक्षा की जा रही है। आज भी हमारे बच्चे पढ़ते हैं–(१) मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे, उनकी पूँछ घिसते–घिसते वे मनुष्य के रूप में आ गये। (२) आर्य भारत के मूल निवासी नहीं। (३) भारत की प्राचीनतम संस्कृति द्रविड़ संस्कृति है। (४) आर्य अग्नि, जल, वरुण, वृक्ष आदि जड़ों की पूजा करते थे। (५) भारत के आदि निवासी असभ्य और जंगली थे। एक ओर यह सब है तो दूसरी ओर पौराणिक अलंकारिक गाथाओं को इतिहास के रूप में पढ़ाया जाता है। यदि हम थोड़ा भी गहराई से विचार करें

तो हम जान सकेंगे कि हमारी अनेक समस्याओं के मूल में यह अशुद्ध इतिहास है। अँग्रेज ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को प्रयोग में लाने के लिए हमारे इतिहास को बिगाड़ने का जो उपक्रम किया था, आज भी हम उसी पापपूर्ण–प्रपंच के शिकार हैं।

राम–रावण युद्ध को भी कुछ इसी प्रकार के गलत रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका दुष्फल हमें 'राम मुर्दाबाद और रावण जिन्दाबाद' के नारों के रूप में सुनने को मिल रहा है। उत्तर–दक्षिण के झगड़े, अभी तक हिन्दी के राष्ट्र–भाषा के रूप में व्यवहृत न हो सकने आदि अनेक समस्याओं के पीछे अशुद्ध इतिहास–जन्य दुर्भावना है। राष्ट्र और राम के सच्चे प्रेमियों को सर्वप्रथम 'इतिहास शुद्धि' के इस पवित्र कार्य के लिए राष्ट्र–व्यापी आन्दोलन खड़ा करना होगा। 'शुद्ध रामायण' के प्रणयन का यह च चुप्रयास एकमात्र इसी भावना से भारत राष्ट्र की कोटि–कोटि मानव–प्रजा के चरणों में विनम्र भाव से अर्पित है।

संस्कृति और सभ्यता एक ही चीज नहीं है। शरीर और आत्मा दो तत्वों के योग का नाम जीवन है। संस्कृति, राष्ट्र–जीवन की आत्मा है तो सभ्यता उसका शरीर। एक पुत्र है राम जो पिता के आदेश पर १४ वर्ष को वन जाता है और कहता है कि यह तो क्या पिता की आज्ञा से मैं अग्नि में कूद सकता हूँ और तीक्ष्ण विष भी खा सकता हूँ। एक और पुत्र है, औरंगजेब जो अपने पिता शाहजहाँ को कैद में डालकर एक–एक बूँद पानी के लिए तरसाता है। यह संस्कृति का फर्क है।

संस्कृति मानव के अभ्यन्तर का निर्माण करती है। इसका आधार अध्यात्म है। सभ्यता का सम्बन्ध बाह्य शिष्टाचार, रहन–सहन और भौतिक प्रगति आदि से है। रामायणकालीन संस्कृति का दर्शन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। आगे के पृष्ठों में हम रामायणकालीन सभ्यता की भी एक झाँकी देखें और विचारें कि हमारे महान् पूर्वजों को असभ्य और जंगली बताने वाले आज भी उनके मुकाबिले में असंस्कृत और असभ्य हैं।

परमेश प्रभु भारत–पुत्रों को 'स्व' को, 'आत्म–विराट्' को समझने की क्षमता दें जिससे–

'मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान् फिर संसार में गूँजे हमारी भारती।।'

युगकवि के इस स्वर्णिम स्वप्न को हम साकार कर सकें।

-**'प्रेम'**

रामायण काल

क्या रामायण-काव्य काल्पनिक है ?

हमारे विचार से तो श्रीराम एक ऐतिहासिक और सत्य व्यक्ति हैं और रामायण भी एक सत्य ऐतिहासिक काव्य है। इस विषय में कुछ विस्तार से पिछले पृष्ठों में हम विचार कर चुके हैं और पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर चुके हैं कि रामायण एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। किन्तु इन्हें 'कल्पना–चित्र मानने वालों के संतोषार्थ 'दुर्जनतोष न्याय' से हम भी क्षण भर के लिये उन्हें कल्पनाचित्र ही मानलें, तो भी हमारे मुख्य उद्देश्य में कोई व्याघात नहीं पहुँचता। हमारा प्रतिपाद्य विषय है– 'भारतीय आर्यों की संस्कृति एवं सभ्यता' न कि श्रीरामचन्द्रजी या रामायण। अतः यदि रामायण को कोई काल्पनिक काव्य माने, तो उससे हमारी संस्कृति–सिद्धि में कोई बाधा नहीं आती। रामायण में धर्म, राजनीति शिल्पशास्त्र, वास्तुशास्त्र, युद्धशास्त्र, ललितकला इत्यादि अनेक शास्त्रों और कलाओं का वर्णन है और वह अत्युच्च श्रेणी का है। ऐसे उच्च श्रेणी के वर्णन केवल कल्पना की ही सहायता से करने वाले मस्तिष्क जिस समाज में होते हैं, और जिस समाज की सभ्यता का इस प्रकार उच्च श्रेणी का वर्णन हो सकता है, वह समाज असभ्य, जंगली या अर्धसभ्य हो ही नहीं सकता। कल्पित काव्यान्तर्गत व्यक्ति भले ही काल्पनिक हों, परन्तु उनके पारस्परिक व्यवहार, उनसे लगाव रखने वाले पदार्थ सृष्टि में यथापूर्व विद्यमान होने ही चाहिये। जो पदार्थ सृष्टि ही में न हों, उनका वर्णन कवि कभी नहीं कर सकता। कवि किसी पदार्थ के वर्णन में अत्युक्ति भले ही कर जाय, परन्तु उस अत्युक्ति के लिये भी मूलतः उस पदार्थ के अस्तित्व की अपेक्षा उस कवि को रहती ही है। अतः रामायण में जितना काव्यभाग है, उसे छोड़कर उसके मुख्य इतिहास की छानबीन की जाए, तो यही सप्रमाण सिद्ध होता है कि भारतीय आर्यों की सभ्यता, वर्तमान शिखरारूढ़ पाश्चात्य राष्ट्रों की सभ्यता की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं थी, अपितु श्रेष्ठ ही थी। सारांश, श्रीरामचन्द्र को 'काल्पनिक व्यक्ति' और रामायण को 'काल्पनिक काव्य' कहने वालों के विचार से भी हमारी भारतीय आर्यों की सभ्यता–सर्वोच्च ही सिद्ध होती है। तथापि हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि हम श्रीरामचन्द्रजी को सत्य ऐतिहासिक व्यक्ति और रामायण को सत्य ऐतिहासिक काव्य मानते हैं, अतएव हमारा विषय–प्रतिपादन भी उत्तरोत्तर उसी विश्वास पर होगा।

महान् आर्य जाति

आजकल जिसे हम 'भारतवर्ष' कहते हैं, इस देश का आदिनाम 'आर्यावर्त्त' था। आर्य लोग ही आरम्भ में इस देश के मूल निवासी थे और यह देश राजा भरत के समय तक इसी नाम से पुकारा जाता रहा। महाराजा भरत ऐसे प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुए कि यह देश उन्हीं के नाम से भारतवर्ष कहलाने लगा।

आर्य- जो श्रेष्ठस्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं। रामायण काल में हमारे देशवासी आर्य कहलाते थे। वाल्मीकि रामायण में राम आदि के लिये तो स्थान–स्थान पर 'आर्य' शब्द का प्रयोग हुआ ही है, हनुमान्, सुग्रीव और रावण तक के लिए भी इस शुभ शब्द का प्रयोग आता है। इससे स्पष्ट है कि इस सम्पूर्ण देश के निवासी ही तब आर्य कहलाते थे। (याद रहे 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में तो क्या, तुलसी रामायण में भी नहीं मिलता।)

हमारी सृष्टि में सबसे ऊँचा स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) है। लगभग दो अरब वर्ष बीते कि जलमय जगत् में से सबसे पूर्व यही भाग बाहर निकला और उसी पर अमैथुनी सृष्टि के (अर्थात् बिना माता–पिता के युवा मनुष्य उत्पन्न हुए। इन मनुष्यों में चार ऋषियों के पूर्व कर्म सबसे उत्तम थे जिनका नाम (१) अग्नि (२) वायु (३) आदित्य (४) अंगिरा था। आदि सृष्टि में परमेश्वर ने इन्हीं चार ऋषियों के हृदयों में चारों वेदों का उपदेश किया। जिन मनुष्यों ने वेदों की आज्ञानुसार अपने आचरण बनाये, वह आर्य कहलाये और जो इसके विरुद्ध कर्म करने लगे वह 'दस्यु' नाम से प्रसिद्ध हुए।

तिब्बत से कुछ लोग तो योरुप आदि देशों को चले गये जिनकी सन्तान आजतक वहाँ विद्यमान हैं और कुछ आर्यावर्त्त में आकर बसे। यह स्थान उस समय सबसे अधिक रमणीक और उपजाऊ था। तिब्बत को आर्यों की आदिभूमि होने से आदर प्रकट करने को देवलोक या स्वर्गलोक और वहाँ के निवासियों को देव कहते थे। वानर और राक्षस आर्य ही थे, जिनमें आर्यत्व के संस्कार अब क्षीण होने लगे थे। इस प्रकार देव, नर, वानर और राक्षस– ये सभी महान् आर्यजाति के ही अंग थे।

रामायण काल के धार्मिक सिद्धान्त

इस काल के आर्यों का धर्म वेद था। वेद चार हैं–ऋक्, यजु, साम और अथर्व। संसार में जितना ज्ञान का चमत्कार दृष्टि में आता है वह सब वेदों ही से लिया गया है। सारी विद्याओं और ज्ञान का भण्डार वेद है। यदि आदिसृष्टि में परमात्मा वेद का ज्ञान न देता तो सब मनुष्य असभ्य और मूर्ख रहते। क्योंकि जिस प्रकार बिना सूर्य के प्रकाश के आँख कुछ नहीं कर सकती, इसी भाँति बिना परमात्मा के ज्ञान के बुद्धि कुछ नहीं कर सकती। तो रामायणकालीन आर्य वैदिक धर्मी थे, वह वेद में बताये केवल एक ईश्वर की पूजा, अर्थात् स्तुति, प्रार्थना, उपासना किया करते थे। एक ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को पूज्य देव नहीं समझते थे। वे ईश्वर, जीव, प्रकृति– इन तीन पदार्थों को

अनादि मानते थे और संसार से छूट कर मोक्ष को प्राप्त करना अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे। चोरी, व्यभिचार, झूठ, हिंसादि कुकर्मों को बहुत बुरा समझते थे। यज्ञ, दान, परोपकार, जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से प्रीति रखते थे।

यही कारण है क्षत्रियवीर राम ने बालि और रावण का वध किया। रावण वेदों का प्रकाण्ड पण्डित था। यहाँ तक कि चारों वेदों और छः शास्त्रों का ज्ञाता होने से उसे काव्य की भाषा में 'दशशीश' कहा गया, किन्तु आचारहीन होने तथा सीता हरण के पाप कर्म के कारण उसका महा पतन हुआ।

पञ्च यज्ञ या नित्य कर्म- ब्रह्म, देव, पितृ, भूत और अतिथि यह पांच यज्ञ रामायणकालीन आर्य लोग नित्य करते थे। इनकी संक्षिप्त व्याख्या हम नीचे करते हैं :–

ब्रह्म-यज्ञ- वेद के कुछ मन्त्र इस यज्ञ के लिये आर्यों ने चुन लिये थे जिनके द्वारा वे परमात्मा की प्रार्थना और उपासना किया करते थे। इसका अभिप्राय यह था कि मनुष्य इस जगत्–रचयिता प्रभु को भूल न जावे और उसकी उपासना से अपने भीतर बल बढ़ावे और उसकी बनाई हुई सृष्टि में किसी से बैर भाव न करे तथा प्राणायाम द्वारा समाधि को प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करे।

देव-यज्ञ- उस काल के आर्य देव–यज्ञ या अग्निहोत्र में सुगन्धित, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, रोगविनाशक पदार्थ अग्नि में जलाते थे और वेद मन्त्रों का पाठ करते थे। इस कर्म से जितनी दुर्गन्धि संसार में उत्पन्न होती थी, वह नष्ट हो जाती थी और उसके नष्ट होने से बहुत से रोगों का नाश हो जाता था। वर्षा नियमपूर्वक होती थी और जो पदार्थ अग्नि में जलाये जाते थे वह उससे सहस्त्रों गुणा अधिक और स्वच्छ रूप में होते थे, जिससे मनुष्यों को बड़ा सुख मिलता था।

पितृ यज्ञ- माता, पिता, दादा, दादी, आचार्यादि जो बड़े जीवित होते थे, उनकी तथा देवों (विद्वानों) की सेवा और पूजा श्रद्धापूर्वक उस काल के आर्य लोग नित्यप्रति किया करते थे और इसी को पितृ–यज्ञ कहते थे।

भूत-यज्ञ- जब भोजन बन कर तैयार हो जाता था, तब थोड़ा भोजन लेकर कुछ का हवन करते और शेष को छः भागों में विभक्त करके कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक, कृमी को बाँट देते थे। इस प्रकार इन मनुष्यों और पक्षियों का पालन हो जाता था।

अतिथि यज्ञ- गृहस्थी का भार अपने पुत्र आदि पर छोड़ परोपकारार्थ जो विद्वान साधु घूमते थे, उनको अतिथि कहा जाता था। उनकी सेवा और सत्कार का नाम अतिथि–यज्ञ था। रामायणकालीन आर्यों का नियम था कि ऐसे महात्माओं को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। इस प्रकार धार्मिक साधुओं को भिक्षा माँगने की आवश्यकता नहीं होती थी।

सोलह संस्कार- रामायणकालीन आर्य लोग मनुष्य शरीर के सोलह संस्कार करना धर्म का एक अंग समझते थे और इन संस्कारों को बड़ी श्रद्धा और प्रेम से किया करते थे। इनमें वे अपने सम्बन्धियों व इष्ट मित्रों को निमन्त्रित करते तथा उनका आदर सत्कार करते थे। प्रत्येक संस्कार में हवन, यज्ञ करना आवश्यक था और वेद मन्त्रों का गान किया जाता था। स्त्रियाँ भी इन संस्कारों में ऐसे ही सम्मिलित होती थीं जैसे पुरुष, क्योंकि उस समय स्त्रियों के कोई अधिकार पुरुषों ने छीने नहीं थे।

धार्मिक पुस्तकें- इस काल में वेदों के अतिरिक्त उपवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ,स्मृति, उपनिषद् तथा अन्य शास्त्र भी वेदानुकूल होने से धर्मग्रन्थ माने जाने लगे थे।

इस प्रकार रामायण काल में वेदों का ही पठन–पाठन, एक ईश्वर की ही उपासना, एक मात्र प्रणव (ओंकार) जाप, (अन्य अवैदिक जाप और जन्त्र तन्त्र नहीं) सन्ध्योपासना, यज्ञ–याग पंच महायज्ञों का अनुष्ठान, गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था, आश्रम चर्या का विधिवत् पालन तथा वैदिक संस्कारों का सश्रद्धा अनुष्ठान आदि–आदि धार्मिक क्रियायें सम्पन्न होती थीं। अवतारवाद, बहुदेवतावाद, मूर्तिपूजा, जन्मगत जाति–पाँति, अखण्ड कीर्तन, नाम माहात्म्य, भागवत सप्ताह आदि तथा अन्य अनेकों अवैदिक कर्मकाण्डों का रामायणकाल में नाम तक भी नहीं था।

मूर्तिपूजा और रामायणकाल

(श्रद्धेय पं० राजेन्द्र जी कृत 'भारत में मूर्तिपूजा' से साभार)

रामायणकाल का ठीक–ठीक समय निश्चय करने में तो ऐतिहासिकों में मतभेद हो सकता है, किन्तु यह सर्वमान्य है कि रामायण में वर्णित ऐतिहासिक घटना महाभारत से दीर्घकाल पूर्व घटी। यह वह समय था जब वैदिक मर्यादा तथा आर्य संस्कृति का लोप नहीं हुआ था। किन्तु इतना स्पष्ट है कि माँसाहार, सुरापान आदि आसुरी प्रवृत्तियों का सूत्रपात हो गया था। वैदिक कर्मकाण्ड में प्रवृत्त ऋषि, मुनियों के यज्ञों को मांसादि अपवित्र वस्तुओं से विध्वंस करने की दुष्ट चेष्टा प्रारम्भ हो गई थी। यदि देखा जाय तो इन्हीं वैदिक यज्ञों एवं संस्कृति की रक्षार्थ उस समय जो कुछ प्रयत्न किया गया, वही रामायण की कथा का मुख्य कथानक है।

इस समय रामायण सम्बन्धी जितनी भी सामग्री अनेक ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध है, उस सबका आधार, ऋषि–वाल्मीकि कृत रामायण ही है। किन्तु आज जितनी भी वाल्मीकि रामायणें मिलती हैं उनके काण्ड, सर्ग और श्लोक संख्या में विभिन्नता तथा अनेक अप्रासंगिक एवं प्रकृति नियम विरुद्ध स्थलों को देखते हुए यह सब ही मानते हैं कि अन्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ में भी प्रक्षिप्त–सामग्री की न्यूनता नहीं है। इस समय वाल्मीकि रामायण की दो प्रकार की प्रतियाँ मिलती हैं, एक गौड़ वा बंग देश की और दूसरी बम्बई की। बम्बई की प्रति में बंग देश की प्रति से एक काण्ड (उत्तरकाण्ड) ६३ सर्ग तथा ४७३५ श्लोक अधिक हैं। इटैलियन (इटली की) भाषा में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् गौरीसियो (Gorreseo) कृत रामायण का जो अनुवाद मिलता है, उसमें भी उत्तरकाण्ड रहित केवल छः काण्ड हैं। इसी प्रकार चम्पू रामायण जो महाराज भोज के समय बनी थी और जिसमें वाल्मीकि रामायण का सार लिखा है, युद्धकाण्ड तक ही है। युद्धकाण्ड समाप्ति पर स्वयं वाल्मीकीय–रामायण में रामायण का माहात्म्य वर्णन किया गया है जो कि किसी ग्रन्थ के आदि या अन्त में लिखा जाता है और सिद्ध करता है कि उत्तरकाण्ड का समावेश पीछे से किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त स्पष्ट प्रक्षिप्त भागों के होते हुए भी समस्त रामायण में सर्वत्र केवल वैदिक यज्ञों का वर्णन है, मूर्तिपूजा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। मनुस्मृति की भाँति वाल्मीकि रामायण में भी माँसाहार एवं यज्ञ में पशुबलि दी जाने की पुष्टि तो कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों द्वारा अवश्य की गई है, जिसमें वाममार्ग का स्पष्ट हाथ दृष्टिगोचर होता है, किन्तु मूर्तिपूजा विषयक श्लोकों का सर्वथा अभाव यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि जिस समय में यह प्रक्षिप्त भाग मिलाये गये, उस समय में भी इस देश में मूर्तिपूजा प्रचलित नहीं थी। अतः हमारी यह धारणा कि मूर्तिपूजा का प्रचार इस देश में बौद्धकाल से पूर्व में नहीं था, निराधार नहीं है।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड से निम्न श्लोक मूर्तिपूजा के पक्ष में प्रायः उपस्थित किया जाता है–

यत्र यत्र स्मयातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिंगं तत्र तत्रस्म नीयते।।

रावण जहाँ–जहाँ जाता था, अपने साथ सुवर्णमय लिंग ले जाता था इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि 'बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिगं स्थाप्य रावणः' अर्थात् बालू की वेदि पर रावण ने लिंग की स्थापना की इत्यादि। प्रथम तो यह श्लोक उत्तर काण्ड के हैं, जिसे हम अनेक प्रमाणों द्वारा प्रक्षिप्त भाग सिद्ध कर चुके हैं। किन्तु इन्हें यदि ठीक मान लिया भी जाय तो यह कृत्य राक्षसी था। यह भी ठीक ही है कि शिवलिंग पूजा का प्रचार वाममार्ग द्वारा हुआ और रावण भी वाममार्गी ही था। अतः इससे हमारे पक्ष की हानि नहीं होती।

उस समय आर्य लोग प्रातः सायं सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र करते थे इसका वाल्मीकि रामायण में बहुलता से वर्णन है। विश्वामित्र ने राम, लक्ष्मण से कहा कि–

स्नाताश्च कृतजप्याश्च हतहव्या नरोत्तम।।१८

– सर्ग २३ बाल०

हम लोग स्नान करेंगे और जप करके हवन करेंगे।

तथैव गच्छतस्तस्य व्यापायद्रजनो शिवा।
उपास्यतु शिवां सन्ध्यां विषयानत्यगाहत।।२

– सर्ग ४६ अयोध्याकाण्ड

उसी प्रकार चलते हुए रामचन्द्र को वह कल्याणमयी रात बीत गई। प्रातःकाल की सन्ध्या करके वे आगे दूसरे देश में गये।

ततश्चीरेत्तरासंगः संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
जलमेवददे भोज्यं लक्ष्मेणनाहृतं स्वयम्।।४८

– सर्ग ५० अयोध्याकाण्ड

तदनन्तर रामचन्द्र ने चीर ओढ़ कर सायंकाल की सन्ध्या की और लक्ष्मण का लाया हुआ जल ही ग्रहण किया।

राम ने लक्ष्मण से कहा–

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संहितो मुनिः।।५

– सर्ग ५ अयोध्याकाण्ड

प्रयाग के पास भगवान् अग्नि की ध्वजा, सुगन्ध धूम देखो, इससे प्रतीत होता है कि मुनि यहीं हैं, कहीं बाहर नहीं गये।

उसी प्रकार भरत, शत्रुघ्न के भी हवन और जाप करने का उल्लेख है–

रजन्यां सुप्रभूतायां भ्रातरस्ते सुहृदृताः।
मदाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमत्।।२

– सर्ग १०५ अयो०काण्ड

रात्रि के बीतने पर वे भाई मित्रों के साथ मन्दाकिनी, तीर पर स्नान, हवन और जप करके रामचन्द्र के पास आये।

इसी भाँति ऋषि, मुनियों द्वारा अग्निहोत्र करने का भी वर्णन है–

वासं चक्रुर्मुनिगणाः शीणाकूले समाहिताः।
ते स्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः।।२०

– सर्ग ३१ बालकाण्ड

सूर्य के अस्त होने के समय में ,स्नान करके उन मुनियों ने अग्निहोत्र किया।

उपर्युक्त समस्त उद्धरण इतने स्पष्ट हैं कि किसी टीका–टिप्पणी की अपेक्षा नहीं रखते। इससे सिद्ध है कि रामायणकाल वेद प्रतिपादित यज्ञादि का काल था और उसमें कहीं भी मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं था।

कैसे आश्चर्य की बात है कि भगवान् राम स्वयं सन्ध्योपासना और अग्निहोत्र करें किन्तु उनके भक्त उनकी मूर्तिपूजा करके अपने आपको कृतकृत्य समझें। भगवान् बुद्ध के भक्तों ने भी उनके आदेशों पर न चलकर उनकी मूर्ति की पूजा आरम्भ कर दी थी। परन्तु बौद्ध नास्तिक थे, उनके समक्ष उनका कोई उपास्य देव नहीं था, अतः उन्होंने यदि ऐसा किया तो अस्वाभाविक नहीं है। दुःख तो राम के भक्तों पर है, जिन्होंने श्रीराम के आस्तिक होते हुए भी राम के आदर्शों को न अपना कर उनके स्थान पर उनकी मूर्ति की पूजा प्रचलित कर दी।

तुलसीकृत रामायण में कुछ स्थलों पर मूर्तिपूजा का वर्णन, श्रीतुलसीदास जी की अपनी निजी कल्पना है। वह स्वयं वैष्णव थे, अतः यह स्थल केवल उनके अपने विचारों के ही प्रतिबिम्ब हैं, उनका आधार वाल्मीकि कृत रामायण नहीं। न सीताजी ने स्वयंवर के समय देवी की जाकर पूजा की और

न राम ने सेतुबन्ध के अवसर पर रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना अथवा पूजा की। वाल्मीकि रामायण में इतना वर्णन है कि लंका से विमान द्वारा लौटते समय राम ने सीता से संकेत करके कहा कि यहाँ महादेव की कृपा से हमने समुद्र पर पुल बाँधा था–

एतत् दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्यपरिपूजितम्।।२०
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।
अत्र पूर्वं महादेव प्रसादमकरोद्विभुः।।२१

– युद्ध काण्ड सर्ग १२३

यह बड़े समुद्र का तट दिखाई पड़ रहा है, इसे सेतुबंध कहते हैं, यह तीन लोक में प्रसिद्ध है। यह परम पवित्र स्थान है, यहाँ पापी महापातकों का प्रायश्चित करते हैं। यहाँ ही सर्वव्यापक, देवों में बडे, महादेव परमात्मा ने हम पर कृपा की। उपरोक्त श्लोकों में कहीं भी शिवलिंग की स्थापना तथा उसके पूजन की बात नहीं है। सम्भवतः महादेव शब्द जिसके अर्थ देवों में महान् परमात्मा है, को देखकर तुलसीदासजी ने शिवलिंग स्थापना एवं उसकी पूजा की कल्पना करली।

जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद का आधार–आधेय सम्बन्ध है, किन्तु वाल्मीकीय रामायण से राम का ईश्वरावतार होना भी सर्वथा असिद्ध है। समस्त रामायण में राम को कहीं भी ईश्वरावतार नहीं लिखा। हाँ कहीं–कहीं विष्णु के समान अथवा विष्णु का अंश अवश्य लिखा है किन्तु यदि हम विचारपूर्वक इन स्थलों को देखें तो यह पीछे से मिलाये हुए प्रतीत होते हैं। अन्यथा स्वयं भगवान् राम ने अनेक स्थानों पर अपने आपको मनुष्य ही घोषित किया है।

राम ईश्वर के अवतार नहीं थे

अस्ति कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्।।

– वा० रा० अरण्य० ६० ।१२

कदम्ब वृक्ष! कदाचित् तूने कदम्ब से प्रेम करने वाली प्यारी सीता देखी ही तो बता।

इस प्रकार जड़ पदार्थों से अज्ञों की भाँति सीता को पूछते फिरना, राम ईश्वर का अवतार नहीं है, यही बतलाता है।

कि त्वया तप्यते वीर यथा न्यः प्राकृतस्तथा।

– वा० रा० युद्ध० २।२

सुग्रीव राम को सीता के लिए व्याकुल देखकर समझाता है कि हे राम! क्यों आप साधारण मनुष्यों की भाँति दुःखित हो रहे हो।

राम ईश्वर का अवतार होते तो ऐसे दुःखी न होते और सुग्रीव जैसे को सान्त्वना देने का अवसर न आता।

करिष्यामि यथार्थं तु काण्डीर्वचनमुत्तमम्।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यस्यात्तु फलोदयम्।।

— यु० १८।३२

राम कहते हैं कि मैं काण्डु का वचन पालन करूँगा, वह धर्मानुकूल, यशोवर्धक और स्वर्गदायक है।

यहाँ राम द्वारा स्वर्ग की इच्छा रखना उसे ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं करता।

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।।

— युद्धकाण्ड ४६

लक्ष्मण के शक्तिवाण लगने पर मरे जैसे हो जाने पर राम विलाप करते हैं कि हे लक्ष्मण! जैसे वन जाते हुए तू मेरे साथ चला, वैसे ही तेरे यमलोक जाते हुए के साथ मैं भी जाऊंगा। इस प्रकार अधीर हो यमलोक जाने को उद्यत होना राम को ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं करता।

मां वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा।
तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोको ब्रवीत् तेन कृतं विधात्रा।।

— वा० रा० कि० २४।२५

राम सुग्रीव को कहते हैं कि हे वीर! भार्या के सम्बन्ध में विमति मत कर, समस्त संसार विधाता ने रचा है। उस विधाता की ओर से सुख–दुख का योग होता है।

राम यदि ईश्वर का अवतार होते तो विधाता का स्मरण क्यों करते ? इस विषय में पिछले पृष्ठों में हम 'अवतारवाद' मीमांसा के अन्तर्गत विशेष रूप से विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं।

इस प्रकार रामायणकाल में न केवल मूर्तिपूजा ही अप्रचलित थी अपितु राम को ईश्वरावतार मानने की भावना भी प्रसारित नहीं हुई थी। यह समस्त कल्पनाएं वैष्णवादि सम्प्रदायों के प्रचार के पश्चात् ही, पौराणिक काल में इस देश में फैली हैं। स्पष्ट है कि रामायणकाल के धार्मिक सिद्धान्त पूर्णतया वैदिक थे।

रामायणकाल में नारी का स्थान

यजुर्वेद के बाईसवें अध्याय का बाईसवाँ मन्त्र 'वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना' नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्त्र का एक पद है– 'पुरन्धिः योषा आजायताम्।'

–इनका पद्यानुवाद है– आधार राष्ट्र की हो नारी सुभग सदा ही' अर्थात् नारियाँ राष्ट्र जीवन का आधार हैं। किसी सहृदय कवि ने ठीक ही लिखा है–

'नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से ही ऊपजे, बली, गुणी, सुज्ञान।।

हमारे शास्त्रकार 'माता निर्माता भवति' लिखकर मातृशक्ति के महत्व को दर्शाते हैं। मध्यकाल में जिन लोगों ने 'नारी नरक का द्वार' का नारा घोषित किया, जिन्होंने 'स्त्री शूद्रोनाधीयतामितिश्रुतेः' जैसी निरर्थक मनगढ़न्त श्रुतियों की रचना की उन्होंने अनादि नित्य भगवती श्रुति की ही विडम्बना नहीं, मानवता का घोरतम अपकार किया। शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि 'शुद्धाः पूतः योषिता यज्ञियः इमः' जिसका स्पष्ट अर्थ है कि ये स्त्रियाँ शुद्ध हैं, पवित्र हैं, पूजनीया हैं, और यज्ञ में पुरुष की अर्धांगिनीं हैं। इनके बिना यज्ञ अपूर्ण है।

इसी वैदिक आधार पर स्मृतियों ने भी स्त्री जाति का उपर्युक्त प्रकार ही स्मरण किया है–

पूजनीयाः महाभागाः, पुण्याश्च गृहदीप्तया।
स्त्रियः श्रियः गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः।।

इस मनु के श्लोक का आशय यह है स्त्रियाँ पूजनीय हैं, भाग्यशाली हैं, पवित्र हैं, घर का प्रकाश और गृहलक्ष्मी हैं। उनकी रक्षा विशेष प्रयत्न से करनी योग्य है। मनु ने नारी के इस महत्व और मुख्यता को इस प्रकार घोषित किया है–

उपाध्यायाद्दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रात्तु पितृ-माता, गौरवेणातिरिच्यते।।

अर्थात् दश उपाध्यायों के तुल्य आचार्य है और सौ आचार्यों के बराबर पिता हैं तथा एक सहस्र पिताओं से अधिक माता है। अतः सिद्ध है कि माता या नारी का महत्व सर्वाधिक है।

किन्तु यहाँ नारी महिमा के सम्बन्ध में विशेष कुछ न कहते हुए हम यह देखना चाहेंगे कि रामायणकाल में नारी का क्या स्थान था। जैसा कि हम देख चुके हैं, इस काल में वैदिक आदर्श बहुत अंश में जीवित थे। अतः उक्त वेद मन्त्रांश तथा स्मृति वाक्यों में वर्णित नारी के गौरवशाली स्वरूप के अनुसार ही रामायणकाल में नारी की सामाजिक स्थिति बहुत उच्च थी।

सामान्य अवस्था- सामान्यतः रामायणकाल में मातृ–शक्ति का बड़ा समादर था। आर्यों में स्त्री पति की अर्धांगिनी समझी जाती थी और उसको गृहलक्ष्मी व देवी के नाम से पुकारा जाता था। जब तक स्त्री भी सम्मिलित न हो, कोई यज्ञ नहीं किया जा सकता था। स्त्री जाति का इतना आदर किया जाता था कि जब विवाह के पश्चात् वह पतिगृह को आती थी, उस समय यदि राजा भी राह से मिल जावे तो राजा को मार्ग छोड़ना पड़ता था। स्त्रियों को गृह सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी परन्तु स्त्रियाँ भी इतनी सुशील होती थीं कि वह पतिसेवा को अपना परम धर्म समझती थीं। पति को वह परमेश्वर से दूसरे दर्जे पर मानती थीं और वह अपना अस्तित्व भी पति के लिए ही समझती थीं। पति की आज्ञा के पालन और पति को प्रसन्न रखने में वह अपना सौभाग्य समझती थीं। वैसे तो यह नियम था कि बाहर के कार्य पुरुष और गृह के कार्य स्त्रियाँ करें, किन्तु आवश्यकतानुसार स्त्रियाँ वेद

प्रचार का कार्य भी करती थीं और कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हुई हैं जिन्होंने रणभूमि में भी पुरुषों की तरह वीरता का परिचय दिया है।

स्त्रियों में परदे का प्रचार न था और न किसी पुरुष की हिम्मत थी कि किसी स्त्री को पाप की दृष्टि से देख सके। आर्यों में नियम था कि अपनी विवाहित स्त्री को छोड़कर अन्य सब स्त्रियों को माता, भगिनी तथा पुत्री के समान समझते थे। स्त्री व पुरुष में परस्पर ऐसा गाढ़ा प्रेम रहता था कि एक दूसरे को किसी अन्य पुरुष तथा स्त्री की आकाँक्षा करना ही असम्भव था और इस प्रेम को तोड़ना महापाप समझा जाता था। जब बालक कुछ समझने योग्य हो जाता था तब प्रथम माता ही गृह पर उसको शिक्षा देती थीं और धर्म की उपयोगी बातें, बड़े–छोटों का बर्त्ताव, सभा आदि के नियम बाल्यावस्था में ही बता देती थीं। इससे बालक असभ्य और दुर्व्यसनी नहीं हो पाते थे। नित्य कर्मों में स्त्री पति के साथ रहती थीं और वह अपने सास–ससुर की सेवा व पूजा नित्य प्रति किया करती थीं और उनको प्रसन्न रखना वह अपना धर्म मानती थीं। जिस समय वधू पतिगृह को जाती थी उस समय उसके माता–पिता यह उपदेश कर देते थे कि अपने सास, ससुर, पति, देवर आदि को प्रसन्न रखना और अपने धर्म पर ऐसी आरूढ़ रहना कि प्राण जायें पर धर्म न जावे।

वाल्मीकि रामायण के पारायण से उक्त तथ्यों की पुष्टि में अनेकों प्रमाण मिलते हैं। यहाँ हम उनमें से कुछेक की चर्चा सक्षेपतः करेंगे।

स्त्रियों के समानाधिकार तथा उनका सम्मान

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्।।

– वा० रा० अयो० ६।१

पुरोहित के चले जाने पर राम ने पत्नी सहित स्नान किया तथा नियत मन से परमात्मा की उपासना की।

यहाँ पत्नी सहित राम के परमात्मा की उपासना का वर्णन है, अतः स्त्री को भी सन्ध्या करने का समानाधिकार है। न केवल पति के साथ ही अपितु अकेले भी स्त्री को सन्ध्या करने का अधिकार सूचित किया गया है। देखिये निम्न वचन–

सन्ध्याकालमानाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।।

– सुन्दरकाण्ड १५।४६

हनुमान् सोचता है कि वह सन्ध्याशील सीता इस शुभ जल वाली नदी पर सन्ध्या करने अवश्य आयेगी।

इस कथन में स्त्रियों को स्वतन्त्र भी सन्ध्या करने का अधिकार सूचित किया गया है।

प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्। अयो० ४।३३

कौशल्या द्वारा प्राणायाम के साथ परमात्मा का ध्यान करने से स्त्रियों के सन्ध्या करने का अधिकार सूचित होता है।

यह तो हुई स्त्री को सन्ध्या करने के अधिकार की बात, अब हवन करने का भी अधिकार स्त्री को है, यह भी देखिये–

सा क्षोमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमंगला।।

वह कौशल्या रेशमी वस्त्र पहने हुए व्रतपरायण प्रसन्न हुई मन्त्रसहित हवन करती थी।

दीक्षा का अधिकार

श्रीमान् सहपत्नीभिः राजा दीक्षामुपाविशत्।।

– वा० रा० बाल० १३

महाराजा दशरथ ने पत्नियों के सहित दीक्षा ली। यहाँ भी दीक्षा में स्त्री का समानाधिकार दर्शाया गया है।

नारी सम्मान

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा।
अवाङ्मुखो भून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः।।

– वा० रा० कि० ३।३६

तारा नाम की बाली की पत्नी को देख लक्ष्मण स्तब्ध अवाङ्मुख खड़ा हो गया तथा स्त्री के सम्मुख क्रोध रहित हो गया।

स्त्री को देखकर क्रोध रहित तथा अवाङ्मुख हो जाना स्त्री का सम्मान करना है। जब शत्रुघ्न दुष्टा मन्थरा की भर्त्सना करने लगे तो भरत रोकते हैं– 'भाई! तुम इसे कुछ न कहो। यदि राम को इसका ज्ञान हो गया तो वह हमसे बोलेंगे नहीं। सीता के वध के लिए तत्पर रावण को जब मन्दोदरी समझाती है तो वह उसका सम्मान करता हुआ शान्त हो जाता है। कैकेयी दशरथ के साथ युद्ध क्षेत्र में जाती है, वहाँ उसकी प्राणरक्षा करती है और इच्छित वरदान प्राप्त करती है। सीता का विवाह स्वयंवर प्रथा से होता है। पर्दा प्रथा का कहीं नाम तक नहीं। स्वयंवर प्रथा में नारी का सामाजिक महत्व स्पष्ट ही है।

पतिव्रत धर्म की भाँति पत्नीव्रत धर्म भी कहा गया है

मोघो हि धर्मश्चरितो ममायं तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम्।

— वा० रा० सुन्दर० २८।१३

राम, सीता के चले जाने पर दुःख से कहते हैं कि मैंने व्यर्थ ही धर्म का आचरण किया और यह एकपत्नीव्रत भी निरर्थक रहा।

इस कथन से स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृति में स्त्री को ही पतिव्रत धर्म का पालन करना पड़ता है, ऐसा नहीं है। पुरुष को भी पत्नीव्रत धर्म का पालन करना पड़ता है। इन सभी प्रसंगों में नारी गौरव की भावना सुस्पष्ट है। नारी को हीन, घृणित, अपवित्र, नरक का द्वार, 'पैर की जूती' आदि समझने की दुष्ट कल्पना पौराणिक युग की ही देन है।

स्त्रियों की शिक्षा और सदाचार

सभ्य और सुधरा हुआ समाज वही समझा जाता है, जिस समाज की स्त्रियाँ भी सुशिक्षिता शीलवती, पतिव्रता और स्वार्थत्यागिनी हों। इसमें मतभेद होने के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। किसी समाज का अकेला पुरुषवर्ग ही सुशिक्षित हो, तो उस समाज को पूर्णतया 'सभ्य' या सुधरा हुआ नहीं कह सकते, क्योंकि समाज का अर्ध–भाग जो स्त्रीवर्ग है वह जब तक सुशिक्षित नहीं होता, जब तक समाज की सभ्यता पूर्णत्व को नहीं पहुँच सकती।

रामायण काल की स्त्रियाँ कैसी सुशिक्षित होती थीं, यह विशेषतया सीता के चरित्र और सामान्यतः रामायण के सभी पात्रों के पर्यालोचन से प्रकट हो सकेगा। सीता व्रतस्नातिका ब्रह्मचारिणी थीं। सीता की माता धरिणी ने शिशु अवस्था से ही सीता को सुसंस्कृत किया था जिसकी छाप हम सीता के सम्पूर्ण जीवन में पाते हैं। पीछे हम 'नारी रत्न सीता' शीर्षक के अन्तर्गत सीता की सुशिक्षा, पति–परायणता, व्यवहार कुशलता और धार्मिकता के सम्बन्ध में विचार कर चुके हैं। यहाँ हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि रामायणकाल में न केवल आर्यदेवियाँ वरन् वानरी और राक्षसी स्त्रियाँ भी कितनी विदुषी और सुशिक्षता थीं। इस प्रसंग में प्रथमतः हम वानर राज बाली की स्त्री तारा के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

श्रीरामचन्द्रजी के वाण से मर्माहत होकर बाली पृथ्वी पर गिर पड़ा है। तब सुग्रीव, अंगद, तारा, हनुमान्जी आदि अन्य वानर मन्त्री उसके पास इकट्ठे हुए हैं। बाली राज्य सौंपने के चिह्न स्वरूप अपने गले की काँचनी माला सुग्रीव के गले में पहनाता है और अनन्तर राज्य तन्त्र चलाने का अन्तिम परामर्श देते हुए वह तारा को लक्ष्य कर सुग्रीव से कहता है–

सुषेणदुहिता चैषा अर्थसूक्ष्मविनिर्णये।
औत्पातिक च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता।।१३

यत् एषा साध्विति ब्रूयात् कर्तव्यं मुक्तसंशयम्।
नहि तारामत किंचित् अन्यथा परिवर्तते।।१४

– किष्किन्धा काण्ड सर्ग २२

'हे सुग्रीव, सुषेण वानर की पुत्री–यह तुम्हारी भाभी जो तुम्हारे सम्मुख बैठी है किस योग्यता की स्त्री है, यह तुमको मालूम ही है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और पेचीदा राजकीय प्रश्नों का निर्णय करने में तथा अनेक राजनैतिक गुत्थियों को सुलझा कर राजतन्त्र को सुव्यवस्थित करने में अत्यन्त निपुण है। जिस कार्य में इनकी अनुमति होगी, वह कार्य तुम निःसन्देह करते जाओ। उसमें कभी असफल नहीं रहोगे। 'यदि मैंने भी इस समय तारा का कहा माना होता, तो मेरी भी ऐसी दुरवस्था कभी नहीं होती।'

उपर्युक्त वर्णन से यह अनुमान निकलता है कि राजसभा में अत्यन्त विश्वासपात्र जैसे श्रेष्ठ मन्त्री की योग्यता रखनेवाली सुशिक्षित स्त्रियाँ वानर समाज में थीं। इसी प्रकार तत्कालीन वानर समाज स्त्री–शिक्षा–सम्बन्धी सुधार में भी कितना आगे बढ़ा हुआ था तथा वर्तमानकालीन स्त्रियों की अपेक्षा तत्कालीन वानरी स्त्रियों को शिक्षा किस प्रकार की तथा कितनी उच्च श्रेणी की दी जाती थी, यह बात भी ध्यान में रखने के योग्य है।

अब तारा की पतिपरायणता और स्वार्थविमुखता का भी नमूना देखिये! श्रीरामचन्द्रजी के बाण से बाली के मर्माहत होकर पृथ्वी पर गिरते ही उसके पक्ष के वानरों में भागदौड़ मच गई। तारा के कानों मे यह वार्ता आते ही वह दौड़ती हुई रणक्षेत्र पर–जहाँ बाली मरणोन्मुख पड़ा हुआ था, आई। उस समय उसके मन्त्रियों ने उसे बहुत समझाया कि हे महारानी! आप लौट जाइये और युवराज अंगद की रक्षा कीजिये। आपका इस समय यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ है, क्योंकि किष्किन्धा पर शीघ्र ही शत्रु का आक्रमण होना सम्भव है। इसलिए आप जल्दी लौट जाइये और नगर–प्राचीर के कुल दरवाजे बन्द करके प्राचीर के चारों ओर शूर–वीर वानरों की सेना लगाकर नगर रक्षा का प्रबन्ध कीजिए। युवराज अंगद को शीघ्रता से राज्य सिंहासन पर स्थापित कर दीजिये, जिससे सब वानर आपके पक्ष में आ मिलेंगे तथा हम सब आपके ही सहायक हैं। यह सुनकर तारा ने उत्तर दिया–

पुत्रेण मम किं कार्यं राज्येनापि किमात्मना।
कपिसिंहे महाभागे तस्मिन् भर्तरि नश्यति।।१८
पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः।
यां सौ रामप्रयुक्ते शरेण विनिपातितः।।१६

– कि० सर्ग १६

"वे महाभाग कपिश्रेष्ठ! मेरे पतिदेव मृत्युशय्या पर पड़े हुए हैं और मेरा सौभाग्य भी उन्हीं के साथ नष्ट हो रहा है। अब मुझे पुत्र से और राज्य से भी क्या प्रयोजन है ? रामचन्द्र जी के वाण से ये मेरे पतिदेव रण में आहत हुए हैं, सो इन्हीं के चरणों पर मैं अपना शरीर समर्पण कर दूँगी। यह कह कर तारा बाली के शरीर पर पछाड़ खाकर गिरी और अत्यन्त आक्रोश करने लगी। तब हनुमान् जी

ने आगे बढ़कर सान्त्वना देते हुए तारा से कहा कि 'हे महारानी जो होना था सो हो गया। अब शोक करना छोड़कर आगे के लिये राज्य प्रबन्ध की योग्य आज्ञा दीजिये। युवराज अंगद समेत हम सब वानर वीर तथा यह सारा वानर–राष्ट्र आप ही के आधीन है। आपकी देखभाल में युवराज अंगद सिंहासनाधिष्ठित होंगे और हम सब आपके आज्ञानुवर्ती रहेंगे। पुत्र को सिंहासन पर अधिष्ठित देखकर आप सुखी होंगी और कालान्तर में इस शोक को भी भुला देंगी।' हनुमानजी के इस वक्तव्य पर तारा ने जो उत्तर दिया, वह प्रत्येक आर्य गृहिणी को आस्थापूर्वक अपने हृदय के अन्तःस्थल में मुद्रित कर रखने के योग्य है। तारा ने कहा–

अंगदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम्।
हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम्।।१३

– किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २१।१३

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी।
धनधान्यसमृद्धा पि विधवेत्युच्यते बुधैः।।१२

– किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २३।१२

अर्थात् – "अंगद के समान एक सौ ऐश्वर्यवान् पुत्रों को साथ लेकर ऐश्वर्य भोगने की अपेक्षा इस वीर मृत पति के साथ प्राण त्याग देना अधिक श्रेयस्कर है। पुत्र का ऐश्वर्य, राजमाता का मान–सम्मान, सम्पूर्ण राष्ट्र का सर्वाधिकार, इत्यादि का प्रलोभन जो तुम मुझे दिखा रहे हो, वह सब वृथा ही है। क्योंकि पतिहीन स्त्री यद्यपि कई पुत्रों वाली हो, धनधान्य से समृद्ध हो, तथापि 'विधवा' ही कही जाती है। उसे सुहागिन कोई नहीं कहता।" देखिये, कितनी यह पतिनिष्ठा और कहाँ तक यह स्वार्थत्याग है ! राजमाता का मान, सारे वानर राष्ट्र का सर्वाधिकार, सब मन्त्रियों की अनुकूलता, राजैश्वर्य और तज्जन्य सर्व सुखोपभोग, इत्यादि सब मिलते हुए भी जो स्त्री लोभवश नहीं हुई, किन्तु सबको तुच्छवत् मानकर तथा अपने जीवन को भी तृणवत् समझकर जो साध्वी अपने मृत पति के साथ चिता पर आरूढ़ हो जाने को तैयार हो गई, उसके त्याग की, आत्मसुख विमुखता की, धैर्य की तथा पतिप्रेम की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी थोड़ी ही है।

अब राक्षस समाज की स्त्रियों की शिक्षा-संस्कृति का वर्णन

इस प्रकार स्वार्थ त्याग करने वाली, आत्मसुखपराङ्मुखी, पतिपरायण, राजसभा के मन्त्रिमण्डल में भी श्रेष्ठता पाने योग्य तारा से सदृश सुशिक्षित स्त्रियाँ जिस वानर समाज में जन्म लेती थीं, वह वानरसमाज यदि 'बर्बर, असभ्य या जंगली कहा जाने के योग्य हो, तो एक पति के साथ यथेष्ठ सुखप्राप्ति नहीं हुई, तो उसको छोड़कर उससे अधिक धनवान् दूसरा पति किया, पुनः उससे भी अधिक सुखचैन न मिलने की अथवा कोई विशिष्ट स्वार्थसाधन की आशा दिखाई दी कि उस दूसरे पति को भी ठुकरा कर कोई तीसरा लक्ष्मीपुत्र या राजपुत्र गाँठा! ऐसी केवल विषयसुखलोलुप, स्वार्थपरायणा

पतिव्रता (??) स्त्रियाँ जिस समाज में मुँह ऊँचा उठाकर प्रतिष्ठा के साथ संचार कर सकती हैं, क्या वह पाश्चात्य समाज 'सभ्य' कहा जाने योग्य है ? और क्या ऐसी स्त्रियाँ 'सुशिक्षित' कही जा सकती हैं ?

नमूना भी देखिये। रावण–पत्नी मन्दोदरी का पतिव्रत तो प्रसिद्ध ही है, उत्तरकाण्ड में कुम्भीनसी नाम की एक राक्षसी का उल्लेख है। यह रावण की मौसेरी बहिन और उसकी बड़ी दुलारी थी। रावण की अनुपस्थिति में मथुरा का शासक मधुदैत्य उसे ले गया। रावण को जब इसका ज्ञान हुआ तो वह विमान से वहीं जा पहुँचा। कुम्भीनसी तब रावण के पैरों में गिर पड़ी। रावण के मुँह से प्रेमवश "सौभाग्यवती भव" यह आशीर्वाद स्वाभाविकतया निकल पड़ा और फिर उसने कुम्भीनसी को जो उसकी इच्छा हो, मांगने का अनुरोध किया। प्रिय पाठक, आपकी क्या कल्पना है कि कुम्भीनसी ने रावण के पास से क्या मांगा होगा ? यदि वह इन्द्र का ऐश्वर्य, कुबेर की सम्पदा अथवा वरुण की अक्षय निधि भी मांग लेती, तो रावण उसको देने के लिए समर्थ था। परन्तु कुम्भीनसी ने इनमें से कुछ भी नहीं मांगा। वह ऐसे किसी ऐश्वर्यादि के लोभ में नहीं पड़ी और रावण से दीनतापूर्वक प्रार्थना करने लगी–

भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद।
नहीदृशं भयं किञ्चित्कुल स्त्रीणां इहोच्यते।।४२
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत्।
सत्यवाक् भव राजेन्द्र मां अवेक्षस्व याचतीम्।।४३

– उत्तरकाण्ड सर्ग २५

अर्थात्–"प्यारे भैया! मेरे पति का वध न करो। कुल स्त्रियों के लिए सर्व भयों की अपेक्षा वैधव्य–भय महाभयानक होता है। अतः मुझे केवल मेरे सुहाग की भिक्षा दो और अपना वचन सत्य कर दिखाओ।" रावण ने "एवमस्तु" कहा और कुम्भीनसी भी सन्तुष्ट होकर अपने पति के पास गई तथा उसकी रावण के साथ मित्रता करवा दी।

अब यहाँ पर सोचना चाहिए कि, रावण तो मधुदैत्य का वध ही करने के निश्चय से वहाँ आया हुआ था। यदि वह अपने निश्चय के अनुसार मधुदैत्य को मार भी डालता,तो कुम्भीनसी को उसमें आर्थिक हानि कौन–सी हुई होती ? उसके मुख से इच्छा प्रकट होते ही उसे इन्द्र का ऐश्वर्य तथा कुबेर की धन–सम्पत्ति मिल सकती थी और रावण भी उसकी इच्छा पूरी करने के लिए समर्थ था, तथापि उसने सबका लोभ छोड कर केवल अपने पति के प्राणों की भिक्षा मांगी। पति के प्राणों के आगे इन्द्र का ऐश्वर्य तथा कुबेर की धन–सम्पत्ति को भी उसने तुच्छ समझा। इससे उसका पतिप्रेम कितना प्रगाढ़ और कैसा निःस्वार्थ तथा उच्च था, इसका अनुमान हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित रूप से ध्यान में आ सकता है कि वर्तमान युगीन अत्युच्च सुधरी हुई पाश्चात्य स्त्रियों की अपेक्षा वानरी और राक्षसी स्त्रियां कहीं अधिक सुसंस्कृता तथा सुशिक्षिता थीं, फिर आर्य देवियों का तो कहना ही क्या ?

केवल पतिभक्ति के हेतु तथा पति के प्राण बचाने के लिए ऐसे राजैश्वर्य तथा अगाध धन सम्पत्ति को ठुकरा देने वाली स्वार्थत्यागिनी स्त्रियां जिस राक्षस समाज में उत्पन्न होती थीं, वह राक्षस समाज यदि 'बर्बर', 'असभ्य' या जंगली कहलाने के लायक हो तो फिर, विवाह विच्छेद करने पर पूर्व पति की धन-सम्पत्ति का तीसरा भाग मिलता है, केवल इतने ही तुच्छ धन प्राप्त के लोभ से पॉच वर्ष में सत्रह बार विवाह-विच्छेद करके अठारहवीं बार फिर उसी के लिए अदालत की सीढ़ी चढ़ने वाली स्त्रियाँ (जिनका एक यही अर्थोत्पादक व्यवसाय हो गया है, ऐसी स्त्रियाँ) जिस समाज में उन्नत मस्तक करके प्रतिष्ठा के साथ स्वच्छन्द संचार कर सकती हैं, क्या वह पाश्चात्य समाज 'सभ्य' कहलाने के योग्य है ?

रामायणकालीन शिक्षा का आदर्श

शिक्षा का उद्देश्य- मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षा के द्वारा ही मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास हो सकता है, अन्यथा नहीं। किसी कवि ने क्या ठीक कहा है–

विद्या ददाति विनयं, विनया द्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

केवल साक्षरता का नाम ही शिक्षा नहीं। साक्षरता के साथ–साथ विनय, शिष्टाचार–व्यवहार, नैतिकता, धार्मिकता का पाठ भी दिया जाना चाहिए। तभी तो शिक्षा सर्वांगपूर्ण शिक्षा कही जा सकती है और मनुष्य पूर्ण समुन्नत बन सकता है। जैसे रत्नकार हीरे को खजिन प्रस्तर–खण्ड से लेकर अपनी छेनी से छीनकर त्रिकोण, चतुष्कोण या षट्कोण बनाकर उसे चमत्कृत बना देता है और उसकी अन्तर्निहित ज्योति को बाहर प्रकाशित कर चाचक्यमान बना देता है, उसी प्रकार अध्यापक–गण शिष्यों की गुप्त शक्तियों को विद्या के प्रभाव से विकसित कर उनको देदीप्यमान बना देते हैं और समाज के क्षेत्र में उनके शिष्य–स्त्री–रत्न, नर–रत्न होकर चमकते हैं। यही शिक्षा का चरम लक्ष्य होता है।

शिक्षा के दो अंगः-गुरु और शिष्य– शिक्षा के चार प्रधान अंग माने गये हैं– अध्यापक, विद्यार्थी, शिक्षण स्थान तथा पाठ्य–क्रम। इन चारों में से एक का अभाव होने पर भी शिक्षा का होना सम्भव नहीं है। यहाँ इनमें से प्रथम दो (गुरु व शिष्य) के पारस्परिक सम्बन्ध पर संक्षिप्त विचार करते हैं। गुरु का अपने शिष्य के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए, इसका चित्रण यजुर्वेद अध्याय–२ मन्त्र ३३ में अंकित किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है–

''आधत्त पितरो गर्भकुमारं पुष्कर सृजम्।
यथेह पुरुषो सत्।।''

मन्त्र का भावार्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं ''जैसे क्रम–क्रम से गर्भ के बीच देह बढ़ता है, वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिए कि अच्छी–अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार व कुमारी को श्रेष्ठ

विद्या में वृद्धियुक्त करें। गर्भस्थ भ्रूण की जैसी देखभाल और पालन–पोषण माता करती है, वैसी ही सजगता अध्यापक को अपने शिष्य के प्रति रखनी चाहिए। शिष्य अध्यापक के गर्भ में ही निवास करता है। रामायणकालीन शिक्षा पद्धति में गुरु–शिष्य सम्बन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। वहाँ गुरु–शिष्य का सम्बन्ध पारिवारिक माना गया है। उस पद्धति में शिष्य गुरु को पितृ तुल्य समझता है और गुरु शिष्य को पुत्रवत्।

महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र ऐसे ही आदर्श आचार्य तथा राम–लक्ष्मण आदि ऐसे ही आदर्श शिष्य थे। राम के ब्रह्मचर्य व्रत के संबंध में हम पीछे विचार कर चुके हैं कि राजकुमार होते हुए भी वे घास की शैया पर सोते हैं तथा गुरुजनों के प्रति उनका भक्तिभाव भी दर्शनीय है।

गुरुकुल– पाँच या सात वर्ष का बालक (लड़का लड़कों की और लड़की लड़कियों की पाठशाला में) पढ़ने को भेज दिया जाता था। इन पाठशालाओं को गुरुकुल कहते थे और यह नगरों से बाहर शुद्ध जलवायु के स्थान पर होती थीं। स्त्रियों की पाठशाला में स्त्रियाँ और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष मुफ्त शिक्षा देते थे। किसी बालक से कुछ फीस नहीं ली जाती थी। सब बालकों को समान भोजन व वस्त्र मिलता था, चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हों चाहे दरिद्री की सन्तान। यह पाठशालायें या तो राज्य की ओर से होती थीं अथवा विद्यार्थी नगर से भिक्षा माँग लाते थे जिसमें उनका अधिक समय नहीं लगता था क्योंकि उस समय विद्यार्थियों को भिक्षा देने में गृहस्थी अपना सौभाग्य समझते थे। विशेषकर स्त्रियाँ इस खोज में रहती थीं कि कब विद्यार्थी आवें और कब भिक्षा दें।

इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था और उनको इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी और ऐसे नियम रहन–सहन के बनाये जाते थे कि वह बलवान्, सहनशील बनें। जूता पहनना, छतरी लगाना, अञ्जन डालना, इतर–फुलेल लगाना नरम बिस्तरे पर सोना व खटाई खाना आदि व्यसन विद्यार्थी को मना थे। वीर्य–रक्षा के लाभ बताये जाते थे, छात्रों तथा छात्राओं को ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहना आवश्यक था। इन गुरुकुलों में चौदह विद्याऐं व चौसठ कलाऐं सिखाई जाती थीं। प्रत्येक विषय की कई–कई पुस्तकें आर्यों ने वेदों के आधार पर लिखी थीं जिनके द्वारा विद्यार्थी थोड़े काल में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेते थे।

रामायणकालीन वैदिक शिक्षा का आदर्श क्या था ? गुरु–शिष्य का सम्बन्ध कैसा था ? इसका दिग्दर्शन निम्न मन्त्र में सूत्र रूपेण वर्णित है–

शिक्षा का आदर्श

सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

इसमें शिक्षा के आदर्श को 'पंचमांगी योजना' का रूप दिया गया है अर्थात् अपना दैनिक पाठ्यक्रम आरम्भ करने से पूर्व प्रतिदिन गुरु तथा शिष्य दोनों मिलकर इस मन्त्र का पाठ करते हुए प्रभु

से प्रार्थना किया करते थे कि हे भगवान्! हमारा यह 'अधीतम्' अध्ययन पाँच विशिष्ट गुण वाला हो–

(१) हम दोनो मिलकर अपने देश की, राष्ट्र की तथा अपनी रक्षा कर सकें।

(२) हम सब सहयोग से अपनी विद्या को अर्थकरी बनायें।

(३) हम दोनो मिलकर वीरतापूर्ण महान् साहसिक कार्य करने में समर्थ हों।

(४) हमारी शिक्षा प्रत्येक क्षेत्र मे हमको तेजस्वी और यशस्वी बनावे।

(५) हम परस्पर कभी द्वेष न करें, लडे नहीं। शान्ति–विश्व–शान्ति की स्थापना करें।

यहाँ हम देख सकते है कि अभीष्ट तथा मानवहित सम्पादन करने वाली कौन सी ऐसी बात रह गई है, जो इन पाँच उद्देश्यो में सन्निहित न हो ? प्रथम उद्देश्य में आत्मरक्षा, राष्ट्ररक्षा, देश–रक्षा, धर्म–रक्षा, जाति–रक्षा, संस्कृति–रक्षा आदि सब प्रकार की रक्षा करने में हमारी शिक्षा हमें समर्थ बना सके, इसका उल्लेख 'सह नौ अवतु' शब्द मे सन्निहित कर दिया गया है। और फिर यह भी सब प्रकार की रक्षा तभी सम्भव है, जब हम सब साथ–साथ मिलकर सहयोग से कार्य करें, अन्यथा नहीं।

द्वितीय उद्देश्य में शिक्षा को अर्थकरी (धन उत्पन्न करने वाली) बताकर बेकारी की समस्या का एक स्थायी हल बता दिया गया है। केवल किताबी शिक्षा को शिक्षा नहीं माना गया, मस्तिष्क तथा हृदय के साथ हस्तकला को भी स्थान देना शिक्षा के क्षेत्र में परम अभीष्ट है। ललित कलाओं के साथ उद्योग धन्धों की शिक्षा, काष्ठ–कला, धातु–कला, कृषि–कला, वस्त्र–कला, स्थापत्य–कला आदि की शिक्षा भी अनिवार्य होनी ही चाहिए। तभी शिक्षित पुरुष स्वाश्रित हो सकेगा और बेकारी राष्ट्र से सदा के लिए विदा हो जायेगी।

तृतीय उद्देश्य में शिक्षा को वीर–प्रसू बनाने का संकेत किया गया है। शिक्षित होकर शारीरिक विकास के क्षेत्र में हम पीछे न रहें। महान् साहसिक कार्य, नवीन आविष्कार, विदेश यात्रा में व्यापार यात्राओं आदि में हम साहस से आगे बढ़ें। हमारी शिक्षा हमें आलसी, कायर, निकम्मा न बनाकर पराक्रमी, वीर, धीर और महान् बना सके।

चतुर्थ उद्देश्य में हमारी शिक्षा हमें तेजस्वी और यशस्वी बनाये–यह कहा गया है। यह तभी सम्भव है जब हम अपने राष्ट्रीय–चरित्र को ऊँचा बनायें।

पञ्चम उद्देश्य सबसे महान् है जो हमें विश्व–प्रेम तथा विश्व भ्रातृत्व का सन्देश देता है।

वैदिक शिक्षा के इस आदर्श पर रामायण काल में पूर्ण रूप से आचरण किया जाता था। राष्ट्र रक्षा का आदर्श, कला–कौशल का विकास, वैज्ञानिक अभ्युदय और ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों की उन्नति के संन्देश वैदिक शिक्षा पद्धति में मिलते हैं।

बालकों की भाँति ही बालिकाओं की शिक्षा की भी श्रेष्ठतम व्यवस्था उस काल में थी। विभिन्न गुरुकुलों में विशेष शिक्षण का प्रबन्ध था। ऋषि लोग अपने किन्हीं शिष्यों को जब किसी प्रकार का विशेष शिक्षण देना चाहते थे और उसके लिये वे स्वयं को सक्षम नहीं समझते थे तो उन्हें वे दूसरे ऋषियों के चरणों में नम्रतापूर्वक भेजते थे। महर्षि वसिष्ठ राम–लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र की सेवा में भेजकर अपने इसी विनय भाव को प्रकट करते हैं। श्रीराम का यह शिक्षाक्रम आगे तक चलता है। जब वे ऋषि अगस्त्य के वैज्ञानिक गुरुकुल में पहुँचते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशल्या,

तारा, उर्मिला, महावीर हनुमान् आदि महिमामय पात्र रामायणकालीन (गुरुकुलीय) वैदिक शिक्षा की ही देन हैं।

सच में शिक्षा का यह आदर्श कितना महान् और उच्च था–

कितना महान् कितना ऊँचा,
वैदिक शिक्षा का आदर्श।
इसके पालन से ही होगा,
सबका सौख्य और उत्कर्ष।।

आज भी सांस्कृतिक आदर्शों से अनुप्राणित यह शिक्षा–पद्धति ही निराशा के इस गहन तम में आशा–ज्योति सिद्ध हो सकती है।

रामायण कालीन सामाजिक अवस्था

चार वर्ण- वेद की आज्ञानुसार रामायण काल में मनुष्य समाज चार वर्णों में बँटा हुआ था। उनके नाम और कर्म ये थे–

ब्राह्मण- पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ कराना, यज्ञ करना, दान देना और दान लेना– यह छः मुख्य कर्म ब्राह्मण के थे।

क्षत्रिय- प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना और विषयों में मन न फँसाना क्षत्रिय के कर्म थे।

वैश्य- पशुओं का पालन–पोषण करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, वाणिज्य करना, सूद लेना तथा खेती करना यह वैश्य के कर्म थे।

शूद्र- उपरोक्त तीनों वर्णों की कर्त्तव्य–बुद्धि से सेवा करना (श्रम द्वारा उनके कार्यों में सहयोग करना) शूद्र का काम था।

अपने कामों के अनुसार चार वर्णों में विभक्त होने पर भी सम्पूर्ण आर्य एक जाति थे।

वर्ण निर्धारण

जब शिक्षा समाप्त हो चुकती थी तब एक सभा की जाती थी। उसमें धार्मिक और विद्वान लोग सम्मिलित होकर विद्यार्थियों की वर्ण–व्यवस्था करते थे। वर्ण–व्यवस्था गुण–कर्म स्वभाव के अनुसार की जाती थी। जिसके जैसे गुण–कर्म स्वभाव होते थे, उसको वही वर्ण दिया जाता था। जन्म से इसका कुछ सम्बन्ध न था। जिसमें कोई विशेष योग्यता नहीं होती थी उसको शूद्र वर्ण दिया जाता था और उससे सेवा का कार्य लिया जाता था। जन्मगत जाति–पाँति का नाम–निशान भी न था।

वर्ण परिवर्त्तन हो सकता था

आगे भी अवस्थानुसार वर्ण परिवर्त्तन हो सकता था। ऋषि विश्वामित्र एक वीर क्षत्रिय राजा थे, बाद में अपने तप से उन्होंने राजर्षि से महर्षि संज्ञा प्राप्त की। ब्राह्मण धर्म का पालन करने से ही यज्ञ की रक्षार्थ उन्हें राम–लक्ष्मण की आवश्यकता हुई थी। रावण के सुदूर वंशज कभी क्षत्रिय ही थे। बीच में उसके वंशधर पुलस्त्य ऋषि ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया और पुनः रावणादि क्षत्रिय थे।

वर्णों में समदृष्टि

रामायण काल में ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त सबको समदृष्टि एवं आदर दृष्टि से देखते थे, ऐसा नहीं कि शूद्रों को आजकल की भाँति घृणा की दृष्टि या नीच दृष्टि से देखते हों।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चैव सर्वशः।
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान्।।

– वा रा० बा० १३।२०

दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में वशिष्ठ ने सुमन्त्र को आज्ञा दी कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को सत्कृत करके लाओ।

चार आश्रम- रामायणकाल के आर्यों ने अपने जीवन को चार भागों में बाँटा हुआ था। पहले भाग में वे विद्या प्राप्ति करते और गुरुकुल में रहते थे, उसको ब्रह्मचर्य आश्रम कहते थे। दूसरा गृहस्थ आश्रम था। इसमें विवाह करके स्त्री–पुरुष सन्तान उत्पन्न करते और दूसरे आश्रमियों का पालन करते थे। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ था। इसमें गृहस्थ आश्रम को छोड स्त्री को घर पर छोड़ या अपने साथ लेकर प्रायः लोग वन में या गुरुकुलों में चले जाते थे और तप का जीवन व्यतीत करते थे। गुरुकुलों में पढ़ाते थे और स्वयं भी पढ़ी हुई विद्या का मनन करते थे। चौथा आश्रम संन्यास होता था ? इसमें सांसारिक विभूतियों से विरक्त होकर आर्य लोग धर्म का उपदेश करते थे और बिना पक्षपात के लोगों की त्रुटियों को बताकर उनको सुधारते थे। इस प्रकार संसार में पाप नहीं फैल पाता था। गृहस्थों को संन्यासी का इतना भय होता था कि उसके सामने कोई पापकर्म नहीं कर पाते थे। राजा लोग भी संन्यासी का सम्मान करते थे। वैदिक संस्कृति का विस्तार करने के लिए इन्होंने सम्पूर्ण देश में अपने आश्रम और विद्या केन्द्र स्थापित किये हुए थे।

विवाह-संस्कार- जब ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी गुरुकुल से विद्या समाप्त करके निकलते थे तब उनका विवाह संस्कार होता था। इसके लिए यह नियम था कि वर की आयु २५ वर्ष व कन्या की आयु १६ वर्ष से न्यून न हो। जो ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी विवाह योग्य होते थे, उनकी जीवनी व चित्र लड़कों का लड़कियों की, और लड़कियों का लड़कों की पाठशालाओं में भेज दिया जाता था। जिसके साथ

जिसकी प्रसन्नता होती थी वह एक सभा के बीच में एकत्र होते थे और एक दूसरे से बातचीत करते थे तथा जो कुछ गुप्त बात पूछनी होती थी वह एक दूसरे से लिखकर पूछ लेता था। जब दोनों की प्रसन्नता विवाह करने में हो जाती थी तब शुभ दिन नियत करके कन्या के पिता के गृह पर विवाह होता था। विवाह समय में स्त्री–पुरुष की इस प्रकार की प्रतिज्ञायें होती थीं कि विवाह–सम्बन्ध अटूट हो जाता था। तलाक का आर्यों में नियम न था। एक दूसरे को प्रसन्न रखने का यत्न करता था और कोई कार्य दोनों की सम्मति के बिना नहीं किया जा सकता था। पुरुष स्त्री से अपनी आज्ञा में धर्मानुकूल चलने और अपने माता–पिता आदि की सेवा करने की प्रतिज्ञा विवाह समय कराता था और स्त्री भी अपने अधिकारों की रक्षा की प्रतिज्ञा कराती थी। वह प्रतिज्ञायें मौखिक होती थीं किन्तु इनका पालन बड़ी दृढ़ता से किया जाता था और इनके उल्लंघन करने वाले स्त्री–पुरुष महापापी समझे जाते थे और समाज के लोग इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे।

स्वयंवर विवाह को विशेष महत्व दिया जाता था। इतर वर्णों में भी परस्पर विवाह होते थे। परशुराम के पिता जमदग्नि ब्राह्मण थे, उनकी माता रेणुका क्षत्राणी थी। अन्य भी ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

गुण-कर्म की समानता से विवाह

सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
राम लक्ष्मणयो राजन् सीतयोर्मिलया सह।।

– वा० रा० बा० ७२।२।३

इस विवाह प्रसंग में राम का सीता के साथ और लक्ष्मण का उर्मिला के साथ धर्म सम्बन्ध और रूप–सम्पदा समान है।

स्त्री के विधवा हो जाने पर देवर से नियोग-

नियोग की प्रथा

राम प्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
प्राप्तवान् इह सुग्रीवो रूमां मां च परन्तप।।

– वा रा० कि० ३५।५

बालि–पत्नी तारा लक्ष्मण से कहती है कि राम की कृपा से सुग्रीव ने यश, स्थायी कपिराज्य रूमा और मुझे प्राप्त किया है।

राम के द्वारा बाली का वध हो जाने पर उसकी पत्नी तारा को सुग्रीव ने अपनी पत्नी बना लिया था।

गृहस्थाश्रम- गृहस्थ–जीवन के प्रति समाज में बड़ी निष्ठा और आदर का भाव था। गृहस्थ आश्रम को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आश्रम माना जाता था। ऋषि लोग (वानप्रस्थी) भी सपत्नीक रहते थे। अत्रि–अनसूया का आश्रम इसका एक सुन्दर उदाहरण है।

स्त्रियों की अवस्था- रामायणकालीन समाज में स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठापूर्ण स्थिति थी। इस सम्बन्ध में हम पीछे प्रथक् प्रकरण में विचार कर चुके हैं।

छूत-छात- उस समय के आर्यों में छूत–छात का बखेड़ा नहीं था। द्विजों के यहाँ प्रायः शूद्र ही भोजन बनाया करते थे। सब लोग एक दूसरे का छुआ हुआ खाते–पीते थे। शुद्धता पर अवश्य ध्यान रखा जाता था। शुद्ध अन्न खाते थे, शुद्ध जल पीते थे। मैले की खाद से उत्पन्न हुए साग आदि खाना आर्यों में वर्जित था। शुद्ध स्थान पर भोजन बनाते और खाते थे। मद्य–मांस इतना अशुद्ध समझा जाता था कि जो मनुष्य उसका सेवन करते थे, उनके हाथ का छुआ और उनके हाथ का पका अन्न कोई आर्य नहीं खाता था। भोजन का प्रबन्ध प्रायः स्त्रियों के आधीन होता था। पाक–विद्या और वैदिक–शास्त्र स्त्रियों को पाठशाला में विशेषतया सिखाये जाते थे। अन्य देशों के जाने–आने में कोई छूत–छात नहीं मानी जाती थी वरन् दूसरे देशों के साथ व्यापार करते थे एवं विवाह सम्बन्ध भी दूसरे देशों के आर्यों के साथ होते थे।

नागरिक शिष्टाचार एवं प्रथायें

मित्रता में हाथ से हाथ मिलाने और हाथ दबाने का शिष्टाचार था–

रोचते यदि ते सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादां बध्यतां ध्रुवा।।

– किष्किन्धा० ५।१२

सुग्रीव कहता है कि हे राम! यदि आपको मित्रता करनी है तो यह फैलाया हुआ हाथ अपने हाथ से ग्रहण कीजिये, मर्यादा को बान्धिये।

अभिवादन में 'नमस्ते' का प्रयोग

नमस्ते स्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा।

- अयो० ५२।१७

विश्वामित्र ऋषि वशिष्ठ के प्रति कहते हैं कि आपको नमस्ते हो, अब मैं जाऊँगा, मित्र दृष्टि से देखिये (कृपा–दृष्टि रखियेगा)।

यहाँ इतना दृष्टव्य है कि रामायण काल में परस्पर अभिवादन के रूप में केवल 'नमस्ते' का ही प्रयोग होता था। 'जय राम' 'जय राजा राम' सैनिक घोष थे, अभिवादन नहीं। जिस तरह 'जयहिन्द' को सैनिक घोष के रूप में नेताजी ने आरम्भ किया था पर राष्ट्रीयता के ठेकेदार अब उसे भी अभिवादन में प्रयुक्त करने लगे हैं, उसी तरह हमारे सांस्कृतिक पतन के काल में और बातों की तरह अभिवादन-क्रम में भी बदलाव हुआ और शनैःशनैः 'नमस्ते' इस एक भावपूर्ण वैदिक अभिवादन की जगह शत-सहस्त्र, विचित्र-विचित्र मूर्खतापूर्ण अभिवादन जारी हो गये। ऋषि दयानन्द की कृपा से अब 'नमस्ते' का सरल, संक्षिप्त और सनातन अभिवादन पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है।

शासक को शिर झुकाकर नमस्ते करने का शिष्टाचार

राक्षसाः राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे।

– युद्ध० ११।१३

राक्षसपति रावण को राक्षसों ने अपने शिरों से अर्थात् शिरों को झुकाकर नमस्ते किया।

रामायणकालीन राजनैतिक अवस्था

'त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि'

– ऋ० ३।२८।६

वेद की इस आज्ञा के अनुकूल रामायणकाल के आर्यों में तीन सभायें होती थीं।

१. धर्म सभा- धर्म सभा का काम उपदेश द्वारा होता था। उसका काम था कि मनुष्य को ईश्वर की ओर रुचि दिलाकर शुभाचार में प्रवृत्त करे जिससे सब सत्य बोलें, अन्याय न करें, परस्पर प्रेम से व्यवहार करें। संस्कारों का कराना भी धर्म सभा के आधीन था।

२. विद्या सभा- विद्या सभा का काम था कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान की वृद्धि करे जिससे लोग मूर्ख न रहें। नई–२ खोज कराना, पदार्थविद्या का ज्ञान बढ़ाना और गुरुकुलों आदि का प्रबन्ध करना भी उसके आधीन था।

३. राज सभा- राज्य के प्रसिद्ध २ और धार्मिक मनुष्यों की एक राज सभा होती थी जिसका सभापति राजा समझा जाता था। राजा के आचरण की बड़ी कड़ी देखभाल की जाती थी। यदि उसे आचरण–हीन पाया जाता तो तुरन्त दूसरा राजा नियुक्त करने का यत्न किया जाता था। यद्यपि राजा वंशपरम्परानुगत ही होता था, फिर भी वह इस राज सभा के प्रति उत्तरदायी होता था। युवराज की नियुक्ति के लिए राज सभा की अनुमति ली जाती थी, जैसा कि राम के यौवराज्य प्रकरण से प्रकट है।

राज सभा के नियम- राज सभा के नियम वे ऋषि लोग बनाते थे जो विरक्त, निर्लोभी, पक्षपात रहित होते थे। किसी लोभ में उनको लाना सर्वथा असम्भव था। संसार का उपकार करना ही उनका उद्देश्य होता था। यह ऋषि लोग जब राजाओं से मिला करते थे तो उनसे राज्य का समाचार पूछते थे और यदि आवश्यकता होती तो राजाओं को उपदेश भी किया करते थे, जिसे राजा लोग शिरोधार्य करते थे। राजाओं द्वारा ऋषियों का कितना सम्मान होता था, वह विश्वामित्र के आगमन के समय दशरथ द्वारा की गई आवभगत में देखा जा सकता है। इसी प्रकार–

राजा द्वारा ऋषि सम्मान

भारद्वाजाश्रमं दृष्ट्वा क्रोशादेव नरर्षभः।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः।।
पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम्।।

– वा० रा० अयो० ९० ।१ ।२

भरत चित्रकूट पर जाते हुए भरद्वाज ऋषि के आश्रम को जान, कोश भर से मन्त्रियों के साथ शस्त्र आदि शासन भार छोड़कर दो रेशमी–वस्त्र पहनकर तथा पुरोहित को आगे करके पैदल गया।

राजा के लक्षण- राजा कैसे पुरुष को बनाना चाहिये, इस सम्बन्ध में ऋषियों ने नियम बना दिये थे। राजा ऐसा पुरुष होना चाहिये जो वचन और कर्म में पवित्र हो, वेदों और शास्त्रों की जिसने पूर्ण शिक्षा पाई हो, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो, जो सर्वगुणसम्पन्न मन्त्रियों से घिरा हो और जो अपना शासन बनाये रखने की योग्यता रखता हो। राजा ऐसा होना चाहिये जो अपनी प्रजा के साथ निष्पक्ष भाव से बर्ताव करे, उसके हित साधन में तत्पर रहे और प्रजा की दशा एवं रीति–नीति से पूर्ण भिज्ञ हो। प्रजा राजा का पुत्रवत् पालन करता था और प्रजा राजा को माता–पिता के समान समझती थी। वाल्मीकि रामायण की साक्षी देखिये–

राजा माता पिता है

राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्।

– वा० रा० अयो० ६८ ।३५

राजा, माता पिता है, राजा प्रजाओं का हितकारी है।

यहाँ यह लक्षित होता है कि जो राजा प्रजा का हितकारी नहीं वह राजा, राजा कहलाने के योग्य नहीं और न वह माता–पिता के सदृश समझा जाने के योग्य है।

राजा की दिनचर्या के नियम भी ऋषियों ने बना दिये थे। राजा पहर भर तड़के उठकर शौच से निवृत्त हो, एकाग्रचित्त हो, अग्निहोत्र और विद्वानों का पूजन करके सुन्दर सभा में प्रवेश करें। उस सभा में आई सम्पूर्ण प्रजा को न्याय से प्रसन्न करके विसर्जन करे। फिर मन्त्रियों से सलाह करे। दोपहर दिन में व अर्धरात्रि में चित्त के खेद और शरीर के क्लेद से रहित हुआ मन्त्रियों के साथ व अकेला धर्म–अर्थ का चिन्तन करे। उक्त प्रकार से सम्पूर्ण राजवृत्त को मन्त्रियों के साथ विचार कर स्नान तथा व्यायाम करके मध्याह्न में भोजन को अन्तःपुर में प्रवेश करे। फिर राज सम्बन्धी कामों का विचार करे। वस्त्राभूषण आदि अलंकार धारण किये हुए आयुध से जाने वालों (सवार सिपाही) और सम्पूर्ण वाहनों तथा शस्त्रों और आभूषणों को देख फिर सन्ध्योपासन करके निवासगृह के एकान्त स्थान में शस्त्र धारण किये हुए गुप्त समाचार कहने वाले दूतों और प्रतिनिधियों के समाचार और काम को सुने। उनका विसर्जन कर अन्तःपुर में फिर से भोजन के लिये जावे। वहाँ भोजन करके थोड़े गाने–बजाने से प्रसन्न किया हुआ उचित काल में शयन करे।

पुरोहित (प्राइवेट सेक्रेटरी)

पुरोहितास्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।

– अयो० ७० ।३

पुरोहित ने तुझे ठीक कहा है, एवं सब मन्त्रियों ने भी।

उवाच वचनं श्रीमान् वसिष्ठं मंत्रिणां वरम्।

– वा० रा० अयो० ६३ ।६

यहाँ वसिष्ठ पुरोहित को मन्त्रियों में श्रेष्ठ कहा है।

संग्राम में वैद्य (डाक्टर)

लक्ष्मणस्य ददौ नस्यः सुषेणः सुमहाद्य ते।

– वा० रा० युद्ध १०१ ।४५

लक्ष्मण जब युद्ध में प्रहार से अचेत हो गया था उस समय उसकी नाक में सुषेण नामक चिकित्सक ने औषधि देकर सचेत किया।

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति।।

– वा० ५० रा० युद्ध०२८

संग्राम में उन पीड़ितों (प्रहार से आहतों), अचेत हुओं, मरे जैसों की बृहस्पति चिकित्सक मन्त्रयुक्त विद्याओं (मानसिक विधियों) और औषधियों से चिकित्सा करता है।

भत्ता वेतन- सेना एवं कर्मचारियों को उचित समय पर भत्ता और वेतन देने का विशेष ध्यान रखा जाता था। चित्रकूट पर राम भरत से पूछते है-

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचित्तम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्य ददासि न बिलम्बसे।।

अर्थात् सैनिकों आदि का भत्ता, वेतन तो समय पर देते हो ?

न्यायालय- यथासम्भव राजा स्वयं ही विवादों का न्याय करता था। उस समय की प्रजा धर्मात्मा थी। विवाद बहुत कम हुआ करते थे तो भी उन विवादों के समाधानों को जिनको राजा स्वयं नहीं कर सकता था, एक सभा भी होती थी जिसको ब्रह्मा की सभा कहते थे। उसमें तीन वेद शास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मण सम्मति देते थे तब ब्रह्मा जो इनके अतिरिक्त होता था न्याय करता था।

दण्ड- उस समय दण्ड देने से अभिप्राय यह होता था कि अपराधी मनुष्य आगे अपराध न करे और दूसरे मनुष्य उससे शिक्षा ग्रहण करें। अतः ऐसे पापों का दण्ड कड़ा रखा गया था जिससे मनुष्य समाज पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना होती थी।

प्रजा के सुखार्थ राज्य की व्यवस्थायें-

१- बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह करने पर रोक थी, जिससे राज्य में विधवाएं न हों।

२- सिंह आदि जंगली जन्तुओं का नियन्त्रण एवं सर्प आदि विष जन्तुओं का प्रतिकार, जिससे प्रजाजन इनसे पीड़ित न हों।

३- स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार स्थान, मकान, जल, खानपान की व्यवस्था तथा चिकित्सालयों की समुचित स्थापना जिससे रोग की अधिकता तथा रोग से असाध्य स्थिति का अवसर न बन सके।

४- समिति (पुलिस) आदि का ठीक प्रबन्ध होना, जिससे चोर, डाकू का अभाव हो।

५- न्यायालयों की स्थापना, जिससे अनर्थ, पाप, अन्याय परस्पर प्रजाजन न कर सकें।

६- बालपालन, शिशु चिकित्सालय आदि की व्यवस्था जिससे उनका मरण शीघ्र न हो।

७- धर्म के प्रचारकों, पण्डितों, पुरोहितों एवं साधुजनों को सदुपदेश, धर्मप्रचार एवं कथा आदि के लिए आवश्यक सुविधायें जिससे जनता धर्मपरायण बनी रहे।

इसके प्रमाण के लिए रामराज्य का वर्णन देखें।

कलाकौशल और विज्ञानविद्या

(श्रद्धेय स्वामी ब्रह्ममुनिजी महाराज)

रामायण में कलाकौशल विषयक वर्णन भी पर्याप्त है, इस वर्णन से यह ज्ञात हो सकता है कि रामायण के समय कौन-कौनसी कला कैसी तथा किस स्थान तक पहुँच चुकी थी। उक्त वर्णन को हम निम्न आठ विभागों में देख सकते हैं-

१. गृह, शाला (मकान) और सेतु (पुल) २. नगर उद्यान (बाग) ३. आयुध (शस्त्र–अस्त्र) ४. हस्तशिल्प ५. यन्त्र ६. विमान ७. विज्ञान ८. अन्य विद्या।

अब हम इनका क्रमशः वर्णन करते हैं–

१- गृह, शाला (मकान), सेतु (पुल)-

चूने या सफेद सीमेन्ट के मकान-

शुक्लंः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः।

– वा० कि० ३३।१५

शुक्लरंग के गृहशिखरों का यहाँ वर्णन है, जो चूने या सफेद सीमेण्ट के हो सकते हैं।

आरुरोह ततः श्रीमान् प्रासाद हिमपाण्डुरम्।

– वा० युद्ध० २६।५

रावण बरफ जैसे श्वेतरंग वाले महल पर चढ़ गया।
यह भी सफेद सीमेन्ट के प्लास्टर से बना महल स्पष्ट है।

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि।

– वा० रा० सु० ८।१०

घर श्वेत (चूने आदि की पालिश से सफेद) किये हुए थे।

मणियों से जड़े महल-

मणिस्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः।

– सु० ३।६

मणि, स्फटिक और मुक्ताओं से तथा मणिचूर्णों से जड़ित महल लंका में थे।

सात आठ मंजिल वाले घर-

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्शमहापुरीम्। तलैः स्फटिकसंकीर्णैः।

– वा० रा० सु० ३।५२

इस वचन में लंका में सात–आठ मंजिलों वाले मकान और स्फटिक जड़े हुए फर्श बतलाए हैं।

सहस्त्र खम्भों वाले महल-

यस्यां स्तम्भसहस्त्रेण प्रासादः समलंकृतः।

– युद्ध० ३६।२३

जिस लंका में सहस्त्रों खम्भे वाले महल अर्थात् सभा–भवन (पार्लियामेन्ट हाउस जैसे) थे। यह भी कला बढ़ी–चढ़ी हुई थी, जो केवल सहस्त्रों खम्भों पर मकान थे।

लतावृत, चित्रावृत, पुष्पावृत घर तथा क्रीड़ाघर, गृहान्तरगृह एवं भूतलघर भी थे—

लतागृहांश्चित्रगृहान्० पुष्पगृहाणि च। क्रीड़ागृहाणि च।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहान्तगृहानपि।

— वा० रा० सु० १२।१,१२,१३,१४

लंका में रावण ने लताओं से घिरे घरों, चित्रों से घिरे घरों, क्रीड़ाघरों, भूमिघरों, श्मशानघरों, घर में घरों को बनाया हुआ था।

भूतलगृह, भूतलनगर-

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धा रामशासनात्।।
स तां रत्नमयो दिव्यां श्रीमान् पुष्पितकाननाम्।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम्।।
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानापथोपशोभिताम्।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरूपशोभिताम्।।

— वा० रा० कि० २३।१।५

राम के आदेश से लक्ष्मण ने महती तथा रमणीय किष्किन्धा नाम की भूतल नगरी में प्रवेश किया जिसमें उसने सुन्दर महल और दुकानें, शोभित बाजार तथा फूलों के बाग और अच्छे फल देने वाले वृक्ष देखे।

यहाँ भूतल में निर्माणकला का उच्चतम आविष्कार स्पष्ट होता है जैसे आजकल लन्दन आदि में भी भूतल नगर हैं। हैदराबाद दक्षिण में प्राचीन समय की एलोरा, अजन्ता की गुफाएं भी इस पुरातन कला का उदाहरण हैं।

सेतु बनाना-

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।

— वा० रा० युद्ध० २२।६२

नल से महासेतु समुद्र के मध्य में बनवाया।

ब्रह्मा (इन्जीनियर)-

उक्त गृहशाला, प्रासाद, सेतु आदि के निर्माण कराने वाले इन्जीनियरों का भी रामायण में वर्णन मिलता है।

तानि प्रयत्नाभिसमाहतानि मयेन साक्षादिव निर्मितानि।

— वा० रा० सु० ६।४

मय इन्जीनियर के द्वारा प्रयत्न से निर्मित कराए हुए भवन थे।

पुरस्ताद् ऋषभो नीलो वीरः कुमुद एव च।
पन्थानं शोध्यन्ति स्म वानरैर्बहुभिःसह।।

– वा० रा० युद्ध० ४।३०

यहाँ कहा गया है कि ऋषभ, नील, कुमुद ये तीन मार्ग बनाने वाले इन्जीनियर थे। चौथे नल ने तो समुद्र पर सेतु बनवाया था। यह सेतु प्रकरण में बतला आये हैं तथा नल विश्वकर्मा का पुत्र था।

"विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः।"

– युद्ध ३०।३४

२- नगर, उद्यान-

रामायणकाल में नगर, नगरी, पुरी का विशेषज्ञ इंजीनियर द्वारा निर्माण भी होता था, जैसे लंका को विश्वकर्मा ने बनवाया था–

लंकामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा।

– युद्ध० १२७।३

भूतलनगर-

भूतलगृह के प्रकरण में बतला आये हैं कि किष्किन्धा नाम की नगरी गुह्यरूप में भूमि के अन्दर बसी थी। वहाँ उसमें सुन्दर–सुन्दर मकान और बाजार थे। फूलों के बगीचे और वृक्ष भी स्थान–स्थान पर लगे थे। लन्दन जैसी भूतल–नगर–निर्माण कला केवल आजकल के ही पाश्चात्य विद्वानों की नहीं, अपितु प्राचीन समय में भी भूतलनगर निर्माण कला रामायणकाल में भी थी। भारतीय गुहानगरी हैदराबाद दक्षिण में औरंगाबाद जिले में एलोरा–अजन्ता नाम से प्रसिद्ध है ही जो कि तीन मील तक पर्वत खोद कर विशाल महल एकमंजिले, दुमंजले, तिमंजले तक बने हैं।

उद्यानकला-

कृत्रिम जंगलों अर्थात् उद्यानों, बगीचों से सुशोभित लंकापुरी विश्वकर्मा ने बनाई थी।

काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलङ्कृतः।

– सु० १४।३५

भूतल उद्यान-

भूतलनगर प्रसंग में भूतलपुष्पवाटिका तथा क्वचित्–क्वचित् वृक्ष तो आए हैं, अब भूतल महान् जंगल भी देखिये–

इत्युक्ताः तद्बिदलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम्।
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशु रोमहर्षणम्।।

ततस्तं देशमागम्य सौम्या वितिमिरं वनम्।
ददृशु काञ्चनान् वृक्षान् दीप्तवैश्वानरप्रभान्।।

— वा० रा० कि० ५० ।१७,२४

हनुमान् के साथ सुग्रीव के अनेक सैनिक सीता की खोज करते हुए एक भूमिद्वार में प्रविष्ट हुए। प्रथम उन्हें घना अन्धेरा पड़ा फिर प्रकाश वाला वनस्थल मिला जहाँ सुनहरे तथा चमकदार वृक्ष थे।

यह प्राचीन भूतलकला की उन्नति के उदाहरण हैं, जिसमें भूतल उद्यान (बाग) तक थे।

३- आयुध (शस्त्र-अस्त्र)-

रामायण में आयुधों, शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त ऊँची कोटि का वर्णन है।

शतघ्नी (तोप) आदि-

सर्वयन्त्रायुधवर्ती... .... ।१०
शतघ्नीशतसंकुलम् 'अयोध्याम्'।११

— बाल० ५ ।१० ।११

अयोध्या नगरी सब यन्त्रायुधों से अथवा यन्त्रों और आयुधों से युक्त थी तथा सैकड़ों तोपों से युक्त थी।

अस्त्र-

लक्ष्मणस्य च नाराचा बहवः सन्ति तद्विधाः।
वज्राग्निसमस्पर्शा गिरीणामपि दारकाः।।

— कि० ५४ ।१५

लक्ष्मण के 'नाराच' जैसे अस्त्र बहुत हैं जो वज्र और विद्युत् की भाँति चोट करने वाले हैं तथा पर्वतों को तोड़ देने वाले हैं।

यहाँ वज्र और विद्युत् जैसे प्रहारकारी एवं पर्वतों को तोड़ देने वाले वर्णन से नाराच अस्त्र स्फोटक बम जैसे होंगे।

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे।

— सु०३६ ।२७

यहाँ राम के रौद्र अस्त्र का वर्णन है।

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन्।

— यु० ६७ ।११६

यहाँ भी राम के रौद्र अस्त्र का वर्णन है।

ब्राह्मेणास्त्रेण.....,ब्राह्ममस्त्रम्।।

— यु० ७१ ।६१०८ ।१०४०

यहाँ ब्राह्म अस्त्र कहा गया है।

ब्राह्ममस्त्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा।

– सु० ५६।१०

यहाँ ब्राह्म, रौद्र, वायव्य, वारुण अस्त्रों का वर्णन है।

अस्त्र फेंके जाने वाले प्रयोग का नाम है, वायव्य–वायु अर्थात् विषवायु फेंकने वाले, वारुण–भाव धुन्धलापन धूँआ फेंकने वाले हैं। स्पष्ट है, रौद्र अग्नि फेंकने वाले ब्राह्म अस्त्र भी विशेष अस्त्र हैं।

राम ने उन सर्पास्त्रों को गिरते हुए देख उनका प्रतिकार करने वाला गरुत्मत अस्त्र छोड़ा।

आठ बमों वाला अस्त्र-

तद्रावणकरान्मुक्तं विद्युन्मालासमाहतम्।
अष्टघण्टं महानाद विद्युद्गतमशोभत।।

रावण के हाथ से छूटा हुआ विद्युत की तरंगों से घिरा हुआ आठ दीप्त बमों वाला महानादकारी अस्त्र आकाश में चमका।

अगस्त्य ऋषि से प्राप्त ऐसे ही किसी विशिष्ट अस्त्र की सहायता से अकेले राम खर-दूषण सहित १४ हजार सेना को मार सके थे।

वाण का पुनः लौट आना-

सायकस्तु मुहूर्तेन तालान् भित्वा महाजवः।
निष्पत्य च पुनस्तूर्णं तमेव प्रविवेश ह।।

– कि० १२।४

महावेगवान् वाण तुरन्त तालों को भेदकर पुनः तूर्ण में प्रविष्ट हो गया।

तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रं युध निर्जितम्।
रावणस्य रथे तस्मिन् स्थानं पुनरुपागमत्।।

– वा० रा० यु० ५६।१२१

रावण का फेंका हुआ 'शक्ति' नामक अस्त्र लक्ष्मण पर प्रहार करके पुनः लौट आया।

अन्य आयुध-

तत्रैषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च।
शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ...... यन्त्रै रुपेता .... यन्त्रै स्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः।। –

वा० रा० यु० ३।१२,१३ १६,१७

यहाँ इषु, उपल (गोलों) को फेंकने वाले यन्त्रों तथा तोपों का वर्णन है।

४- हस्तशिल्प-

रामायणकाल में विविध हस्तशिल्प भी ऊँचे पद पर पहुँचे हुए थे, जिसका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जाता है–

दांत बनाने वाले-

दन्तकाराः सुधाकाराः ये च गन्धोपजीविनः।

– अयो० ८४।१३

यहाँ अयोध्या नगरी के शिल्पियों की गणना में 'दन्तकार' दाँत बनाने वाले भी गिनाये गये हैं।

अंगराग अनुलेपन (अंगों को सुन्दर रंग देने वाली पालिश)-

अंगराग च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्।
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयते।।

– वा० रा० अयो० ११८।१८।१९

अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया सीता को अंगराग अनुलेपन (अंगों को सुन्दर रंग का बनाने वाली पालिश) देती हुई कहती है कि हे सीते! यह मेरा दिया अंगराग–अनुलेपन बहुमूल्य है। यह तेरे अंगों को शोभित कर देगा, रंगवाला बना देगा।

बहुत शलाकाओं का छाता-

इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
छत्रं सबालव्यजनं प्रतीच्छस्व मया धृतम्।।

– वा० रा० कि० १०।३

यह बहुत शलाकाओं वाला छाता पूर्णचन्द्र की भाँति है, इसे हे सीते! ले।

सूक्ष्म शलाकाओं का छाता

यत्रैतदिन्दुप्रतिमं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम्।

– वा रा० यु० ५६।२४

जहाँ यह चन्द्रमा के समान सूक्ष्म शलाकाओं का आभा वाला शुभ उत्तम छाता चमकता है।

स्फटिक (बिल्लौर) तथा मणियों एवं सोने के बर्तन-

हिरण्ययैश्च विविधैर्भाजनाः स्फटिकैरपि।

– सु० ११।२१

सुनहरे एवं स्फटिक के बने विविधि बर्तनों से सुशोभित भूमिस्थल थे।

गृहं मणिभाजनसंकुलम्। वा० रा० सु० ९।३६

हनुमान् ने रावण का घर मणियों के बर्तनों से युक्त देखा।

स्फटिक के गवाक्ष-

अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतगवाक्षैः स्फाटिकैरिव।।

– कि० १।३६

यहाँ नाचते हुए मोरों के वायु से उठे हुओं पक्षों को स्फटिक के गवाक्षों की उपमा देने से स्फटिक के गवाक्षों का उस काल में होना सिद्ध होता है।

लंका में हण्डे एवं बिजली के लैम्प-

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महाग्रहेः।
'दीप्त मास्वरेरश्च महागृहेः'।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य ददर्श स महाकपिः।

– सु० ३।१६

हनुमान ने उस लंका को अन्धकार से रहित देखा जहाँ महाग्रहों में बड़े बर्तनों वाले–बड़े हण्डों वाले भास्वर अति तीव्र प्रकाश फेंकने वाले बड़े घर अर्थात् बिजलीघर थे।

सोने-चाँदी की पालिश-

काञ्चनानि विमानानि रजतानि गृहाणि च। कि० ५१।५

हनुमान् कहते हैं कि लंका में सुनहरे (सोने के रंग चढ़े सोने की पालिश किये) विमान और चाँदी के रंग चढ़े (चाँदी की पालिश के) घर थे।

विमान सर्वतो रजतप्रभम्। वा० रा० सु० १२१।२४

पुष्पक विमान पर सर्वत्र चाँदी जैसी पालिश थी।

सोने-चाँदी के पलंग आदि-

हैमरजतपर्यंकैर्बहुभिश्च वरासनैः। वा० रा० सु० ३३।२०

सोने–चाँदी के पलंग और पीठासन आदि से लंका सुशोभित थी।

मुहर या खुदाई-

रामनामांकितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्। सु० ३६।२

हनुमान् ने सीता को कहा कि राम की पहचान में राम नाम से अंकित यह अँगूठी देखिये।

अँगूठी में राम का नाम खुदा था या ढला था। राम के हस्ताक्षर का ज्यों का त्यों खोदना भी कला है।

राम का कृत्रिम शिर-

मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम्।
शिरो मायामयं गृह्यं राघवस्य निशाचर।।
मां त्वंसमुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः।।

– वा० रा० यु० ३१।८

रावण मधुजिह्व राक्षस को आज्ञा देता है कि तू राम का मायामय अर्थात् कृत्रिम शिर बनाकर ला जिसमें वह शिर सहित धनुष के साथ हो, हम सीता को धोखा देंगे।

कृत्रिम सीता-

इन्द्रजित् मायामयी कृत्रिम सीता को रथ में लाकर संग्राम–स्थल में राम के सम्मुख बड़े बल से घेर कर उसका वध करने लगा।

इस प्रकार रामायणकाल में किसी मनुष्य का ज्यों का त्यों मुख ही नहीं, अपितु पूर्ण शरीर बनाने, यथावत् आकृति, गति और रंग–रूप करने की बड़ी महत्वपूर्ण कला प्रचलित थी।

५- यन्त्र तथा यन्त्रयान-

रामायण में यन्त्रों और यन्त्रयानों का भी वर्णन मिलता है। यंत्र का वर्णन बहुत स्थलों पर आता है जैसे 'सर्वयन्त्रायुधवती....... अयोध्याम्'' वा० रा० बाल० ५।१० परन्तु यहाँ वे ही स्थल दिये जावेंगे जहाँ विशेष प्रयोजन या उपयोग के साथ उसका वर्णन हो।

भारी चट्टानों को उठाने वाले यन्त्र-

हस्तिमात्रन् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च।।

– वा० रा० युद्ध० २२।२६

हाथी के बराबर बड़े–बड़े पत्थरों और पर्वत की चट्टानों को उखाड़ कर यन्त्रों से पुल बनाने के लिए लाते थे।

जैसे आजकल यन्त्रों से भार उठाते और ले जाते हैं ऐसा कार्य यहाँ भी यन्त्रों का कहा गया है।

भूतल नगर से तुरन्त बाहर ले आने वाला विद्युत्सोपान सदृश यन्त्र-

सीता की खोज करते हुए हनुमान् सहित वानर सैनिक जन किसी भूतल नगर में उसके किसी द्वार से अन्दर चले गये, अन्दर घूमते–घूमते निकलने का रास्ता भूल गये। पुनः वहाँ की एक स्वयंप्रभा, नाम की रक्षिका से बाहर निकालने की प्रार्थना की। उसने उन्हें निमेष भर में विद्युत के सोपान (जीने) जैसे यन्त्र द्वारा बाहर निकाल दिया, वह वर्णन निम्न प्रकार है–

निमीलयत चक्षुषि सर्वे वानरपुंगवाः।
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः।।
ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः।
सहसा पिदधृर्दृष्टिं हृष्टा गमनकांक्षया।।
वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा।
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया।।

– कि० ५२।२५–२६

हनुमान् आदि को उस रक्षिका (द्वारपालिका) स्वयंप्रभा ने कहा कि 'तुम सब आँखें बन्द कर लो, बिना आँखें बन्द किये यहाँ से बाहर नहीं निकल सकते। (भेद का पता उन्हें न लगे इसलिए आँखें बन्द कराई गईं) फिर उन वानर–सैनिकों ने अपने हाथों से अपनी आँखें बन्द करलीं, पुनः उस द्वारपालिका ने उन्हें उस भूतलनगर–बिल से बाहर उतार दिया।

जैसे आजकल विद्युत् की सीढ़ी लिफ्ट या बिजली का पिजरा है उसमें बैठ जाने से तुरन्त नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे चले जाते हैं। एक ही प्रकार के यन्त्र पिंजरे सदृश पीठासन या स्थण्डिल यन्त्र का यहाँ वर्णन है।

यान-यन्त्रयान-

रावण के पास विमान तो था ही जो आकाश में उडता था परन्तु उसके पास एक यान (यन्त्रयान) भी था जो भूमि पर वेग से चल सके–

सहस्त्रखरसंयुक्ते रथो मेघसमस्वनः। युद्ध० ६६।४

यहाँ कहा गया है कि रावण के पास सहस्त्रखरों से युक्त मेघ के समान गर्जन ध्वनि करने वाला यान था।

यहाँ सहस्त्रखरों का युक्त होना रथ में कहा है, खर का अर्थ लौकिक भाषा में गधा है सो हजारों गधे जिसमें जुड़ते हों, ऐसा अर्थ किया जाता है– परन्तुं हजारो गधों को जोड़ना उनका सँभालना असम्भव है और फिर वेग से ले चलने के लिए भी हों तो घोड़े क्यों न जोड़े जावें, गधों से तो घोड़े अधिक वेगवान् होते हैं। यहाँ वास्तविक बात कुछ और है, वह यह कि यहाँ खर का अर्थ प्राणी विशेष (गधे) नहीं हैं किन्तु आधिदैविक पदार्थ है। कहा भी है "अश्विनौः खराः" (निघं० १।१५) अर्थात् अश्विनौ के उपयोजन खर हैं, अश्विनौ के लिए कहा है कि 'ज्योतिषा न्य, रसेनान्यः' (निरुक्त०) एक ज्योतिर्मय है, दूसरा रसमय है, इन्हें आग और पानी भी कह सकते हैं। विद्युत् और वायु या वायव्य सम्पादक पदार्थ तैल (पैट्रोल जैसा) कह सकते हैं या विद्युत् के धन–ऋण भेद भी कह सकते हैं। स्वयं रामायण में भी उक्त दो विद्युत् भेदों का वर्णन आया है उनसे एक सूखी तथा दूसरी गीली विद्युत् कही है 'अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्दे रघुनन्दन' – वा० रा०२७।६ विश्वामित्र द्वारा अस्त्र–प्रदान प्रकरण में कहा गया है कि हे राम ! तुझे मैं सूखी और गीली दो विद्युत् देता हूँ। बस, अब खर का अर्थ आग और पानी की

सम्मिलित शक्तियाँ या विद्युत् और वायव्य–सम्पादक (पैट्रोल) जैसे तेल के सम्मिलित वेग या विद्युत् मात्र की धारायें कर सकते हैं। इन शक्तियों से चलने वाला रावण का रथ यन्त्रयान था।

विमान (वायुयान)-

रामायण के अन्दर विमान (वायुयान) के सम्बन्ध में स्थान–स्थान पर वर्णन आता है जिनको निदर्शन के लिए यहाँ दिया जाता है।

सवारी का पुष्पक विमान-

कैलासपर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम्।
विमानं पुष्पकं तस्मै कामगं वै जहार यः।।

— अर० ३१।१४

कैलास पर्वत पर जाकर वहाँ से सवारी के ले जाने वाले पुष्पक नाम के विमान को लाया।

यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्।
वीर्यादावार्जितं भद्रे येन यामि विहायसम्।।

— अर० ४८।६

रावण सीता से कहता है कि हे सीता! यह सुन्दर पुष्पक नाम का विमान है जिसे मैं बल से जीतकर लाया हूँ। इससे मैं आकाश में जाता हूँ।

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम्।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं ददर्श धीमान् पवनात्मजः कपिः।।
तदप्रमेयप्रतिकारकृत्रिमं कृतं स्वयं साध्विति विश्व कर्मणा।
दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मवत्।।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं ददर्श तद्वानरवीरसत्तमः।।

— सुन्दर० ८।२।८

हनुमान् ने लंका में रावण के निवासस्थान में मणिरत्नों से जड़ित जिसमें स्वर्णतारों की जालियाँ लगी थीं, जिसकी तुलना नहीं हो सकती तथा जो आकाश में उड़ने पर वायुमार्ग में विराजमान सूर्यपथ में चिह्न की भाँति दीखता था, ऐसे पुष्पक विमान को देखा।

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फटिकैरपि।। सु० ८।१६

वह पुष्पक विमान सोने की जालियों और स्फटिक मणि की खिड़कियों से युक्त था।

पुष्पक विमान की गति-

अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज।
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमान सूर्यसन्निभम्।।

— युद्ध० १२१।८

विभीषण राम को कहता है कि हे राम! मैं तुम्हें एक दिन में–दिन के अन्दर आठ–दस घन्टों में अयोध्या पुष्पक विमान से पहुँचा दूँगा।' उक्त कथन से ज्ञात होता है कि पुष्पक विमान की गति घन्टे में ढाई सौ मील के लगभग थी। विदित हो कि यह पुष्पक विमान सैकड़ों सवारी ले जाने वाला एक भारी विमान था, क्योंकि श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, विभीषण सुग्रीव तथा अनेक सैनिक भी इसमें बैठकर अयोध्या आये थे। उस ऐसे भारी विमान की गति घण्टे में ढाई सौ मील थी। इस तुलना से यदि छोटा सा विमान होता तो उस समय उसकी उड़ान घण्टे में उससे कई गुना हो सकती थी।

ज्ञात होता है कि छोटे–छोटे विमान या उड़ने के साधन वहाँ लंका में अधिक थे। विभीषण भी राम के पास उड़कर ही आया था। किन्तु पुष्पक विमान बहुत ही बड़ा था जिसमें कुछ सेना भी बैठ सकती थी जैसे आजकल के विमान में कुछ सेना बैठ जाती है। पुष्पक विमान में कोई एक हंसयन्त्र या हंसाकार का अग्रभाग लगा था और बीच में रेल के समान डब्बा या बैठने का स्थान होगा। प्रकट है कि रामायणकाल में विमानकला भी बढ़ी–चढ़ी थी।

७- विद्युत्-विज्ञान-

रामायणकाल में विद्युत–विज्ञान का उल्लेख भी मिलता है। उस समय विद्युत–विज्ञान भी ऊँची स्थिति में था, इसके एक दो उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं–

विद्युत् की दो धारायें या उसके धन-ऋण-दो भेद-

अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्दे रघुनन्दन। वा० रा० २७।६

राम को अस्त्र–प्रदान प्रकरण में विश्वामित्र ऋषि राम से कहते हैं– 'हे राम! मैं तुम्हें शुष्क और आर्द्र ये दो विद्युत् देता हूँ।' ये शुष्क और आर्द्र विद्युत् के भेद धन और ऋण हो सकते हैं। पाश्चात्य विज्ञान–परिभाषा में ये पोजिटिव और नेगिटिव समझने चाहिए। इनके शुष्क और आर्द्र ये प्राचीन पारिभाषिक नाम हैं।

बिजली की बत्तियाँ-

तां नष्टतिमिरां दीप्तैर्भास्वरैश्चमहागृहैः।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य ददर्श महाकपिः।।

– सु० ३।१६

हनुमान् ने उस लंका को अन्धकार रहित देखा जहाँ कि चमकते हुए प्रकाश फेंकने वाले घर (बिजलीघर) थे।

(८) अन्य विद्यायें-

रामायण में अन्य विद्याओं के भी बहुत–कुछ उदाहरण मिलते हैं जिनमें से यहाँ कुछ दिये जाते हैं।

शव (मुर्दे) को ज्यों का त्यों बनाये रखने की विद्या-

बालस्य च शरीरं तत्तैलद्रोण्यां निधापय।
गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्च सुगन्धिभिः।।
यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम्।
विपत्तिः परिभेदो वा न भवेच्च तथा कुरु।।

— उ० ७५।४

राम के राज्य में एक ब्राह्मण का बालक मर गया था। उस मरे बालक को यथावत् रखने के लिए राम ने आदेश दिया कि 'बालक का शरीर तैल की द्रोणी में रखो, उसमें गन्धचूर्ण एवं सुसुगन्ध वाले परमोदार तैल अर्थात् इत्र भी डालो, जिसमें बालक क्षीण न हो, न रंग–रूप–स्वरूप का बिगाड़ हो और न कहीं से माँस फटे और नहीं सन्धि टूटे।'

ज्योतिष–विषयक बातों का भी रामायण में वर्णन मिलता है।

सूर्य में काला धब्बा-

आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते।

—वा. रा.युद्ध. २३।१०

राम कहते हैं– 'हे लक्ष्मण! विमल सूर्य में नीला धब्बा दिखलाई पड़ता है।'

इस प्रकार सूर्य में काला धब्बा राम ने देखा।

दूरवीक्षण (दूरवीन) जैसा साधन-

यत्नेन महता भूयो भास्करः प्रतिलोकितः।
तुल्यपृथ्वीप्रमाणेन भास्करः प्रतिभाति नौ।।

— वा० रा० कि० ६१।१३

सम्पाति राम से कहता है कि बड़े यत्न से फिर हमने सूर्य को देखा जो पृथिवी जैसा बड़ा था।

यहाँ पृथिवी जैसा बड़ा कहने में अत्युक्ति हो सकती है पर उसका बृहदाकार दिखाई पड़ा, यह विचारणीय है।

पृथिवी से चन्द्रमा की दूरी-

अशीतिं तु सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।
चन्द्रमास्तिष्ठते यत्र नक्षत्रसंग्रहससंयुतः।।

— उ० २३।१६

यहाँ कहा गया है कि चन्द्रमा अस्सी हजार योजन अर्थात् ३२०००० कोश अर्थात् चार लाख मील दूर है। पाश्चात्य ज्योतिषी जन इसकी मध्यम दूरी ढ़ाई लाख मील दूर बतलाते हैं। पता चला है कि

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर वृत्त में नहीं दीर्घ वृत्त में परिक्रमा करता है। इसलिए इसकी दूरी घटा बढ़ा करती है, इसकी मध्यम दूरी ढाई लाख मील से कुछ कम है। सौर परिवार को रामायण में चार लाख मील दूर कहा है। हो सकता है, रामायण का माप दीर्घवृत्त की लम्बाई में हो। खैर! इतना तो रामायण के वचन से विदित होता है कि रामायणकाल में ग्रहों की दूरी जाँचने की विद्या वर्तमान थी।

रामायणकालीन सभ्यता

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को हुए आज ६ लाख वर्ष हो गये। यह साधारण अवधि नहीं, इतने दिनों में इस वसुन्धरा में न जाने कितने उत्थान और पतन हुए—जिनका अनुमान करना भी कठिन है, वर्णन कौन करे ? लेकिन हमारी सभ्यता में राम का स्थान इतना ऊँचा है कि परम्परा में आई हुई कथाओं से और आदिकवि लिखित वाल्मीकीय रामायण से हम उस समय की सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। उस समय हमारी उन्नति चरम सीमा पर थी। अगर इस समय के उन्नत राष्ट्रों को लें तथा रामराज्य को लें तो रामराज्य का पलड़ा भारी ही रहेगा। विदेशी जब रामायण पढ़ते हैं तथा उसमें वर्णित रामकालीन भारत को देखते हैं तो घबड़ा कर कहने लगते हैं कि राम हुए ही नहीं थे। रामायण एक गाथा है तथा उसका वर्णन काल्पनिक है। अगर रामायण एक काल्पनिक ग्रन्थ ही है तो भी भारत में सर्वप्रथम इन विचारों का सृजन हुआ था कि जिन्हें देखकर लोग प्लेटो, रूसो आदि की राज्य व्यवस्था को भूल जाते हैं।

पिछले पृष्ठों में हम रामायणकाल के धार्मिक सिद्धान्त, रामायणकाल में नारी का स्थान, रामायणकालीन शिक्षा—सदाचार, रामायणकालीन सामाजिक अवस्था एवं राजनैतिक अवस्था और रामायणकाल की वैज्ञानिक प्रगति (कला—कौशल और शिल्प विद्या) आदि के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार कर चुके हैं। यह विवेचन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि न केवल सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के आर्य संसार के मार्गदर्शक रहे हैं वरन् यान्त्रिक सभ्यता की दृष्टि से भी वे जगत के सिर—मौर रहे हैं। श्रीराम के समय का भारत आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही भौतिक उन्नति एवं विकास की चरम सीमा को प्राप्त था, जबकि उस काल के यूरोपीय देश नितान्त जंगली जीवन बिताते थे और सभ्यता की 'अ,आ,इ,ई,........ भी नहीं सीख सके थे।

रामायणकालीन सभ्यता की इस चरमावस्था को विचार में रखते हुए विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त सर्वथा भ्रान्त और बच्चों का मनोरंजन मात्र है।

इस विवेचन से यह भी प्रकट है कि किसी देश या राष्ट्र की पूर्ण उन्नति आध्यात्मिक एवं भौतिक, दोनों ही क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में है।

रामायणकालीन सभ्यता का आदर्श था— 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करें। भोगवाद और त्याग का यह समन्वय ही वैदिक सभ्यता का चिरन्तन स्वरूप है और यही है विश्वभर की अखिल समस्याओं का शाश्वत समाधान।

रामायण सार

(वाग्मिप्रवर स्वा० दर्शनानन्द जी महाराज)

श्री रामचन्द्रजी के भक्तो! दिन–रात रामायण के पढ़ने वालो! महाराज रामचन्द्रजी को अपना बड़ा मानने वालो! देश के क्षत्रिय जनो! आप सर्वथा रामायण को जो आर्यकुलभूषण, क्षत्रिय कुल दिवाकर, वेदोक्त कर्म प्रचारक, देश–रक्षक, शूर–सरताज, रघुकुल भानु दशरथात्मज महाराजाधिराज महाराज रामचन्द्रजी का जीवन–चरित्र है, सदा पढ़ते–सुनते हैं। परन्तु शोक है कि आप उस महानुभाव के दैवी जीवन से कुछ भी लाभ नहीं उठाते। महाशयो! यह रामचरित्र ऐसा उत्तम है कि यदि मनुष्य इनके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें तो अवश्य मुक्ति पद को प्राप्त हो जायें।

महाशयो! रामायण के आदि में महाराज के जन्म का वृत्तान्त लिखा है जिससे बोध होता है कि हमारे देश के राजाओं को जब सन्तान की आवश्यकता होती थी तब वे लोग विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ कराते थे और इस समय के लोगों की भाँति दरगाहों और मस्जिदों में जाकर अन्धविश्वासपूर्ण ढकोसले न करते थे। वे कभी–मुस्टण्डों से सन्तान न चाहते थे, न गूँगापीर और मसानी माता को मानते थे, वे टोने और धागे न कराते थे। यह सब बातें आपको महाराज रामचन्द्र जी के जन्म से प्राप्त होती हैं। हे रामायण के पढ़ने वालो! शीघ्र ऐसी मूर्खता की बातों को त्याग यज्ञादि कर्म प्रारम्भ कराओ। पुनः महाराज का वशिष्ठजी से विद्या–अभ्यास करना वर्णित है जिससे बोध होता है कि पूर्व समय में सब क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, द्विजातिमात्र पढ़ते थे। आजकल की भाँति यह न था कि विद्या पढ़ना आजीविका के लिए समझें, किन्तु विद्याभ्यास मनुष्यत्व का हेतु माना जाता था। मूर्ख को 'मनुष्य' संज्ञा ही न मिलती थी। अतः रामायण के पढ़ने वालो! शीघ्र विद्याभ्यास करो और उस वेद विद्या जिसको महाराज रामचन्द्रजी ने पढ़ा था, संसार में फैलाओ। रामायण में आगे महाराज रामचन्द्रजी का विश्वामित्र के साथ जाना वर्णित है जो इस बात का पूरा प्रमाण है कि पूर्व समय में विद्वानों और तपस्वियों का कैसा मान था। देखो राजा दशरथ ने प्राणों से अधिक प्यारे दोनों पुत्र विश्वामित्र को दे दिये, दूसरे उस काल में क्षत्रियों के बालक ऐसे बली होते थे जो रामचन्द्र जी ने इस छोटी सी अवस्था में ऋषि के साथ वन में जाने से भय नहीं खाया और दोनों भाइयों ने सहस्त्रों राक्षसों को मार डाला। यह सब ब्रह्मचर्य विद्या और धर्म का प्रताप देखकर भी हम लोग धर्म नहीं करते। फिर रामचन्द्रजी का जनकपुर में जाकर धनुष तोड़ना लिखा है, इससे भी उनके बल की प्रशंसा प्रतीत होती है। इसके आगे महाराजा रामचन्द्रजी के विवाह का वृत्तान्त है जिससे यह विदित होता है कि उस काल में स्वयंवर की रीति थी और आजकल की भाँति गुड़िया–गुड्डे के विवाह अर्थात् बाल–विवाह का प्रचार न था। कन्या और वर दोनों ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और जब पूर्ण विद्वान और बलवीर्य से पुष्ट हो जाते थे तब विवाह करते थे जिससे सदा पति और पत्नी में प्रीति होती थी और उनके गृहस्थाश्रम पूर्ण सुख से व्यतीत होते थे। सन्तान पुष्ट और बुद्धिमान् उत्पन्न होती थी।

रामायण के मानने वालो! आप क्यों बाल–विवाह करके अपनी सन्तान को नष्ट करते हो? इसके पश्चात् महाराज को राज मिलने का लेख है और कैकेयी के आदेश से महाराज का वन को जाना और दशरथ महाराज की मृत्यु लिखी है। इससे क्या ज्ञात होता है ? प्रथम तो यह कि नीच के संग से सदा हानि होती है। देखो कैकेयी ने मंथरा के संग से अपना सुहाग नष्ट किया, संसार को दुःख दिया, जगत् में अपयश लिया। जिस पुत्र के लिये यह अधर्म किया था, उस पुत्र ने भी उसको बुरा कहा। क्या इससे कुसंग से बचने की शिक्षा नहीं मिलती ? जो अधर्म करते हैं, उनके घर के लोग भी उनको बुरा कहते हैं। दूसरे महाराज दशरथ ने राज को त्याग दिया, अपने प्यारे पुत्र, नहीं–नहीं नयनों के तारे को चौदह वर्ष का वनवास दिया, अपने प्राणों का भी वियोग स्वीकार किया परन्तु अपना वचन न जाने दिया और संसार भर में यश लिया तथा संसार को यह शिक्षा दी कि मनुष्य को जो कुछ किसी को देना हो शीघ्र दे दे परन्तु किसी से प्रतिज्ञा न करे न जाने कौन कैसा समय आ जावे क्योंकि राजा दशरथ कैकेयी को उसी समय पर देते तो उनको यह कष्ट और पुत्र का वियोग सहना न पड़ता। इस जगह पर और भी बहुत–सी शिक्षा मिलती हैं, जैसे अपने पुत्र श्रवण की मृत्यु से उसके अन्धे माता–पिता मर गये, उसके फल से राजा दशरथ भी अपने पुत्र के वियोग से मरे। महाराज रामचन्द्रजी के वन–गमन में लक्ष्मण जी का संग जाना। देखो उस समय के लोग कैसे पिता के भक्त होते थे कि महाराज रामचन्द्रजी ने पिता के कहने से राज ही नहीं त्यागा किन्तु वनवास भी स्वीकार किया। क्या आजकल रामायण के पढ़ने वाले अपने पितरों की आज्ञा का पालन करते हैं ? दूसरे लक्ष्मणजी ने भाई के लिए देश, मातृ–सुख सब त्याग कर दिया। सच्चे भाइयों की प्रीति ऐसी ही होती है। क्या आजकल के रामायण पढ़ने वाले कभी अपने भाइयों से ऐसी प्रीति करते हैं ? आगे महाराज के संग सीताजी का वन–गमन लिखा है जिससे स्वयंवर की रीति का गुण और सीताजी का पतिव्रत धर्म झलकता है। क्या आजकल के लोग बाल–विवाह से इस पतिव्रत धर्म की आशा रखते हैं ? सीताजी ने अपने पति के लिए माता–पिता, सास, राजगृह का सुख–सब त्याग कर दिया। पति के संग वन–वन घूमना स्वीकार किया और पति के बिना सब सुखों को दुःख स्वरूप समझा। अहा क्या ही पतिव्रत धर्म उस समय देश में प्रचलित था। आजकल की बाल विवाह की पत्नी तो सदा मेलों में गंगा किनारे मन्दिरों में घूमना ही धर्म समझती है, इस सच्चे पतिव्रत धर्म का तो उनमें लेश भी न रहा।

फिर महाराज भरत का रामचन्द्रजी को लेने जाना लिखा है। वह क्या ही देश के सौभाग्य का समय था कि अधिकारी के अधिकार का इतना ध्यान रखा जाता था। भरतजी ने राज की तृष्णा नहीं की, सबसे अधिक भाई की प्रीति दिखाई। फिर वन में शूर्पणखा रावण की बहिन का रामचन्द्रजी के पास जाकर विवाह करने की प्रार्थना करना और महाराज का उसको मना करना, उसका न मानना और हठ करना, लक्ष्मण जी का उसकी नाक काटना वर्णित है। इससे महाराज रामचन्द्र का एक ही स्त्री से सन्तुष्ट होकर परस्त्रीगमन या एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करने से घृणा करना सिद्ध होता है। क्या रामायण के पढ़ने वालो, यहाँ से परस्त्रीगमन के दोषों का त्याग न करोगे ? प्यारे देशवासियो! शीघ्र परस्त्री–गमन जैसे घोर पाप को त्यागो। यह भी यौवन के विवाह का फल है कि पति और पत्नी में ऐसी प्रीति है कि पत्नी पति के लिए घर–बार त्याग दे और पति–पत्नी के लिए संसार भर की स्त्रियों को काक–विष्ठा के समान माने।

इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि जो अधर्म की हठ करता है, उसकी नाक काटी जाती है और वीर क्षत्रिय गण ऐसे हठी और दुराचारी को सदा दण्ड ही दिया करते थे। फिर इसके पश्चात् रावण का योगी स्वरूप मे आना लिखा है, इससे ज्ञात होता है कि जब दुष्ट अपने में बल नहीं देखता तब इसी प्रकार के छल करके सत्पुरुषों को कष्ट देता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि किसी के बाह्य स्वरूप पर न भूलना चाहिए क्योंकि दुष्टजन भी अच्छे पुरुषों का रूप बना सकते हैं। शोक है कि इस बात को देखकर भी हमारे देशवासी अपनी स्त्रियों को मुस्टण्डे वेशधारियों के पास जाने से नहीं रोकते। जब सीता जैसी पतिव्रता स्त्री को वह कपटी पुरुष धोखा देकर निकाल ले गया तो और को क्या समझते हैं। इसके पश्चात् जटायु का रावण के साथ युद्ध करके प्राण देना लिखा है जिससे सच्चे मित्रों का मित्र–भाव ज्ञात होता है। जटायु ने प्राण दिये परन्तु जीते जी अपने मित्र दशरथ की पतोहू को दुष्ट रावण से बचाया। क्या रामायणी इस वीर से भी न्यून अपने मित्रों के साथ उपकार करेंगे ? उसके आगे रामचन्द्रजी का सीता से वियोग अच्छे–अच्छे महात्माओं को घबरा देता है। उसके पश्चात् रामचन्द्रजी का सुग्रीव से मिलना लिखा है, इससे ज्ञात होता है कि संसार में दो प्राणियों के मेल से दोनों का कार्य सिद्ध होता है। आगे रामचन्द्रजी का बालि को मारना लिखा है, इससे यह ज्ञात ही है कि जो किसी से शत्रुता रखता है, उसका एक दिन अवश्य नाश हो जाता है। फिर महाराज का समुद्र पर पुल बाँधना वर्णित है जो उस समय की विशाल विद्या और उन महात्माओं के ऐसे प्रयत्न का साक्षी है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि मनुष्य दृढ़ व्रत रखता हो तो अवश्य कृतकार्य होगा। इसके पश्चात् विभीषण का रावण के विरुद्ध होकर रामचन्द्रजी से मिलना लिखा है, इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जब बुरे दिन आते हैं तब भाई भी शत्रु बन जाते हैं और जिस घर में दो मत हों, वह एक दिन अवश्य नष्ट होगा। कारण यह है कि रावण और विभीषण का एक मत न था इसी से विभीषण उससे अप्रसन्न हो गया। यही मतवाद भारत का नाशक है और तीसरे यह भी ज्ञात होता है कि जब घर में फूट हो तब शीघ्र सत्यानाश होता है। इससे हे सज्जन पुरुषो! तुम सदा फूट से अलग रहो। हे रामायण के पढ़ने वालो! तुम कभी भी अपने भाई से विरोध न करो और मतवाद को नष्ट करो। इसके पश्चात् रावणादि का श्री रामचन्द्रादि के हाथ से मारा जाना लिखा है, इससे ज्ञात होता है कि जो आदमी अपने बल से बढ़कर छल के आश्रय काम करता है वह अवश्य नष्ट हो जाता है। देखो रावण ने रामचन्द्र के बल को जानकर यह ढीठपना किया, कारण यह कि यदि वह रामचन्द्र के बल को न जानता तो सीताजी को बल से लाता, छल न करता। रावण का छल करना ही उसकी निर्बलता को प्रकट करता है। रावण ने जान बूझकर यह कार्य किया, अन्त में नष्ट हो गया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि जो लोग झूँठे, अभिमानी मनुष्य के भरोसे संसार से बिगाड़ते हैं और उसके परिणामों को नहीं विचारते वह सदैव हानि उठाते हैं।

देखो, यदि रावण के साथी इस बात का विचार करते कि जो रावण चोरी करके सीता को लाया है, वह कभी राम के विरोध से सफल न होगा तो उनका नाश न होता। और दूसरे रावण ने कमजोर होने पर भी पाप किया उसका फल पाया। जो पर–स्त्री पर कुदृष्टि करेगा, उसकी यही दशा होगी! इसके अतिरिक्त और भी बहुत से पाप के अशुभ फल प्रतीत होते हैं। शोक है कि हमारे देश

के लोग रामायण पढते हैं, नित्य रामलीला देखते हैं परन्तु उसका विचार कुछ भी नहीं करते। उनका लीला देखना या नित्य रामायण पढना ऐसा है जैसे बकरी बाग और जंगल में जाती है, वहाँ कई ग्रास घास को खाती है कहीं पत्तों पर मुँह मारती है। उसको बाग और जंगल एक सम हैं। हानिकारक स्थलों से हानि तो उठाती है, वन में गड्ढे में गिर पड़े तो टाँग टूट जाय, परन्तु बाग से कुछ भी अन्य उपयोगिता नहीं निकालती। इसी प्रकार हमारे देश भाई यदि कुमार्ग की पुस्तकों को पढ़ते हैं तो शीघ्र व्यसन में पड़ जाते हैं परन्तु सुमार्ग की पुस्तकें पढ़ने से उनसे कुछ फल नहीं निकालते। यदि बहुत किया तो कहीं की दो चार चौपाई कण्ठ करलीं और जब कभी बातचीत हुई तो अपना पाण्डित्य जताने को सभा में कह दीं। मैं बहुत से लोगों को रामायण पढ़ते देखता हूँ, परन्तु उसके अनुकूल आचार करने वाले बहुत ही न्यून हैं। अब इस रामायण सार का सूक्ष्मता से आशय कहते हैं।

रामायण में महावीरजी के चरित्र से सच्चे सेवकों का व्यवहार जान पड़ता है और रावण के इतिहास से जाना जाता है कि यदि कुल में एक भी दुष्ट पुरुष उत्पन्न हो जाय तो सारे कुल को नष्ट कर देता है। दूसरे रावण पुलस्त्य मुनि का पौत्र था, ईश्वरभक्त था, वेदों का पण्डित था, परन्तु इतने पर भी माँस खाने, मदिरा पान और पर–स्त्री गमन करने से उसकी पदवी राक्षस हो गई। अब तो रामायण पढ़ने वाले लाखों लोग दुराचार करते हैं परन्तु अपने आपको साधु और ब्राह्मण ही मानते हैं। देखो महात्मा लोगो ! विचारो जिस परस्त्रीगमन ने रावण को राक्षस बना दिया, क्या जो अब करेंगे वह राक्षस नहीं? रावण ईश्वर का भक्त था परन्तु माँसाहार ने उसको राक्षस बना दिया। रामायण के पढ़ने वालो शीघ्र इस राक्षसी व्यवहार को त्याग दो और परस्त्रीगमन तथा मादक द्रव्य का सेवन और माँस भक्षण का शीघ्र त्याग करो और रामायण से जो शिक्षा मिलती है उसे संसार में प्रचारित करो। यज्ञादिक कर्म करो। वर्णाश्रम धर्म को ग्रहण करो। सम्प्रदायों को मिटाओ, वेद का प्रचार करो! विद्या को पढ़ो–पढ़ाओ! विद्वान तपस्वियों का मान करो। मूर्ख भेषधारियों का अपमान करो। मूर्ख भेषधारियों से बचो। ब्राह्मण भेषधारियों से बचो। ब्राह्मण वेद का अभ्यास करें, क्षत्रिय वीर बनें। बाल–विवाह को दूर करो। ब्रह्मचर्य का प्रचार करो! वर कन्या का गुण–कर्म की योग्यता अनुसार विवाह करो। ऐसा न करो कि ६० वर्ष का वर और नौ वर्ष की कन्या हो। दादा और पोती की शादी हजार दो हजार रुपये के लोभ से कर देते हैं और थोड़े दिनों में वह रांड़ होकर कुलकलंक हो जाती है। हे रामायण के पढ़ने वालो! अयोग्य से लालच वश विवाह मत करो! धर्म को नष्ट मत करो। माता–पिता की आज्ञा का पालन करो। माता–पिता को देवता मानो। उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करो। भाइयों से प्रीति रखो, थोड़ी बातों में उनसे विरोध मत करो और जहाँ तक हो सके प्राणान्तपर्यन्त भाई को कष्ट मत दो। यदि तुम इस प्रकार से जीवन व्यतीत करोगे तो अत्यन्त सुख होगा। अपनी स्त्रियों को पतिव्रत धर्म सिखलाओ, तुम एकस्त्रीव्रत धारण करो, स्त्रियों को मुस्टण्डे साधुओं के पास मत जाने दो। उनको दुराचारी पुजारियों से अर्थात् पूजा के शत्रुओं से बचाओ, मन्दिरों में अकेले जाने से रोको। उनको समझाओ, स्त्री के लिए पति ही देवता है। पति को छोड़कर जो स्त्री दूसरे देवता का पूजन करती है, उसका धर्म नष्ट हो जाता है। आप कभी परस्त्री–गमन मत करो। सदा वेश्याओं से बचो, कुसंग न करो। कुढंगों से बचो। मित्रों को लाभ पहुँचाओ। आपस में मेल करो। घर में फूट मत करो। दृढ़व्रत रहो, जिस काम में लगो

उसे पूरा करके छोड़ो। धर्म के विषय में विचार करो। मूर्खता से हठ मत फैलाओ। आपस में मतभेद मत करो। एक वर्णाश्रमी हो, वैदिक धर्म के अनुकूल चलो। जहाँ तक बने सच्चे महात्माओं की सेवा करो। पाठकगण! यह सब कार्य करने से ही भगवान् राम की भक्ति पूर्ण होगी।

रामचरितमानस कसौटी पर

प्रश्न– वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य कितनी रामायण हैं ?

उत्तर– वाल्मीकि से इतर एक दो नहीं अनेकों रामायण हैं। अनेकों कवियों ने राम–चरित को अपनी भावनाओं को प्रस्फुटित करने का माध्यम बनाया। यहाँ तक कि युगकवि मैथिलीशरण गुप्त को अपनी प्रसिद्ध कृति 'साकेत' के आरंभ में लिखना पड़ा–

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

फिर भी इनमें से प्रमुख और सर्व साधारण के लिए सुपरिचित रामायण निम्न हैं– (१) संस्कृत में महाकवि भवभूति कृत 'रामचरित' नाटक (२) अध्यात्म रामायण (३) अद्भुत रामायण (४) आनन्द रामायण (५) महाकवि केशव रचित 'रामचन्द्रिका' (६) कवि–चूड़ामणि सन्त तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' (७) वरवै रामायण (८) चम्पू रामायण (६) 'साकेत' (१०) राधेश्याम रामायण आदि।

प्रश्न– क्या इन सब में समानता है ?

उत्तर– नहीं, इन सबमें विषयवस्तु प्रायः एक होते हुए भी घटना–क्रम में पर्याप्त भिन्नता है। प्रायः हर कवि ने रामचरित के इस विशद् क्षेत्र में कल्पना के पंख लगाकर अपनी प्रतिभा के घोड़ो को खूब दौड़ाया है। कल्पना की इस उड़ान में रामायण की प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक सच्चाइयाँ बहुत पीछे छूट गई हैं और उनका स्थान रूढ़ि और पाखण्डपूर्ण मिथ्या कथानकों एवं थोथे पूजा–पाठ ने ले लिया है। रामायण की आज आरती उतारी जाती है, सवारी निकाली जाती है, भक्त लोग झूम–झूम कर गाते हैं–'आरती श्री रामायण जी की' पर जीवन को प्राणवान् बनाने वाली प्रेरणा कुण्ठित हो गई है, मानो किन्हीं निष्ठुर करों ने उसका गला घोंट दिया हो। हम यहाँ अति संक्षेप में सन्त तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य का एक विनम्र विद्यार्थी रहने के कारण गोस्वामी तुलसीदास के विशाल काव्योदधि के तट पर खड़े होकर उसकी एक हलकी सी झाँकी लेने का सौभाग्य हमें प्राप्त है। हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी की तुलना में प्रायः दो मत प्रसिद्ध हैं। कुछ के अनुसार– 'सूर–सूर, तुलसी–शशि' तो दूसरों के अनुसार 'सूर–शशि, तुलसी रवि' हैं। हम दूसरी कोटि के विद्यार्थियों में हैं। काव्य–दृष्टि से हम तुलसी को हिन्दी साहित्याकाश का सूर्य मानते हैं। निश्चय ही रस और अलंकारों की जो छटा तुलसी के काव्य में मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सत्य ही कहा है–

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।

–ऐसी हमारी गहन निष्ठा है, तुलसी के सम्पूर्ण काव्य–वाङ्मय में। फिर रामचरित मानस तो तुलसी की रचनाओं में बेजोड़ है। सन्त तुलसीदास की चौपाइयों के सौरम्य को सहृदय जन ही जान सकते हैं। तुलसी की काव्य–प्रतिभा और माधुरी का निखार रामचरित मानस के अनेकों प्रसंगों में देखते ही बनता है। तुलसी के काव्य–कौशल पर फिदा उनका एक अनन्य भक्त उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति को जब कसौटी पर कसने बैठा है तो क्या यह दुस्साहस मात्र नहीं है ? पर हमारे सामने यह शास्त्र–वचन है– 'शत्रोरपि गुणाः वाच्याः, दोषाः वाच्या गुरोरपि' अर्थात् शत्रुओं के भी गुणों की (जो जन–कल्याण में सहायक हों) दाद देनी चाहिये, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए और अपने गुरुजनों, श्रद्धेय जनों के भी दोषों की (जो लोकमंगल में बाधक हों) समीक्षा करनी चाहिये। मात्र इसी भाव से अत्यन्त विनम्रतापूर्वक हम इस दुरूह और कठोर कर्त्तव्य में प्रवृत्त हो रहे हैं।

वेद की कसौटी

हमें कहना यह है कि काव्य की दृष्टि से जो ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में अपनी सानी नहीं रखता, वही जब धर्मग्रन्थ का रूप लेकर हमारे सामने आता है तो हमें लगता है कि धार्मिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से रामचरित मानस उतना ही अधिक लचर, आभाहीन और निरर्थक है। यही नहीं काव्य–दृष्टि से जो इतना उत्कृष्ट है, धर्मग्रन्थ के रूप में वह उतना ही निकृष्टतर और कूड़े–करकट एवं सड़न से भरा हुआ है। इस सड़न से इस महान् आर्य जाति का माथा ही सड़ गया है। जब हम ऐसा कहते हैं तो उसके पीछे कुछ ठोस आधार हैं।

बाजार में आजकल रोल्ड गोल्ड, नकली सोना काफी मिलता है। कभी–२ असली सोने की चमक भी उसके मुकाबले में फीकी लगती है। पर हम जानते हैं कि कसौटी के पास ले जाते ही वह अपनी खोट बोल देता है। धार्मिक दृष्टि से 'प्रमाणम् परमं श्रुतिः' इस मनु वाक्य के अनुसार एकमात्र वेद ही सम्पूर्ण आर्य जाति के कसौटी हैं जिनके निकट लाते ही काव्य–सुषमा से गौरवान्वित इस ग्रन्थ की खोट बोलने लगती है। अपने इस ग्रन्थ को 'निगमागम–सम्मत' कहने वाले गोस्वामी जी के हाथों जब हम सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों की निर्मम हत्या देखते हैं, जब हम देखते हैं कि युगपुरुष, युगस्रष्टा, युगनायक महामानव भगवान् राम की अवतारवाद, चमत्कारवाद एवं अलंकारवाद के पाटों के बीच कैसी दुर्गति 'मानस' में हुई है, तो हमारा मन रो उठता है।

साहित्य समाज का दर्पण है

पर क्या इस सबके लिये हम सन्त तुलसी को दोष दें, यह जटिल प्रश्न है ? हमारा निवेदन है कि अधिकांश में यह सब दोष पुराणकारों के माया जाल से प्रभावित तत्कालीन जन–समाज और तद्प्रेरित रूढ़ और मूढ़ धारणाओं का है। यद्यपि एक सच्चा साहित्यकार युगनिर्माता होता है तथापि यह

उक्ति भी बड़े अंशों मे सत्य है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' 'मानस' की रचना अब से ४०० वर्ष पूर्व यवन राज्य-काल में हुई। गुलामी के जुए के नीचे दबे, किसी प्रकार घुट-घुट कर साँस ले रहे जन समाज की धार्मिक धारणायें और सामाजिक आकाँक्षायें जिस निचले दर्जे की हो सकती हैं, वही सब चित्रण हमें 'मानस' मे मिलता है। युग के प्रभाव तथा युग की समस्याओं से कवि या साहित्यकार अप्रभावित नहीं रह सकता। राम कथा पर ही लिखे गये ग्रन्थों का यदि पर्यालोचन किया जाय तो यह युगप्रभाव हर ग्रन्थ में स्पष्ट दीख पड़ेगा। उदाहरण के लिये 'मानस' और 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त कृत) के दृष्टि बिन्दु के अन्तर पर थोडा विचार कीजिये। तुलसी नारी को अष्ट अवगुण युक्त, 'सहज अपावन नारि', 'अधम ते अधम अधम अति नारी', 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी' आदि शब्दों में याद करते हैं जबकि 'साकेत' में 'नारी जागरण' एवं 'नारी-महिमा' का शंखनाद स्पष्ट सुनाई देता है। यह परिवर्तन युग प्रभाव का ही द्योतक है। 'मानस' के हीनतापूर्ण दृष्किोण के लिये न तो हम सर्वांश में तुलसी को दोषी ठहरा सकते हैं और न 'साकेत' के गौरवमय दृष्टिकोण का सम्पूर्ण श्रेय गुप्त जी को दिया जा सकता है।

हमारा निवेदन है कि तुलसी को यदि ईमानदारी से इसका परिज्ञान होता कि अवतारवाद एवं चमत्कारवाद अवैदिक (वेद विरुद्ध) और अनेकों अनर्थों की जड़ हैं तो हमारा विश्वास है कि-

कलि-मल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सद् ग्रन्थ।
दम्भिन निज मत कल्पि कर, प्रकट कीन्ह बहु पन्थ।।
श्रुति सम्मत हरिभक्त पथ, संयुत ज्ञान विवेक।
ते न चलहिं नर मोह वश, कल्पहिं पन्थ अनेक।।
चलत कुपन्थ वेद-मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।।
कल्प-कल्प भरि इक-इक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।

– इन शब्दों में वेद का स्तुति-गान और अवैदिक बहुपंथों का घोर खण्डन करने वाले तुलसी अपनी कलम को स्वयं ही वैदिक सत्य सिद्धान्तों का खून करने के लिए कदापि नहीं उठाते। तुलसीदास जी एक ओर वेदों की, भरपेट स्तुति करते हैं, दूसरी ओर वे सैकड़ों बातें वेद-विरुद्ध, प्रकृति-विरुद्ध, सृष्टिक्रम-विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध, असंगत और ऊँट पटांग लिखते हैं। प्रश्न है, ऐसा क्यों ? क्या उन्होंने ऐसा करने में आत्म-प्रवञ्चना की ? हमारा कहना है– नहीं। तुलसी एक सन्त थे, उनके निकट कोई निजी स्वार्थ भी नहीं था। अतः वे आत्म-प्रवंचना का पाप कर सकते थे, कम से कम हमारा मन तो यह मानने के लिए तैयार नहीं होता। तब फिर वेद की प्रशंसा करके भी तुलसी के 'मानस' में वेद विरुद्ध सैकड़ों बातें क्यों भरी पड़ी हैं ? हमारा निवेदन है कि वेद की प्रशंसा और अवैदिक मान्यतायें दोनों ही चीजें तुलसी को पुराणकारों से विरासत में मिलीं। तुलसी यदि वेद की प्रशंसा करते हैं तो उसका यह अर्थ नहीं कि वे वेद के पण्डित थे या उन्होंने वेदों का विधिवत् अध्ययन किया था। हो सकता है कि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयु में वेद के दर्शन तक भी नहीं किये हों। पौराणिक मान्यता के अनुसार तो वेदों को शंखासुर ले गया था। तब फिर तुलसी द्वारा वेद की प्रशंसा,

वेद के अध्ययन या वैदिक सत्य ज्ञान के आधार पर नहीं थी, अपितु वेदों का मात्र नाम लेकर मनमाना पाप–प्रपञ्च फैलाने वाले पुराणों के आधार पर थी। पुराणों की समीक्षा का अवसर यहाँ नहीं है, किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ में ही यह विवेचन सम्भव है। यहाँ तो इतना ही वक्तव्य है कि परम पवित्र वेद का नाम लेकर पुराणों में घोरतम अनर्थों का समर्थन है। पुराण कथाओं में जहाँ सद् शिक्षायें हैं, वहीं देवी–देवताओं के नाम पर ऐसे–२ पापपूर्ण, लज्जा को भी लजाने वाले महा घिनौने चित्र पुराणों में हैं जिन्हें देखकर आत्मा काँप उठती है और तुर्रा यह कि ये सब वेद, शास्त्र और धर्म के नाम पर हैं। पुराणों की कीचड़ में बुरी तरह लिप्त समाज की धारणायें और वातावरण तुलसी को प्राप्त थे। तुलसी ने उसी का चित्रण अपनी कवि–सुलभ प्रतिभा का पुट देकर किया है।

विविध मान्यताओं का एकीकरण या सिद्धान्त-भ्रष्टता

हम हृदय से मानते हैं कि तुलसी अपनी आत्मा के निकट ईमानदार थे। मत–मतान्तरों के घटा–टोप से ढक जाने एवं पौराणिक पापाचार की अँधियारी के कारण उन तक यथार्थ वैदिक भास्कर का प्रकाश पहुँच ही नहीं सका था। फिर भी एक वेद का ही नाम लेने वाले किन्तु पौराणिक बहु देवतावाद के पाप के कारण एक दूसरे की शक्ल देखने में भी नरक–यातना मानने वालों को ही तुलसी ने 'कल्प–कल्प भरि इक–इक नरका' आदि शब्दों में लताड़ा है। वेद सूर्य का प्रकाश न होने से वे यह तो नहीं देख सके कि वेद में 'बहु देवतावाद' है ही नहीं और कि ईश्वर एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अलग–२ देवता नहीं, एक ही ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार अलग–२ नाम हैं–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथोदिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहु।।

– ऋ० १।१९६४।४६

यह पावन वेद ऋचा तुलसी की आँखों के सामने नहीं थी। पर वे उसे घोर घटा टोप में भी इतना अनुभव अवश्य कर सके कि एक वेद का ही नाम लेने वाले विविध मतों का आपसी द्रोह मिटना चाहिये। समाज के इस आपसी द्वेष और द्रोह को दूर करने के लिए वे 'बहुदेवतावाद' के पाप को ही परे फेंकने की बात कह सकते ,ऐसा सद्–ज्ञान उनके पास नहीं था। कवि सुलभ प्रतिभा उनके पास थी। उसी के सहारे उन्होंने वैष्णवों, शैवों और शाक्तों के द्रोह को मिटाना चाहा। इसके लिये उन्होंने सभी के सिद्धान्तों व मान्यताओं को 'मानस' में ला जमाया। यही कारण है कि 'रामचरित मानस' में किसी एक निश्चित दार्शनिक विचारधारा का अथवा किन्हीं निश्चित मान्यताओं का सर्वथा अभाव है। द्वैत–अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और कहीं–२ त्रैतवाद' भी–सबका एक अजीब सा मिश्रण है।

इससे ज्ञात होता है कि उस समय इन पुराणों के प्रचार से, सर्वसाधारण जनता को साम्प्रदायिक मत–मतान्तरों के कारण द्वारा यत्र–तत्र बिखरी देखकर, गोस्वामी तुलसीदासजी ने (अपने सरल व दयालु स्वभावानुसार) सब साम्प्रदायिकों का एकीकरण करने में ही सबका कल्याण समझा अपनी रामायण में सब मत–मतान्तरों के सिद्धान्तों की प्रशंसा रूप गाथायें (वैष्णव, शैव, शाक्त आदिकों के

प्रसन्न करने को) रामायण में लिखीं। इसी कारण तो उनके 'मानस' में उस समय के प्रचलित आधुनिक पुराणों की अनेक बातें (जिनका कि यथार्थ में रामचरित से कुछ भी समबन्ध नहीं है) लिखी दिखाई देती हैं तथा दाशरथि राम द्वारा शिवजी का ईश्वरवत् पूजन, और उसी प्रकार शिवजी द्वारा रामचन्द्रजी का पूजन एवं उन दोनों की धर्मपत्नियों को सीता और पार्वती जी पृथक् २ जगदम्बा (जगत् माता) स्पष्टतया बतलाया है। इसी प्रकार उस समय (पुराणों द्वारा) प्रचलित रीति–रिवाजों को (रूढ़िवादानुसार) कुलप्रथा या कुलधर्म के नाम से (सबकी प्रसन्नता ही में अपनी प्रसन्नता समझकर) अनेक कथाओं को रोचक और राम–भक्ति के प्रेम–रस से पूरित बना (अपने उस समय के बोधानुकूल) यत्र–तत्र वेद और शास्त्र–प्रमाणों द्वारा पुटों की पुष्टि दृढ़ता से लगाई है और जनता को स्वर्गादि का प्रलोभन दे देकर रामभक्ति को अद्भुत रूप देने के अनन्तर भगवान् को भी भक्तों के वश में (पुराणानुसार) बतलाया है। इसी से पौराणिक भक्तों के जापों द्वारा (अचल और अटल ईश्वरीय नियम तुड़वा कर) ''रमते इति रामः'' की आड़ में अवतारवाद सिद्ध करने को ''रामावतार'' दर्शाया और दुराचारी व राक्षसों तक को सहज ही में मुक्ति प्राप्त करादी है कि जिससे सब सम्प्रदाय और मत वाले अपना–२ सिद्धान्त देख कर प्रसन्न बने रहें। शिवजी तथा रामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम के विवाहों में अप्सराओं का नृत्य और उनमें गालियों के गाने में भी सबकी प्रसन्नता दर्शायी गयी है।

इस प्रसंग में हम इतना ही निवेदन करना चाहेंगे कि एकीकरण के ऐसे सभी ऊपरी प्रयास भले ही देखने–सुनने में भले प्रतीत हों और उनसे कुछ तात्कालिक लाभ भी भले ही हो पर वे बिना सत्य मौलिक आधार के 'सिद्धान्त भ्रष्टता' को ही जन्म देते हैं। पूज्य गाँधी जी के 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' और श्रीमान् ' बिनोवा जी की बहक' की तरह वे कभी स्थायी शान्ति और सुख के कारण नहीं हो सकते। फोड़े में मवाद अन्दर भरा रहे तो ऊपरी लेपन मात्र से काम नहीं चलेगा। यदि फोड़ा बैठ भी जाय तो भी शरीर के अन्दर ही समाया हुआ जहर समय पाकर नई–नई विकृतियों को जन्म देगा। असत्य और सत्य का समन्वय एक धोखा और छलना मात्र है।

तो हम मानते हैं कि समाज को मतवाद के द्वेषानल से धधकते हुए देखकर किसी भी सहृदय व्यक्ति की तरह तुलसी को भी कष्ट हुआ, ऐसा लगता है। क्योंकि बारीकी से देखने पर उनके इस ग्रन्थ में भी पाखण्डों और मतवादों से उत्पन्न द्वेष–दम्भ का खण्डन मिलता है। पर सम्भवतया उनकी गति इससे आगे नहीं थी। इसलिए मत–पन्थों का 'घोल' ही उन्होंने देश की जनता को पिलाया। मिथ्या भक्ति के इस मीठे घोल ने मीठे जहर का काम किया। कुछ के मतानुसार मुस्लिम आक्रमण से ध्वस्त–त्रस्त भारतीय प्रजा को इससे बड़ी राहत मिली। पर हमारा कहना है कि यह राहत मौत का पूर्व रूप थी और झाँझ पीटने के इस धन्धे ने अन्ततः राष्ट्र की आत्मा को सर्वथा सुला ही दिया।

उक्त विवेचन से यह प्रकट है कि हम तुलसी के व्यक्तित्व में निष्ठा रखते हैं, उनकी काव्य–प्रतिभा के हम कायल हैं। यही कारण है कि हमने अपने इस 'शुद्ध रामायण' ग्रन्थ में यत्र–तत्र सन्त तुलसीदास की चौपाइयों के उदाहरण भी निस्संकोच दिये हैं। हमारी यह भी इच्छा है कि कभी तुलसी रामायण के शिक्षाप्रद वेद–अविरुद्ध प्रसंगों का ● एक संकलन प्रकाशित किया जावे। यह सब

● **यह संकलन 'मानस-पीयूष' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।**

कुछ होते हुए भी हमारी मान्यता है कि तुलसी रामायण से पौराणिक–पाप को पोषण और बढ़ावा मिला है। अवतारवाद, चमत्कारवाद, मूर्तिपूजा, गुरुडम, जन्मगत जाति–पाँति, मृतक श्राद्ध, अनेकानेक अन्य पाखण्ड और इन सबके जनक अन्ध–विश्वास की जड़ों को तुलसी रामायण से पानी लगा है। तुलसी रामायण के अशुद्ध दृष्टिकोण, पौराणिक प्रभाव में जोड़ी गई नई–२ महागप्पों तथा अनर्गल मान्यताओं के जो भीषण दुष्परिणाम हुए और हो रहे हैं, आयें, हम अतिसंक्षेप में इस सम्बन्ध में विनम्र भाव से विचार करें।

वाल्मीकि रामायण से विरोध-

तुलसी रामायण के सम्बन्ध में हमारी सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसमें अनेकों प्रसंग वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध एवं अतिरञ्जित हैं। यह सभी स्वीकारेंगे कि वाल्मीकि रामायण श्रीराम के काल की रचना होने के कारण (देखें वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल) रामचरित्र के सम्बन्ध में एकमात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है। यद्यपि जैसा कि हम देख चुके हैं वा० रामायण में भी पर्याप्त प्रक्षिप्त भाग है पर अनेकों बातें तुलसी रामायण में ऐसी हैं जो प्रक्षेप युक्त वा० रामायण में भी नहीं हैं। अनेकों घटनाक्रमों में भी बड़ा अन्तर है। देखिये–

(१) वा० रामायण में महादेव के रामायण बनाने और काकभुशुण्डजी को सुनाने की वार्ता नहीं है–

सोइ शिव काकभुशण्डिहिं दीन्हा। रामभक्ति अधिकारी चीन्हा।।
तेहि सन याज्ञवल्क्य पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।

–यह महागप्प नहीं तो क्या है ? याज्ञवल्क्य वेद के ज्ञाता एक बड़े ऋषि थे। क्या इन्हें कोई ऋषि–मुनि गुरु न मिले जो इन्होंने एक कौए से रामायण सुनी और तब रामतत्व जाना ?

(२) **गरुड़ का सन्देह निवारण के लिए काग जी के पास जाना** - गरुड़ अपना सन्देह दूर करने के लिए नारद के पास गया। नारद ने ब्रह्मा के पास भेजा, ब्रह्मा ने शिव के पास और शिव ने काग जी के पास। और काग जी के आश्रम के दर्शन मात्र से ही गरुड़ का भ्रम जाता रहा। इस महागप्प का क्या कहना ? प्रथम तो पशु–पक्षियों की बातें असम्भव, द्वितीय काग जी, नारद, ब्रह्मा, शिव सबके दादा गुरु कैसे बन गये ? तीसरे कौए की किंचित् सेवा से ही ऐसा दिव्य ज्ञान रामजी ने दे दिया कि कल्प–कल्पान्त में भी इसको मोह प्राप्त नहीं होता और गरुड़ सदा राम–सेवा में रहता है फिर भी सन्देह का शिकार बन गया। इस गप्प का भी वाल्मीकि रामायण में कोई उल्लेख नहीं।

(३) शिवजी भी हंस रूप धर कौए से कथा सुनते हैं।

(४) **इहाँ बसत मोहि सुनेउ खगेसा। बीते कल्प सात बरु बीसा।**

सत्ताईस कल्प बीतने पर भी यह पक्षी ज्यों का त्यों बना रहा। हे भक्तजनो! कुछ सोचो तो यदि काग भुशुण्ड जी कल्पान्त तक प्रतिदिन चिड़ियों को रामायण सुनाया करते तो कुछ चिड़ियाँ भी तो

वैष्णव बनी हुई दीखतीं! काकजी का एक भी चेला कण्ठी, तिलक, छापा लगाये नहीं दीखता। ऐ मूर्खते, तू धन्य है!

(५) राम के बाल रूप को देखकर यह कौआ भ्रम में पड़ गया। रामजी इसे पकड़ने दौड़े। आखिर पकड़ लिया। राम हँसने लगे तो यह मुँह के अन्दर चला गया वहाँ शत कल्प बीत गये। जब पुनः राम हँसे तो बाहर निकल पड़ा। तुलसी लिखते हैं यह लीला दो घड़ी में ही हुई। विचारशीलो! विचारिये तो कि पेट में कई सहस्त्रवर्ष बीत गये और बाहर केवल दो घड़ी बीतीं। यह कैसे ?

(६) इसी प्रकार इन्द्रपुत्र जयन्त तथा ऋषि दुर्वासा की कथा भी असंगत और सृष्टिक्रम–विरुद्ध है।

मिथ्यात्व का प्रचार-

(७) जन्मते ही हनुमान् ने सूर्य को पकड़ लिया। (८) सूर्य से इसने विद्या सीखी थी। (९) अगस्त्य ने समुद्र सोख लिया। (१०) त्रिशंकु अभी तक आकाश में लटक रहा है। (११) नहुष इसी शरीर से स्वर्ग गया और पुनः वहाँ से गिर गया। (१२) रावण ने कैलाश पर्वत को उठा लिया (१३) रावण ने अपने दशों सिर काटकर शिव के ऊपर चढ़ा दिये। (१४) मैनाक् व हिमालय आदि पर्वत उड़ा करते थे। (१५) पृथिवी, समुद्र नदी, वृक्ष आदि (काव्य दृष्टि से नहीं साधारण दृष्टि से भी) परस्पर बातें करते थे– आदि अनेकों गप्पें तुलसी रामायण में मिलती हैं जिन्हें पढ़ने वाले मिथ्यावादी और महागप्पी ही बनेंगे।

मनोबल का ह्रास-

(१६) 'मानस' में भूत, प्रेत, डाकिनी–शाकिनी, मन्त्र, तन्त्र के वर्णन पढ़कर लोग महा कुसंस्कारी ही बनेंगे (१७) राष्ट्र की पीढ़ियाँ–मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि में फँसकर घोर अघोरी बनेंगी। (१८) रुण्ड–मुण्डमाला धारिणी, मांस शोणित–भक्षिणी, योगिनी, कालिका, चामुण्डा आदि के चरित्र पढ़कर लोग महा विरुद्धाचारी बनेंगे। (१९) छींक, स्वप्न, शकुन–अशकुन इत्यादि मानकर लोग दुर्बल हृदय एवं मनोबल शून्य ही बनेंगे।

खाद्याखाद्य का अविचार-

(२०) **शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा।।'**

इस चौपाई से सिद्ध है कि वैष्णवों का शाक्त और शैव होना प्रथम आवश्यक है। शैवमत का ही भेद शाक्त है और चामुण्डा, कालिका, काली आदि देवियाँ मनुष्य का माँस तक ग्रहण करती हैं। फिर उनके भक्त कैसे बच सकते हैं ? और बचते हैं तो वे पूर्ण शिवभक्त नहीं रहते!

ईश्वर का छल-

(२१) **'हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ बारे।।'** इस रूप में रावण वरदान प्राप्त करता है। ईश्वर मनुष्य का जन्म लेकर वरदान की मूल–भावना को ही नष्ट करके अपने छल का परिचय देता है। सत्यान्वेषी सज्जनो! यहाँ एक बात और स्पष्ट है कि जब नर के हाथ से रावण मरेगा यह सत्य है तो राम नर ही थे ईश्वर नहीं, और यदि राम ईश्वर थे तो यह सरासर धोखा है।

(२२) ऐसे ही धोखे से मधुकैटभ और हिरण्याक्ष मारा गया। क्या 'मानस' के पाठक इससे धोखेबाजी और छलादि ही नहीं सीखेंगे ?

व्यभिचार-

(२३) मोहिनी रूप से असुरों को धोखा दिया। (२४) 'छल कर टारेहु तासु व्रत०' में जलन्धर की स्त्री वृन्दा का सतीत्व नष्ट किया। (२५) ऐसे ही शंखचूड़ की स्त्री विचारी तुलसी ठगी गई। तुलसी के पतिव्रत को नष्ट करने की कथा से समाज को क्या शिक्षा मिलेगी ? देश की आशा रूप युवकों और छात्रों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

घोर अज्ञानता-

(२७) **'ग्रसइ राहु निज सन्धिहि पाई।'** चन्द्रमा को एक असुर राहु ग्रसता है। (२८) हरिण इसकी गोद में है। (२६) यह घटता और बढ़ता है। (३०) पृथ्वी की छाया से यह श्याम है, आदि अज्ञानी बच्चों की सी बाते हैं।

ज्ञान विरोधी-

(३१) इस पृथ्वी को नीचे से सांप, कछुआ और सूअर वगैरह पकड़े हुए हैं। (३२) सूर्य के रथ में घोड़े लगे हुए हैं। प्यारे भ्राताओ ! इन विज्ञान–विरोधी बातों को त्याग वेद की शरण में आओ।

सृष्टिक्रम-विरुद्ध-

(३३) विष्णु के पैर से गंगा, (३४) सूर्य से यमुना आदि नदियाँ निकलती हैं। (३५) हिमालय–विन्ध्याचल आदि पर्वतों के भी मनुष्यवत् विवाह, सन्तान आदि हुआ करते हैं। इन गप्पों पर भूगोल के छोटे–छोटे विद्यार्थी भी हँसेंगे। (३६) मेघनाद के कटे हुए हाथ ने सुलोचना को पत्री लिख दी। (३७) उसका आधा सिर हँसने लगा। (३८) अहल्या का पत्थर से पुनः स्त्री होना आदि सभी सृष्टिक्रम–विरुद्ध हैं।

लंका में राक्षसों की सृष्टि-

लंका में कोई त्रिमुख, कोई अमुख, कोई त्रिशिरा, कोई बहुशिरा अर्थात् मनुष्यों से सब ही विलक्षण थे। ये सब सृष्टिक्रम विरुद्ध कौतुक की बातें हैं।

चरित्र नाशक-

(३८) कलियुग में जप, तप, पूजा–पाठ कुछ न करके केवल नाम ही जपना (३६) घोर पापी का भी रामायण पठन–श्रवण मात्र से (बिना सदाचार की प्रवृत्ति के) उद्धार होना–इन मान्यताओं से पाप–प्रवृत्ति बढ़कर चरित्रनाश होता है। (४०) अजामिल आदि की कथायें चरित्र–निष्ठा को कमजोर करने वाली हैं।

नारी अपमान की भावना-

यह तुलसी रामायण के अनेक प्रसंगों में देखने को मिलती है। (४१) 'अवगुण अष्ट नारि उर रहहीं।' (४२) 'विधिहु न नारि हृदय गति पाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।।' आदि कई प्रसंग

है। समस्त सुख–समृद्धि और राष्ट्रगौरव की आधार नारी को इस प्रकार अपमानित करना पतन की पराकाष्ठा है।

सामाजिक असमानता-

(४३) जन्ममूलक जाति–पांति का समर्थन– 'पूजिय विप्र सकल गुणहीना। शूद्र न पूजिय वेद प्रवीना।।' में मिलता है। पता नहीं 'सकल गुणहीनां' होते हुए कोई ब्राह्मण कैसे और वेद प्रवीना होते हुए शूद्र कैसे मान लिया गया ? यह विषमता आर्य जाति की घोर दुरवस्था और राष्ट्रीय पतन का मूल कारण है।

बाल-विवाह-

(४४) आदि सामाजिक कुरीतियों का समर्थन ६ वर्ष की निरी बालिका सीता का विवाह करके किया है। यह 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी०' की अनर्गल उक्ति के प्रभाव को प्रकट करता है। (४५) विवाह के समय राम को भी १५ वर्ष का बताया है।

सिद्धान्त भ्रष्टता-

(४६) तुलसी एक स्थान पर 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' में वैदिक कर्मफलवाद को महत्व देते हैं तो दूसरे स्थान पर 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' कह बैठते हैं। (४७) एक स्थान पर 'बिनु पग चलै, सुनै बिना काना'–इस वैदिक सत्य को प्रस्तुत करते हैं तो तत्क्षण ही 'तब–तब धरि प्रभु मनुज शरीरा।' कहकर पूर्व कथन पर कलम फेर देते हैं। ऐसे सैकड़ों स्थल मानस में हैं। सबको खुश करने की झोंक में भ्रष्ट से भ्रष्ट विचार भी 'मानस' में मिलते हैं।

एक समय में दो ईश्वर-

'मानस के राम–परशुराम संवाद के घटनाक्रम में तो वाल्मीकि से अन्तर है ही, दोनों 'रामों' को एक समय में ही अवतार बनाकर खड़ा कर दिया गया है। मजा यह है कि दोनों अवतार एक दूसरे को पहचान भी नहीं पाते। कैसा बुद्धि और विवेक–शून्य प्रलाप है, यह सब।

वेद मार्ग का लोप-

(४६) राम पार्थिव अर्थात् मिट्टी की पूजा करते थे। (४७) राम ने समुद्र सेतु के ऊपर लिंग स्थापना की (वाल्मीकि रामायण में कहीं भी इसकी चर्चा तक नहीं है।) विचारशील सज्जनो! कुछ विचारिये तो कि क्या लिंग पूजा के समान जगत् में कोई घृणित पूजा है ? (४८) रामेश्वर महादेव पर गंगाजल चढ़ाने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। (४९) प्रणाम करती हुई सीता को गंगा आर्शीवाद देती है, आदि जड़ पूजा के प्रकरण हैं।

मिथ्या नाम माहात्म्य-

(५) परम पवित्र प्रणव (ओंकार) जाप जिसका कि विधान सभी सत् शास्त्रों में किया गया है और स्वयं राम भी जिस 'परम जप' को जपते थे, उसके स्थान पर 'राम सकल नामन ते अधिका' यह

वेद–विरुद्ध और मिथ्या कल्पना है। 'राम–राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं' अर्थात् जँभाई लेने में भी राम नाम मुख से निकलने पर सम्पूर्ण पापों का क्षय हो जाता है। ये सभी सस्ते नुस्खे सदाचार–निष्ठा को कमजोर करके पाप प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं।

महान् मनीषी पं० शिवशंकर जी कृत 'अलौकिक (गप्प) माला' के १०८ मनकों में से स्थानाभाव के कारण कुछ सारांश ही हमने यहाँ दिया है।

वेदादि सत् शास्त्रों के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा- 'रामचरितमानस' है।

शुद्ध इतिहास को धर्मग्रन्थ मान कर बड़ा अनर्थ हुआ है। सस्ते नुस्खे से मोक्ष का झब्बू लूटने वाले, इसके अखण्ड कीर्त्तन से पापों से नहीं, पापों के फल से साफ बच निकलने से प्रलोभित वेदादि सत् शास्त्रों के सुनने–पढ़ने का विचार तक भी मन में नहीं लाते। ज्यों–ज्यों तुलसी–रामायण का धर्म गन्थ के रूप में महत्त्व बढ़ा, त्यों त्यों वेदादि सत्य शास्त्रों को ताला लगा दिया गया। क्या यह घोर दुर्भाग्य नहीं है कि जिन वेदों को समस्त आर्यजाति अपौरुषेय और ईश्वरीय वाणी मानती है, उनका पठन–पाठन तो दूर वेद का नाम तक ६०–६५ फीसदी आर्यों (हिन्दुओं) को पता नहीं, उन्हें यह ज्ञान नहीं कि वेद कितने हैं और उनके नाम क्या हैं। मुसलमान के बच्चे २ को कलमा याद होगा पर ६५ फीसदी आर्यों (हिन्दुओं) को यहाँ तक कि करोड़ों ब्राह्मण नामधारी महानुभावों तक को गायत्री मन्त्र तक याद नहीं आता।

ऐसी जाति यदि सदैव लुटती–पिटती रहे तो आश्चर्य ही क्या ? पुण्यभूमि भारत को, प्यारी भारत माता को, छुआ–छात, जाति–पांति तथा अन्य अनेकों वेद विरुद्ध आचरणों से खण्ड–२ कराने वाले ये अखण्ड कीर्त्तनकार अब हवन (यज्ञ) भी वेद मन्त्रों की जगह रामायण की चौपाइयों से ही करने लगे हैं। शोक! महाशोक!! तुलसी रामायण को 'चारिहु वेद, पुराण अष्टदश, छहउ शास्त्र सब ग्रन्थन को रस' बताकर वेद प्रचार में जो बाधा पहुँचाई है, वह अवर्ण्य है। जब किसी हीनतर चीज से सब कुछ प्राप्ति की आशा कराके किसी को धोखे से सन्तुष्ट करा दिया जावे तब वह श्रेष्ठतर और तपस्या–साध्य वस्तु की प्राप्ति के लिए क्यों प्रयत्न और पुरुषार्थ करेगा ?

प्रश्न- तुलसी रामायण से जो इतना महान् अनर्थ हुआ या हो रहा है, क्या उसके लिये गोस्वामी तुलसीदास जी तनिक भी दोषी नहीं ?

उत्तर- तुलसी के काव्य–सौष्ठव की बात भिन्न है, जहाँ तक सिद्धान्त, नीति और आचार का प्रश्न है राष्ट्र के घोर पतन के लिये तुलसीदास जी को सर्वथा निर्दोष कैसे कहा जा सकता है ? हाँ, यह ठीक है कि इस दुराचार का अधिक दोष अन्ततः पुराणकर्त्ताओं को ही जाता है। पर तुलसीदासजी ने भी अपनी ओर से कम नमक–मिर्च नहीं मिलाया। वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध तो 'मानस' में अनेकों प्रसंग हैं ही अध्यात्म रामायण से भिन्न भी अनेकों मिथ्या और अनर्गल प्रसंग हैं। पुष्प वाटिका में राम–जानकी की भेंट, धनुष–भंग के बाद सभा में ही परशुराम का आगमन और लक्ष्मण का उपहास, व्यंग एवं आवेशपूर्ण अशिष्ट सम्वाद, बाल काण्ड में प्रतापभानु की कथा, नारद मोह, सीता मोह, शंकर कृत मदन–दहन, पार्वती विवाह आदि अनेकों महागप्पें स्वयं तुलसी की ही करामात हैं। पर यह मानना

होगा कि यह सब पौराणिक कुसंस्कारों या सामाजिक वातावरण के प्रभाववश ही हुआ। उनकी अपनी ओर से मिलावट भी उसी प्रभाव के कारण है। वे देश या समाज का अहित चाहते थे, ऐसी बात नहीं।

अन्त में हम गो० तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा के लिये अपना आदर भाव प्रकट करते हुए कहना चाहेंगे कि 'मानस' गप्पों का अद्भुत पिटारा है। इसे रामायण के स्थान पर 'गप्पायन' कहना अधिक समीचीन है। परमेश हमारे देशवासियों को सुबुद्धि दें जिससे हम 'रामचरित मानस' को सिर्फ काव्यग्रन्थ के रूप में देख सकें। यह धर्मग्रन्थ तो है ही नहीं, शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ भी यह नहीं है। हाँ काव्यग्रन्थ के रूप में 'मानस' का महत्त्व असंदिग्ध है।

कुछ विचारकों का कहना है कि तुलसीदासजी की मूल कृति में तो सिर्फ पाँच सौ चौपाइयां थीं। इसके प्रमाण रूप में वे 'सत पंच चौपाई मनोहर भाव से जो गावहीं' इन शब्दों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि तुलसीदासजी ने 'सत पंच' अर्थात् कुल पांच सौ चौपाइयाँ ही लिखी थीं, और सब कुछ पीछे की मिलावट है। इस प्रकार उनका कहना है कि अनेकों अनर्गल कथायें वस्तुतः तुलसीदास जी की लिखी नहीं हैं। जो भी हो इतना सुनिश्चित है कि 'मानस' में भी प्रक्षिप्तांश पर्याप्त है। मैनपुरी निवासी पण्डित सुखदेव लाल जी ने समस्त क्षेपकों तथा अन्य कृत मिलावट को निकाल कर 'केवल गो० तुलसीकृत' रामायण को बड़े परिश्रम से सिद्ध किया है। इसमें रामेश्वर शिवलिंग स्थापना का कोई संकेत तक नहीं है। अन्य अनेकों सृष्टिक्रम विरुद्ध कथानक भी नहीं हैं। पर उन टकापंथियों के लिए क्या कहा जाय जो अब भी 'रामाश्वमेध' या 'लवकुश' काण्ड आदि को मिलाकर 'मानस' को और भी दोषपूर्ण बनाने का पाप करते रहते हैं।

रामायण सूक्ति संग्रह

क्रोधविजय महान् पुरुषार्थ -

य समुत्पतितं क्रोधं क्षतसक्च निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णं स वै पुरुष उच्यते।।

— सुन्दरकाण्ड ५५।६

जो मनुष्य उठे हुए क्रोध को ऐसे निराकृत कर देता है– हटा देता है– छोड़ देता है जैसे सर्प कैंचुली को, वह पुरुष अर्थात पुरुषार्थी कहलाता है।

अति स्नेह (मोह) ठीक नहीं-

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रियजने।
अतिस्नेह परिष्वगाद् वर्तिरार्द्रापि दह्यते।।

— किष्किन्धा १।११८

लक्ष्मण राम को कहता है कि प्रियजन के वियुक्त हो जाने पर उसका स्नेह छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसका स्मरण करने से वियोग का दुःख शरीर को जला देता है। अतिस्नेह से गीली बत्ती भी जल जाती है। यहाँ अतिस्नेह को दोषरूप में बतलाया गया है।

सत्य की महिमा-

सत्यमीश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।
भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत तत्।।

— अयो० १०६ १३,२२

संसार में सत्य ही ईश्वर है, सत्य में धर्म सदा रहता है। सब सत्य के मूल पर स्थित हैं, परम सत्य से परे कोई पद नहीं है। सत्य से भूमि, कीर्ति, यश, लक्ष्मी ये वस्तुएँ मनुष्य को चाहती हैं। अतः सत्य का सेवन करना चाहिए।

दैवी विद्वानों की आयु-

रूपं बिभ्रति सौमित्रे पंचविंशतिवार्षिकम्।
एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा।।

— अर० १७।१८

राम कहते हैं—हे लक्ष्मण! दैवी बालब्रह्मचर्यपूर्ण विद्वानों का रूप और आयु सदा २५ वर्ष जैसा होता है।

प्रियवादी बहुत हैं पर हितकर कटुभाषी अल्प होते हैं-

सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

— युद्ध० १६।२१

संसार में प्रियवादी (खुशामदी) बहुत हैं, किन्तु हितकर कटु तथा सुनने में प्रतिकूल बोलने वाला तथा सुनने वाला दुर्लभ है।

संसार में संयोग-वियोग, हानि-लाभ, जीवन-मरण परस्पर प्रवाहित रहते हैं-

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छयाः।
संयोगा वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।।

— वा० रा० अयो० १०५।१६

समस्त सञ्चय (धनसञ्चय, अन्नसञ्चय आदि) अन्त में क्षीण होने वाले हैं एवं ऊँचे स्थान अन्त में गिरने वाले हैं। संयोग का अन्त में वियोग होना है और जीवन का अन्त में मरण भी होना ही है। गई रात फिर लौटती नहीं, समुद्र में गिरी नदी पीछे नहीं लौटती।

अत्येति रजनी या तु सा न प्रति निवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकाकुलम्।।

— अयो० १०५।१६

जो रात बीत जाती है वह पीछे नहीं लौटती। (गया वक्त फिर हाथ नहीं आता), नदी बहती हुई अन्त में जल से आकुलित पूर्ण समुद्र को प्राप्त हो जाती है। बन्धु–बान्धवादि संयोग अस्थिर ही है।

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यप्रेयातां कालमासाद्य कंचन।।
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः।।

— वा० रा० अयो० १०५।२६।२७

जैसे भिन्न–भिन्न स्थानों से बहती हुई लकड़ियाँ बड़े नद में इकट्ठी हो जाती हैं, पुनः कुछ काल पीछे अलग–अलग हो जाती हैं। इसी प्रकार स्त्री–पुत्र –बान्धव और धन मिलकर पुनः इनका वियोग हो जाना भी निश्चित है।

सभा के धर्म-

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः न ते वृद्धाः ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलनानुविद्धम्।।

— वा० रा० उ० ५६।३४

वह सभा सभा नहीं है जहाँ वृद्ध नहीं हैं, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म की बात नहीं कहते। वह धर्म, धर्म नहीं जिसमें सत्य नहीं, वह सत्य नहीं जो छल से युक्त हो।

उत्तम, मध्यम और अधम विचार के लक्षण-

ऐक्यमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम्।।
बह्वी रपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः।।

अन्यो न्यमतिमास्थाय यत्र सम्प्रति भाष्यते।
न चैकपत्ये श्रेयो स्ति मन्त्रः सो धम उच्यते।।

– वा० रा० युद्ध० ६।१२।१४

शास्त्र दृष्टि से एक मत होकर जहाँ विचारक विचार करते हैं, वह उत्तम विचार है। जहाँ विचारक बहुत मतियों को प्राप्त होकर पुनः एक मत निर्णय लेवें, वह मध्यम विचार है। एक दूसरे की मति को लेकर जहाँ विचारक बोलते हों परन्तु उस एक मत में कल्याण नहीं है वह विचार अधम है।

राजा के १४ दोष-

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्।।
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरिक्षणम्।।
मंगला स्याप्रयोगं च प्रत्युत्थान च सर्वतः।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषाञ्चतुर्दश।।

– वा० रा० अयो० १००।६५।६६

राम भरत से कहते हैं कि हे भरत! तू नास्तिकता, अनृत, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का अदर्शन, आलस्य, पाँच इन्द्रियों के वशीभूत होना, दूसरों के बिना अकेले विचार करना, अर्थ के न जानने वालों के साथ विचार, निश्चित का आरम्भ न करना, गुप्त विचार की रक्षा न करना, कल्याणकर वस्तु का प्रयोग न करना, सबको प्रत्युत्थान– इन चौदह दोषों को सेवन तो नहीं करता है ?

वाणी से हृदयगत- भाव का परिचय-

अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं च।
अन्तरेण स्वरैर्भिन्नेषु यं पश्यतां भृशम्।।

चाहे कोई कितना ही विद्वान हो, पर उसकी शक्ति से बाहर है कि वह बुद्धिमान के सामने अपने भावों तथा अपने अंदर के विचारों को प्रकट न होने दे और बातचीत करता रहे।

।। ओ३म् ।।

भ्रान्ति-निवारण

विजय दशमी और दीपावली के सम्बन्ध में

विजय दशमी और दीपावली जैसे प्राचीन आर्यपर्व भी पौराणिक हिन्दू सम्प्रदायों के कुप्रभावों से अन्य पर्वों की भाँति न बच सके और कालान्तर में उनका कुछ से कुछ रूप हो गया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने पर्वपद्धति आर्यजनों के पथप्रदर्शन के लिए निर्धारित और प्रकाशित की है। पद्धति के लेखक ने इसमें पद्धति के साथ–साथ इन पर्वों के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व पर भी प्रकाश डाला है। विजयदशमी पर इसमें जो ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उससे स्पष्ट है कि इस पर्व का रावण–वध से कोई सम्बन्ध नहीं है– जैसी कि वैष्णव सम्प्रदायों ने हिन्दुओं में भ्रान्ति आजकल फैला रखी है। इस अवसर पर खेले जाने वाले रामलीला नाटक और विजयदशमी के दिन रावण का पुतला बनाकर उसे जलाने से तो यह भ्रान्ति सर्वसाधारण में और भी बद्धमूल हो गई।

अभी एक लेख श्री बाबूलाल जी भूतपूर्व संचालक शिक्षा विभाग, मध्य भारत का 'टंकारा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उक्त विद्वान लेखक ने वाल्मीकीय रामायण का गहन अध्ययन किया है। उसी के आधार पर अनेक प्रमाण प्रस्तुत करके उन्होंने सिद्ध किया है कि विजयदशमी और दीपावली का रावणवध और रामाभिषेक से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। उसे ही यहाँ संक्षिप्त रूप में दिया जा रहा है!

राजा दशरथ ने चैत्र मास में राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया।

''चैत्रः श्रीमान्यं मासं पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम्।।''

– अ० श्लो० २५

अर्थात् शोभावाला चैत्र मास फूले हुए वनों वाला है। राम के यौवराज्य के लिए सब सामग्री इकट्ठी की जाय।

परन्तु कैकेयी के दुराग्रह के कारण राम को चौदह वर्ष के लिए वन जाना पड़ा। राम ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसी दिन वन जाने का निश्चय किया और पिता के आग्रह करने पर भी उन्होंने एक रात भी न रुकने के लिए क्षमा चाही (अयो० कां० सर्ग० ३८ श्लो०३३, ३८, ४०)। राम के वनगमन के पश्चात् भरत उनके पास चित्रकूट गये और अयोध्या लौटने का आग्रह किया। उसे अस्वीकार करने पर भरत ने राम से कहा कि चौदह वर्ष तक आपकी प्रतीक्षा करूँगा। चौदह वर्ष के

अन्तिम दिन समाप्त होने पर यदि आपको नहीं देखूँगा तो अग्नि में प्रवेश करके जीवित ही जल मरूँगा। राम ने इसे स्वीकार कर लिया। अयो० कां० सर्ग ११२ श्लोक १३–२६। वनवास के तेरहवें वर्ष की समाप्ति पर रावण ने सीता हरण किया और सीता को खोजते हुए राम की सुग्रीव, हनुमानादि से भेंट हुई। बालिवध और सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात् श्रावण से कार्तिक तक वर्षा ऋतु की समाप्ति की प्रतीक्षा की गई तत्पश्चात् हनुमान सीता की खोज करने लंका गये। किष्किन्धा कां० सर्ग१ श्लोक २२,५७,६१ से भी सिद्ध है कि सीता हरण हेमन्त ऋतु के अन्त में हुआ अथवा बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में ही हुआ।

सीता हरण के पश्चात् रावण ने सीता को अपनी कामवासना तृप्ति में बाधक पाया तो उसने कहा–हे मैथिली! मेरी बात सुन, बारह मास के समय में, हे सुन्दरी यदि तू मुझे नहीं चाहेगी तो मेरे रसोइये तुझे प्रातराश के लिए टुकड़े–टुकड़े कर देंगे। इस प्रकार बनवास के चौदहवें वर्ष में वर्षा की समाप्ति पर सीता की खोज प्रारम्भ हुई और हनुमान् जब सीता से लंका में मिले उस समय रावण द्वारा सीता को दी गई एक वर्ष की अवधि में दो मास शेष थे और दस मास व्यतीत हो चुके थे।

रावण ने सीता से कहा, जो समय मैंने तुझे दिया था उसमें अब केवल दो मास शेष हैं, उसके पश्चात् तुझे मेरी शैया पर सोना होगा। अन्यथा मेरे रसोइये तेरे टुकड़े–२ करके मेरा प्रातराश बना देंगे। सुन्दर कां० सर्ग २२, श्लोक ८–६। सीता ने हनुमान् से कहा कि राम से कहो कि शीघ्रता करें। जब तक यह वर्ष समाप्त नहीं होता मेरा जीवन है। यह दसवाँ मास चल रहा है। केवल दो मास शेष हैं– जो दुर्जन रावण ने मेरी अवधि नियत की है (सुन्दर कां० सर्ग ३७ श्लो०७।८)।

हनुमान् ने लंका से लौटकर यह सब वृत्तान्त राम को सुना दिया। राम ने कहा कि यदि सीता एक मास तक और जीवित रही तो वीरो! वह चिरकाल तक जीवित रहेगी (सुन्दर कां० सर्ग ६२ श्लोक १०)। तत्पश्चात् राम ने लंका पर आक्रमण किया और रावण से युद्ध किया। जब मेघनाद युद्ध में मारा गया तो रावण को बड़ा क्रोध आया और वह सीता को मारने के लिए उद्यत हो गया, परन्तु उसके मंत्री सुपार्श्व ने ऐसा न करने का परामर्श देते हुए उससे कहा–

अभ्युत्थानं त्वमेव कृष्णपक्ष चतुर्दशी।
कृत्वा निर्याह्यमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः।।
शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमस्थितः।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम्।।

– लंका कां० सर्ग ६२ श्लोक ६२–६३

अर्थात् आज कृष्णपक्ष की चतुदर्शी है, आज तैयारी करके कल अमावस्या में सेना सहित विजय हेतु चढ़ाई करके आप दशरथ–पुत्र राम को मारकर सीता को प्राप्त करलें। इससे स्पष्ट है कि रावण और राम का अन्तिम युद्ध अमावस्या को हुआ और रावण मारा गया।

युद्ध की समाप्ति पर विभीषण ने राम से प्रार्थना की कि आप कुछ दिन यहाँ ठहरें। किन्तु राम ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि भरत से मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि चौदह वर्ष समाप्त होने पर

अयोध्या लौट आऊँगा। अतः तुम पुष्पक विमान अभी मँगाओ। मैं रुक नहीं सकता और राम ने लक्ष्मण और सीता सहित अयोध्या को तुरन्त प्रस्थान किया। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है। राम का राज्याभिषेक न होकर वन–गमन चैत्र मास में हुआ था। अतएव चौदह वर्ष की समाप्ति इसी चैत्र मास में हो रही थी तथा भरत और राम दोनों की परस्पर प्रतिज्ञानुसार राम को इसी अवधि में ही अयोध्या लौटना था। इससे यह स्पष्ट है कि रावण–वध की अमावस्या चैत्र मास की ही थी, अन्य नहीं। विभीषण का उपर्युक्त आग्रह और राम द्वारा उसकी अस्वीकृति, इसकी सम्पुष्टि करते हैं कि चैत्र मास की समाप्ति को दृष्टि में रखते हुए, उन्होंने वायुयान द्वारा अयोध्या लौटने को शीघ्रता की।

इन सभी प्रमाणों से जो राम की अधिकृत जीवनी वाल्मीकि रामायण में है, यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि रावण–वध की तिथि विजयदशमी आश्विन मास की न होकर चैत्र की अमावस्या है। यह सिद्ध हो जाने पर कार्तिकीय दीपावली का राम के वन से लौटने अथवा राज्याभिषेक का दिवस मनाने का कोई आधार ही नहीं रहता। राम की समस्त जीवन गाथाओं का आधार वाल्मीकीय रामायण है। इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं हो सकता। तब अन्य ग्रन्थों की उसके विरुद्ध कल्पित गाथाओं और किंवदन्तियों का क्या मूल्य ?

परन्तु यह सब होते हुए भी दुःख इस बात का है कि कुछ आर्य लेखक भी इन पौराणिक मिथ्या ग्रन्थों के आधार पर अब भी विजय दशमी को ही रावण–वध की तिथि मान रहे हैं और 'हरिभक्त–विलास' जैसे कल्पित ग्रन्थों पर विश्वास करके उसके प्रमाण अपनी सम्पुष्टि में देते हैं।

वाल्मीकीय रामायण से इस विजयदशमी की राम से पूर्व परम्परा का एक अन्य प्रमाण मिलता है जिसे सभी विचारवान् स्वीकार करते हैं। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर राम ने लक्ष्मण को सीता की खोज के लिए सुग्रीव को प्रेरित करने पम्पापुर भेजते हुए कहा–

अन्योन्यबद्ध वैराणां जिगीषूणां नृपात्मज।
उद्योग-समयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः।।

– किष्किन्धा का० सर्ग ३६।६०

अर्थात् हे नृपात्मज! परस्पर वैरबद्ध जय के अभिलाषी राजाओं के उद्योग का समय उपस्थित हुआ है।

श्री 'मीर' जी ने अपनी दशहरा नामक कविता में लिखा है–

था यही दिन जब यहाँ श्रीराम ने दल साजकर।
गिरि प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लंका राज पर।।

इससे यह सिद्ध होता है कि परस्पर वैरबद्ध राजा विजयदशमी के दिन युद्ध के लिए यात्रा करते थे और यह पर्व क्षत्रियों द्वारा इस रूप में मनाया जाता था।

इसी प्रकार दीपावली को शारदीय नवसस्येष्टि यज्ञ के अतिरिक्त वैश्य वर्ग द्वारा व्यापार के लिए विदेश गमन हो सकता है। विजयदशमी को निरीह पशुओं की लाखों की संख्या में देवी–देवताओं पर बलि और दीपावली की रात्रि लक्ष्मी आदि की मूर्तिपूजा और जुआ खेलने की प्रथा पौराणिक ग्रन्थों की देन हैं। (ले० श्री पं० राजेन्द्रजी, 'सार्वदेशिक' से साभार)

क्या राम सामन्तशाही के पोषक थे ?

आधुनिक इतिहास के पाश्चात्य विद्वान् और उनके अन्धानुवर्ती भारतीय विद्वान् भी प्रायः इस विषय में एक मत है कि आर्य लोग बाहर से आये थे और उन्होंने भारतवर्ष में आकर यहाँ के आदिवासी गौड़, भील आदि पिछड़े हुए वर्गों का राज्य हडपकर अपने राज्य में मिला लिया है। इस विचार का खण्डन महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सप्रमाण सयौक्तिक अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में यथास्थान किया है। हम जब भारतीय इतिहास ग्रन्थों को पढते हैं तो उक्त विचार नितान्त भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। यह हमारे स्वर्णिम इतिहास को मिटाने की साजिश है। महाकवि 'प्रसाद' जी ने ठीक ही लिखा है–

जगे हम, लगे जगाने लोक, लोक में फिर फैला आलोक।
हमारी जन्मभूमि है यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं।।

तब विचारणीय यह है कि इस भ्रान्ति का मूल कारण क्या है ?

हमारे देश में लगभग १००० वर्ष तक विदेशियों का राज्य रहा है, अन्त में अँग्रेजों ने जो बड़े कूटनीतिज्ञ थे, 'भेद डालो और शासन करो' की नीति का आश्रय लेकर हमारे देश के इतिहास का निर्माण किया, जिसे पढ़ कर यहाँ के बड़े–२ विद्वान भी इस भ्रम में आ गये। फलतः अँग्रेज लेखकों के इतिहास ग्रन्थ अनेक भूलों से भरपूर हैं। आज जबकि भारत संसार के मानचित्र में एक स्वतन्त्र देश है, यह आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक भारतीय इस रहस्य से अवगत हो कि क्या कभी प्राचीन काल में भारत के निवासियों ने साम्राज्यवाद का बीज बोया था ? इस प्रश्न के उत्तर में हम बलपूर्वक यह कहने को उद्यत हैं कि आर्य पूर्वजों ने ही नहीं बल्कि उनकी सन्तति ने भी कभी भी दूसरों पर आक्रमण करके अपना राज्य बलपूर्वक स्थापित नहीं किया। प्रमाण के लिए हम जब अपने इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारे यहाँ सबसे बड़े युद्ध दो हुए हैं– एक का नाम है 'राम और रावण का युद्ध' और दूसरा है 'कौरव–पाण्डवों का युद्ध।' ये दोनों ही उपरोक्त शंका का निवारण करने में सक्षम हैं। यहाँ हम सिर्फ रामायण के आधार पर विचार करेंगे।

जिस समय ऋष्यमूक पर्वत पर महाराज राम ने बाली–वध किया जो किष्किन्धापुरी का राजा था, उस समय बाली ने मरते समय श्रीरामचन्द्रजी से बड़े उपालम्भ के साथ जोरदार शब्दों में कहा कि 'मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा।।' इसका उत्तर महाराज रामचन्द्रजी कितना युक्तियुक्त देते हैं कि–

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुन सठ ये कन्या सम चारी।।
इन्हें कुदृष्टि विलोकत जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई।।

इस उत्तर से आपको भली प्रकार विदित हो गया होगा कि सूर्यकुल–कमल–दिवाकर आर्य शिरोमणि भगवान् राम का उद्देश्य बाली वध कर साम्राज्य बढ़ाना न था, वरन् इस भूमि पर से

अनाचार, अत्याचार करने वाली शक्ति का नाश करना था जैसा कि आगे व्यवहार से भी सिद्ध होता है कि बाली–वध के पश्चात् राज्य में बाली–पुत्र अंगद को जो उस समय बालक था, उसे युवराज और उसके भाई सुग्रीव को जो अत्यन्त धर्म–परायण व्यक्ति था राज्याभिषेक कर राजा बना दिया। इसी प्रकार रावण जो लंकापति था और वेदशास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित था किन्तु जनता पर अन्याय अत्याचार से राज्य करता था, न्यायप्रिय रघुकुलभूषण श्रीराम ने उसे मारकर उसका राज्य उसके धर्मात्मा भाई विभीषण को देकर उसे लंकापति, लंका निवासियों की सम्मति से बना दिया। पाठक इस स्थान पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें कि उक्त दोनों राज्यों में भगवान् राम का क्या अधिकार रहा ? हाँ, उन्होंने सांस्कृतिक साम्राज्य या धर्म साम्राज्य की स्थापना अवश्य की, जिसका लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार का लाभ तद्देशीय जनता को ही मिला।

जब हम अन्य ग्रन्थों में राम के वंशजों की दिग्विजय का वृत्तान्त पढ़ते हैं तो वहाँ भी इसी तथ्य को पाते हैं। उदाहरणार्थ इक्ष्वाकुवंशीय महाराज रघु को जब देश–देशान्तर से समाचार प्राप्त होते हैं कि शासकवर्ग अपने मार्ग से विचलित होता जा रहा है तब उन्होंने दिग्विजयार्थ फारस, काम्बोज (काबुल), सुह्मदेश, कालिगं, पांडुदेश आदि अनेक देशों की यात्रा की और 'उत्सारा प्रतिरोपितः' की नीति के अनुसार वहाँ के अन्यायी, अत्याचारी राजाओं को पदच्युत कर उनके ही वंशज धर्मात्मा व्यक्तियों को पुनः राज्यारूढ़ कर दिया, किन्तु स्वयं किसी राज्य पर अधिकार नहीं जमाया। देखो, कालिदास कृत रघुवंश चतुर्थ व पञ्चम सर्ग तथा अन्य इतिहास ग्रन्थ। भारतवर्ष के बड़े भारी महात्मा ऋषि अगस्त्यजी ने कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बोर्निया में जाकर वहाँ के पथ–भ्रष्ट लोगों को वैदिक मार्ग दिखाकर आदर्श चरित्र बनाया। ये अगस्त्य काशी के निवासी विद्वान महात्मा थे। इन्होंने उपनिवेश तक बसाये थे, और वर्हिद्वीप (बोर्नियो), कुशद्वीप, साँख्यद्वीप तक की यात्रा की थी। तात्पर्य यह है कि भारतनिवासी प्राचीन आर्य साम्राज्यवाद के सदा विरोधी रहे। स्पष्ट है कि श्रीराम और उनके पूर्वज सभी आर्य राजाओं ने वेदानुकूल राज्यशासन चलाने वाले किसी भी छोटे या बड़े राज्य पर आक्रमण कर उसे कदापि नष्ट नहीं किया।

इस राष्ट्र-द्रोह से बचिये !

हाँ, राम को, मानव कुलभूषण, मूर्तिमान क्षात्र धर्म– राम को, राष्ट्रपुरुष राम को ईश्वर बताना राष्ट्रद्रोह है। राम को ईश्वरावतार कहना जहाँ सिद्धान्ततः गलत है वहीं राम को काल्पनिक या अनैतिहासिक बताने की पृष्ठभूमि तैयार कर भारत के उज्ज्वल अतीत को मिटाने जैसा घोर पाप भी है।

हमारे बन्धु! हो सकता है कि हमारे ये शब्द आपको रुचिकर न लगें पर 'कड़वी भेषज के बिना मिटे न तन की पीर' के अनुसार इस कड़वी पर अत्यन्त हितकर औषध को आपको सेवन करना ही होगा। हमारे धर्मबन्धु झाँझ पीटने की मस्ती में शायद आपको यह विचार नहीं हो पाता कि अपने

ऐतिहासिक महान् आदर्शों को खोने या अपने ही हाथों मिटाने का दुष्फल यह है कि आज हमारे अपने घरों मे विदेशी आदर्श स्थान पा रहे हैं। 'मम्मी और डैडी' के स्वर हमारे घरों में सुनाई पड रहे हैं, हमारे बच्चों को हिन्दी में पत्र व्यवहार करना लज्जाजनक लगता है। हमारे निमंत्रण–पत्र अँग्रेजी में छपते हैं। गौ माँस–भक्षण और अण्डे खाने के लिये दलीलें दी जाती हैं। यह सब क्या है ? विदेशी सभ्यताओं के योजनाबद्ध हमले आज हमारी संस्कृति पर हो रहे हैं। क्या इस आत्मपतन को प्रश्रय देना, आधार–भूमि देना राष्ट्र–द्रोह नहीं है ?

राम हमारे पूर्वज नहीं थे, या फिर राम एक दुर्दान्त शासक थे, सामन्तशाही के पोषक ! सीता को वनवास देने वाले ह्रदयहीन, अन्यायी और निरंकुश शासक!! आदि आदि अनर्गल मान्यतायें पश्चिम की 'डालडा संस्कृति' के माध्यम से मेरे राष्ट्र की नई पीढ़ी के मस्तिष्क में स्थान पा रही हैं। क्या इन सदोष और भ्रान्त मान्यताओं को जन्म लेने और पनपने का अवसर देना राष्ट्र–द्रोह नहीं है ?

भारत की मिट्टी में आक्रान्ताओं के लिये मार्ग प्रशस्त करने वाले कम्यूनिस्ट, विदेशी ईसाई पादरी और मुस्लिम लीगी तत्व बढ़ रहे हैं। सावधान! राम का जय घोष करने वालो! चढ़ाओ प्रत्यञ्चा, राम वालो! मत भूलो राष्ट्र को, राष्ट्र वालो! मत भूलो राम को। संस्कृति और राष्ट्रीयता अभिन्न हैं। धर्म और राजनीति अलग–२ नहीं। सदाचार ही सर्वोतम पूजापाठ है। स्वधर्म और राष्ट्रधर्म का समन्वय– यह वर्णाश्रम धर्म ही वैदिक धर्म है, भोग और त्याग का समन्वय, श्रद्धा और विवेक, लोक और परलोक, शरीर और आत्मा का समन्वय ही कल्याण–तीर्थ है।

आवश्यकता है, समय की माँग है कि राम के भक्त भी राम की भाँति ही 'ओं राष्ट्राय स्वाहा–इदं राष्ट्राय–इदम् न मम' का पाठ पढ़ते हुए व्यष्टि को समष्टि के चरणों में अर्पित करके सच्चे याज्ञिक (वैदिक समाजवादी) बन सकें और आत्मद्रोह–जन्य अशान्ति की लपटों से झुलसे जा रहे विश्व को वैदिक संस्कृति का पावन पीयूष पिला सकें। फिर एक बार धरा–धाम राम के जय–जयकार से गूंज उठे। यह थी देव दयानन्द की कामना!

बरसूँ जगत् में जलद सा जीवन करूँ सबका हरा।
फूलें-फलें हिल-मिल रहें बन स्वर्ग जाये यह धरा।।
यह कामना पूरी करूँ, हे ईश यह वरदान दो।
जग को बना दूँ मैं सुखी ऐसा मुझे सद्ज्ञान दो।।

–ऐसी थी देव दयानन्द की भावनामयी प्रार्थना और इसके अनुरूप ही थी उनकी संघर्षमयी जीवन–साधना।

प्यारे बन्धु, कृतघ्न न बनो। देव दयानन्द के उपकार को स्वीकारो, आर्यसमाज के ऋण को समझो, उसके दर्दे दिल को पहचानो और समय रहते श्रीराम को ईश्वर नहीं, वरन् अपना पूर्वज, अपना आदर्श महापुरुष, अपना सांस्कृतिक ज्योति–स्तम्भ घोषित करके राष्ट्रद्रोह के भीषण पाप से बचो और अपने मिटते हुए गौरवमय इतिहास को बचाओ।

राम राज्य !

'भारत में मैं राम–राज्य लाऊँगा'– कभी हमारे प्यारे बापू ने कहा था। रामराज्य अर्थात् धर्म सापेक्ष राज्य, धर्म निरपेक्ष नहीं (हाँ सम्प्रदाय निरपेक्षता भिन्न चीज है।) राम राज्य का अर्थ है, न सिर्फ स्वराज्य किन्तु सुराज्य भी ● । हमारे राष्ट्रपिता गाँधी को राम–राज्य क्यों प्रिय था ? आइये, महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में देखिये–

प्रहृष्टमुदितो लोकः, तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो रोगश्च दुर्भिक्ष-भयवर्जितः।।

अर्थात्– राम–राज्य में सारी प्रजा हृष्ट–पुष्ट–तुष्ट और धार्मिक थी। किसी को भी रोग तथा दुर्भिक्ष का भय नहीं था।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचिद्।
द्रष्टुमशक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न चाधार्मिकः।।

अर्थात्– कामी, कृपण, क्रूर तथा मूर्ख और अधार्मिक जन अयोध्या में देखने को भी नहीं थे। और सुनिये–

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धाः बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते।।

अर्थात्–प्रजा में डाकुओं का भय नहीं था। किसी को अहितकर विषय छुआ भी नहीं था। बूढ़ों के समक्ष उनके लड़कों की मृत्यु नहीं होती थी। क्या इससे भी सुन्दर राज्य की चर्चा की जा सकती है ? तभी तो मुनि लिखते हैं–

नित्यमूलाः नित्यफलाः तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च भासते।।
स्वकर्मसु प्रवर्त्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।
आसन् प्रजाःधर्मपराः रामे शासति नानृताः।।

राम के शासन में वृक्ष नित्य मूल वाले सदा फलों–फूलों वाले थे। इच्छानुसार बादल बरसता था, वायु सुखदायी स्पर्श वाला भासता था। सारे प्रजाजन अपने–अपने कार्यों से सन्तुष्ट होकर उनमें लगे रहते थे। प्रजाएँ धर्म–परायण थीं, कोई मिथ्या भाषी नहीं थे।

● **रामायण में 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग भी आता है। 'धर्मोपदेशान्त्यजतः स्वराज्यं मां चाप्यरण्यं नयतः पदातिम्।'**
भरत कहता है कि धर्म के कारण स्वराज्य छोड़ते हुए और जंगल में पैदल चलते हुए राम को दुःख नहीं, ऐसा राम है, इत्यादि (वा० रा० सु० ३६।२६)। यहाँ उक्त वचन में स्वराज्य शब्द आया है।

अब राम–राज्य की महिमा सन्त तुलसीदास के शब्दों में सुनें–

वरनाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिनीती।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न हीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।
सब निर्दम्भ धर्म रत मुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुणज्ञ पण्डित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर-नारी।।
एक नारि व्रत-रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज।।

अर्थात्– श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वाली की नृत्यसभा में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनाई पड़ता है। (राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर–डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद–ये चार उपाय किये जाते हैं। राम–राज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिये 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसी को नहीं होता, 'दण्ड' शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिये ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेद–नीति की आवश्यकता ही नहीं रह गयी, 'भेद' शब्द केवल सुर–ताल के भेद के लिए ही प्रयोग में आता है।)

अपनी इन विशेषताओं के कारण 'राम–राज्य' का अर्थ ही एक आदर्श प्रजा–हितकारी राज्य हो गया है। आम बोल–चाल में किसी जगह के अच्छे आचार–व्यवहार और सुख–सम्पन्न स्थिति का विचार करके मुख पर मुस्कान् बिखेरते हुए हमने अपने बड़े–बूढ़ों को कहते सुना होगा– अजी वहाँ तो 'राम के राज' हैं। धन्य थे राम और धन्य था 'राम–राज्य'। प्रत्येक ३० जनवरी को गाँधीजी का 'श्रद्धांजलि दिवस' मनाते हुए क्या हम वैदिक आचार–व्यवहार से युक्त उस रामराज्य को एक बार भारत की महिमामयी पुण्यभूमि पर लाने के लिये व्रतनिष्ठ होंगे ? प्रभु हमें अपेक्षित आत्म–बल दें।

–'प्रेमभिक्षुः'

पवित्र रामचरित्र

(महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा)

सुत हीन, दीन, अवधेश घना घबराया, गुरु से सदुपाय विषाद सुना कर पाया।
शृंगी ऋषि वरद बुलाय सुयाग रचाया, खाकर हवि–शेष सगर्भ हुईं नृप–जाया।
मख–महिमा यों सब ओर सुबुध विस्तारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१

धन कौशल्या, सुख–सदन राम जनमाये, केकय–तनया ने भरत भागवत जाये।
सौमित्र सहोदर लखन अरिघ्न कहाये, सुत वेद–चतुष्टय–रूप नृपति ने पाये।
उपजें इस भाँति सुपुत्र मिले फल चारों, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२

प्रकटे अवनीश–कुमार मनोहर चारों, करते मिल बाल–विनोद बन्धु–वर चारों।
गुरुकुल में रहे समोद धर्मधर चारों, पढ़ वेद बोध–बल पाय बसे घर चारों।
इमि ब्रह्मचर्य–व्रत धार विवेक पसारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३

रघुराज–रजायुस पाय बाण–धनु धारे, मुनि साथ राम अभिराम सबन्धु सिधारे।
गुरु कौशिक से गुण सीख सामरिक सारे, मख मंगल–मूल रखाय असुर संहारे।
ऋषि–रक्षक यों बन वीर दुष्ट–दल मारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४

मुनि गाधि–पुत्र भट श्याम गौर बल–धारी, पहुँचे मिथिलापुर राज विभूति निहारी।
शिव–धनुष राम ने तोड़ पाय यश भारी, व्याही विधि सहित समोद विदेह–कुमारी।
करिये इस भाँति विवाह कुलीन परिवारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५

अब लखन, जानकी, राम अवध में आये, घर–घर बाजे सुखमूल, विनोद–बधाये।
हित, प्रेम, राज–कुल और प्रजा पर छाये, सबने दिन वैर–विरोध बिसार बिताये।
इस भाँति रहो कर मेल भले परिवारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।६
नृप ने सुख का सब ठौर विलोक बसेरा, कर जोड़ कहा यह ईश सुयश है तेरा।
अब राम बने युवराज भरे मन मेरा, रवि–वंश दिपे कर अस्त अधर्म–अँधेरा।
सुत सज्जन का इस भाँति सुभद्र विचारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।७

अभिषेक–कथा सुन मित्र, अमित्र उदासी, उलसी मिल सबकी चाह कल्पलतिका–सी।
वर केकय–तनया माँग उठी कुदशा–सी, युवराज भरत हो राम बने वन–बासी।
कर यों कुनारि पर प्यार न जीवन हारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।८

सुन देख, कराल कठोर कुहाव–कहानी, वरजी परिणाम सुझाय न समझी रानी।
जब मरण–काल की व्याधि स्वपति ने जानी, उमडा तब शोक–समुद्र बहा वरदानी।
वर नारि अनेक न उग्र अनीति उघारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।९

सुधि पाकर पहुँचे राम–दर्शन को, सकुचे पग पूज कुदृश्य न भाया मन को।
सुन वचन पिता के मान धर्म पालन को, कर जोड़ कहा अब तात! चला मैं वन को।
पितुपायक यों बन धाम धरा–धन वारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१०

मिल कर जननी से माँग असीस–विदाई, हठ जनक–सुता की भक्ति–भरी मन भाई।
सुन लक्ष्मण का प्रण–पाठ कहा चल भाई, घर तजकर सानुज सुखी चले रघुराई।
निज नारि–सती,प्रिय–बन्धु न वीर बिसारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।११

पहुँचे पुनि पितु के पास अवध के प्यारे, झट भूषण–वस्त्र उतार साधु–पट धारे।
सबसे मिल–भेट सु–भोग विलास विसारे, रथ पै चढ़ वन की ओर सशस्त्र सिधारे।
बन कर्मवीर इस भाँति स्वभाव सँवारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१२

तमसा तक पहुँचे लोग प्रेम–रस–पागे, तट पै बिन चेत प्रसुप्त पड़े सब त्यागे।
सिय राम, सचिव, सौमित्र चल दिये आगे, उठ भोर गये घर लौट अधीर अभागे।
मन को इस भाँति वियोग–उदधि से तारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१३

रथ श्रृंगवेरपुर तीर वीर–वर लाये, गुह ने मिल भेंट समोद उतार टिकाये।
सबने वह रात बिताय न्हाय फल खाये, रघुनायक ने समुझाय सचिव लौटाये।
सुजनों पर यों अनुराग–विभूति बगारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१४

सुर–सरिता–तीर नवीन विरक्त पधारे, पग धोय धनुक ने पार तुरन्त उतारे।
पहुँचे प्रयाग व्रत–शील स्वदेश–दुलारे, मुनि–मण्डल ने हित–प्रेम पसार निहारे।
इस भाँति अतिथि को पूज सदय सत्कारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१५
गुरु भरद्वाज ने सुगम गैल बतलाई, यमुना को उतरे सहित सीय दोऊ भाई।
निशि वाल्मीकि मुनि निकट सहर्ष बिताई, चढ़ चित्रकूट पै विरम रहे रघुराई।
इस भाँति सहो सब कष्ट दयालु उदारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१६

वन से न फिरे रघुनाथ न लक्ष्मण सीता, पहुँचा सुमंत्र नृप तीर धीर धर जीता।
बिलखे नर–नारि निहार खड़ा रथ रीता, दशरथ का जीवन–काल राम बिन बीता।
मरना इस भाँति न ज्ञान गमाय गमारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारे।।१७

गुरु ने परिताप–अँगार अनेक बुझाये, सुधि भेज भरत शत्रुघ्न तुरन्त बुलाये।
नृप का शव–दाह कराय सुधी समुझाये, पर वे परपद का लोभ न मन में लाये।
बस अनधिकार की ओर न वीर निहारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१८

घर घोर अमंगलमूल अनीति निहारी, समझी अवनति का हेतु सगी महतारी।

सकुचे रघुपति की गैल चले प्रण धारी, लग लिया भरत के साथ दुखी दल भारी।
धर पकड़ वैर की फूट फोड़ फटकारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।१६

मिल भेट लिया गुह साथ प्रयाग अन्हाये, चढ़ चित्रकूट पर प्रेम–प्रवाह बहाये।
प्रभु पाहि नाम कर दण्ड प्रणाम सुनाये, झपटे सुन राम उठाय कण्ठ लिपटाये।
इस भाँति मिलो कुल–धर्म अशोक–कुठारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२०

सबने मिल भेंट समिष्ट प्रसंग बखाना, सुन मरण पिता का राम कुढ़े दुख माना।
पर ठीक न समझा लौट नगर को जाना, जड़ भरत पादुका पाय फिरे प्रण ठाना।
व्रत–जल से विधि के पैर सुपुत्र पखारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२१

कर जोड़–जोड़ कर यत्न अनेक मनाये, पर डिगे न प्रण से राम महाचल पाये।
हिय हार–हार नर–नारि अवध में आये, बिन बन्धु भरत ने दीन–बन्धु अपनाये।
प्रतिनिधि बन औरों की न धरोहर मारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२२

परिवार, प्रजा, कुल से न कभी मुख मोड़ा, मनु हायन–भर को नेह विपिन से जोड़ा।
नटखट वायस का अक्ष मार शर फोड़ा, गिरि चित्रकूट बहु काल बिता कर छोड़ा।
विचरो सब देश–विदेश विचार प्रचारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२३

अब दण्डक वन का दिव्य दृश्य मन भाया, वध कर विराध को गाढ़ कुयोग मिटाया।
मुनि मण्डल को पग पूज–पूज अपनाया, फिर पंचवटी पर जाय बसे सुख पाया।
समझो समाज के काज कृपा कर सारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२४
तरु–फूल फले छवि राम कुटी पर छाई, धर सूर्पनखा वर वेष अचानक आई।
कुलबोर मनोरथ सिद्ध नहीं कर पाई, कर लक्ष्मण ने श्रुति नाक विहीन हटाई।
इमि एक नारि–व्रतशील रहो जड़–जारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२५

नकटी खर–दूषण सेन चढ़ा कर लाई, रघुपति ने सब को मार काट जय पाई।
फिर रावण को करतूति समस्त सुनाई, सुन मान बहन की बात चला झट भाई।
धिक् नाक कटाय न ठौर–ठौर झख मारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२६

चढ़ पंचवटी पर दुष्ट दशानन आया, मिल कर मारीच कुरंग बना रच माया।
सिय ने पिय को पशु बध्य विचित्र बताया, झट राम उठे शर–लक्ष्य पिशाच बनाया।
छल–मैल हटा कर न्याय सुनीर निथारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२७

मृग भाग चला विकराल विपति ने घेरा, रघुनायक ने खल खेल खिलाय खदेरा।
शर खाय मरा इस भाँति पुकार घनेरा, चल, दौड़ सुहृद सौमित्र दुःख हर मेरा।
जमता न कपट का रंग सदैव लबारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२८

सुन घोर अमंगल नाद दुष्ट सम्मति का, सिय ने समझा वह बोल प्रतापी पति का।
उस ओर लखन को भेज तोख दे अति का, रह गई कुटी पर खोल द्वार दुर्गति का।

भ्रम–भेद भूल भय, शोक लुकें ललकारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।२९

मुनि बन पहुँचा लंकेश कुशील पुकारा, यति जनक–सुता ने जान असुर सत्कारा।
पकड़ी ठग ने निज मींच अमंगल –धारा, हित कर कुलटा का वज्र सती पर मारा।
अधमाधम को सब साधु अधिक धिक्कारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३०

हर जनक सुता को मूढ महाधम लाया, मग में प्रचण्ड रण–रोप जटायु गिराया।
चढ़ व्योम–यान पर नीच निरंकुश आया, रखली घर पाप कमाय हाय पर–जाया।
मत चोर बनो कुलबोर बलिष्ठ बिजारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३१

मृग–रूप निशाचर मार फिरे रघुराई, अधबर में बन्धु विलोक विकलता छाई।
मिल कर आश्रम को लौट गये दोऊ भाई, पर जनकनन्दिनी हा न कुटी पर पाई।
ध्रुव धर्मधुरन्धर धीर अनिष्ट सहारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३२

अति व्याकुल सानुज राम विरह के मारे, सब ओर फिरे सब ठौर अधीर पुकारे।
गिरि, गह्वर, कानन, कुंज, कछार निहारे, पर मिला न सिय का खोज खोज कर हारे।
इस भाँति वियोग–समुद्र सराग मझारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३३
कढ़ गई किधर को लाँघ धनुष की रेखा, इस भाँति किया अनुराग पसार परेखा।
मग में फिर घायल अंग गृद्ध–पति देखा, मर गया सुना कर सीय–हरण का लेखा।
उपकार करो कर कोटि उपाय उदारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३४

सुन रावण की करतूति जटायु जलाया, निरखे वन मार कबन्ध वसन्त न भाया।
फिर शबरी के फल खाय महेश मनाया, टिक पम्पापुर पर ऋष्यमूक पुनि पाया।
कर पौरुष मानव–धर्म स्वरूप निखारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३५

रघुनाथ लखन को देख कीश घबराये, समझे विधि क्या भेंट बालि प्रबल के आये।
बन विप्र मिले हनुमान पीठ धर लाये, नर वानर–पति ने पूज सुमित्र बनाये।
कर मेल पियो इस भाँति प्रेम–रस प्यारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३६

रघुनायक ने निज वृत्त समस्त बखाना, सुन कर हरीश का हाल घना दुख माना।
शुभ समझ बन्धु से बन्धु सभेद लड़ाना, प्रण बालि–निधन का ठोस ठसक से ठाना।
दृढ़ टेक टिका कर सत्य वचन उच्चारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३७

शर मार मही पर हाड़ ताड़, तरु, डाले, फिर कहा विजय सुग्रीव, बालि पर पाले।
ललकार लड़े हरि–बन्धु कुभाव निकाले, लुक रहे विटप की ओट राम रखवाले।
दबको, करिये पर काज न खाँस–मठारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३८

समझे जब राम सुकण्ठ समर में हारा, तब तुरत बालि बलवान मार शर मारा।
फिर अंगद को अपनाय मना कर तारा, कर दिया सखा कपिराज मिटा दुख सारा।
ढकलो अति गूढ़ महत्व प्रमाण–पिटारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।३९

अभिषेक हुआ सुख–साज समगंल साजे, अभिनन्दन–सूचक शंख, ढोल, ढप बाजे।
उमगी बरसात खगोल घेर घन गाजे, पर्वत पर विरही राम सबन्धु विराजे।
तज कपट सुमित्रादर्श बनो सब यारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४०

सुख रहित राम ने गीत विरह के गाये, बरसात गई दिन शुद्ध शरद के आये।
कपिनायक ने भट कीश, भालु बुलवाये, सिय की सुधि को सब और बरूथ पठाये।
करिये प्रिय प्रत्युपकार सुचरितागारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४१

रघुपति ने सिय के चिह्न विशेष बताये, मुदरी लेकर हनुमान ससैन सिधाये।
निरखे–परखे सब देश सिन्धु–तट आये, पर लगी न कुछ भी थाँग थके अकुलाये।
तजिये न अनुष्ठित कर्म सुकृत आधारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४२

सब कहैं मरे प्रभु–काज नहीं कर पाया, सुन कर उमगा सम्पाति पता बतलाया।
उछला जलनिधि को लाँघ प्रभज्जन–जाया, रिपु–गढ़ में किया प्रवेश क्षुद्र कर काया।
फल मान असम्भव का न प्रवीण बिचारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४३

सिय का उपताप घटाय दूर कर शंका, कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय विजय का डंका।
बँध गया, छुटा, खुल खेल जला कर लंका, चल दिया शिरोमणि पाय बीरवर बंका।
कर स्वामि–काज इस भाँति कूद–किलकारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४४

कर काज मिला हनुमान भालु कपि ऊले, पहुँचे सुकण्ठपुर पेड़–पेड़ पर झूले।
प्रभु को सब हाल सुनाय खाय फल फूले, मणि जनक–सुता की देख राम सुधि भूले।
कर विनय प्रेम–प्रासाद विनीत बुहारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४५

रघुवर ने सिय की थाँग सुनिश्चित पाई, करदी रिपु–गढ़ की ओर तुरन्त चढ़ाई।
कपि–भालु–चमू प्रभु–साथ असंख्य सिधाई, अविराम चली झट–भीड़ सिन्धु–तट आई।
अनघा घन को कर यत्न अनेक उबारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४६

हठ पकड़ रहा लंकेश सुमंत्र न माना, चल दिया विभीषण बन्धु काल–वश जाना।
समझा रघुपति के पास पुनीत ठिकाना, मिल गया कटक में दास कहाय बिराना।
बस यों सिर से भय–भार न भीरु उतारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४७

पुल बाँध जलधि का पार गये दल सारे, उतरे सुबेल पर राम सबन्धु सुखारे।
पहुँचा अंगद बन दूत वचन विस्तारे, करले रघुपति से मेल दशानन प्यारे।
अरि–कुल का भी घर घेर वृथा न उदारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४८

सुन बालि–तनय की बात न ठग ने मानी, छल–बल–पावक पर हा न पड़ा हित–पानी
रघुनायक ने अनरीति असुर की जानी, कर कोप उठे झट–मार ठनाठन ठानी।
अधमाधम रिपु को शूर सकुल संहारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।४६

चटपट रणचण्डी चेत चढ़ी कर तोले, झट नयन रुद्र ने तीन प्रलय के खोले।
गरजे जय के हर, स्यार अजय के बोले, हलचल में हर्ष–विवाद थिरकते डोले।
इस भाँति महारण रोप हुमक–हुंकारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५०

भिड़ गये भालु–कपि–वृन्द, वीर–रिपु–घाती, अटके रजनीचर, चोर, बधिक, उत्पाती।
छिप गया छेद घननाद लखन की छाती, झट ले पहुँचे प्रभु पास सुदक्ष सँगाती।
अति कष्ट पड़े पर धीर न हिम्मत हारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५१

बिन चेत अनुज को देख राम घबराये, हनुमान द्रोण गिरि–जन्य महोषधि लाये।
कर शीघ्र शल्य–प्रतिकार सुषेन सिधाये, उठ बैठे लखन सशोक समस्त सिहाये।
बन पौरुष–पंकज–भ्रंग सुजन गुंजारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५२

उठ कुम्भकर्ण रणधीर अड़ा मतवाला, समझे कपि, भालु सजीव महीधर काला।
रघुनायक ने इषु मार व्यग्र कर डाला, तन खण्ड–खण्ड कर प्राण–प्रपञ्च निकाला।
प्रतिभट पिशाच के अंग अवश्य विदारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५३

मच गया घना घमसान हुआ अँधियारा, झट कटें कटक में युद्ध प्रचण्ड पसारा।
तड़पें तन, उगलें लोथ रुधिर की धारा, घननाद अभय सौमित्र सुभट ने मारा।
यति वीर महा व्रतशील विपत्ति बिड़ारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५४

उजड़े घर, सेन समेत कुटुम्ब कटाया, अब जनक–सुता का चोर समर में आया।
रच–रच माया बल दर्प सदम्भ दिखाया, पर बचा न रावण, राम–विजय ने खाया।
खल–दल को मार–मिटाय कु–भार उतारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५५

कर सकल हेम–प्रासाद नगर के रीते, कट मरे निशाचर वीर भालु–कपि जीते।
रघुवर बोले दिन आज विरह के बीते, अब तो मिल मंगल मान सुवदना सीते!
बिछुड़ी वनिता पर प्रेम, सुरुचि संचारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५६

विधवा–दल का परिताप–विलाप मिटाया, अवनीश विभीषण वंश वरिष्ठ बनाया।
सिय से रघुनाथ सबन्धु मिले सुख पाया, दिन फिरे अवध के ध्यान भरत का आया।
निज जन्मभूमि पर प्रेम अवश्य प्रसारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५७

फिर पुष्पक पै कपि भालु प्रधान चढ़ाये, चढ़ लखन जानकी राम चले घर आये।
गुरु, मात, बन्धु, प्रिय, दास, प्रजा–जन पाये, सब ने मिल भेंट समोद शम्भु–गुण गाये।
बिछड़ो, कर मेल–मिलाप प्रवास बिसारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५८

सिय, राम, भरत, सौमित्र मिले अनुरागे, पट, भूषण सुन्दर धार वन्य व्रत त्यागे।
उमगे सुख–भोग विलास विघ्न–भय भागे, अपनाय अभ्युदय भव्य राज–गुण जागे।
चमको अब छार छुड़ाय ज्वलित अंगारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।५६

अभिमंत्रित मंगलमूल साज सब साजे, प्रभुतासन पै रघुनाथ सशक्ति विराजे।
घर–घर गायन, वादित्र, मनोहर बाजे, सुनते ही जयजयकार राज–गज गाजे।
बनिये शंकर इस भाँति धर्म–अवतारो, पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।।६०

काव्य–कुंज

राम राज्य की महिमा

(कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम० ए० आगरा)

युग–युग से गूँज रही है गुरु गौरव की शहनाई।
अवनी के शुचि प्रांगण में, है बजती रही बधाई।।
संसृति ने देखी है वह गुण–सागर की प्रिय प्रतिमा।
है हृदय तरंगित करती श्री रामराज्य की महिमा।।१।।

इतिहास आज भी देता है जिसकी अमर निशानी।
धरती का कण–कण कहता है 'सीता–राम' कहानी।।
श्री वाल्मीकि लिख जिसको कवि आदिम थे कहलाये।
'मानस' द्वारा तुलसी ने जन–मानस थे नहलाये।।२।।

जो मनु–विधान मधु जल की सरयू के तट पर गगरी।
है आज प्रेरणा देती वह पुण्य अयोध्या नगरी।।
उसमें शुभ शासन–मख का मानो आधान हुआ था।
उच्छ्रङ्खल वृत्ति अमा का मानो अवसान हुआ था।।३।।

श्रीराम 'राष्ट्र भृत' मख के प्यारे यजमान बने थे।
श्री भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण सहयोगी प्राण बने थे।।
ब्रह्मा वशिष्ठ ने पावन था अग्न्याधान कराया।
चारित्र्य गन्ध से पूरित था अध्वर–राज्य रचाया।।४।।

वर्णाश्रम वन्द्य व्यवस्था की कल्पलता लहराई।
गुण, कर्म, स्वभाव सुसञ्चित फल इष्ट सिद्धि के लाई।।
कोकिल सी कूक रही थी वेदों की वरदा वाणी।
आनन्द भवन के वासी थे पृथिवी के सब प्राणी।।५।।

दुर्दैव दुष्ट हिंस्रों का, किञ्चित् संल्लाप नहीं था।
सारांश राम के शासन में ये त्रय ताप नहीं था।।
श्री राम राज्य की किरणों ने भू पर स्वर्ण बिखेरा।
अज्ञान, अनीति, अभावों का भागा दूर अंधेरा।।६।।

'रामायण' अंक–सुधा के जो बने पूर्ण अभिलाषी।
पा 'प्रेम–प्रसाद' प्रफुल्लित इस 'तपोभूमि' के वासी।।

जीवन में राम चरित्त की दिव्य अम्बर ज्योति जगावें।
श्रुति रसनिधि प्रणत कृपा के प्रिय पावन प्रीति लगावें।।७।।

क्या यही 'राम राज्य' है ?

स्व० देवेन्द्र जी 'तूफान'

हर तरह से देश की जनता मोहताज है,
क्या गाँधीजी के स्वप्न का ये राम–राज है ?
हम सोचते थे देश में आजादी आयेगी,
फसले बहार बनकर नये गुल खिलायेगी,
कैसी बहार पेट भराई न नाज है।।१।।
जिनने करी कुर्बानी वे तो तंग ही रहे,
अंग्रेजों के जो पिट्ठू थे मलंग हो रहे,
घर का ही जेबकतरा पूरा जाल–साज है।।२।।
हनुमान और भीष्म जी थे बाल ब्रह्मचारी,
इस नये रामराज्य में तीतर के शिकारी,
खांसी दमा कहीं पर मजेदार खाज है।।३।।
अवकाश पाँच साल का मिलता है अलबत्ता,
मजलूमों के खूनों से बनता लीडर का भत्ता,
खद्दर के बाने में ये बगुला धोखेबाज है।।४।।
साला तो एम.एल.ए. बहनोई मिनिस्टर,
सीमेण्ट कोयला सूत सिफारिश के रजिस्टर,
आपस में बाँटने का नाम ही स्वराज्य है।।५।।
सीता का सतीपन तो है बेकार आजकल,
इस नये राम–राज्य में है 'हिन्दू कोडबिल',
छै छै पति बनाते न कोई ऐतराज है।।६।।
चारों तरफ ही ब्लैक का बाजार है गरम,
'तूफान' गरीबों की बचै किस तरह शरम,
'श्रीचन्द' चौतरफ सजा ये दुख का साज है।।७।।

विजयादशमी पूछ रही है ?

(-भारतेन्द्रनाथ)

रावण–दल ने ललकारा है, घर में आकर राम को।
सोने के बल से सोचा है, खत्म करेंगे राम को।।
साज–बाज से बढ़े चले आते हैं वे सीता हरने।
धर्म, सभ्यता, संस्कृति अपनी को आते जड़ से ग्रसने।।
उनकी सेना बलशाली है, बहुधन भी है साधन भी।
षड्यन्त्रों के चक्रों का है वेग पीठ पर शासन भी।।
विजय वरण को बढ़ते आते सोच रहे वे विजय मिलेगी।
हम भी सोच रहे कैसे रावण–दल को विजय वरेगी?
प्रश्न खड़ा है सम्मुख सबके रावण जीतेगा या राम।
त्रेतायुग की परम्परा का क्या होगा अन्तिम परिणाम?
'ईसा' दल ने पूरे बल से रावण बनकर किया प्रहार?
और गुँजाने आया है वह 'ईसा–मत' की जय–जयकार।।
विजया दशमी पूछ रही है बोलो किसकी होगी जीत।
किसका होगा अन्त यहाँ पर किसका गूँजेगा संगीत?
राम–राम के गीत निरन्तर गाने वालो दो ललकार।
उठो सँभालो धनुष–वाण अब, रावण दल का हो संहार।।

जब श्रीराम ने रावण पर चढ़ाई का उपक्रम किया था।

श्रीराम गुण-गान

– श्रीरामनरेश त्रिपाठी

सत्पुरुष–पुंगव, सत्यवादी, संयमी श्रीराम थे।
प्रतिभा–निधान, पराक्रमी, धृतिशील सद्‌गुण धाम थे।।
परम–प्रतापी, प्रजारञ्जक, शत्रु–विजयी वीर थे।
ज्ञानी, सदाचारी, सुधी, धर्मज्ञ, दानी, वीर थे।।
कल्याणकर उनके सभी शुभ लक्षणों को धार लो।
पढ़ मित्र पूर्ण–पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।।१।।
श्रुति–तत्व–वेत्ता, सत्यसंध, कृतज्ञ, गौरववान् थे।
संसार के हित में सदा तत्पर महा विद्वान् थे।।
निःस्पृह, प्रजाप्रिय, नय निपुण, अभिराम अवगुणहीन थे।
आदर्श आर्य, उदार, करुणासिन्धु, शुचि, शालीन थे।।
वे सदा सब भाँति से हैं पूजनीय विचार लो।
पढ़ मित्र पूर्ण–पवित्र राम चरित्र जन्म सुधार लो।।२।।
श्रीराम ने जो कर दिखाया धर्म के विश्वास में।
ऐसा न अन्य उदाहरण है जगत् के इतिहास में।।
दृढ़ हो उन्हीं के पुण्य–पथ पर चाहिए चलना हमें।
हम आर्य हिन्दू–मात्र रामचरित्र–कानन में रमें।।
होगा इसी से देश का कल्याण, सम्मति सार लो।
पढ़ मित्र पूर्ण–पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।।३।।
उस सद्‌गुणी की जीवनी को लक्ष्य अपना मान लें।
आओ सखे ! सत्कर्म का संकल्प मन में ठान लें।।
श्रद्धा–सहित हम उस महात्मा का निरन्तर नाम लें।
इह लोक से उद्धार पाकर स्वर्ग में विश्राम लें।।
भ्रम त्याग 'रामनेरश' उर में शक्ति–रश्मि पसार लो।
पढ़ मित्र पूर्ण–पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।।४।।

श्रीराम से !

– श्री विजयसिंह 'विजय'

तेरे भक्तों का है बुरा हाल राम जरा देखो तो आ,
पापी कमा के धन चैन यहाँ पा रहे।
और बलवान् निर्बलों को सता रहे।।
निर्धन का जीना मुहाल, राम जरा देखो तो आ।। तेरे०।।१।।
सत्य को असत्य ने, धर्म को अधर्म ने।
न्याय को अन्याय और कर्म को कुकर्म ने।।
दिया है जग से निकाल, राम जरा देखो तो आ।।तेरे०।।२।।
सीता सुता देख फैशन में फँस रही।
पुण्य दान त्याग, पाप–पंक बीच धंस रही।।
बदलती है इनकी चाल, राम जरा देखो तो आ।। तेरे०।।३।।
देव–दलन हो रहा है राम मेरे देश में।
स्यार मान पा रहे शेरों के वेश में।।
दुष्टों का फैला है जाल, राम जरा देखो तो आ।। तेरे०।।४।।
चोर और डकैत दिन रात बढ़े जा रहे।
सती सन्त और विप्र बाल को सता रहे।।
गौओं की खींच रहे खाल, राम जरा देखो तो आ।तेरे०।।५।।
'विजय' को यह बात राम एक बार मान लो।
भारत का भार हरो आने की ठान लो।।
दुष्टों के बन करके काल राम जरा देखो तो आ।।तेरे०।।६।।

रणभेरी

आज बज उठी रण की भेरी बन्द करो मीठी शहनाई।
आज रक्त से फाग खेलकर मरने की मधु ऋतु है आई।।
जीवित रहना महा पाप है, आज पुण्य है प्राण गँवाना।
सब धर्मों से बड़ा धर्म है, युद्ध–क्षेत्र में शीश कटाना।।
मां के बेटे शर्म करो कुछ माँ की लाज लुटी जाती है।

तुम्हें कसम है मर जाना पर माँ का दूध न कभी लजाना।।
क्षत–विक्षत है आज हिमालय धरती माता रुधिर नहाई।।१।।
आज देश का वह द्रोही है, शान्ति नाम जिसके अधरों पर,
वह द्रोही है मर मिटने को, आज न आकुल जिसका अंतर,
उसको लानत महायज्ञ में जो आहुति देने में पीछे,
उसको है धिक्कार कि जिसके कन्धों पर है टिका हुआ सर,
सिंहों ! जागो आज माँद में स्यारों की सेना धँस आई।।२।।
आज हिमालय की बर्फों से निकल पड़ी ऐसी ज्वाला है,
मिटने वाला धर्म सनातन ज्ञान–पीठ मिटने वाला है,
तुलसी मीरा सूर कबीरा सबको लपटें खा जायेंगी,
गंगा–यमुना मिटने वाली मिटने को तुलसी माला है,
अब भी फेंक बाँसुरी तुमने अगर नहीं तलवार उठाई।।३।।
आज हिमालय की लज्जा का भरी सभा में चीर हरण है,
आज शान्ति का वक्ष चीरता सैनिक बल का दुर्योधन है,
तिब्बत की द्रौपदी जुए में हम पहले ही हार चुके हैं,
आज विजय की सीता हर कर चला गया छल का रावण है,
युग के राम कहाँ सोये हो? अब अधर्म पर करो चढ़ाई।।४।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

हे प्रभो ! सुख शान्ति दाता स्वस्थ हमको कीजिए।
हों भुवन तीनों सुखी त्रयताप सब हर लीजिये।।
मित्र सम मानूं जगत् सद् भावना यह कीजिए।
है यही 'शिव' की विनय प्रभु दिव्य दर्शन दीजिए।।